जातक

[तृतीय खण्ड]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

जातक

[तृतीय खण्ड]

जातक

[तृतीय खण्ड]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्राक्कथन

सन् '४२ में जब द्वितीय-खण्ड प्रकाशित हुआ, तो स्वप्न में भी यह ध्यान न था कि द्वितीय और तृतीय खण्ड के बीच इतना अधिक समय गुजर जायगा।

सन् '४२ में ही राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) का मन्त्रित्व स्वीकार कर लेने से कुछ तो उधर व्यस्त रहना पड़ा, कुछ अगस्त आन्दोलन और युद्ध-जनित परिस्थिति इस प्रकार के सभी कार्य्यों में बाधक सिद्ध हुई।

यूँ अनुवाद सन् '४४ में ही तय्यार था किन्तु इसे प्रकाशित होने के लिए सन् '४६ तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। हिन्दी साहित्य प्रेस ने यदि इन बीस-पच्चीस दिनों में रात-दिन एक करके इसे न छापा होता तो न जाने अभी इसे और कितने दिनों अमुद्रित तथा अप्रकाशित ही रहना पड़ता। मौलानासाहब तथा प्रेस के सभी कर्मचारियों का आभारी हूँ।

तृतीय-खण्ड में हर तरह से पहले दोनों खण्डों के ही क्रम को जारी रखा गया है। हाँ, पहले दोनों खण्डों में प्रत्येक गाथा के साथ मूल पाली में दी गई कठिन शब्दावलि और उसके अर्थों का अर्थ भी रहा है। सारी गाथा का स्वतन्त्र अनुवाद देदेने के साथ वह पुनरुक्ति दोष ही नहीं, निष्प्रयोजन भी लगता था। इस खण्ड में उसे छोड़ दिया। हाँ, यदि कहीं कोई विशेष काम की बात दिखाई दी तो उसे पाद-टिप्पणी में देदिया है।

प्रथम-खण्ड और दूसरे खण्ड के ढाई-सौ जातकों के साथ इस खण्ड में प्रकाशित डेढ़ सौ जातक मिलकर कुल चार सौ जातक होजाते हैं। शेष एकसौ सैंतालीस जातक उत्तरोत्तर बढ़े हैं। आशा है वे सभी तीन खण्डों में समाप्त होंगे।

चौथे खण्ड के अनुवाद में हाथ लगा है। यदि अवकाश मिला और परिस्थिति अनुकूल रही, तो पाठक उसे शीघ्र ही प्रकाशित देख सकेंगे।

तृतीय-खण्ड का अधिकांश भाई जगदीश काश्यपजी की सहायता से दोहरा लिया गया था। उन्हें धन्यवाद क्या दूँ ?

इस खण्ड में प्रकाशित चित्र के लिए जातक के अँग्रेजी अनुवाद का ही कृतज्ञ हूँ।

सत्यनारायण कुटीर
हि० सा० सम्मेलन
५-३-४६

आनन्द कौसल्यायन

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

तीसरा परिच्छेद

७९

३. अरण्य वर्ग

चौथा परिच्छेद

३. कुटिदूसक वर्ग २३८

४. कोकिल वर्ग २६८

पाँचवाँ परिच्छेद

छठा परिच्छेद

२. सेनक वर्ग ४२६

सातवाँ परिच्छेद

तीसरा परिच्छेद

१. सङ्कप्प वर्ग

२५१. सङ्कप्प जातक

"सङ्कप्परागधोतेन..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इस श्रावस्ती-वासी तरुण ने बुद्धधर्म में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रव्रज्या ग्रहण की। एक दिन श्रावस्ती में भिक्षार्थ घूमते हुए अलङ्कारों से सजी एक स्त्री को देख कर कामुक्ता के वशीभूत हो वह अन्यमनस्क घूमने लगा। उसे आचार्य्य उपाध्याय आदि ने देख अन्यमनस्कता का कारण पूछा। उन्हें पता लगा कि यह गृहस्थ होना चाहता है। वे बोले—"आयुष्मान ! शास्ता रागादि क्लेश से पीड़ितों के क्लेश को दूर कर उन्हें स्रोतापत्ति फल आदि देते हैं। आ तुझे शास्ता के पास ले चलें।" इतना कह ले गए।

शास्ता ने पूछा—"भिक्षुओ, इस अनिच्छुक भिक्षु को लेकर क्यों आए हो?" उन्होंने कारण बताया। तब शास्ता ने पूछा—"भिक्षु ! क्या तू सचमुच उद्विग्नचित्त है?"

"सचमुच।"

"किस कारण से?"

उसने कारण बताया।

शास्ता ने कहा—"भिक्षु ! इन स्त्रियों ने पूर्व समय में ध्यान-बल से जिन्होंने अपने चित्त-मैल को एक ओर कर दिया ऐसे पवित्र प्राणियों के मन में भी कामुक्ता पैदा कर दी। तेरे जैसे तुच्छ आदमी तो क्यों उद्विग्न नहीं होंगे जब कि शुद्ध प्राणी भी उद्विग्न हो गए। उत्तम यशस्वी भी बदनाम हो जाते हैं, अशुद्धों का तो क्या कहना ? सुमेरु पर्वत को हिला देने वाली हवा

क्या पुराने पत्तों के ढेर को नहीं हिलाएगी? बोधि (वृक्ष) के नीचे बैठकर बुद्धत्व प्राप्त करने वाले प्राणी को भी इस कामुक्ता ने हिला दिया था। तेरे जैसे को क्यों न चंचल करेगी?"

इतना कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व अस्सी करोड़ धन वाले ऊँचे ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में सब विद्याएँ सीख वाराणसी लौट कर विवाह किया। माता पिता के मरने पर उनके मृतक संस्कार करवा हिरण्य की ओर ध्यान दिया। जब उसने देखा कि धन तो दिखाई देता है लेकिन जिन्होंने यह धन इकट्ठा किया वे नहीं दिखाई देते तो उसे संवेग हुआ। शरीर से पसीना छूटने लगा।

उसने चिरकाल तक गृहस्थी कर, महादान दे, काम-भोगों को छोड़, आंसु बहाते बहाते रिश्तेदारों को त्याग, हिमालय में प्रवेश कर, रमणीय प्रदेश में पर्णशाला बना उञ्छाचरिया[1] से जंगल के कन्दमूल फल खाते हुए जीवनयापन किया। थोड़े ही समय में अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर, ध्यान-रत रह, चिरकाल तक वहाँ रहते हुए सोचा—आबादी में जाकर निमक-खटाई का सेवन करूँगा। ऐसा करने से मेरा शरीर भी स्वस्थ होगा और घूमना भी हो जायगा। जो मेरे जैसे सदाचारी को भिक्षा देंगे अथवा अभिवादन आदि करेंगे वे स्वर्ग जायेंगे।

उसने हिमालय से उतर क्रम से चारिका करते हुए, बाराणसी पहुँच, सूर्य्यास्त के समय निवासस्थान खोजते हुए राजोद्यान देखा। यह सोच कि यह योगाभ्यास के अनुकूल होगा, यहाँ रहूँगा, उसने उद्यान में प्रवेश कर एक वृक्ष की जड़ में बैठ ध्यान-सुख में ही रात विता दी। अगले दिन शारीरिक कृत्य समाप्त कर, पूर्वाह्ण समय जटा, अजिन (चर्म) तथा वल्कल धारण कर, भिक्षापात्र ले, शान्त-इन्द्रिय तथा शान्त-मन हो, सुन्दर चाल-ढाल से युक्त, युगमात्र देखते हुए, अपने सब तरह के सौन्दर्य से लोगों की आँखों को खैंच

---

[1] घूम फिर कर गिरे फल आदि चुग कर खाना।

लेते हुए की तरह, नगर में प्रवेश कर भिक्षा मांगता हुआ, राजा के निवास-स्थान पर पहुँचा।

राजा ने महातल्ले पर टहलते समय झरोखों से बोधिसत्व को देख कर उसकी चाल ढाल से ही प्रसन्न हो सोचा यदि शान्त-धर्म नाम की कोई चीज़ है तो वह इसके अन्दर अवश्य होगी। उसने एक अमात्य को भेजा—जाओ इस तपस्वी को ले आओ। उसने जाकर प्रणाम किया और भिक्षा-पात्र लेकर कहा—भन्ते! राजा आपको बुलाता है। बोधिसत्व ने उत्तर दिया—महापुरुष! हमें राजा नहीं पहचानता है। 'तो भन्ते! जब तक मैं आऊँ तब तक यहीं रहें' कह उसने राजा को खबर दी। राजा बोला—हमारा कोई दूसरा कुल-विश्वासी तपस्वी नहीं है। जाओ उसे ले जाओ। उसने स्वयं भी खिड़की से हाथ निकाल, प्रणाम कर कहा—भन्ते इधर आएँ। बोधिसत्व अमात्य के हाथ में भिक्षापात्र देकर महातल्ले पर चढ़े।

राजा ने प्रणाम कर बोधिसत्व को अपने आसन पर बिठा अपने लिए तैयार किये गये यवागु-खाद्य-भोज्य परोस कर भोजन कर चुकने पर प्रश्न पूछा। शंका समाधान से और भी अधिक श्रद्धावान हो, प्रणाम कर पूछा—"भन्ते, आप कहाँ के निवासी हैं? कहाँ से आये हैं?"

"हम हिमालय के वासी हैं। महाराज! हम हिमालय से आये हैं।"

"किस कारण से?"

"महाराज! वर्षाकाल में स्थिर रूप से रहने के लिए जगह होनी चाहिए।"

"तो भन्ते! राजोद्यान में रहें। तुम्हें चार प्रत्ययों[1] का अभाव न रहेगा। और मुझे स्वर्ग की ओर ले जाने वाला पुण्य मिलेगा।"

राजा ने बोधिसत्व से वचन ले जलपान के अनन्तर बोधिसत्व के ही साथ उद्यान जा, वहाँ पर्णशाला और चंक्रमण-स्थान बनवा, बाकी भी रात और दिन के स्थान बनवाए। फिर प्रव्रजितों की सभी आवश्यकताएँ दे, 'भन्ते! सुख से रहें' कह उद्यानपाल को देख-भाल के लिए कहा। बोधिसत्व तब से बारह वर्ष तक वहीं रहे।

---

[1]भिक्षु की चारों आवश्यकतायें।

किसी दिन राजा के इलाके में बगावत हुई। उसे शान्त करने के लिए जाने के इच्छुक राजा ने देवी को सम्बोधन कर कहा—"भद्र ! मुझे या तुझे नगर में पीछे रहना चाहिए।"

"देव ! किस कारण कहते हैं ?"

"भद्र ! सदाचारी तपस्वी के लिए।"

"देव ! मैं इसमें प्रमाद नहीं करूँगा। अपने आर्य्य की सेवा का भार मुझ पर रहा। तुम निश्चिन्त होकर जाओ।" राजा निकल कर गया। देवी उसी प्रकार से सावधानी से बोधिसत्व की सेवा करती रही। राजा के जाने के बाद से बोधिसत्व नियमित समय पर न जा अपनी मरजी के समय राज-घर जाकर भोजन करते।

एक दिन बोधिसत्व के बहुत देर करने के कारण देवी सब खाद्य-भोज्य तैयार कर, नहा कर, अलंकृत हो, छोटी शैय्या बिछवा, बोधिसत्व के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई चिकने कपड़े को ढीला करके पहन लेट रही। बोधिसत्व भी समय देख भिक्षा-पात्र ले आकाश मार्ग से आ, बड़ी खिड़की के द्वार पर पहुँचे। उसका वलकल शब्द सुन कर सहसा उठने वाली देवी का पीला चिकना वस्त्र खिसक गया। बोधिसत्व ने विपक्षी-आलम्बन[1] इन्द्रियों को चंचल करके शुभ मान कर देखा।

उसका ध्यान-बल से शान्त हुआ भी विकार पिटारी के सांप की तरह फण उठा कर खड़ा हो गया। दूध वाले वृक्ष को बसूले से छील देने की तरह हुआ। विकार उत्पन्न होने के साथ ही ध्यान-बल नष्ट हो गया। इन्द्रियाँ मैली पड़ गई। उसकी दशा ऐसी हो गई जैसी उस कौवे की जिसने अपने से अपने पर उखाड़ लिए हों। वह पहले की तरह बैठ कर भोजन भी नहीं कर सका। बिठाने पर भी नहीं बैठा।

देवी ने सब खाद्य-भोज्य भिक्षा-पात्र में ही डाल दिया। जैसे पहले भोजन करके खिड़की से निकल आकाश मार्ग से जाता था, उस तरह से उस दिन न जा सका। भोजन लेकर बड़ी सीढ़ी से उतर उद्यान गया। देवी भी जान गई कि वह उस पर आसक्त हो गया है। तपस्वी उद्यान पहुँच, भोजन बिना

---

[1] स्त्री के लिये पुरुष तथा पुरुष के लिये स्त्री विपक्षी-आलम्बन है।

खाये ही (उसे) चारपाई के नीचे डाल 'देवी के हाथ का सौन्दर्य ऐसा है, पाँवों का सौन्दर्य ऐसा है, कमर के नीचे का हिस्सा ऐसा है, जाँघ ऐसी है' आदि प्रलाप करता हुआ सप्ताह भर पड़ा रहा। भोजन सड़ गया। उसमें कीड़े पड़ गये।

राजा इलाके को शान्त कर लौट आया। सजे-सजाये नगर की प्रदक्षिणा कर बिना राजमहल गये बोधिसत्व को देखने की इच्छा से उद्यान पहुँचा। आश्रम में कूड़ा-करकट देख कर सोचा 'चला गया होगा'। पर्णशाला का दरवाजा खोल कर अन्दर प्रवेश करने पर उसे लेटे देख 'कोई रोग होगा' सोच, सड़ा हुआ भात फिंकवा, पर्णशाला साफ करवा पूछा—भन्ते! क्या रोग है?

"महाराज, मुझे बींध डाला है।"

राजा ने सोचा—मेरे शत्रुओं ने मुझे हानि पहुँचाने का अवसर न पा 'इसके मर्मस्थल को आघात पहुँचायें' सोच आकर इसे बींध डाला होगा। उसने शरीर को पलट कर बिंधा-स्थान देखना चाहा। जब उसे बिंधा-स्थान दिखाई न दिया तो पूछा—"भन्ते! तीर कहाँ लगा है?"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"महाराज! मुझे किसी दूसरे ने नहीं बींधा है। मैंने अपने ही अपने हृदय में तीर मारा है।" इतना कह, उठकर आसन पर बैठ ये गाथायें कहीं—

सङ्कप्परागधोतेन वितक्कनिसितेन च,
नालङ्कटेन भद्देन न उसुकारकतेन च ॥
न कण्णायतमुत्तेन नपि मोरूपसेविना,
तेनम्हि हदये विद्धो सब्बङ्गपरिदाहिना ॥
आवेधञ्च न पस्सामि यतो रुहिरमस्सवे,
याव अयोनिसो चित्तं सयं मे दुक्खमाभतं ॥

[कामभोग सम्बन्धी सङ्कल्प से रँगे हुए, (उसी) सङ्कल्प (रूपी पत्थर) पर तेज किए हुए, असुन्दर, घृणित, जिसे किसी तीर बनाने वाले ने नहीं बनाया, जो कान के सिरे की तरह नहीं, जो मोर के पंख की तरह नहीं, (ऐसे) सारे शरीर को जलाने वाले (तीर) से मैं बिंधा हूँ। कहीं बिंधा-स्थान नहीं है जिसमें

से रुधिर बहे। मैंने अनुचित तौर पर चित्त को बढ़ने देकर स्वयं दुख (मोल) लिया है।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने इन तीन गाथाओं से राजा को धर्मोपदेश दे, राजा को पर्णशाला से बाहर भेज, योगाभ्यास कर, नष्ट हुए ध्यान को प्राप्त किया। फिर पर्णशाला से निकल आकाश में ठहर राजा को उपदेश देते हुए कहा— "महाराज! मैं हिमालय ही जाऊँगा।" राजा बोला—भन्ते, नहीं जा सकते। उसके इस प्रकार याचना करते रहने पर भी 'महाराज! यहाँ रहते हुए मैं इस गड़बड़ी को प्राप्त हुआ। अब मैं यहाँ नहीं रह सकता' कह आकाश में ऊपर उठ हिमालय चले गये। वहाँ आयु भर रह ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य्य) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में आसक्त-चित्त भिक्षु अर्हत हुआ। कुछ स्रोतापन्न हुए, कुछ सकृदागामी तथा कुछ अनागामी। उस समय राजा आनन्द था। तपस्वी तो मैं ही था।

२५२. तिलमुट्ठि जातक

"अज्जापि मे तं मनसि..." यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक क्रोधी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक भिक्षु क्रोधी स्वभाव का था। बहुत अस्थिर-चित्त। थोड़ी सी बात कहने से भी क्रोध आगया; चिढ़ गया; कोप द्वेष तथा गुस्सा प्रकट किया। भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, अमुक भिक्षु क्रोधी है, अस्थिर-चित्त है, चूल्हे में डाले निमक की तरह तटतटाता घूमता है, इस प्रकार के अक्रोधी (बुद्ध) शासन में प्रव्रजित हो गुस्से तक को नहीं रोक सकता है।

शास्ता ने सुना तो एक भिक्षु को भेजकर उस भिक्षु को बुलवा कर पूछा—भिक्षु, क्या तू सचमुच क्रोधी है ? "भन्ते ! सचमुच ।" "भिक्षुओ, यह केवल अभी क्रोधी नहीं है, यह पहले भी क्रोधी ही था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय उसका ब्रह्मदत्तकुमार नाम का पुत्र था। पुराने राजा अपने लड़कों को नगर में प्रसिद्ध आचार्य्यों के रहते हुए भी शिल्प सीखने के लिए दूर परदेश भेजते थे ताकि उनका मान मर्दन हो जाए, सरदी-गरमी सहने की सामर्थ्य आ जाए तथा लोक-व्यवहार के ज्ञाता हो जायें। उस राजा ने भी अपने सोलह वर्ष के पुत्र को बुला उसे एक तल्ले का जूता, पत्तों का छाता और एक हजार कार्षापण दे भेजा—तात ! तक्षशिला जाकर विद्या सीख आ। उसने 'अच्छा' कह मातापिता को प्रणाम कर विदा ली। चलते-चलते वह तक्षशिला पहुँचा। आचार्य्य का घर पूछकर, आचार्य्य के शिष्यों को पाठ बंचवाकर घर के दरवाजे पर टहलते समय वह पहुँचा। जहाँ आचार्य्य दिखाई दिए उसी जगह से जूते उतार, छाता बन्द कर आचार्य्य को प्रणाम करके खड़ा हुआ।

आचार्य्य ने उसे थका हुआ जान उसका आतिथ्य कराया। राजकुमार भोजन के बाद थोड़ा विश्राम करके आचार्य्य के पास जा प्रणाम करके खड़ा हुआ। तात ! कहाँ से आया ? पूछने पर 'वाराणसी से' उत्तर दिया।

"किसका पुत्र है ?"

"वाराणसी राजा का।"

"किस लिए आया है ?"

"शिल्प सीखने के लिए"

"आचार्य्य-भाग (फीस) लाया है वा धर्म-शिष्य[1] बनना चाहता है ?"

उसने 'आचार्य्य-भाग लाया हूँ' कह आचार्य्य के चरणों में हजार की

---

[1] बिना फीस चुकाये आचार्य्य की सेवा करके पढ़ने वाले को धर्म अंतेवासिक कहते थे।

थैली रख प्रणाम किया। धर्म-शिष्य दिन में आचार्य्य का काम करके रात को शिल्प सीखते थे। आचार्य्य-भाग देने वाले घर में ज्येष्ठ पुत्र की तरह रह कर केवल शिल्प ही सीखते थे। उस आचार्य्य ने भी योग्य नक्षत्र में राजकुमार को विद्या सिखाना आरम्भ किया।

शिल्प सीखता हुआ कुमार एक दिन आचार्य्य के साथ नहाने गया। एक बुढ़िया तिलों को साफ कर फैला कर रखवाली करती हुई बैठी थी। कुमार ने साफ तिल देख खाने की इच्छा से एक मुट्ठी तिल उठा कर खा लिये। बुढ़िया ने सोचा—यह लोभी है। वह कुछ न बोली। चुप रही। उसने अगले दिन भी वैसा ही किया। बुढ़िया ने तब भी उसे कुछ न कहा। कुमार ने तीसरे दिन भी वैसा ही किया। तब बुढ़िया हाथ उठाकर रोने लगी—प्रसिद्ध आचार्य्य अपने शिष्यों द्वारा मुझे लुटवा रहा है। आचार्य्य ने रुक कर पूछा—मां, यह क्या है?

"स्वामी! तुम्हारे शिष्य ने मेरे द्वारा साफ किए गए तिलों की आज एक मुट्ठी खाई, कल भी एक मुट्ठी खाई और परसों भी एक। क्या इस प्रकार खाते हुए मेरे सब तिल नहीं नष्ट कर देगा?"

"मां, मत रो। तुझे मूल्य दिलवाऊँगा।"

"स्वामी! मुझे कीमत नहीं चाहिये। इस कुमार को ऐसी शिक्षा दें कि यह फिर ऐसा न करे।"

'तो अम्मा! देख' कह आचार्य्य ने दो लड़कों से उस राजकुमार को पकड़वा कर बाँस की छड़ी ले तीन बार पीठ पर मारी—फिर ऐसा न करना। कुमार ने क्रोधित हो लाल आँखें कर आचार्य्य को सिर से पैर तक देखा। आचार्य्य जान गया कि उसने क्रोध भरी आँख से देखा है।

कुमार ने सोचा, विद्या समाप्त कर निमन्त्रण देकर मार डालूँगा। उसने आचार्य्य की करतूत मन में रख जाते समय आचार्य्य को प्रणाम कर स्नेही की तरह कहा—आचार्य्य, मैं वाराणसी पहुँच कर राज्य प्राप्त करने पर तुम्हें बुलवा भेजूँगा। तुम (अवश्य) आना। इस प्रकार प्रतिज्ञा करा चला गया। उसने वाराणसी जा माता पिता को प्रणाम कर शिल्प दिखाया। राजा ने 'जीते जी मैंने पुत्र को देख लिया, अब जीते जी इसे राज्यश्री सौंप दूँ' सोच पुत्र को राज्य दे दिया।

उसने राज्यश्री का उपभोग करते हुए, आचार्य्य की करतूत याद कर, क्रोधित हो, सोचा—उसे मरवाऊँगा और आचार्य्य को बुलाने के लिए दूत भेजा। तरुण अवस्था रहते उसे समझा न सकूँगा, सोच आचार्य्य नहीं गया। मध्यम अवस्था होने पर अब उसे समझा सकूँगा सोच, आचार्य्य ने जाकर राजद्वार पर खड़े हो कहलवाया—तक्षशिला का आचार्य्य आया है। राजा ने संतुष्ट हो, ब्राह्मण को बुलाकर उसे अपने पास आया देख, क्रोधित हो, लाल आँखें निकाल, अमात्यों को सम्बोधित कर कहा—भो, जिस स्थान पर आचार्य्य ने मुझे चोट पहुँचाई थी वह आज भी दुखता है। आचार्य्य सिर पर मृत्यु लेकर मरने के लिये आया है। आज यह जीता नहीं रहेगा। इतना कह पहली दो गाथाएँ कहीं:—

अज्जापि मे तं मनसि यं मं त्वं तिलमुट्ठिया,
बाहाय मं गहेत्वान लट्ठिया अनुताळयि
ननु जीविते न रमसि येनासि ब्राह्मणागतो,
यं मं बाहा गहेत्वान तिक्खत्तुं अनुताळयि ॥

[आज भी वह बात मेरे मन में है, जो तूने मुझे तिल की मुट्ठी (ले लेने) के लिए बाहों से पकड़ कर लाठी से पीटा था। निश्चय से ब्राह्मण ! तुझे जीना अच्छा नहीं लगता, जो तूने मुझे बाहों से पकड़ कर तीन बार पीटा था और अब (मेरे बुलाने से यहाँ) चला आया है।]

इस प्रकार उसे मृत्यु-भय दिखाते हुए कहा। उसे सुन आचार्य्य ने तीसरी गाथा कही:—

अरियो अनरियं कुब्बानं यो दण्डेन निसेधति,
सासनत्थं न तं वेरं इति नं पण्डिता विदु ॥

[जो आर्य अनार्य्य-कर्म करने वाले का अनुशासन करने के लिए उसे दण्ड से दण्डित करता है। पण्डित-जन उस (आर्य) के उस (कर्म) को वैर नहीं कहते।]

आर्य का मतलब है श्रेष्ठ। आर्य चार प्रकार का होता है—आचार-आर्य, दर्शन-आर्य, लिङ्ग-आर्य तथा पटिवेध-आर्य। मनुष्य हो अथवा पशु हो जिसका

आचरण श्रेष्ठ है वह आचार-आर्य है। कहा भी गया है :—

अरियं वत्तसि वक्कङ्ग ! यो वद्धमपचायसि,
चजामि ते तं भत्तारं गच्छथूभो यथासुखं ॥

[हे वक्कङ्ग ! यह जो तू वयोवृद्धों का आदर करता है, यह तेरा आर्य-बरताव है। मैं तेरे लिए तेरे भर्तार को छोड़ता हूँ। दोनों यथा सुख जाओ।]

रूप से वा मन प्रसन्न करने वाले दर्शनीय विहार से युक्त दर्शन-आर्य है। कहा भी गया है :—

अरियावकासोसि पसन्ननेत्तो
मञ्ञे भवं पब्बजितो कुलम्हा;
कथन्नु वित्तानि पहाय भोगे
पब्बजि निक्खम्म घरा सपञ्ञा

[हे प्रसन्न नेत्र ! आप आर्य प्रतीत होते हैं। ऐसा लगता है कि आप (श्रेष्ठ) कुल से प्रव्रजित हुए हैं। हे प्रज्ञावान् ! काम-भोग और धन छोड़ कर आप कैसे घर से निकल कर प्रव्रजित हुये हैं ?]

ओढ़ना पहनना चिह्न स्वरूप धारण कर श्रमण की तरह होकर घूमने वाला दुश्शील भी लिङ्ग-आर्य है। इसी के लिए कहा है :—

छदनं कत्वान सुब्बतानं
पक्खन्दी कुलदूसको पगब्भो,
मायावी असञ्ञतो पलापो
पतिरूपेन चरं स मग्गदूसी ॥

[सु-व्रतों के वस्त्र पहनकर कुल-दूषक, प्रगल्भ निकला। असंयत, मायावी, बेकार सबको दूषित करता हुआ उल्टा आचरण करता है।]

बुद्ध आदि परिवेध (= ज्ञान) आर्य हैं। कहा गया है :—बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध तथा बुद्ध-श्रावक आर्य कहलाते हैं। चारों प्रकार के आर्यों में यहाँ आचार-आर्यों से ही मतलब है।

इस प्रकार समझाते हुए आचार्य ने कहा :—"इस लिये महाराज तुझे भी इस प्रकार समझ, इस तरह के व्यक्ति से वैर नहीं करना चाहिये। महाराज ! यदि मैंने तुम्हें इस तरह की शिक्षा न दी होती तो ज्यों ज्यों समय

गुज़रता, तुम पूए, मट्ठी आदि तथा फलाफल चुराते हुए चौर-कर्म के प्रति आसक्त हो, क्रम से सेन्ध लगाना, रास्ता मारना तथा ग्रामघात आदि करते। (फिर) राजापराधी चोर समझे जाकर माल सहित राजा के सम्मुख ले जाए जाते। राजा कहता—जाओ इसे इसके अपराध के अनुसार दण्ड दो। तब तुम राज-दण्ड-भय को प्राप्त होते। तुम्हें इस प्रकार की सम्पत्ति कहाँ से मिलती? क्या मेरे ही कारण तुम्हें इस प्रकार का ऐश्वर्य नहीं मिला?"

उसे घेर कर खड़े अमात्य भी उसकी बात सुन, कहने लगे—देव! तुम्हें यह जो ऐश्वर्य मिला है, तुम्हारे आचार्य से ही मिला है। उस समय राजा ने आचार्य के गुणों का ख्याल कर कहा—आचार्य! सब राज्य ऐश्वर्य आपको देता हूँ। राज्य स्वीकार करें। आचार्य ने अस्वीकृत किया—मुझे राज्य की जरूरत नहीं।

राजा ने तक्षशिला भेज, आचार्य के स्त्री बच्चों को मँगवा, बहुत ऐश्वर्य दे तथा उसे ही पुरोहित बना, पिता के स्थान पर स्थापित किया। फिर उसी के उपदेशानुसार आचरण कर, दानादि पुण्य कर्म कर, स्वर्ग-परायण हुआ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला (आर्य) सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर क्रोधी भिक्षु अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ। बहुत श्रोतापन्न सकृदागामी तथा अनागामी हुए। उस समय राजा क्रोधी भिक्षु था। आचार्य तो मैं ही था।

२५३. मणिकण्ठ जातक

"ममन्नपानं......" यह शास्ता ने आळवि के पास अग्गाळव चैत्य में विहार करते समय कुटिकार शिक्षापद के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

आळवकवासी भिक्षु कुटि बनाने के समय 'आदमी दें, आदमियों की सहायता दें' कहते हुए, माँगते हुए, बहुत याचना करते घूमते थे। मनुष्य माँगने से घबरा कर, याचना से घबरा कर, भिक्षुओं को देख, उद्विग्न भी होते, त्रसित भी होते तथा भाग भी जाते।

आयुष्मान् महाकाश्यप ने आळवि में प्रविष्ट हो भिक्षाटन आरम्भ किया। आदमियों ने स्थविर को देख कर भी वैसा ही व्यवहार किया। उन्होंने भिक्षाटन से लौट, भिक्षुओं को आमन्त्रित कर पूछा—'आयुष्मानो! पहले इस आळवि में भिक्षा सुलभ थी। अब क्यों दुर्लभ हो गई है?' कारण जान, उन्होंने भगवान के आळवि में आकर अग्गाळव-चैत्य में रहते समय भगवान् के पास जाकर यह बात कही। शास्ता ने इस सम्बन्ध में सभी भिक्षुओं को इकट्ठा करवा, आळवकवासी भिक्षुओं को पूछा—भिक्षुओ! क्या तुम सचमुच माँग माँग कर कुटी बनवाते हो? "भन्ते! सचमुच" कहने पर भगवान् ने उन भिक्षुओं की निन्दा की। "भिक्षुओ! सात रत्नों से परिपूर्ण नाग-भवन में रहने वाले नागों को भी याचना अप्रियकर होती है। मनुष्यों की तो बात ही क्या! उन्हें तो एक कार्षापण पैदा करना ऐसा ही होता है जैसा पत्थर से मांस उखाड़ना।" इतना कह भगवान ने पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व महाधनवान् ब्राह्मण-कुल में पैदा हुआ। उसके इधर उधर दौड़ने लगने पर, एक दूसरा भी पुण्यवान् प्राणी उसकी माता की कोख में आया। वे दोनों भाई बड़े होकर माता-पिता की मृत्यु से वैराग्य-प्राप्त हो, ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, गङ्गा-तट पर पर्णशाला बना, रहने लगे। ज्येष्ठ भाई की पर्णशाला गङ्गा के ऊपर की तरफ थी, छोटे भाई की नीचे की तरफ।

एक दिन मणिकण्ठ नाम का नाग राजा (अपने) भवन से निकल गङ्गा के किनारे पर ब्रह्मचारी के भेष में घूमता हुआ छोटे भाई के आश्रम पर

पहुँच, प्रणाम करके एक ओर बैठा। वे दोनों परस्पर कुशल-क्षेम पूछ कर एक दूसरे के विश्वासी हो गये। अकेले न रह सकते थे। मणिकण्ठ नित्य कनिष्ठ तपस्वी के पास आता, बैठ कर बातचीत करता; और जाते समय तपस्वी के प्रति स्नेह होने के कारण अपना रूप छोड़ कर फण से तपस्वी को घेरते हुए लिपट कर उसके सिर पर बड़ा सा फण निकाल, थोड़ी देर विश्राम करता। फिर स्नेह त्याग, शरीर को लपेट कर तपस्वी को प्रणाम करता और अपने भवन को चला जाता। तपस्वी उसके भय से कृश हो गया। सूख गया। दुर्वर्ण हो गया। पाण्डुवर्ण हो गया। धमनियाँ गात्र से जा लगीं।

वह एक दिन भाई के पास गया। उसने उसे पूछा—क्या कारण है तू कृश हो गया है? सूख गया है? दुर्वर्ण हो गया है? पाण्डुवर्ण हो गया है? धमनियाँ गात्र से जा लगी हैं? उसने उसे वह हाल कहा। भाई ने पूछा—तू उस नाग का आना पसन्द करता है वा नहीं करता है?

"नहीं चाहता हूँ।"

"वह नागराज जब तेरे पास आता है तो क्या गहना पहन कर आता है?"

"मणि रत्न।"

"तो तू उस नागराज के तेरे पास आकर बैठने से भी पहले 'मुझे मणि दे' माँगना। वह नाग तुझे फन से बिना लपेटे ही चला जाएगा। दूसरे दिन आश्रम-द्वार पर खड़े होकर उसके आते ही आते माँगना। तीसरे दिन गङ्गा के किनारे खड़े हो, उसके पानी से निकलते ही माँगना। इस प्रकार वह फिर तेरे पास न आएगा।"

तपस्वी ने सुनकर 'अच्छा' कहा और अपनी पर्णकुटी में चला गया। दूसरे दिन नागराज के आकर खड़े होते ही उसने याचना की—यह अपने पहनने की मणि मुझे दे। वह बिना बैठे ही भाग गया। दूसरे दिन उसने आश्रम-द्वार पर ही खड़े हो उसके आते ही कहा—कल भी मुझे मणिरत्न नहीं दिया। आज तो मिलना ही चाहिये। नाग बिना आश्रम में घुसे ही भाग गया। तीसरे दिन उसके पानी से निकलने ही पर कहा—आज मुझे माँगते माँगते तीसरा दिन हो गया है। आज मुझे यह मणिरत्न दें। नागराज ने पानी में खड़े ही खड़े तपस्वी का निषेध करते हुए दो गाथाएँ कहीं :—

ममन्नपानं विपुलं उळारं
उप्पज्जतीमस्स मणिस्स हेतु,
तं ते न दस्सं अतियाचकोसि
न चापि ते अस्समं आगमिस्सं ॥
सुसु यथा सक्खरधोतपाणि
तासेसि मं सेलं याचमानो,
तं ते न दस्सं अतियाचकोसि
न चापि ते अस्समं आगमिस्सं ॥

[इस मणि के कारण मुझे बहुत अन्न-पान की प्राप्ति होती है। तू अति-याचक है। मैं यह तुझे न दूंगा। और मैं तेरे आश्रम में भी नहीं आऊँगा।

जैसे कोई तरुण पत्थर पर तेज की हुई तलवार लेकर किसी को डराये उसी तरह तू मुझे यह मणि माँग कर त्रास देता है। तू अति-याचक है। मैं यह तुझे न दूँगा। और मैं तेरे आश्रम में भी नहीं आऊंगा]

ऐसा कह कर वह नाग-राजा पानी में डुबकी मार अपने नाग-भवन पहुँच. फिर वापिस नहीं आया।

वह तपस्वी उस दर्शनीय नागराज के न देखने से पहले से भी अधिक कृश, रूखा, दुर्वर्ण तथा पाण्डु रंग का हो गया और उसकी धमनी गात को ऊ लगी। ज्येष्ठ तपस्वी ने छोटे भाई का हाल-चाल जानने के लिए उसके पास आकर देखा कि वह पहले से भी अधिक पाण्डु-रोग का रोगी है। क्यों तू पहले से भी अधिक पाण्डु-रोगी हो गया? उत्तर मिला—उस दर्शनीय नागराज को न देख सकने से। यह तपस्वी नागराज के बिना भी नहीं रह सकता सोच, तीसरी गाथा कहीः—

न तं याचे यस्स पियं जिगिंसे
देस्सो होति अतियाचनाय,
नागो मणिं याचितो ब्राह्मणेन
अदस्सनंयेव तदज्झगमा ॥

[जो (चीज़) मालूम हो कि किसी की प्रिय है, वह उससे न मांगे। अतियाचना करने वाले के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है। ब्राह्मण के द्वारा मणि मांगी जाने पर नाग लुप्त ही हो गया।]

इतना कह और अब इसके बाद चिंता मत करना समझा, बड़ा भाई अपने आश्रम गया। आगे चलकर वे दोनों भाई अभिञ्ञा तथा समापत्तियां प्राप्त कर ब्रह्म-लोक गामी हुए।

शास्ता ने 'भिक्षुओ, इस प्रकार सात रत्नों से पूर्ण नाग-भवन में रहने वाले नागों को भी याचना अप्रिय होती है, मनुष्यों की तो बात ही क्या ?' धर्म-देशना लाकर जातक का मेल बैठाया।

उस समय छोटा भाई आनन्द था, ज्येष्ठ भाई तो मैं ही था

२५४. कुण्डककुच्छि सिन्धव जातक

"भुत्वा तिणपरिघासं......", यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय सारिपुत्र स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय सम्यक् सम्बुद्ध के श्रावस्ती में वर्षावास के बाद चारिका करके लौटने पर मनुष्यों ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अतिथि सत्कार करने की नीयत से दान दिया। उन्होंने विहार में एक धर्म-घोष[1] भिक्षु को नियुक्त किया। वह, जो आकर जितने भिक्षु माँगता उसे उतने ही चुन कर देता।

एक दरिद्र बृद्धा ने एक ही भिक्षु के लिए खाद्य-सामग्री तैयार कर उन उन मनुष्यों को भिक्षु चुन चुन कर दिये जाने पर दिन चढ़े धर्म-घोषक भिक्षु के पास जाकर कहा—मुझे एक भिक्षु दें। उसने उत्तर दिया—मैं ने सभी भिक्षु चुनकर दे दिये। सारिपुत्र स्थविर ही विहार में हैं। तू उन्हें दान दे।

---

[1] वह भिक्षु जो धर्मोपदेश की घोषणा किया करता था।

उसने प्रसन्न चित्त से 'अच्छा' कहा और जेतवन के द्वार-कोठे पर खड़ी हो, स्थविर के आने के समय उन्हें प्रणाम कर, हाथ से पात्र ले, घर जाकर बिठाया। एक बुढ़िया ने धर्मसेनापति को घर में बिठा रखा है, यह बात बहुत से श्रद्धावान् परिवारों ने सुनी। उन में से कोसल नरेश प्रसेनजित ने सुना तो उसने वस्त्र, एक थैली में हजार कार्षापण और भोजन भरे बर्तन भेज दिये और कहला भेजा कि हमारे आर्य्य को भोजन परोसते समय यह वस्त्र पहने और यह कार्षापण खर्च करे। जैसे राजा ने, उसी तरह अनाथ-पिण्डक ने, छोटे अनाथपिण्डक ने तथा महान् उपासिका विशाखा ने भी भेजे। दूसरे परिवारों ने भी अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार एक सौ, दो सौ कार्षापण करके भेजे। इस प्रकार एक ही दिन में उस बुढ़िया को एक लाख (कार्षापण) मिले। स्थविर उसका दिया यवागु ही पी, उसका बनाया खज्जक ही खा तथा उसके बनाये भात ही का भोजन कर दानानुमोदन के अनन्तर उसे स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित कर विहार को ही लौट गये।

धर्म-सभा में भिक्षुओं ने स्थविर की प्रशंसा करनी आरम्भ की—आयु-ष्मानो, धर्मसेनापति ने बुढ़िया को दरिद्रता से छुड़ा दिया। वह उसका सहारा हो गये। उन्हों ने उसका दिया हुआ भोजन बिना मन मैला किये ही खाया।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो? 'अमुक बात-चीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी सारि-पुत्र इस बुढ़िया के सहायक हुए हैं, न केवल अभी उसका दिया भोजन बिना मन मैला किये खाया है किन्तु पहले भी खाया ही है। इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उत्तरापथ में बनियों के कुल में पैदा हुये। उत्तरापथ जनपद के पाँच सौ घोड़ों के व्यापारी घोड़े लाकर वाराणसी में बेचते थे। एक दूसरा भी घोड़ों का व्यापारी पाँच सौ घोड़े लेकर वाराणसी के रास्ते पर हो लिया। मार्ग में वाराणसी के आस-पास ही एक निगम था। पहले वहाँ एक महा

धनवान् सेठ रहता था। उसका बड़ा भारी मकान था, लेकिन उसका कुल क्रम से नाश को प्राप्त हो गया था। एक बूढ़ी स्त्री बच गई थी। वह उस मकान में रहती थी।

उस उच्च व्यापारी ने नगर में पहुँच 'किराया दूँगा' करके उस घर में निवास-स्थान ग्रहण कर घोड़ों को एक ओर रखा। उसी दिन उसकी एक श्रेष्ठ घोड़ी ने बच्चा जना। वह दो दिन रह राजा को देखने के लिए घोड़े ले चल दिया।

बूढ़ी ने घर का किराया माँगा। वह बोला—अच्छा माँ, देता हूँ। बुढ़िया ने कहा—इस बछेरे को भी किराये में से काटकर दे दे। व्यापारी देकर चला गया। बुढ़िया उस बछेरे को पुत्रवत् स्नेह करते हुए ज़ला-भात, जूठन तथा घास खिलाकर पालने लगी।

आगे चलकर पाँच सौ घोड़ों को साथ ले आते हुए बोधिसत्व ने आकर उसी घर में डेरा डाला। कुण्डकखादक सिन्धव बछेरे के निवास स्थान की गन्ध सूँघ कर एक भी घोड़ा घर में प्रवेश नहीं कर सका। तब बोधिसत्व ने वृद्धा से पूछा—अम्म ! इस घर में कोई घोड़ा भी है ?

"तात ! इस घर में और तो कोई नहीं, एक बछेरा जिसे मैं पुत्र के समान पालती हूँ रहता है।"

"अम्म ! वह कहाँ है ?"

"तात ! वह चरने गया है।"

"अम्म ! वह कब आयगा ?"

"तात ! दिन रहते ही आयगा।"

बोधिसत्व उसके आने की प्रतीक्षा में घोड़ों को बाहर ही रख कर बैठे। सिंधव बछेरा दिन रहते ही चर कर घर आया।

बोधिसत्व ने कुण्डक-कुच्छिक-सिन्धव बछेरे को देख सुलक्षणों से उसे अमूल्य जान बुढ़िया से खरीद लेने की बात सोची। बछेरा घर में प्रविष्ट हो अपनी जगह पर ही ठहरा। उसी क्षण वे घोड़े भी प्रविष्ट हो सके। बोधिसत्व ने दो तीन दिन ठहर घोड़ों को आराम दे, चलते समय वृद्धा से कहा—अम्म ! मूल्य लेकर इस बछेरे को मुझे दे दे।

"तात ! क्या कहते हो, कहीं पुत्र बेचने वाले भी होते हैं ?"

"अम्म ! तू इसे क्या खिला कर पालती है ?

"तात ! भात की कञ्जी, भात का खुरचन और जूठी घास खिला, धान की भूसी का यवागु पिलाकर पालती हूँ।"

"अम्म ! मैं इसे पाकर सरस भोजन कराऊँगा, रहने के स्थान पर कपड़े का चँदवा तनवा, नीचे वस्त्र बिछवा कर उस पर रखूँगा।"

"तात ! ऐसा प्रबन्ध होने पर मेरा पुत्र सुख अनुभव करे, उसे ले कर जा।"

तब बोधिसत्व ने बछेरे के चार पैर, पूँछ और मुँह प्रत्येक की कीमत एक एक सहस्र मान कर छ सहस्र की थैली रख बूढ़ी को नए वस्त्र पहना, सजा कर सिंधव बछेरे के सामने खड़ा किया। उसने आँखे खोल माँ को देख आँसू गिराये। बुढ़िया ने उसकी पीठ पर हाथ फेर कर कहा—तात ! मैंने अपना पाल पोसने का खर्च पा लिया, तू जा। वह गया।

बोधिसत्व ने दूसरे दिन बछेरे के लिए सरल भोजन तैयार कर सोचा—आज इसकी परीक्षा करूँगा कि यह अपना बल पहचानता है अथवा नहीं ? इसलिए नाद में काना—यवागु डाल कर दिलवाया। बछेरे ने सोचा—मैं इस भोजन को नहीं खाऊँगा। उसने उस यवागु को पाने की इच्छा नहीं की। बोधिसत्व ने उसकी परीक्षा लेने के लिए पहली गाथा कही—

भुत्वा तिणपरिघासं, भुत्वा आचामकुण्डकं।
एतं ते भोजनं आसि, कस्मादानि न भुञ्जसि॥

[हे बछेरे ! तू जूठी घास खाने वाला है, चावल की कनी खाने वाला है। यह तेरा भोजन है। अब इसे क्यों नहीं खाता है ?]

इसे सुन सिन्धव बछेरे ने दूसरी दो गाथाएँ कहीं—

यत्थ पोसं न जानन्ति, जातिया विनयेन वा।
पहू तत्थ महाब्रह्मे, अपि आचामकुण्डकं॥
त्वञ्च खो मं पजानासि, यादिसायं हयुत्तमो।
जानन्तो जानमागम्म, न ते भक्खामि कुण्डकं॥

[हे महाब्रह्म ! जिस स्थान में लोग जाति या गुण नहीं जानते उस स्थान में चावल का पसावन ही बहुत है। किन्तु मैं कैसा उत्तम घोड़ा हूँ यह

तुम तो जानते हो। अपना बल जानता हुआ मैं तुम जैसे जानकार के साथ आया हूँ; इसलिए मैं यह भोजन नहीं करूँगा।]

बोधिसत्व ने यह सुन कर कहा—अश्वराज ! मैंने तुम्हारी परीक्षा के लिए ही ऐसा किया है। क्रोध मत करें। इस प्रकार उसे आश्वासन दे, अच्छा भोजन करा, राजदरबार में ले जाकर पाँच सौ घोड़ों को एक तरफ़ खड़ा करा, दूसरी तरफ़ चित्रित कनात घिरवा, नीचे वस्त्र बिछवा, ऊपर कपड़े का चन्दवा तनवा सिन्धव बछेरे को उसमें रखा।

राजा ने, आकर घोड़ों को देखते हुए कहा—इस घोड़े को अलग क्यों रखा है ?

"महाराज ! यह सिन्धव घोड़ा सब घोड़ों की चुङ्गी चुका देगा।"

"भो, क्या यह घोड़ा अच्छा है ?"

"हाँ महाराज !"

"तो इसकी चाल देखूँगा।"

बोधिसत्व ने उस घोड़े को तैयार कर, उस पर चढ़, 'देखें महाराज' कह, मनुष्यों को हटा, राजांगण में चलाया। सारा राजांगण घोड़ों की एक पँक्ति से घिरा सा हो गया। फिर बोधिसत्व ने 'महाराज ! इसका वेग देखें' कह घोड़े को छोड़ा। उसे एक व्यक्ति ने भी नहीं देखा। फिर घोड़े के पेट पर लाल वस्त्र लपेट कर छोड़ा। लोगों ने केवल लाल वस्त्र ही देखा। तब उसे नगर के अन्दर एक उद्यान-भूमि में, एक पोखरी के पानी पर दौड़ाया। पानी पर दौड़ते हुए घोड़े के खुर का अगला भाग भी पानी से नहीं भीगा। दूसरी बार कमल के पत्तों पर दौड़ाया। किन्तु एक पत्ता भी पानी में नहीं डूबा। इस प्रकार उसकी चाल दिखा, उतर, ताली बजा हथेली पसारी। घोड़ा आगे बढ़, चारों पैर इकट्ठे कर, हथेली पर जा खड़ा हुआ।

तब बोधिसत्व ने कहा—महाराज ! इस बछेरे की सब प्रकार की चाल दिखाने के लिए समुद्र पर्य्यन्त (भूमि) भी काफी नहीं। राजा ने सन्तुष्ट हो, बोधिसत्व को आधा राज्य दे दिया। सिन्धव बछेरे को भी अभिनय कर मंगल अश्व बनाया। वह बछेरा राजा का प्रिय और मनोज्ञ हुआ।

उसका सत्कार भी बहुत हुआ। उसका रहने का स्थान भी राजा के निवासस्थान के समान अलंकृत सजासजाया हो गया। चार प्रकार की सुगन्धि

से भूमि का लेप कराया गया। सुगन्धित मालाएँ लटकाई गईं। ऊपर सुवर्ण तारों से खचित चँदवा तना हुआ था। चारों तरफ़ से चित्रित कनात से घेर दिया गया। नित्य सुगन्धित तेल का प्रदीप जलने लगा। उसके पेशाब-पाखाने के स्थान पर सुवर्ण कड़ाही रखी गई। नित्य राजसी भोजन खाता था। उसके आने के समय से सारे जम्बूदीप का राज्य राजा का अपना राज्य सा हो गया। राजा बोधिसत्व के उपदेश के अनुसार आचरण कर दान आदि पुण्य-कृत्य कर, स्वर्ग-गामी हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, (आर्य्य) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय बहुत से लोग स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत हुए।

उस समय की बुढ़िया यही बुढ़िया थी। सिन्धव बछेरा सारिपुत्र था। राजा आनन्द था। घोड़े का व्यापारी तो मैं ही था।

२५५. सक जातक

'यावं सो मत्तमञ्जासि···' यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बहुत खाकर, अजीर्ण से मरे हुए, एक भिक्षु के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

उसके इस प्रकार मर जाने पर धर्म-परिषद् में भिक्षुओं ने उसकी निन्दा आरम्भ की—आयुष्मानो! अमुक नाम का भिक्षु अपने पेट का अन्दाज न जान, बहुत खाकर न पचा सकने के कारण मर गया। शास्ता ने आकर पूछा—बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?

"भन्ते! यह बात चल रही है।"

"भिक्षुओ! अभी ही नहीं पहले भी यह बहुत भोजन के ही कारण मरा है", कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व हिमवन्त-प्रदेश में तोते की योनि में पैदा हो, समुद्र की तरफ़ वाले पर्वत पर रहने वाले अनेक सहस्र तोतों का राजा हुआ। उसका एक पुत्र था। उसके बलवान होने पर, बोधिसत्व की आँखें कमजोर हो गईं। तोतों की गति तेज होती है। इसलिए उनके वृद्ध हो जाने पर पहले आँख ही कमजोर होती है। बोधिसत्व का पुत्र माता-पिता को घोंसले में ही रख, चारा ला, पोसता था।

एक दिन चरने के स्थान में जा, पर्वत के सिरे पर स्थित हो, समुद्र देखते हुए उसने एक द्वीप देखा। उसमें सुवर्ण वर्ण के मीठे आमों का वन था। दूसरे दिन चुगने के समय उड़कर उसी आम्रवन में उतर, आम्र-रस पी, पका आम ले जाकर माता-पिता को दिया। बोधिसत्व ने फल खा रस को पहचान कर कहा -- तात! क्या यह अमुक द्वीप का पका आम नहीं है?

"हाँ तात!"

"तात! इस द्वीप पर जाने वाले तोते दीर्घायु नहीं होते। इसलिए पुनः उस द्वीप पर मत जाना।"

वह पिता का वचन न मान गया ही। एक दिन बहुत आम्ररस पी, माता पिता के लिएं पका आम ले समुद्र के ऊपर से आता हुआ बहुत दौड़ने से थक कर निद्रा से अभिभूत हुआ। वह सोते सोते भी आया ही। चोंच से पकड़ा हुआ पका आम गिर पड़ा। वह क्रमानुसार आया हुआ रास्ता छोड़, नीचे उतरता हुआ पानी पर न ठहरा; उसमें गिर पड़ा। उसे एक मछली ने पकड़ कर खा लिया। बोधिसत्व ने उसके आने के समय उसे न आया जान, समझ लिया कि समुद्र में गिर कर मर गया होगा। उसके माता-पिता भी आहार न पा सूख कर मर गये। शास्ता ने यह अतीत-कथा ला, सम्यक्-सम्बुद्ध हो ये गाथाएँ कहीं :—

यावं सो मत्तमञ्ञासी भोजनस्मिं विहंगमो।
ताव अद्धानमापादि मातरञ्च अपोसयि॥
यतो च खो बहुतरं भोजनं अज्झुपाहरि।
ततो तत्थेव संसीदि अमत्तञ्ञू हि सो अहु॥

तस्मा मत्तञ्ञुता साधु भोजनस्मिं अगिद्धता ।
अमत्तञ्ञूहि सीदन्ति, मत्तञ्ञू च न सीदरे ॥

[जब तक वह पक्षी भोजन की मात्रा जानता रहा, तब तक जीवन-मार्ग पर चलकर माता-पिता का पालन करता रहा । जब बहुत भोजन किया, तब वहीं डूब गया, वह मात्रा को न जानने वाला था ।

इसलिए भोजन में लोभ न करके मात्रज्ञ होना अच्छा है । क्योंकि अमात्रज्ञ डूब जाते हैं मात्रज्ञ नहीं डूबते ।]

अथवा :—"पटिसंखा योनिसो आहारं आहरति नेव दवाय न मदाय न मण्डनाय न विभूसनाय यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया यापनाय विहिंसूपरतिया ब्रह्मचरियानुग्गहाय । इति पुराणञ्च वेदनं पटिहङ्खामि नवञ्च वेदनं न उप्पादेस्सामि यात्रा च मे भविस्सति अनवज्जता च फासुविहारो च ।"

[सोच विचार कर आहार ग्रहण करता है, न क्रीड़ा के लिए, न मण्डन के लिए, न सजावट के लिए । जब तक शरीर की स्थिति है तब तक इसे चालू रखने के लिए, भूख के निवारण के लिए, श्रेष्ठ जीवन विताने के लिए । (वह सोचता है) पुरानी (भूखरूपी) वेदना को दूर करता हूँ; (अत्यधिक भोजन से उत्पन्न होने वाली) नई वेदना को उत्पन्न न करूँगा । मेरी जीवन-यात्रा निर्दोष तथा सुलक्षण होगी ।]

अल्लं सुक्खञ्च भुञ्जन्तो, न बाळ्हं सुहितो सिया ।
अनूदरो, मिताहारो, सतो भिक्खू परिब्बजे ॥
चत्तारो पञ्च आलोपे, अभुत्वा उदकं पिवे ।
अलं फासुविहाराय पहितत्तस्स भिक्खुनो ॥
मनुजस्स सदा सतिमतो, मत्तं जानतो लद्धभोजने ।
तनु तस्स भवन्ति वेदना सणिकं जीरति आयु पालयं ॥

[रूखा-सूखा खाने वाला हो, बहुत खाने वाला न हो । पेट निकला हुआ न हो, परिमित आहार करने वाला हो, स्मृतिमान हो, वही भिक्षु प्रव्रजित होवे ।

चार पाँच कौर खाने की जगह रख कर पानी पी ले । आत्मसंयमी भिक्षु को सुख से जीने के लिए इतना काफी है ।

प्राप्त भोजन की मात्रा जानने वाले स्मृतिमान भिक्षु की वेदना क्षीण होती है, खाना शीघ्र पचता है तथा आयु बढ़ती है।]

निम्न प्रकार से वर्णित मात्रज्ञता भी अच्छी है :—

"कन्तारे पुत्तमंसंव अक्खस्सब्भञ्जनं यथा।
एवं आहरि आहारं, यापनत्थायमुच्छितो ॥

[कान्तार में पुत्र के मांस की तरह* आँख में अञ्जन की तरह, केवल जीवन यापन के लिए अमूर्छित हो आहार किया।]

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला (आर्य्य) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय बहुत से लोग स्रोतापन्न, बहुत से सकृदागामी, बहुत से अनागामी और बहुत से अर्हत हुए।

भोजन में अमात्रज्ञ भिक्षु उस जन्म में सुक-राज-पुत्र था। सुकराज तो मैं ही था।

२५६. जरूदपान जातक

"जरूदपानं खणमाना···" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय श्रावस्ती-वासी बनियों के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

उन्होंने श्रावस्ती से सामान ले, गाड़ियाँ भर व्यापार के लिए जाते समय तथागत को निमन्त्रित कर, महादान दे, त्रिशरण ग्रहण कर, पञ्चशील धारण कर, शास्ता को नमस्कार कर कहा :—भन्ते ! हम लोग व्यापार के

---

*कान्तार में भोजनाभाव में माता ने पुत्र माँस खा लिया। न खाती तो माता और पुत्र दोनों की जान जाती। माता ने अपने पुत्र का मांस क्या स्वाद लेकर खाया होगा ?

लिए बहुत दूर जा रहे हैं, सामान बेच यात्रा सिद्ध होने पर सकुशल लौट कर पुनः आप को नमस्कार करेंगे। वे चल पड़े।

उन्होंने कान्तार में पुराने जलाशय को देख सोचा—"इस जलाशय में पानी नहीं है, हम लोग प्यासे हैं, इसलिए इसको खनेंगे।" खनते हुए क्रम से उन्हें लोहा, जस्ता, सीसा, रतन, सोना, मुक्ता और बिल्लौर आदि धातुएँ मिलीं। वे उन वस्तुओं से ही सन्तुष्ट हो, रत्नों से गाड़ियों को भर सकुशल श्रावस्ती लौटे। उन्होंने प्राप्त धन को संभाल, यात्रा सफल होने पर 'दान देंगे' सोच तथागत को निमंत्रित कर दान दे, प्रणाम कर एक ओर बैठ, शास्ता को बताया कि उन्होंने कैसे धन प्राप्त किया। शास्ता ने कहा—तुम लोगों ने तो हे उपासको! उस धन से सन्तुष्ट हो, मात्र होने से, धन और जीवन लाभ किया। पुराने लोग तो असन्तुष्ट हो, मात्रा न जानने से, पण्डितों के बचन के अनुसार कार्य्य न कर मृत्यु को प्राप्त हुए। फिर उनके प्रार्थना करने पर अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व वाराणसी में बनिए के कुल में जन्म ले, आयु प्राप्त होने पर काफिलों का मुखिया हुआ। उसने वाराणसी में सामान ले, गाड़ियाँ भर, बहुत से बनियों को साथ ले, उसी कान्तार में प्रविष्ट हो, उसी जलाशय को देखा। उन बनियों ने पानी पीने की इच्छा से उस जलाशय को खनते हुए बहुत सी लोह आदि धातुओं को प्राप्त किया। बहुत रत्न लाभ कर, उससे असन्तुष्ट हो, 'इसमें और भी इससे सुन्दरतर होगा' सोच, अत्यधिक प्रसन्न हो, खनते ही गये। तब बोधिसत्व ने उनसे कहा:—हे बनियो! लोभ विनाश का मूल है, हमने बहुत धन प्राप्त किया, इतने से सन्तुष्ट होओ, बहुत मत खनो। वे उसके मना करने पर भी खनते ही गये। वह जलाशय नाग का था। उसके नीचे रहने वाले नाग-राज ने अपने निवासस्थान के टूटने, उसमें ढेला और धूल के गिरने से क्रुद्ध हो, बोधिसत्व को छोड़, शेष सब को फुँकार से मारा। (फिर) नाग-भवन से निकल, गाड़ियों को जुतवा; सात रत्नों से भरवा, बोधिसत्व को आरामदार गाड़ी पर बैठा, नाग-छात्रों द्वारा गाड़ियों को खिंचवा,

बोधिसत्व को वाराणसी ले जा, घर में प्रविष्ट करा, धन सँभाल, स्वयं नागभवन गया। बोधिसत्व ने उस धन को त्याग, सारे जम्बूदीप को उन्नादित कर, दान दे, शील ग्रहण कर, उपोसथ-कर्म कर, मरने पर स्वर्ग-पद को प्राप्त किया। शास्ता ने यह अतीत-कथा ला, सम्यक् सम्बुद्ध होने पर ये गाथाएँ कहीं—

> जरूदपानं खणमाना, वाणिजा उदकत्थिका।
> अज्झगंसु अयोलोहं, तिपुसीसञ्च वाणिजा।
> रतनं जातरूपञ्च, मुक्ता वेळुरिया बहु॥
> ते च तेन असन्तुट्ठा, भीयोभीयो अखाणिसुं।
> ते तत्थासिविसो, घोरो तेजसि तेजसा हनि॥
> तस्मा खणे, नाति खणे, अति खाणं हि पापकं।
> खातेन च धनं लद्धं, अति खातेन नासितं॥

[जल प्राप्त करने की इच्छा वाले बनियों ने, जलाशय को खनते हुए उसमें से—ताम्बा, लोहा, जस्ता, सीसा, रतन, सोना, मुक्ता और बिल्लौर प्राप्त किया।

उससे असन्तुष्ट हो उन्होंने बार बार खना। अतएव उन्हें घोर तेज वाले सर्प ने अपने तेज से मार डाला।

इसलिए खने, किन्तु बहुत न खने, बहुत खनना बुरा है। खनने से धन मिला। बहुत खनने से नष्ट हुए।]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बिठाया। तब नाग-राजा सारिपुत्र था। काफिले का मुखिया तो मैं ही था।

२५७. गामणीचण्ड जातक

'नायं घरानं कुसलो...' यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय प्रज्ञा की प्रशंसा के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

भिक्षु धर्म-सभा में बुद्ध की प्रज्ञा की प्रशंसा करते हुए बैठे थे। आयुष्मानो! तथागत महाप्रज्ञावान हैं, विस्तृत-प्रज्ञा वाले हैं, प्रसन्न-प्रज्ञा वाले हैं, शीघ्र-प्रज्ञा वाले हैं, तीक्ष्ण-प्रज्ञा वाले हैं, उनकी प्रज्ञा बींधने वाली है, वे देव सहित लोक को प्रज्ञा से अतिक्रमण करते हैं। इसी समय शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! क्या बात-चीत कर रहे हो?"

"अमुक बात-चीत।"

"भिक्षुओ! केवल अभी ही नहीं, तथागत पहले भी प्रज्ञावान ही थे" कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में जनसन्ध राजा के राज्य करते समय, बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में जन्म लिया। उसका मुख अच्छी तरह साफ किये गये सुनहरी काँच के समान था, वह अति सुन्दर था। इसलिए उसके नाम-ग्रहण के दिन, 'आदासमुखकुमार' नाम रखा गया। उसकी सात वर्ष की अवस्था में ही पिता तीनों वेद, लोक में सब कर्तव्याकर्तव्य सिखा मर गया। अमात्यों ने बड़े आदर के साथ राजा का शरीर-कृत्य कर, मृतक-दान दे, सातवें दिन राजाङ्गण में इकट्ठे हो सोचा—कुमार अत्यन्त छोटा है, उसका राज्याभिषेक नहीं किया जा सकता, उसकी परीक्षा लेकर उसे अभिषिक्त करेंगे।

एक दिन नगर को अलंकृत करा, न्यायालय को सजा, राजसिंहासन बिछवा, कुमार के पास जाकर कहा—

"देव! न्यायालय चलना चाहिए।"

कुमार ने 'अच्छा' कहा। बहुत लोगों से घिरा कुमार जाकर सिंहासन पर बैठा। उसके बैठे रहने के समय अमात्यों ने दो पैर से चलने वाले एक बन्दर को वस्तुविद्याचार्य्य[1] का वेष पहना, न्यायालय में ले आकर कहा—

---

[1]इञ्जीनियर।

देव ! यह व्यक्ति पितामहाराज के समय का वस्तुविद्याचार्य्य है, विद्या में प्रवीण है। भूमि के अन्दर सात रतन तक का दोष देखने वाला है। राजकुल का महल कहाँ बनना चाहिए; उस स्थान को यही चुनता है। इसे अपनी नौकरी में लेकर इसके पद पर नियुक्त करना चाहिए।

कुमार ने उसे नीचे ऊपर देख, जान लिया कि यह मनुष्य नहीं है, बन्दर है। बन्दर किए कराये को चौपट करना जानते हैं, नहीं किये को कुछ नया बनाना या सोचना नहीं जानते। उसने अमात्यों को पहली गाथा कही—

'नायं घरानं कुसलो, लोलो अयं वलीमुखो।
कतं कतं खो दुस्सेय्य, एवं धम्ममिदं कुलं॥

[यह गृहनिर्माण में कुशल नहीं है। यह बन्दर-जाति लोलुप है। यह जाति तो किए कराये को चौपट करना जानती है।]

अमात्यों ने 'देव ऐसा होगा' कहा। उसे हटा, एक दो दिन बाद पुनः उसे ही अलंकृत कर, न्यायालय में ला कहा—देव ! यह पितामहाराज के समय न्यायामात्य था, न्याय-सूत्र इसको मालूम है, इसे नौकरी में रख न्याय करवाना चाहिए।

कुमार ने उसे देख, विचारवान मनुष्य के इस प्रकार के बाल नहीं होते, यह विचार रहित बानर है, न्याय नहीं कर सकता, जान दूसरी गाथा कही—

न इदं चित्तवतो लोमं, नायं अस्सासिकोमिगो।
सत्थं मं जनसन्धेन, नायं किञ्चि विजानति॥

[यह बाल किसी विचारवान के नहीं, यह शासन करने योग्य नहीं, मेरे पिता ने बताया था कि यह कुछ नहीं जानता।]

अमात्य यह गाथा भी सुन, 'देव ! ऐसा होगा' कह उसे ले गये। पुनः एक दिन उसे ही सजा, न्यायालय में ला कहा—देव ! यह व्यक्ति पिता महाराज के समय, माता-पिता की सेवा करने वाला, कुल के अन्य ज्येष्ठ लोगों का आदर करने वाला था। इसे अपने यहाँ रखना चाहिए।

कुमार ने उसे पुनः देख, बन्दर चंचल होते हैं, इस प्रकार के काम नहीं कर सकते, सोच तीसरी गाथा कही—

न मातरं वा पितरं, भातरं भगिणिं सकं,
भरेय्य तादिसो पोसो, सिट्ठं दसरथेन मे ॥

[मेरे पिता ने यह सिखाया है कि इस प्रकार का व्यक्ति माता-पिता, भाई, बहन का पोषण नहीं करता।]

अमात्यों ने 'देव ! ऐसा होगा' कह बन्दर को हटा लिया। कुमार पण्डित है, राज्य कर सकेगा, सोच बोधिसत्व को अभिषिक्त किया। ढिंढोरा पिटवाया कि आज से आदासमुख की आज्ञा चलेगी। तब से बोधिसत्व ने धर्मानुसार राज्य किया। उसका पाण्डित्य सारे जम्बूद्वीप में फैल गया। उसके पांडित्य को प्रकट करने के लिए ही यह चौदह कथाएँ कही गई हैं—

गोणो, पुत्तो, हयो चेव, नळकारो, गामभोजको,
गणिका, तरुणी, सप्पो, मिगो, तित्तिर, देवता,
नागो, तपस्सिनो, चेव अथो ब्राह्मणमाणव ॥

[बैल, पुत्र, घोड़ा, बँसफोड़वा, ग्राम का मुखिया[1], गणिका, तरुणी, सर्प, मृग, तित्तिर, देवता, नाग, तपस्वी, और ब्राह्मण-विद्यार्थी।]

ग. प्रसंग कथा

बोधिसत्व के राज-अभिषिक्त होने के समय जनसन्ध राजा के एक सेवक गामणीचण्ड ने ऐसा सोचा—यह राज्य समान-आयु वालों के साथ शोभा देता है। मैं वृद्ध हो चला हूँ। छोटे कुमार की सेवा नहीं कर सकूँगा। जनपद में कृषिकर्म करके जीऊँगा। वह नगर से दो योजन जा एक गाँव में रहने लगा, किन्तु खेती के लिए उसके पास बैल भी नहीं थे। वर्षा होने पर उसने एक मित्र से दो बैल माँगे। सारे दिन हल चला, बैलों को तृण खिला, उन्हें (उनके) स्वामी को सौंपने (उसके) घर गया। स्वामी उस समय घर में बैठ, अपनी भार्य्या के साथ भोजन कर रहा था। बैल अभ्यास-वश घर में घुस गये। उनके प्रवेश करने पर गृह-स्वामी ने अपनी थाली उठा ली। भार्य्या ने भी थाली दूर की। गामणीचण्ड मुझे कहीं भोजन करने को न कहें, सोच बैलों को बिना सौंपे ही चला गया।

---

[1] ग्रामभोजक।

रात को चोरों ने बैलों के स्थान में घुस उन्हीं बैलों को चुरा लिया। प्रातः बैलों के स्वामी ने अड़ार में बैलों को नहीं पाया। यह जानते हुए भी कि चोरों ने चुराया है, बैल के स्वामी ने सोचा कि इन्हें गामणी के मत्थे मढ़ूँगा। उसके पास जाकर कहा—

"भो! मेरे बैल दो।"

"क्या बैल घर में नहीं घुसे थे?"

"तो क्या तूने मुझे सौंपे थे?"

"नहीं सौंपे।"

"तो यह तुम्हारा राजदूत है।"

उन जनपदों में यह रिवाज था कि किसी के कंकर या ठीकरा ले, 'यह तुम्हारा राजदूत है' कहने पर अगर कोई नहीं जाता, तो राजा उसे दण्ड देता था। इसलिए वह 'दूत' सुनकर उसके साथ चला।

वह उसके साथ राजदरबार जा रहा था। रास्ते में एक मित्र का घर मिला। 'मैं अत्यन्त भूखा हूँ, जब तक ग्राम में जा भोजन कर लौटूँ, तब तक यहीं रहो' कह गामणीचण्ड मित्र के घर गया। उसका मित्र घर नहीं था। मित्र-गृहिणी ने देख कहा—"स्वामी! पका आहार नहीं है। मुहूर्तभर ठहरें। अभी पका कर देती हूँ।" चावल के बखार पर बिना सीढ़ियों के चढ़ती हुई वह जमीन पर आ पड़ी। उसी क्षण उसका सात मास का गर्भ गिर पड़ा। तत्काल उसके स्वामी ने आकर देख, गामणीचण्ड को कहा—"तुमने मेरी भार्य्या को पटक कर गर्भ-पात किया है। यह तुम्हारा राजदूत है।" वह उसे ले चला। तब दो व्यक्ति गामणी को बीच में कर चले।

वे एक गाँव की सीमा पर पहुँचे। वहाँ एक घोड़े का चरवाहा घोड़े को रोक नहीं सक रहा था। घोड़ा इन्हीं लोगों के साथ भागा आ रहा था। घोड़े वाले ने गामणी को देख कहा—मामा गामणी! इस घोड़े को किसी भी चीज से मार कर रोको। उसने एक पत्थर उठा कर मारा। पत्थर पैर में लगा। घोड़े का पैर रेंड़ के डण्डे के समान टूट गया। घोड़े वाले ने—तूने घोड़े के पैर को तोड़ा, यह तेरा राजदूत है—कह उसे पकड़ लिया। तीन आदमियों द्वारा पकड़ ले जाये जाते समय उसने सोचा—'यह लोग मुझे राजा के सामने पेश करेंगे। मैं बैलों का मूल्य भी नहीं दे सकता, फिर गर्भ-पात-दण्ड

और घोड़े का मूल्य देने को कहाँ पाऊँगा। इसलिए मर जाना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।' जाते हुए रास्ते में उसने समीप ही एक प्रपात-युक्त पर्वत देखा। उसकी छाया में दो पिता-पुत्र नळकार चटाई बुनते थे। गामणीचण्ड बोला—"भो! शौच जाना चाहता हूँ। जरा यही रहें। आता हूँ।" वह पर्वत पर चढ़ प्रपात की ओर गिरता हुआ पिता नळकार की पीठ पर गिरा। नळकार एक ही प्रहार से मर गया। गामणी उठकर खड़ा हो गया। नळकार "तू मेरे पिता की हत्या करने वाला चोर है, यह तुम्हारा राजदूत है" कह हाथ पकड़ झाड़ से निकला।

"यह क्या है?"

"यह मेरे पिता का घातक चोर है।"

तब चार जने गामणी को बीच में कर चले।

इसके बाद दूसरे ग्रामद्वार पर एक गाँव के मुखिया ने गामणी को देख पूछा—"मामा चण्ड! कहाँ जा रहा है?"

"राजा को देखने के लिए।"

"अगर तू राजा को देखे तो मैं एक सन्देश देना चाहता हूँ। क्या ले जायगा?"

"हाँ ले जाऊँगा।"

"मैं स्वभाव से रूपवान, धनवान, यशस्वी और निरोगी हूँ। तो भी मैं अब पाण्डुरोग से पीड़ित हूँ। क्या कारण है? राजा से पूछना। राजा पंडित है। वह तुम्हें इसका कारण बताएगा। उसका उत्तर फिर मुझे सुनाना।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

दूसरे गाँव के द्वार पर पहुँचा। वहाँ एक गणिका ने देखकर कहा—"मामा कहाँ जाता है?"

"राजा को देखने के लिए।"

"राजा पण्डित है, मेरा सन्देश ले जा। मैं पहले बहुत प्राप्त करती थी। अब तो चावल मात्र भी नहीं मिलता। कोई मेरे पास नहीं आता। इसका क्या कारण है? राजा से पूछ कर मुझसे कहना।"

दूसरे गाँव की सीमा पर एक तरुणी ने देख उसी भाँति पूछ कर कहा—"राजा पण्डित है। मेरा सन्देश ले जा। मैं न तो स्वामी के घर रह

सकती हूँ न पिता के घर । इसका क्या कारण है ? राजा से पूछ कर मुझसे कहना ।'

उसके आगे महामार्ग के समीप बाम्बी में रहने वाले एक सर्प ने देखकर पूछा—"चण्ड । कहाँ जाता है ?"

"राजा को देखने ।"

"राजा पण्डित है । मेरा सन्देश ले जा । मैं चरने जाने के समय भूखा, म्लान-शरीर बाम्बी से निकलते समय, शरीर से बिल को भरता हुआ कष्ट से निकलता हूँ । और चर के लौटने पर अच्छी तरह खाया हुआ, स्थूल शरीर वाला हो, घुसते समय बिल के किनारों को बिना छूता हुआ जल्दी से प्रविष्ट हो जाता हूँ । इसका क्या कारण है ? राजा से पूछकर मुझसे कहना ।"

आगे, एक मृग ने देखकर उसी प्रकार पूछ कर कहा—"राजा पण्डित है, मेरा सन्देश ले जा । मैं अन्यत्र तृण नहीं खा सकता । एक ही वृक्ष की जड़ के पास खा सकता हूँ । इसका क्या कारण है ? राजा से पूछकर मुझसे कहना ।"

उसके आगे एक तित्तिर ने देखकर कहा—"मैं एक ही बाम्बी के पास बैठ कर आवाज लगाने से अच्छी तरह आवाज लगा सकता हूँ । अन्य स्थानों पर बैठकर नहीं लगा सकता । इसका क्या कारण है ? राजा से पूछना ।"

उसके बाद एक वृक्ष-देवता ने देखकर पूछा—

"चण्ड कहाँ जाता है ?"

"राजा को देखने ।"

"राजा पण्डित है । पहले मेरा बहुत सत्कार होता था अब तो मुट्ठीभर वृक्ष की कोंपलमात्र भी नहीं मिलती । क्या कारण है ? राजा से पूछकर मुझसे कहना ।"

उसके आगे एक नाग-राजा ने देखकर उसी भाँति पूछकर कहा—"राजा पण्डित है । पहले इस तालाब का पानी साफ मणिवर्ण था । अब गँदला, मेंढक और काई से भरा हुआ है । इसका क्या कारण है ? राजा से पूछना ।"

आगे नगर के पास आराम में रहने वाले तपस्वियों ने देख, उसी भाँति पूछ कर कहा—"राजा पण्डित है । पहले इस आराम के फल-फूल

मधुर होते थे। अब ओजरहित कसैले हो गये हैं। इसका क्या कारण है? राजा से पूछना।"

इससे आगे नगर-द्वार के समीप एक शाला के ब्राह्मण-विद्यार्थियों ने देखकर पूछा—

"भो चण्ड! कहाँ जाता है?"

"राजा के दर्शनार्थ।"

"तो हमारा सन्देश लेकर जा। पहले जो कुछ पढ़ते थे वह हमें स्पष्ट होता था। अब छेद वाले घड़े के पानी के समान नहीं ठहरता है। समझ में नहीं आता है। अन्धकार सा हो जाता है। इसका क्या कारण है? राजा से पूछना।"

गामणीचण्ड इन चौदह प्रश्नों को लेकर राजा के पास गया। राजा न्यायस्थान पर बैठा था। बैल-स्वामी गामणीचण्ड को लेकर राजा के पास गया। राजा ने गामणीचण्ड को देखकर ही पहचान लिया कि यह मेरे पिता की सेवा करने वाला था, हमें गोद में लेकर घुमाता था। अब तक इतने समय कहाँ रहा सोचकर कहा—"हे चण्ड! इतने समय तक कहाँ रहे? बहुत समय से दिखाई नहीं दिये। किस मतलब से आये?"

"हाँ देव! हमारे देव (पितामहाराज) के स्वर्गगामी होने के समय से जनपद में जाकर कृषिकर्म करके जीवन निर्वाह करता हूँ। यह व्यक्ति बैल के मुकद्दमे के कारण 'राजदूत' दिखा कर तुम्हारे पास खींच लाया है।"

"बिना खींच कर न लाये जाने से, न आने वाले को, खींच कर लाया जाना ही अच्छा है। अब तुझे देखा है। कहाँ है वह व्यक्ति?"

"देव! यह है।"

"भो! क्या तूने सचमुच हमारे चण्ड को दूत दिखाया है?"

"सचमुच देव!"

"क्या कारण है?"

"देव, यह मेरे दो बैल नहीं देता है।"

"सत्य ही चण्ड?"

"तो देव! मेरी भी सुनें।"

सारी कथा सुना दी। इसे सुन राजा ने बैल-स्वामी से पूछा—

"भो ! क्या तुमने अपने घर में घुसते हुए बैलों को देखा ?"

'नहीं देखा देव !"

"भो ! क्या लोगों को मुझे आदास-मुख राजा कहते नहीं सुना है ? सच सच बोलो ।"

"देखे हैं देव !"

"भो चण्ड ! बैल न सौंपने से तुम्हारे गले। इस व्यक्ति ने, देख कर भी 'नहीं देखा' कह जान बूझ कर झूठ बोला है। इसलिए तुम (राज-) कर्मचारी होकर, इसकी और इसकी स्त्री की आँखें निकाल लो। चौबीस कार्षापण बैल की कीमत दो।" राजा के ऐसा कहने पर बैल-स्वामी बाहर कर दिया गया।

उसने सोचा—आँखें निकाल लिए जाने पर कार्षापण लेकर क्या करूँगा। गामणीचण्ड के पैरों पर गिर कर कहा—स्वामी चण्ड ! बैलों की कीमत के कार्षापण तुम्हारे ही पास रहें, इन्हें भी लें। दूसरे भी कार्षायण देकर भाग गया।

तब दूसरा बोला—"देव इसने मेरी पत्नी को पटक कर गर्भ गिरा दिया है।"

"सत्य ही चण्ड ?"

"महाराज ! सुनें" कह कर चण्ड ने सारी कथा कही।

"क्या तुमने इसकी स्त्री को पटक कर गर्भ गिराया है ?"

"नहीं गिराया है देव !"

"भो, क्या तुम इसके गर्भ गिराने की बात सिद्ध कर सकते हो ?"

"नहीं कर सकता देव !"

"अब क्या चाहते हो ?"

"देव ! मुझे पुत्र मिलना चाहिए।"

"भो चण्ड ! इसकी स्त्री को अपने घर में रख, पुत्र पैदा होने पर उसे लाकर दें।" वह गामणीचण्ड के पैरों पर गिर, बोला—स्वामी ! मेरा घर न बिगाड़ें। कार्षापण देकर चला गया।

तीसरे ने कहा—"देव ! इसने मार कर मेरे घोड़े का पैर तोड़ दिया है।"

"सत्य ही चण्ड ?"

"महाराज ! तो सुनें ?" कह कर चण्ड ने सारी कथा विस्तार से कही।

"'घोड़े को मार कर रोक दो' क्या तुमने सचमुच ऐसा कहा था ?"

"नहीं कहा देव !"

दूसरी बार पूछने पर उसने कहा—"हाँ कहा था देव !"

राजा ने चण्ड को सम्बोधित कर कहा—"हे चण्ड ! इसने कहकर 'नहीं कहा है' कह झूठ बोला है। इसकी जीभ निकाल लो; घोड़े की कीमत मेरे पास से लेकर एक सहस्र दो।"

अश्व-गोपक दूसरे भी कार्षापण देकर भाग गया। तब बँसफोड़वा के पुत्र ने कहा—

"देव यह मेरे पिता की हत्या करने वाला अपराधी है।"

"सच बात है चण्ड ?"

"देव ! सुनें।"

"सुनता हूँ कह।"

चण्ड ने उस बात को भी विस्तार पूर्वक कहा। राजा ने बँसफोड़वा को सम्बोधित कर कहा—

"अब क्या चाहते हो?"

"देव मुझे पिता मिलना चाहिए।"

"हे चण्ड ! इसको पिता मिलना चाहिए, मरे को लाया नहीं जा सकता। तुम इसकी माँ को ला, अपने घर में रख कर इसके पिता बनो।"

बँसफोड़वा के पुत्र ने कहा—स्वामी मेरे मरे हुए पिता का घर न बिगाड़ें। (वह भी) गामणीचण्ड को कार्षापण देकर भाग गया।

मुकद्दमे में विजय पाकर, सन्तुष्ट-चित्त गामणीचण्ड ने राजा से कहा—"देव ! किन्हीं किन्हीं का दिया हुआ सन्देश है। आपसे कहता हूँ।"

"चण्ड ! कह।"

चण्ड ने ब्राह्मण विद्यार्थियों के सन्देश से आरम्भ करके, उल्टे क्रम से एक एक करके कहे। राजा ने क्रमशः समाधान किया।

कैसे ?

पहला सन्देश सुन कर कहा—पहले उनके निवासस्थान पर समय जान कर बोलने वाला मुर्गा था। उसकी आवाज से उठ, मन्त्र ग्रहण कर स्वाध्याय करते हुए ही अरुणोदय हो जाता था। इसलिए उनका याद किया पाठ नष्ट नहीं होता था। अब उनके निवासस्थान पर असमय बोलने वाला मुर्गा है। वह कभी बहुत रात रहते बोलता है, कभी बहुत प्रभात होने पर। बहुत रात रहते बोलने से उठ, पाठ पढ़, निद्राभिभूत हो, बिना पाठ किए ही सो जाते हैं। बहुत प्रभात में बोलने से उठ, पाठ नहीं कर पाते। इसलिए उनके द्वारा ग्रहण किया गया याद नहीं होता।

दूसरा सुनकर कहा—वे पहले श्रमण-धर्म करते हुए कृषि-कर्म में लगे थे। अब श्रमण धर्म को छोड़ अकर्तव्यों में लगे हैं। आराम (विहार) में पैदा होने वाले फल सेवकों को दे, बदले में भोजन प्राप्त कर, मिथ्याजीविका से जीवन यापन करते हैं। इससे उनके फल मधुर नहीं होते। यदि फिर पहले की तरह एक-चित्त हो, सब श्रमण-धर्म से युक्त होंगे तो उनके फल फिर मधुर होंगे। वे तपस्वी, राज-कुलों की चतुरता नहीं जानते। उनको श्रमण-धर्म करने को कहो।

तीसरा सुन कर कहा—वे नागराजा आपस में एक दूसरे से कलह करते हैं। इसलिए वह तालाब गँदला हो गया है। यदि वे पहले की भाँति एक होंगे, तो पानी फिर स्वच्छ हो जायगा।

चौथा सुन कर कहा—वह वृक्ष-देवता पहले जंगल में से मनुष्यों की रक्षा करता था। इसलिए नाना प्रकार की बलि पाता था। अब रक्षा नहीं करता। इसलिए बलि नहीं पाता। यदि पहले की तरह रक्षा करेगा तो फिर अग्र-लाभ होगा। राजा भी होते हैं इसका उसे पता नहीं। इसलिए जंगल में से गुजरने वाले मनुष्यों की रक्षा करने को कहो।

पाँचवाँ सुनकर कहा—जिस बाँबी की जड़ में बैठ, वह तित्तिर अच्छी तरह बोलता है, उसके नीचे बड़ा खजाने का घड़ा है। उसे निकाल कर ले जा।

छठा सुनकर कहा—जिस वृक्ष-मूल के पास वह मृग तृण खा सकता है, उस वृक्ष के ऊपर बहुत भ्रमर-मधु है। मधु से सने हुए तृण से लोभित,

अन्य तृण नहीं खा सकता। उस शहद के छत्ते को लेकर, अच्छा मधु मुझे भेज शेष अपने खा।

सातवाँ सुनकर कहा—जिस बाँबी में वह सर्प रहता है उसके नीचे खजाने का बड़ा घड़ा है। वह उसकी रक्षा करता है। इसीलिए निकलते समय धन लोभ से शरीर को शिथिल कर, ऊपर उठता हुआ निकलता है। शिकार के बाद धन के स्नेह से, बिना किनारों को छूएँ, वेग से सहसा प्रवेश करता है। उस खजाने के घड़े को निकाल कर तू ले जा।

आठवाँ सुन कहा—उस तरुणी के स्वामी और उसके माता-पिता के निवास-ग्राम के बीच एक ग्राम में उसका यार है। वह उसे याद कर, उसी के स्नेह वश स्वामी के घर रहने में असमर्थ हो, 'माता-पिता को देखूँगी' कह यार के घर जाती है। कुछ दिन रह माता-पिता के घर जाती है। वहाँ भी कुछ ही दिन रह, फिर यार के याद आने पर 'स्वामी के घर जाऊँगी' कह फिर यार के ही घर जाती है। उस स्त्री को राजाओं का होना जतला, कहना स्वामी के ही घर रह। अगर नहीं रहती है, तो राजा तुझे पकड़ मँगवाएगा और तू जीवित नहीं रहेगी। अप्रमाद करना चाहिए।

नवाँ सुन कहा—वह वेश्या पहले एक से मजदूरी ले बिना उसका काम किए दूसरे से नहीं लेती थी। इसलिए उसे बहुत प्राप्त होता था। अब अपने धर्म को छोड़, एक से मजदूरी ले बिना उसका काम किए दूसरे से लेती है। पहले को अवसर न देकर दूसरे को देती है। इसलिए पैसा नहीं पाती है। उसके पास कोई नहीं जाता है। अगर अपने धर्म में स्थिर होगी तो पहले के सदृश हो जायगी। उसे अपने धर्म में स्थित होने को कहो।

दसवाँ सुन कहा—वह मुखिया पहले धर्मानुसार मुकद्दमों का फैसला करता था। इसलिए लोगों का प्रिय हो गया था। प्रसन्न-चित्त लोग उसके पास बहुत भेंट लाते थे। इसलिये वह सुन्दर था और धन, यश से सम्पन्न। अब रिश्वत लेने वाला हो, अधर्म से मुकद्दमों का फैसला करता है। इसलिए दुर्गत, दुःखी हो पाण्डु-रोग से पीड़ित हो गया है। अगर पहले की भाँति धर्म से मुकद्दमों का निर्णय करेगा तो पुनः पहले के सदृश हो जायगा। वह राजाओं के होने की बात नहीं जानता है, उसे धर्म से मुकद्दमों का फैसला करने को कहो।

गामणीचण्ड ने राजा से इतने सन्देश निवेदन किए। राजा ने सर्वज्ञ बुद्ध की तरह, अपनी प्रज्ञा से उन सब का उत्तर दिया। गामणीचण्ड को बहुत धन दे, उसके ग्राम को माफी देकर, उसे ही दे दिया। तब विदा किया।

ब्रह्म-नगर से निकल, बोधिसत्व के दिए गये उत्तर को ब्राह्मण विद्यार्थियों, तपस्वियों, नागराजा, वृक्ष-देवता को कहा। तित्तिर के बैठने के स्थान से निधि ले, मृग के तृण खाने के स्थान वाले वृक्ष से भ्रमर-मधु ले, राजा को मधु भेजा। सर्प के रहने वाली बॉम्बी को तुड़वा, निधि ली। तरुणी, वेश्या और मुखिया को राजा का सन्देश कह महान ऐश्वर्य्य के साथ अपने ग्राम गया। आयुभर जी, कर्मानुसार परलोक सिधारा। आदासमुख राजा भी दान आदि पुण्य कर्म कर मरने पर स्वर्ग गया।

शास्ता ने—भिक्षुओ! तथागत केवल अभी ही महाप्रज्ञावान नहीं, पहले भी महाप्रज्ञावन थे, कह धर्मदेशना ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया।

सत्यों का प्रकाशन हो चुकने पर बहुत से लोग स्रोतापन्न, सकृदागामी और अर्हत हुए।

उस समय गामणीचण्ड आनन्द था। आदासमुख राजा तो मैं ही था।

२५८. मन्धाता जातक

"यावता चन्दिमसुरिया......"—यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती में पिण्डपात के लिए जाता हुआ एक अलंकृत, सजी-सजाई स्त्री को देख उद्विग्न-चित्त हुआ। उसे भिक्षुओं ने सभा में लाकर शास्ता को दिखा कर कहा—

"भन्ते! यह भिक्षु उद्विग्न-चित्त है।"

"सच ही भिक्षु तू उद्विग्न-चित्त है?"

"भन्ते! सच ही।"

"भिक्षु! तू घर में रह कर कब तक काम-तृष्णा की पूर्ति कर सकेगा? काम-तृष्णा समुद्र के समान न पूरी होने वाली है। पुराने लोगों ने दो हज़ार द्वीपों से घिरे हुए चार महाद्वीपों पर राज्य किया। मनुष्य शरीर से ही चातुर्महाराजिक देव-लोक में शासन किया। त्र्योत्रिंश-देव-लोक में छत्तीस इन्द्रों के स्थान पर राज्य किया। तो भी अपनी काम-तृष्णा पूरी नहीं कर सके और मर गये। तू भला इस काम-तृष्णा को कब पूरा कर सकेगा?" इतना कह, पूर्वजन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में प्रथम कल्पों में महासम्मत नाम का राजा था। उसके पुत्र का नाम रोज था। उसके पुत्र का नाम वररोज था। उसके पुत्र का नाम कल्याण था। उसके पुत्र का नाम वरकल्याण था। वरकल्याण के पुत्र का नाम उपोसथ था। उपोसथ के पुत्र का नाम मन्धाता था।

उसने सात रत्न और चार ऋद्धियों से युक्त हो चक्रवर्त्ती राज्य किया। उसके बाएँ हाथ सिकोड़ दाहिने हाथ से ताली बजाने पर आकाश से दिव्य मेघ के समान जाँघ तक सात रत्नों की वर्षा होती थी। इस प्रकार का आश्चर्य्य-मनुष्य था। उसने चौरासी हजार वर्ष बाल-क्रीड़ा की। चौरासी हजार वर्ष उपराज रहा। और चौरासी हजार वर्ष चक्रवर्ती राज्य किया। उसकी आयु असङ्ख्य थी।

एक दिन काम-तृष्णा पूरी न हो सकने के कारण वह उद्विग्न-चित्त दिखाई दिया। अमात्यों ने पूछा—

"देव! क्यों उद्विग्न हैं?"

"मेरे पुण्य-बल को देखते यह राज्य क्या है? इससे रमणीय स्थान कौन सा है?"

"महाराज देव-लोक।"

वह चक्र रत्न (रथ) चला, परिषद के साथ चातुर्महाराजिक देवलोक गया। वहाँ देव-गण से घिरे चारों महाराज दिव्य-माला-गन्ध हाथ में ले स्वागतार्थ आगे आये। उसे ले चातुर्महाराजिक देवलोक ले जा, देवलोक का राज्य दिया। उसे अपनी परिषद के साथ राज्य करते हुए बहुत समय गुजर गया। वह वहाँ भी तृष्णा की पूर्ति न हो सकने के कारण उद्विग्न-चित्त दिखाई दिया। तब चारों महाराजओं ने पूछा—

"महाराज ! क्यों उद्विग्न हैं ?"

"इस देव लोक से रमणीय कौनसा स्थान है ?"

"हम तो देव ! दूसरे (लोकों) के सेवकों के सदृश हैं। त्रयोत्रिंश देव लोक रमणीय है।"

मन्धाता चक्ररत्न (रथ) चला अपने परिषद सहित त्रयोत्रिंश की ओर चला। वहाँ देवगण सहित देवराज शक्र ने दिव्य-माला-गन्ध ले स्वागत किया और उसका हाथ पकड़ कर कहा—"महाराज इधर चलें।"

देवगण से घिरे राजा के जाते समय परिनायंक-रत्न, चक्ररत्न ले, परिषद सहित (चातुर्महाराजिक देव) मनुष्य पथ से उतर अपने नगर में प्रविष्ट हुए। इन्द्र ने मन्धाता को त्रयोत्रिंश भवन ला, देवताओं को दो भागों में कर, अपना राज्य बीच से बाँट कर दिया।

तब से लेकर दो राजा राज्य करने लगे। इस प्रकार समय गुजरते हुए इन्द्र तीस करोड़ साठहजार वर्ष आयु बिता मर गया। दूसरा इन्द्र पैदा हुआ। वह भी देवराज्य कर आयु समाप्त होने पर मर गया। इस प्रकार छत्तीस इन्द्र मरे। मन्धाता मनुष्य-शरीर से देव-राज्य करता ही रहा। इस तरह समय गुजरते हुए अधिक खुश रहने के कारण उसको काम-तृष्णा उत्पन्न हुई। उसने सोचा—"आधे राज्य से मेरा क्या होता-जाता है ? इन्द्र को मार कर एक छत्र राज्य करूँगा।" इन्द्र मारा नहीं जा सकता। तृष्णा विपत्ति की जड़ है। इसलिए उसकी आयु घट गई। बुढ़ापे ने शरीर पर आघात किया। मनुष्य शरीर देवलोक में नहीं छूटता। इसलिए वह देवलोक से खिसक उद्यान में उतरा। माली ने राजा के आने का सन्देश राजकुल में निवेदन किया। राज-कुल ने आ उद्यान में ही बिस्तर लगवाया। राजा फिर न उठने की शय्या पर लेटा।

अमात्यों ने पूछा—"देव ! तुम्हारे बाद हम, लोगों को क्या सन्देश देंगे ?"

"मेरे बाद तुम लोगों को यह सन्देश देना—'मन्धाता-महाराजा ने दो हजार द्वीपों से घिरे हुए, चार द्वीपों में चक्रवर्ती राज्य किया। बहुत समय तक चातुर्महाराजिकों में राज्य किया। छत्तीस इन्द्रों की आयु के बराबर देवलोक में राज्य किया। फिर भी तृष्णा को बिना पूरा किए मर गया[1]।"

वह इस प्रकार कह, मर कर कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सम्यक्-सम्बुद्ध होने की अवस्था में यह गाथाएँ कहीं:—

> यावता चन्दिमसुरिया, परिहरन्ति, दिसाभन्तिविरोचना,
> सब्बेव दासामन्धातु, ये पाणा पठविनिस्सिता।
> न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति,
> अप्पस्सादा, दुःखा, कामा, इति विञ्ञाय पण्डितो—
> अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति,
> तण्हक्खयरतो होति सम्मासम्बुद्धसावको॥

[जहाँ तक चन्द्र-सूर्य्य का प्रकाश होता है, वहाँ तक के सभी पृथ्वी-वासी प्राणी मन्धाता के दास हैं। कार्षापणों की वर्षा होने पर भी काम-भोगों की तृप्ति नहीं होती। काम वासनाएँ अल्पस्वाद वाली (अधिकांश) दुःखद ही होती हैं। पण्डित आदमी यह जान कर भी दिव्य काम-भोगों में अनुरक्त नहीं होता। सम्यक् सम्बुद्ध का शिष्य तृष्णा के क्षय (निर्वाण) में अनुरक्त होता है।]

---

[1] अश्वघोष रचित बुद्धचरित का एक श्लोक है :—

> देवेन वृष्टेऽपि हिरण्यवर्षे, द्वीपां समुद्रांश्चतुरोऽपि जित्वा,
> शक्रस्य चार्धासनमप्यवाप्य मांधातुरासीद्विषयेष्वतृप्तिः ॥११-१३॥

[देव के सोना वर्षाने पर भी, चारों समुद्रों के द्वीपों को जीत कर भी और शक्र का आधा राज्य प्राप्त करके भी, मन्धाता विषयों में अतृप्त ही रहा।]

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, चार आर्यसत्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया। सत्यप्रकाशन के समय उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापन्न हुआ। अन्य लोगों में से भी बहुत से स्रोतापन्न हुए।

उस समय मन्धाता महाराजा मैं ही था।

२५६. तिरीटवच्छ जातक

"नयिमस्सा..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, आयुष्मान आनन्द द्वारा कोशल-राजा की रानियों से पाँच सौ और स्वयं राजा से पाँच सौ, इस प्रकार पाये गये एक हजार दुशालों की कथा के बारे में कही। वह वर्तमान-कथा दूसरे परिच्छेद की गुण-जातक[1] में विस्तार रूप से आ ही चुकी है:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व काशीराष्ट्र में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। नाम-ग्रहण के दिन तिरीटवच्छ कुमार नाम रखा गया। क्रमशः आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला में शिल्प सीखा। घर में रहते हुए माता-पिता की मृत्य से वैराग्य प्राप्त हो, घर से निकल कर ऋषिप्रव्रज्या ली। अरण्य में फल-मूल आदि खाकर रहने लगा।

उसके वहाँ रहते हुए वाराणसीराष्ट्र के प्रत्यन्तदेश में बलवा मचा। राजा वहाँ जा, युद्ध में पराजित हुआ। मरने के भय से हाथी के कन्धे पर चढ़, एक ओर भाग। आरण्य में विचरता हुआ वह पूर्वान्ह समय में तिरीटवच्छ के फल-मूल के लिए गये रहने पर, उसके आश्रम में प्रविष्ट हुआ। तपस्वियों का आश्रम जान हाथी से उतरा। हवा-धूप से क्लान्त, प्यासे, पानी खोजते हुए, कहीं कुछ भी न देख, उसने चंक्रमण-

...धार ज्ञाति-बन्धु।

[1] गुणजातक (१५७)

जलाशय देखा। पानी निकालने के लिए रस्सी-घड़ा न देख, प्यास रोकने में असमर्थ हो, हाथी के पेट में बँधे जोत को ले, हाथी को जलाशय के पास खड़ा कर, उसके पैर में जोत बाँध, जोत के सहारे जलाशय में उतरा। जोत के (पानी) तक न पहुँचने पर, बाहर निकल, चादर को जोत के सिरे पर बाँध फिर उतरा। तब भी नहीं हुआ। उसने अगले पैर से पानी का स्पर्श कर थोड़ी प्यास बुझा, अत्यन्त प्यासा होने के कारण सोचा—मरना ही हो तो अच्छा, मरना ठीक है। जलाशय में कूद, इच्छा भर पानी पी, फिर निकलने में असमर्थ हो वहीं रहा। हाथी भी सुशिक्षित होने से कहीं न जाकर राजा की इन्तजार करता हुआ वहीं खड़ा रहा।

बोधिसत्व शाम के समय फल आदि लेकर आए। हाथी को देख सोचा, राजा आया होगा। हाथी कसाकसाया मालूम पड़ता है। क्या कारण है? वे हाथी के समीप गये। हाथी उनका आना जान एक ओर खड़ा हो गया।

बोधिसत्व ने जलाशय के निकट जा राजा को देख कर कहा—"महाराज मत डरें।" आश्वासन दे, सीढ़ी बाँध, राजा को निकाला। उसके शरीर को दबा, तेल मल, स्नान करा, फल आदि दे, हाथी का बन्धन खोला।

दो तीन दिन विश्राम कर बोधिसत्व से अपने यहाँ आने की प्रतिज्ञा ले राजा गया।

नगर से कुछ दूर तम्बू गाड़ कर स्थित राज-सेना ने राजा को आता हुआ देख, उसे घेर लिया।

बोधिसत्व भी महीने आधे महीने बाद वाराणसी जा, उद्यान में रह, दूसरे दिन भिक्षा के लिए घूमते हुए राज-द्वार पर पहुँचे। बड़ी खिड़की खोल, राजाङ्गण में देखते हुए, राजा ने बोधिसत्व को देखा। पहचान कर, प्रासाद से उतर, प्रणाम कर, महाप्रासाद पर ला ऊँचे किए हुए स्वेत-छत्र के नीचे राज-सिंहासन पर बैठाया। अपने लिए बने आहार का भोजन कराया। स्वयं भी खा, उद्यान में ला, वहाँ उसके लिए चंक्रमण आदि से घिरा हुआ निवास-स्थान तैयार कराया। प्रव्रजितों की सभी आवश्यक चीजें दे, उद्यान-पाल और शक्र का आधा राज्य गया।
रहा।]
...ार में भोजन करने लगे। बहुत आदर-
...ात्यों ने इस प्रकार

सोचा—"कोई योद्धा इस प्रकार का सत्कार पाता हुआ क्या नहीं कर सकता ?" उपराज के पास जाकर कहा—"देव ! हमारा राजा एक तपस्वी से बहुत ममत्व रखता है। उसने उसमें क्या (गुण) देखे ? आप भी राजा के साथ मन्त्रणा करें।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया, और अमात्यों के साथ राजा के पास जा प्रणाम कर पहली गाथा कही :—

नयिमस्स विज्जामयमत्थि किञ्चि,
न बान्धवो नो पन ते सहायो,
अथ केन वएणेन तिरीटवच्छो,
ते दण्डिको भुञ्जति अग्गपिण्डं ॥

[यह कुछ विद्या नहीं जानता। न आप का बन्धु[1] है और न मित्र है, तो किस कारण से यह तिरीटवच्छ त्रिदण्डी (तीन दण्ड धारण करने वाला) श्रेष्ठ-भोजन खाता है ?]

यह सुन राजा ने पुत्र को आमंत्रित कर कहा—

"तात ! मेरा सीमा के बाहर जा, युद्ध में पराजित हो, दो तीन दिन का न आना याद है ?"

"याद है।"

"तो इसी के कारण मुझे जीवन मिला।" इतना कह, सारी वार्ता कह सुनाई।

फिर "तात ! मेरे जीवनदाता के मेरे पास आने पर, राज्य दे देने पर भी मैं उसका बदला नहीं चुका सकता" कह दो गाथाएँ कहीं :—

आपासु मे युद्धपराजितस्स,
एकस्स कत्वा विवनस्मिं घोरे।
पसारयि किच्छगतस्स पाणिं,
तेनूदतारिं दुखसम्परेतो।
एतस्स किच्चेन इधानुपत्तो,
वेसायिनो विसया जीवलोके।

---

[1] श्रुत-बन्धु, शिल्प-बन्धु, गोत्र-बन्धु और ज्ञाति-बन्धु।

लाभारहो, तात ! तिरीटवच्छो,
देथस्स भोगं यजतञ्च यञ्ञं ॥

[युद्ध में पराजित होकर जब मैं घोर वन में अकेला विपत्ति में पड़ा था, उस समय इसने मुझ आपत्ति-ग्रसित की ओर (कृपा का) हाथ बढ़ाया। इसी ने मुझ दुःखित को जलाशय से निकाला। इसी की कृपा से यहाँ पहुँचा हूँ। सभी जीव यमराज के पास जाने वाले हैं। हे तात ! तिरीटवच्छ को देना योग्य है। इसे भोग्य वस्तुएँ दो और (दान) यज्ञ करो।]

इस प्रकार राजा के द्वारा आकाश में उठते हुए चन्द्रमा के समान बोधिसत्व के गुण प्रकाशित किए जाने पर उसका गुण सर्वत्र प्रकट हुआ। उसका लाभ तथा आदर और भी बढ़ा। तब से लेकर उपराज, अमात्य या और कोई राजा से कुछ न कह सका। राजा बोधिसत्व के उपदेश में स्थित हो, दान आदि पुण्य-कर्म कर स्वर्ग-गामी हुआ। बोधिसत्व भी अभिज्ञा और समापत्ति को प्राप्त कर ब्रह्मलोक-परायण हुआ।

शास्ता ने "पुराने पण्डित भी उपकार वश कुछ करते थे" धर्म-देशना ला, जातक का मेल बिठाया।

उस समय राजा आनन्द था। तपस्वी तो मैं ही था।

२६०. दूत जातक

"यस्सत्था दूरमायन्ति..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक अतिलोभी भिक्षु के बारे में कही। कथा नवें परिच्छेद के काक जातक में आएगी।

शास्ता ने उस भिक्षु को आमंत्रित कर कहा— हे भिक्षु ! अभी ही नहीं पहले भी तू अतिलोभी था। लोभी होने के कारण ही तलवार से तेरा सिर कटा। यह कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय, बोधिसत्व उसका पुत्र हो, आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला में शिल्प सीख, पिता के मरने पर राजा बना। वह भोजन के बारे में बहुत शुद्धाशुद्ध विचार करने वाला था। इसलिए उसका नाम भोजन-सुद्धिक-राजा पड़ा। वह ऐसा भोजन करता था कि उसकी एक थाली का मूल्य एक लाख होता। खाते समय घर के अन्दर बैठकर नहीं खाता था। अपने भोजन-विधान को देखने वाली जनता को पुण्य देने की इच्छा से वह राज-द्वार पर रतन मण्डप बनवा, भोजन के समय उसे अलंकृत करा, उठे हुए स्वर्णमय श्वेत छत्र के नीचे राज-सिंहासन पर बैठ, क्षत्रिय कन्याओं से घिर कर, एक लाख की सोने की थाली में सात प्रकार का भोजन करता था।

एक अतिलोभी मनुष्य ने उसके भोजन-विधान को देख, उस भोजन के खाने की इच्छा को न रोक सकने पर सोचा—यह उपाय है। वह (वस्त्रों को कस कर पहन, हाथ उठाकर—"भो! मैं दूत हूँ, दूत हूँ," चिल्लाता हुआ राजा के पास पहुँचा।

उस समय उस जनपद में "दूत हूँ" कहने वाले को कोई नहीं रोकता था। इसलिए जनता ने दो हिस्सों में विभक्त हो उसे रास्ता दे दिया। उसने जल्दी से आ, राजा की थाली से भात का एक कौर लेकर मुँह में डाल लिया। "इसका सिर काटूँगा" सोच तलवारधारी (अंग-रक्षक) ने तलवार उठायी। राजा ने मना किया—मत मारो। "मत डरो, भोजन करो" कह राजा हाथ धोकर बैठा। भोजन कर चुकने पर अपने पीने का पानी तथा पान देकर पूछा—हे पुरुष तू "दूत हूँ" कहता है, तू किसका दूत है? "महाराज मैं तृष्णा का दूत हूँ, पेट का दूत हूँ। तृष्णा ने मुझे आज्ञा दे, दूत बना कर भेजा है—"तू जा"। यह कह उसने पहली दो गाथाएँ कहीं :—

> यस्सत्था दूरमायन्ति अमित्तंपि याचितुं,
> तस्सूदरस्सहं दूतो, मा मे कुज्झि रथेसभ ॥
> यस्स दिवा च रत्तो च वसमायन्ति माणवा,
> तस्सूदरस्सहं दूतो मा मे कुज्झि रथेसभ ॥

[मैं उस पेट का दूत हूँ जिसके वशीभूत होकर (लोग) दूर, अपने शत्रु के यहाँ भी माँगने जाते हैं। हे राजन ! मुझ पर क्रोध न करें। मैं उस पेट का दूत हूँ जिसके वश में सभी लोग दिन-रात रहते हैं। हे राजन ! मुझ पर क्रोध न करें।]

राजा ने उसकी बात सुनकर सोचा—सचमुच प्राणी पेट के दूत हैं, तृष्णा के वशीभूत हो विचरते हैं। तृष्णा ही प्राणियों को चलाती है। इस व्यक्ति ने ठीक कहा है, सोच सन्तुष्ट हो राजा ने तीसरी गाथा कही :—

ददामि ते ब्राह्मण रोहिणीनं गवं सहस्सं सह पुंगवेन,
दूतोहि दूतस्स कथंन दज्जं, मयंपि तस्सेवभवाम दूता ॥

[हे ब्राह्मण तुझे बैलों के साथ हजार लाल गौवें देता हूँ। दूत दूत को कैसे न दे ? हम भी उसी तृष्णा के दूत हैं।]

इस प्रकार कह, 'इस पुरुष द्वारा मुझे अपूर्व बात रूपी धन मिला' सोच उसे धन दिया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला सत्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल विठाया। सत्य प्रकाशन के अन्त में अतिलोभी भिक्षु अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ। बहुत से (लोग) स्रोतापन्न आदि हुए।

उस समय का लोभी आदमी, इस समय का लोभी भिक्षु है। भोजन-सुद्धिक-राजा तो मैं ही था।

तीसरा परिच्छेद्

२. कोसिय वर्ग

२६१. पदुम जातक

"यथा केसा च मस्सू च..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, आनन्द-बोधि (वृक्ष) की (पुष्प) माला से पूजा करने वाले भिक्षुओं के बारे में कही। कथा कालिङ्गबोधि[1] जातक में आयगी:—

क. वर्तमान कथा

आनन्द स्थविर द्वारा रोपे जाने के कारण वह (वृक्ष) आनन्द-बोधि कहलाया। स्थविर द्वारा जेतवन-दरवाजे पर बोधि (वृक्ष) लगाये जाने की बात सारे जम्बूदीप में फैल गई। एक बार जनपद के भिक्षुओं ने "आनन्द-बोधि की पुष्प मालाओं से पूजा करेंगे" सोच, जेतवन पहुँच शास्ता को प्रणाम किया। दूसरे दिन श्रावस्ती में प्रवेश कर कमल-गली में जा (पुष्प-) माला न पा, लौट कर आनन्द स्थविर से निवेदन किया। "आयुष्मान्! हम (पुष्प-) माला से बोधि की पूजा करना चाहते हैं। कमल-गली में जाने पर हमें एक भी माला नहीं मिली।" स्थविर ने कहा—"आयुष्मानो! मैं लाऊँगा" कमल-गली में जा नील-कमलों के बहुत से मुट्ठ उठवा, आकर उन्हें दिये। उन्होंने उन (फूलों) को लेकर पूजा की। उस कथा को जान कर धर्म-सभा में भिक्षुओं ने स्थविर की गुण-चर्चा चलाई। "आयुष्मानो! जनपद-वासी भिक्षु अल्प-पुण्य होने से कमल-गली में जाकर माला नहीं पा सके। स्थविर ने जाकर ला दो।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक बातचीत।"

---

[1] कालिङ्गबोधि जातक (४७९)

"भिक्षुओ! बात करने में कुशल, कथा-कुशल केवल अभी ही नहीं माला प्राप्त करते हैं। पहले भी प्राप्त की हैं" कह पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व ने सेठ के घर जन्म लिया। नगर में, एक तालाब में पुष्प फूले थे। एक नकटा आदमी उस तालाब की रक्षा करता था।

एक दिन वाराणसी में उत्सव की घोषणा किए जाने पर माला पहन, उत्सव में क्रीड़ा करने की इच्छा वाले तीन श्रेष्ठी-पुत्रों ने सोचा—नकटे के रूप की झूठी प्रशंसा करके माला माँगेंगे। उसके फूल तोड़ने के समय वे तालाब के निकट जा, एक ओर खड़े हो गये। उनमें से एक ने उसको सम्बोधित कर पहली गाथा कही—

यथा केसाचमस्सूच, छिन्नं छिन्नं विरूहति,
एवं रूहतु ते नासा, पदुमं देहि याचितो॥

[जिस प्रकार केश और मूँछ बार बार कटने पर भी फिर उगती है। उसी भाँति तुम्हारी नासिका बढ़े। मांगे जाने पर मुझे कमल दे।]

उसने उस पर क्रुद्ध हो, कमल नहीं दिये। दूसरे ने दूसरी गाथा कही—

यथा सारदिकं बीजं, खेत्ते वुत्तं विरूहति,
एवं रूहतु ते नासा, पदुमं देहि याचितो॥

[जैसे शरत् काल का बीज खेत में बोने पर उगता है, उसी भाँति तुम्हारी नासिका बढ़े। माँगे जाने पर मुझे कमल दे।]

उसने उससे भी क्रोधित हो कमल नहीं दिये। तब तीसरे ने तीसरी गाथा कही—

उभोपि पलपन्तेते, अपि पदुमानि दस्सति,
वज्जं वा ते न वा वज्जं, नत्थि नासाय रूहना,
देहि सम्म पदुमानि, अहं याचामि याचितो॥

[कमल देगा, इस आशा से यह दोनों झूठ बोलते हैं। (तुम्हारी नासिका उग आए) ऐसा चाहे वे कहें या न कहें, नासिका का उगना तो असम्भव है। हे मित्र! मैं माँगता हूँ, माँगे जाने पर कमल दे।]

यह सुन कमल-सर का रक्षक बोला—"इन दोनों ने झूठ बोला। तुमने जैसा है वैसा ही कहा। तुमको कमल मिलना योग्य है।" वह कमल का बड़ा मुट्ठ ले, उसके घर दे, अपने कमल-तालाब गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, जातक का मेल बिठाया।

उस समय कमल प्राप्त करने वाला श्रेष्ठी-पुत्र मैं ही था।

२६२. मुदुपाणी जातक

"पाणी चे मुदुको चस्स..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

उसके धर्म-सभा में लाए जाने पर शास्ता ने पूछा—"सचमुच भिक्षु तू उद्विग्न-चित्त है?"

"सचमुच।"

"भिक्षु! स्त्रियाँ कामुकता की ओर जाने से नहीं रोकी जा सकतीं। पुराने पण्डित भी अपनी लड़की की रक्षा नहीं कर सके। पिता के हाथ पकड़े रहने पर (भी) लड़की, पिता को बिना खबर होने दिए, कामुकता के वशी-भूत हो, पुरुष के साथ भाग गई।" यह कह पूर्व जन्म की कथा कहीः—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख में पैदा हुआ। आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला में शिल्प सीखा। पिता के मरने पर धर्मानुसार राज्य करने लगा। वह लड़की और भाञ्जे दोनों का घर में पालन पोषण करता था। एक दिन अमात्यों के

साथ बैठे हुए कहा—"मेरे मरने के बाद मेरा भाञ्जा राजा होगा। मेरी लड़की उसी की पटरानी होगी।"

आगे, उनके आयु प्राप्त होने पर, फिर अमात्यों के साथ बैठे रहने पर उसने कहा—"हम भाञ्जे के लिए दूसरी लड़की लाएँगे। अपनी लड़की भी दूसरे राज-कुल में देंगे। इस प्रकार हमारे बहुत रिश्तेदार हो जाएँगे।" अमात्यों ने स्वीकार किया।

राजा ने भाञ्जे को बाहर घर दिया। अन्तःपुर में प्रवेश बन्द कर दिया। वे एक दूसरे पर आसक्त थे। कुमार ने सोचा—"किस उपाय से राज-कुमारी को बाहर निकाला जाय? उपाय है।" उसने दाई को रिश्वत दी। दाई ने पूछा—"आर्य्य-पुत्र क्या करना है?"

"अम्म! राजकुमारी को बाहर निकालने का मौका कैसे मिले?"

"राजकुमारी से बात करके जानूँगी।"

"अम्म! अच्छा।"

वह गई। "अम्म! तेरे सिर में जूँ है, निकालूँगी" कह, उसे नीचे आसन पर बिठा, स्वयं ऊँचे बैठ, उसके सिर को अपनी जाँघों पर रख कर जूँ निकालते समय, राजकुमारी के सिर में नख धँसाया। राजकुमारी ने—"यह अपने नख से नहीं बींधती है, किन्तु पिता के भाञ्जे-कुमार के नख से बींधती है" जान कर पूछा—"अम्म! तू राजकुमार के पास गई थी?"

"अम्म! हाँ?"

"उसने क्या सन्देश कहा?"

"अम्म! तुम्हें निकाल ले जाने का उपाय पूछता है।" राजकुमारी ने—"अगर कुमार पण्डित होगा तो जान जायगा" कह पहली गाथा कही और कहा—"अम्म! इसे ले जाकर कुमार को कहना।"

पाणी चे मुदुकोचस्स, नागोचस्ससुकारितो,
अन्धकारो च वस्सेय्य, अथ नून तदा सिया॥

[उसके पास कोमल हाथ हो, सिखाया हुआ हाथी हो, अन्धकार हो, और देव वर्षे; तब निश्चय से (उसका उद्देश्य पूरा) होवे।]

वह उसे सीख कुमार के पास गई।

कुमार ने पूछा—"अम्म! राजकुमारी ने क्या कहा?"

"आर्य्य पुत्र! और कुछ न कह यह गाथा भेजी है।" उसने वह गाथा कही। कुमार ने उसका अर्थ जानकर उसे भेज दिया—"अम्म! जा।"

कुमार इस बात को भली प्रकार जान, एक रूपवान कोमल हाथ वाले छोटे सेवक को सजा कर, मंगल हाथी के फीलवान को घूँस दे, हाथी को सिखा, उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करने लगा।

कृष्णपक्ष की अमावस्या को आधी रात के बाद घनी वर्षा हुई। उसने सोचा, राजकुमारी द्वारा बताया गया दिन आज है। (स्वयं) हाथी पर चढ़, कोमल हाथ वाले छोटे सेवक को हाथी पर बैठा, जाकर रनिवास के खुले आँगन में हाथी को बड़ी दीवार से सटा, खिड़की के समीप भीगता हुआ ठहरा। राजा लड़की की रखवाली करता हुआ, दूसरी जगह सोने नहीं देता था। अपने पास छोटे बिस्तर पर सुलाता था। "आज कुमार आयेगा" जान, बिना सोये लेटेलेटे राजकुमारी ने कहा—"तात! नहाने की इच्छा है।"

"अम्म आ!" कह उसका हाथ पकड़ खिड़की के समीप लाकर कहा—"अम्म! नहा।" वह उसे खिड़की के बाहर के छज्जे पर रख एक हाथ पकड़े खड़ा रहा। नहाते हुए उसने कुमार की ओर हाथ बढ़ाया। उसने उसके हाथ से गहने उतार कर सेवक के हाथ में पहना, उसे उठाकर राजकुमारी के पास छज्जे पर रखा। उसने उसका हाथ ले, पिता के हाथ में दिया। पिता ने उसका हाथ पकड़ कर लड़की का हाथ छोड़ दिया। वह दूसरे हाथ से भी आभरण उतार, उसके दूसरे हाथ में पहना, पिता के हाथ में रख कर कुमार के साथ चली गई। राजा "मेरी लड़की ही है" समझ उस लड़के को, नहाने के बाद शयन-गृह में सुला, द्वार बन्द कर, कुण्डी दे, बेंवड़ा लगा, अपने बिस्तर पर जाकर लेटा। उसने प्रातः दरवाजा खोल, लड़के को देखकर पूछा—"यह क्या है?" उसने उस (कुमारी) के कुमार के साथ जाने की बात कही।

राजा ने दुःखी होकर सोचा—"हाथ पकड़ कर साथ रखने पर भी स्त्री की हिफाजत नहीं की जा सकती। स्त्रियाँ इस प्रकार की हिफाजत न की जा सकनेवाली होती हैं।" उसने दूसरी दो गाथाएँ कहीं:—

अनला मुदुसम्भासा दुप्पूरा ता नदीसमा,
सीदन्ति नं विदित्वान, आरका परिवज्जये॥

यं एता उपसेवन्ति छन्दसा वा धनेन वा,
जातवेदो व संठानं खिप्पं, अनुदहन्ति नं ॥

[इनकी इच्छा कभी पूर्ण नहीं होती। मृदुभाषी होती हैं (मैथुनादि से) नहीं पूर्ण होने वाली होती हैं[1]। यह नरक में डुबोती हैं। यह सब जान कर पण्डित आदमी इन्हें दूर ही रखे।

जिस (पुरुष) से भी वे सम्बन्ध करती हैं, चाहे राग से, चाहे धन-लोभ से, उसे वे आग के समान शीघ्र ही जला देती हैं।]

ऐसा कहा भी गया है:—

बलवन्तो दुब्बला होन्ति, थामवन्तो पि हायरे,
चक्खुमा अंधिता होन्ति, मातुगामवसंगता।
गुणवन्तो निग्गुणा होन्ति, पञ्ञावन्तो पि हायरे,
पमत्ता बन्धने सेन्ति, मातुगामवसंगता।
अज्झेनं च तपं, सीलं, सच्चं, चागं, सतिं, मतिं,
अच्छिन्दन्ति पमत्तस्स, पत्थदूभीव तक्करा।
यसं, किंत्ति, धितिं, सूरं, बाहुसच्चं, पजाननं,
खेपयन्ति पमत्तस्स, कट्ठपुञ्जं व पावको ॥

[स्त्रियों के वशीभूत होने वाले (लोग) बलवान भी दुर्बल हो जाते हैं, शक्तिमानों की शक्ति घट जाती हैं, आँख वाले अन्धे हो जाते हैं।

गुणवान निर्गुण हो जाते हैं। प्रज्ञावानों की प्रज्ञा भी घट जाती है, प्रमादी लोग बन्धन में बँध जाते हैं।

जिस प्रकार मार्ग लूटने वाला चोर लोगों को लूटता है। उसी प्रकार मनुष्य का अध्ययन, तप, शील, सत्य, त्याग, स्मृति, मति, सभी लुट जाता है।

जिस प्रकार लकड़ी के ढेर को आग जला देती है। उसी भाँति प्रमत्त मनुष्य का यश, कीर्ति, धृति, शूरता, बहुश्रुतभाव, ज्ञान, सभी नष्ट हो जाता है।]

---

[1] भिक्षुओ ! स्त्रियाँ तीन चीजों से अतृप्त हो मर जाती हैं। कौन सी तीन ? मैथुन-धर्म, बच्चा पैदा करना और शृंगार करना। भिक्षुओ ! स्त्रियाँ इन तीन चीजों से अतृप्त हो मर जाती हैं।" अंगुत्तर-निकाय, तिकनिपात।

ऐसा कह महासत्व ने सोचा—भाञ्जे को तो मुझे ही पोसना है। बड़े सत्कार के साथ लड़की उसी को दे, उसे उपराज बनाया। वह भी मामा के मर जाने पर राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्यों को प्रकाशितकर, जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के बाद उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय राजा मैं ही था।

२६३. चुल्लपलोभन जातक

"अभिज्जमाने वारिस्मिं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के ही बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

उसके धर्म-सभा में लाए जाने पर शास्ता ने पूछा—

"सचमुच भिक्षु! तू उद्विग्न-चित्त है?"

"सचमुच।"

"भिक्षु! स्त्रियों ने पुराने सच्चरित्र प्राणियों का भी मन डुला दिया" कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा पुत्र-विहीन था। उसने अपनी स्त्रियों को पुत्र प्रार्थना के लिए कहा। वे पुत्र के लिए प्रार्थना करती थीं। इस प्रकार समय बीतते हुए बोधिसत्व ब्रह्मलोक से च्युत होकर पटरानी की कोख में पैदा हुआ। उसे पैदा होते ही नहला कर स्तन पिलाने के लिए दाई को दिया। वह दूध पिलाए जाने पर रोता था। तब उसे दूसरी को

दिया। स्त्रियों के हाथ में वह चुप ही नहीं होता था। तब उसे एक नौकर को सौंपा। उसके हाथ में लेते ही चुप हो गया। तब से उसे पुरुष ही लिए रहते। स्तन पिलाना होता तो दूह कर पिलाते। अथवा पर्दे की ओट से स्तन मुँह में डालते। उसके बड़े होते जाने पर भी लोग (उसे) स्त्रियां दिखाने में असमर्थ रहे। इसलिए राजा ने उसके बैठने आदि का स्थान तथा ध्यान-गृह अलग बनवाया।

उसने उसके सोलह वर्षीय होने पर सोचा—मेरे दूसरा पुत्र नहीं है, यह काम भोग में रस नहीं लेता, राज्य की भी इच्छा नहीं करता। मुझे पुत्र मुश्किल से मिला है। तब नाच, गीत और बजाने में पटु, पुरुषों की परिचर्या कर उनको वश में कर सकने वाली एक तरुणी नटी ने जाकर पूछा—"देव? क्या चिन्ता कर रहे हैं?" राजा ने उसको कारण बताया।

"अच्छा देव! मैं उसे लुभा कर काम-रस का ज्ञान कराऊँगी।"

"अगर स्त्री की गन्ध से अपरिचित मेरे कुमार को लुभा सकेगी तो वह राजा होगा और तू उसकी पटरानी।"

"देव! इसकी जिम्मेवारी मेरी, आप इसकी चिन्ता न करें।"

वह पहरेदारों के पास जाकर बोली—

"मैं प्रातःकाल आकर आर्यपुत्र के शयन-गृह से बाहर ध्यानागार में खड़ी होकर गाऊँगी। अगर (वह) क्रोधित हो तो मुझसे कहना। मैं चली जाऊँगी। अगर सुने, तो मेरी तारीफ करना।" उन्होंने अच्छा कह स्वीकार किया।

वह प्रातःकाल उस जगह खड़ी होकर, वीणा के स्वर से गीत का स्वर, गीत के स्वर से वीणा का स्वर मिलाकर मधुर स्वर में गाने लगी। कुमार सुनता हुआ लेटा रहा। दूसरे दिन कुमार ने नजदीक आकर गाने की आज्ञा दी। अगले दिन ध्यानागार में रहकर गाने की आज्ञा दी? और अगले दिन अपने पास रहकर। इस प्रकार क्रमशः तृष्णा उत्पन्न कर, लोक-धर्म सेवन कर, काम-रस से परिचित हो "स्त्री दूसरे को नहीं दूँगा" कहता हुआ, तलवार ले, गली में निकल कर पुरुषों के पीछे पीछे दौड़ने लगा।

राजा ने उसे पकड़वा, उसे उस कुमारी के साथ नगर से बाहर निकलवा दिया। दोनों अरण्य में प्रविष्ट हो, गंगा के नीचे जा, एक तरफ गंगा,

दूसरी तरफ समुद्र, दोनों के बीच में आश्रम बना कर रहने लगे। कुमारी पर्णशाला में बैठ कर कन्द-मूल आदि पकाती थी। बोधिसत्व अरण्य से फलमूल लाता।

एक दिन उसके फल-मूल के लिए गये रहने पर, एक समुद्र-द्वीप-वासी तपस्वी भिक्षा के लिए आकाश मार्ग से जाता हुआ, धूँआ देख कर आश्रम पर उतरा। तब उसने "जब तक पके तब तक बैठ" कह, बैठा, स्त्री के हाव-भाव से उसे मोहित कर, ध्यान से च्युत कर, ब्रह्मचर्य्य का अन्तर्धान कर दिया। वह पंख कटे कौवे के समान, (उसे) छोड़ कर जाने में असमर्थ हो, उस दिन वहीं रहा। फिर बोधिसत्व को आता देख, समुद्र की ओर भागा। बोधिसत्व ने "मेरा शत्रु होगा" सोच तलवार उठा कर उसका पीछा किया। तपस्वी आकाश में उड़ने का प्रयत्न करता हुआ समुद्र में गिर पड़ा। बोधिसत्व ने सोचा, यह तपस्वी आकाश-मार्ग से आया होगा। ध्यान के नष्ट होने से समुद्र में गिरा। मुझे अब इसकी सहायता करनी चाहिए सोच, किनारे पर खड़े हो, ये गाथाएँ कहीं :—

अभिज्जमाने वारिस्मिं, सयं आगम्म इद्धिया,
मिस्सीभावित्थिया गन्त्वा, संसीदसि महण्णवे ॥
अवट्टनी, महामाया, ब्रह्मचर्यविकोपना,
सीदन्ति नं विदित्वान, आरका परिवज्जये ॥
यं एता उपसेवन्ति, छन्दसा वा धनेन वा,
जातवेदो व संठानं, खिप्पं अनुदहन्ति नं ॥

[पानी को बिना भेदे, (आकाशमार्ग से) स्वयं ऋद्धि से आकर, स्त्री संसर्ग के कारण समुद्र में डूबता है।

'ठगने वाली, महामाया,[1] ब्रह्मचर्य्य को प्रकुपत करने वाली, (स्त्रियाँ) उसे डुबा देती हैं' जान पण्डित आदमी स्त्रियों से दूर ही रहे।

---

[1] माया चेता मरीची च सोको, रोगो, चूपद्दवो,
खरा च बन्धना चेता, मच्चुपासो गुहासयो।
तासु यो विस्ससे पोसो, सो नरेसु नराधमो ॥

[स्त्रियाँ, माया, मरीची, शोक, रोग, उपद्रव, कठोर, बन्धन, मृत्यु-पाश तथा गुह्याशय होती हैं। जो पुरुष इनका विश्वास करे वह अधम नर है।]

जिस पुरुष से यह सम्बन्ध करती हैं, चाहे राग से, चाहे धन लोभ से, उसे वे वैसे ही शीघ्र जला देती हैं जैसे आग अपने स्थान को ।]

इस प्रकार बोधिसत्व का वचन सुन, तपस्वी समुद्र में खड़े खड़े, नष्ट ध्यान को फिर प्राप्त कर, आकाश से अपने निवास स्थान को गया ।

बोधिसत्व ने सोचा—यह तपस्वी इस प्रकार भारी शरीर वाला है, सो सेमर की रुई के समान आकाश-मार्ग से उड़ गया । मुझे भी इसकी तरह ध्यान उत्पन्न कर आकाश में विचरना चाहिए । उसने आश्रम जा उस स्त्री को बस्ती की ओर ले जाकर कहा—"तू जा ।" फिर आरण्य में प्रविष्ट हो, सुन्दर स्थान में आश्रम बना, ऋषिप्रव्रज्या ले, ध्यान कर, अभिज्ञा तथा समापत्ति प्राप्त कर ब्रह्मलोक गया ।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया । सत्य प्रकाशन के उपरान्त उद्विग्नचित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ ।

स्त्री की गन्ध से अपरिचित कुमार मैं ही था ।

२६४. महापणाद जातक

"महापणादो नाम सो राजा..." यह शास्ता ने गंगा-तीर पर बैठकर भद्दजि स्थविर के प्रताप के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

एक समय शास्ता श्रावस्ती में वर्षा-वास कर "भद्दजिकुमार को (संघ में) शामिल करूँगा" सोच, भिक्षु-संघ के साथ चरिका करते हुए, भद्दिय नगर पहुँचे । जातीय-वन में तीन मास कुमार का ज्ञान परिपक्व होने तक वास किया । भद्दजिकुमार महा धनवान अस्सी करोड़ सम्पत्ति वाले सेठ का एकलौता पुत्र था । उसके पास तीनों ऋतुओं के लिए तीन प्रासाद थे ।

एक एक में चार-(चार) मास रहता था। एक में रह कर, नाटकादि से घिर कर बड़े ठाट-बाट के साथ दूसरे प्रासाद में जाता था। उस क्षण कुमार का ठाट देखने के लिए, सारे नगर-वासी उमड़ पड़ते थे। प्रासादों के बीच पहियों पर पहिए, तथा मञ्चों पर मञ्च बाँधते थे।

शास्ता ने तीन मास रहकर ग्राम-वासियों से कहा—"हम जाएँगे।" नगर वासियो ने कहा—"भन्ते! कल जायँ।" शास्ता को निमन्त्रित कर, दूसरे दिन बुद्ध-प्रमुख संघ के लिए महादान तैयार कर, नगर के बीच मण्डप बना, सजा, आसन बिछवा कर समय की सूचना दी। भिक्षु संघ के साथ शास्ता वहाँ जाकर बैठे। लोगों ने महादान दिया। शास्ता ने भोजन समाप्त कर, मधुर स्वर से (दान-) अनुमोदन आरम्भ किया। उसी समय, भद्दजि-कुमार (एक) प्रासाद से (दूसरे) प्रासाद को जा रहा था। उस दिन उसका ठाट-बाट देखने के लिए कोई नहीं गया। उसके अपने लोग ही उसे घेरे रहे।

कुमार ने आदमियों से पूछा—"दूसरे दिन मेरे (एक) प्रासाद से (दूसरे) प्रासाद जाते समय सारा नगर उमड़ पड़ता था, पहियों पर पहिए, मञ्चों पर मञ्च बाँधते थे। आज अपने आदमियों के सिवाय और कोई आदमी नहीं है। क्या कारण है?"

"स्वामी! सम्यक् सम्बुद्ध इस नगर के पास तीन मास रह कर आज जायँगे। भोजन समाप्त कर वे जनता को धर्मोपदेश दे रहे हैं। सभी नगर वासी उनका धर्मोपदेश सुन रहे हैं।"

"तो जाओ हम भी सुनेंगे" कह सब आभरणों से मुक्त हो, बहुत लोगों के साथ जाकर, सभा में पीछे खड़े हो, धर्मोपदेश सुनते हुए उसने सब क्लेशों (बन्धनों) को क्षय कर अर्हत्व प्राप्त किया।

शास्ता ने भद्दियश्रेष्ठी को आमंत्रित कर कहा—"महासेठ! तुम्हारा बना-ठना पुत्र अर्हत्व को प्राप्त हुआ। इसलिए आज उसकी प्रव्रज्या हो जानी चाहिए, नहीं तो वह निर्वाण को प्राप्त हो जायगा।"

"भन्ते! मेरे पुत्र को निर्वाण नहीं प्राप्त करना है। उसे प्रव्रजित करें। लेकिन प्रव्रजित कर उसे साथ लेकर कल हमारे घर पधारें।"

भगवान ने निमन्त्रण स्वीकार कर, कुल-पुत्र को ले, बिहार जा, प्रव्रजित करा, उपसम्पदा दी। उसके माता-पिता ने एक सप्ताह तक बड़ा सत्कार किया।

शास्ता एक सप्ताह रह, कुल-पुत्र को साथ ले, चारिका करते हुए कोटिग्राम पहुँचे। कोटिग्राम वासियों ने बुद्ध-प्रमुख संघ को महादान दिया। शास्ता ने भोजन समाप्त कर (दान) अनुमोदन आरम्भ किया। कुल-पुत्र अनुमोदन किए जाते समय, ग्राम से बाहर जा "शास्ता के आने के समय ही उठूँगा" निश्चय कर, गंगातट पर, एक वृक्ष की छाया में ध्यान लगाकर बैठा। बड़े बूढ़े स्थविरों के आने पर भी न उठ, शास्ता के आने पर ही उठा। सामान्य भिक्षुओं ने क्रोध कर कहा—"यह प्रव्रजित होकर भी पहले की भाँति बूढ़े स्थविरों को आते देख, नहीं उठता।"

कोटिग्राम वासियों ने नावें एक साथ बाँधी। शास्ता ने बँधी नावों पर बैठ कर पूछा—

"भद्दजि कहाँ है?"

"भन्ते! यहाँ ही।"

"भद्दजि! आ हमारे साथ इस एक नाव पर ही बैठ।"

स्थविर उछल कर उस नाव में बैठा।

उसके गंगा के बीच पहुँचने पर शास्ता बोले—

"भद्दजि! जब तुम महापणाद राजा थे तो तुम्हारा निवास स्थान कहाँ था?"

"भन्ते! इस स्थान में निमग्न है।"

सामान्य (पृथक जन[1]) भिक्षुओं ने कहा—यह (अपना) अर्हत होना प्रगट करता है।

"तो भद्दजि! साथी ब्रह्मचारियों की शंका दूर कर।"

उसी क्षण स्थविर, शास्ता को प्रणाम कर, ऋद्धिबल से जा, प्रसाद के शिखर को अंगुली से पकड़ कर, पचीस योजन प्रासाद को ले, आकाश में उड़ा। उड़ते हुए प्रासाद के नीचे रहने वालों को प्रासाद टूटता मालूम पड़ा। उसने एक योजन, दो योजन, तीन योजन, बीस योजन तक पानी से प्रासाद को उठाया।

---

[1] पृथकजन—जो स्रोतापत्ति आदि मार्ग, फल प्राप्त नहीं है।

उसके पूर्वजन्म के सम्बन्धी प्रासाद के लोभ से, मच्छ, कच्छप, नाग, मेंढक होकर उसी प्रासाद में पैदा हुए थे। प्रासाद के उठने पर वे कूद कूद कर पानी में गिर पड़े। शास्ता ने उनको गिरते देखकर कहा—

"भद्दजि ! तुम्हारे सम्बन्धी क्लेश पा रहे हैं।"

स्थविर ने शास्ता का वचन सुन, प्रासाद छोड़ दिया। प्रासाद यथा-स्थान प्रतिष्ठित हो गया।

शास्ता गंगा पार गये। उनका आसन गंगा के किनारे ही बिछाया गया। बिछे, श्रेष्ठ बुद्ध-आसन पर वह तरुण सूर्य्य के समान रश्मि छोड़ते हुए बैठे। तब भिक्षुओं ने पूछा—

"भन्ते ! भद्दजि स्थविर इस मकान में कब रहते थे ?"

"महापणाद राजा के समय" कह कर शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र, मिथिला में सुरुचि नाम का राजा था। उसका पुत्र भी सुरुचि ही था। उसका पुत्र महापणाद हुआ। उसने यह प्रासाद प्राप्त किया। उसके प्राप्त करने में पूर्व जन्म का कार्य सहायक हुआ—"दो पिता-पुत्रों ने बाँस और उदुंबर की लकड़ी से प्रत्येक-बुद्ध के लिए निवास स्थान बनाया।" इस जातक की सारी अतीत-कथा पकिण्णक निपात के सुरुचि जातक[1] में आएगी। शास्ता ने यह अतीत-कथा ला, सम्यक्-सम्बुद्ध होने पर ये गाथाएँ कहीं :—

पणादो नाम सो राजा, यस्स यूपो सुवण्णयो,
तिरीयं सोळस पब्बेधो, उच्चमाहु सहस्सधा।
सहस्सकण्डु सतभेदो, धजालु हरिताभयो,
अनच्चुं तत्थ गन्धब्बा छ सहस्सानि सत्तधा।
एवमेतं तदा आसि, यथा भाससि भद्दजि !
सक्को अहं तदा आसिं, वेय्यावच्चकरो तवं॥

---

[1] सुरुचि जातक (४८९)

[वह पणाद नाम का राजा था। उसका प्रासाद स्वर्णमय था। उसका विस्तार सोलह कन्डे का था। हजार कून्डे जितना ऊँचा था।

वह हजार कन्डे का ऊँचा प्रासाद, सात तल वाला था। (ऊपर) हरी ध्वजा लगी थी। वहाँ सात तलों में छः हजार गन्धर्व नाचते थे।

जैसा भद्दजि! तू अब कह रहा है, उसी प्रकार का यह था। मैं तब तुम्हारी सेवा करने वाला इन्द्र था।]

उसी क्षण सामान्य भिक्षु शंका-रहित हो गये। शास्ता ने इस प्रकार धर्मोपदेश दे जातक का मेल बिठाया।

तब महापणाद भद्दजि था। और इन्द्र तो मैं ही था।

२६५. खुरप्प जातक

"दिस्वा खुरप्पे..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक हिम्मत-हार भिक्षु के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने पूछा—"भिक्षु! क्या सचमुच तू हिम्मत हार गया है?"

"भन्ते! सचमुच।"

"भिक्षु! निर्वाण की ओर ले जाने वाले शासन में प्रव्रजित होकर तूने कैसे हिम्मत छोड़ी? पुराने लोगों ने निर्वाण से असम्बन्धित बातों के लिए भी प्रयत्न किया।" यह कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व जंगल-रक्षक-कुल में पैदा हुआ। आयु प्राप्त कर जंगल रक्षकों का सर्व

प्रमुख हुआ। उसके पाँच सौ आदमी थे। वह जंगल के किनारे एक गाँव में रहता और मजदूरी लेकर मनुष्यों को जंगल पार कराता था।

एक दिन वाराणसी का एक सौदागर-पुत्र पाँच सौ गाड़ियाँ लेकर उसके गाँव पहुँचा। उसको बुलवाकर कहा—"सौम्य ! एक हजार लेकर मुझे जंगल पार करा दो।" उसने "अच्छा" कह उसके हाथ के एक हजार ले लिए। मजदूरी लेते ही उसने उसके लिए अपना जीवन न्योछावर कर दिया। वह उसे लेकर जंगल में प्रविष्ट हुआ। जंगल में पांच सौ चोरों ने हमला किया। चोरों को देखते ही बाकी मनुष्य छाती के बल गिर पड़े। जंगल रक्षकों के मुखिया ने निनाद करते हुए, गर्जना करते हुए, प्रहार करके पाँच सौ चोरों को भगा कर सौदागर-पुत्र को सकुशल कान्तार पार करा दिया। सौदागर-पुत्र ने कान्तार के पार कारवान को रोक, रक्षकों के मुखिया को नाना रस वाले श्रेष्ठ-भोजन करा, स्वयं जलपान कर, सुख पूर्वक बैठ, उसके साथ बात करते हुए उससे पूछा—"सौम्य ! ऐसे भयानक चोरों के अस्त्र शस्त्र लेकर आक्रमण करने पर भी तुम्हारे चित्त में कैसे जरा भी त्रास नहीं पैदा हुआ ?" यह पूछते हुए पहली गाथा कही :—

दिस्वा खुरप्पे, धनुवेगनुन्ने, खग्गे गहीते तिखिणे तेलधोते,
तस्मिं भयस्मिं, मरणे वियूळ्हे, कस्मानु ते नाहु छम्भितत्तं ॥

[धनुष से वेग से छूटे तीर को देखकर, तेल में तेज किये तीक्ष्ण खड्गों को लिए देखकर, भय और मरण उपस्थित होने पर, तुम्हें कैसे शरीर-कम्पन नहीं हुआ ?]

इसे सुन रक्षकों के मुखिया ने शेष दो गाथाएँ कहीं:—

दिस्वा खुरप्पे, धनुवेग नुन्ने, खग्गे गहीते तिखिणे तेलधोते,
तस्मिंभयस्मिं मरणे वियूळ्हे, वेदं अलत्थं विपुलं उळारं ॥
सो वेदजातो अज्झभविं अमित्ते, पुब्बेव मे जीवितमासि चत्तं,
नहि जीविते आलयं कुब्बमानो, सूरो कयिरा सूरकिच्चं कदाचि ॥

[धनुष से वेग से छूटे तीर देखकर, तेल में साफ किए गये खड्गा लिए देखकर, भय तथा मरण उपस्थित होने पर (मेरा) मन प्रफुल्लित हो उठा ।]

[उस प्रसन्नता में शत्रुओं को जीत लिया। मैंने तो पहले ही जीवन परित्याग कर दिया था। जीने में आसक्ति रखने वाला शूर कभी बहादुरी का काम नहीं करता।]

इस प्रकार वह बाणों की वर्षा होते हुए, जीने की तृष्णा छोड़ देने से अपने द्वारा किया गया बहादुरी का काम प्रकट कर, सौदागर-पुत्र को भेज, अपने गाँव जा, दान आदि पुण्य कर परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, सत्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय, हारा हुआ (भिक्षु) अर्हत्व को प्राप्त हुआ।

उस समय रक्षकों का मुखिया मैं ही था।

२६६. वातग्गसिन्धव जातक

"येनासि किसिया पण्डु..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, श्रावस्ती के एक गृहस्थ के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक सुन्दर स्त्री एक सुन्दर गृहस्थ को देख कर उस पर आसक्त हो गई। सारे शरीर को जलाती हुई सी उसके शरीर में कामाग्नि पैदा हो गई। उसको न तो शरीर का सुख मिलता, न मन की शान्ति। उसे भात भी नहीं रुचता था। केवल चारपाई की पाटी पकड़कर लेटी रहती। तब उसकी सेविका और सहायिका ने पूछा—"तू चञ्चल-चित्त क्यों है? चारपाई की पाटी पकड़ कर क्यों लेटी रहती है? तुझे क्या कष्ट है?" उसने एक दो बार पूछने पर उत्तर नहीं दिया। बार बार पूछे जाने पर वह बात कही। तब उन्होंने उसे आश्वासन देकर कहा—तू चिन्ता मत कर। हम उसे ले आएँगी। उन्होंने जाकर गृहस्थ से मन्त्रणा की। उसने इन्कार किया। (लेकिन) बार बार कहे

जाने पर स्वीकार कर लिया। उन्होंने "अमुक दिन, अमुक समय आओ" कह, वचन ले उसको कहा। शयन-गृह को सजा, अपने को अलंकृत कर वह शैय्या पर बैठी। वह आकर शैय्या के एक सिरे पर बैठा। तब वह सोचने लगी—अगर मैं गाम्भीर्य न रख अभी ही इसे मौका दूँगी तो मेरी शान घटेगी। आने के दिन ही मौका देना अनुचित है। आज उसे शर्मिन्दा कर दूसरे दिन मौका दूँगी। हाथ पकड़ना आदि करते हुए खेलना आरम्भ किया। फिर हाथों में पकड़ कर कहा—निकल जाओ, तुमसे मेरा कोई मतलब नहीं।

वह हताश तथा लज्जित हो उठकर अपने घर गया।

दूसरी स्त्रियों ने उसके वैसा करने की बात जान, गृहस्थ के चले जाने पर, उसके पास जाकर कहा—तू इसमें आसक्त-चित्त हो, आहार छोड़ कर लेटी थी। हम बार बार याचना कर उसे ले आईं। तूने उसे क्यों मौका नहीं दिया? उसने वह बात बतायी। दूसरी (स्त्रियाँ) "तो मालूम होगा" कह चली गईं। गृहस्थ ने लौटकर फिर नहीं देखा। वह उसे न पा निराहार रह, मर गई।

गृहस्थ उसके मरने की खबर पा, बहुत माला-गन्ध विलेपन ले, जेतवन जा, शास्ता की पूजा कर, प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा—

"उपासक! दिखाई क्यों नहीं देता?"

गृहस्थ ने आप बीती सुनाकर कहा—"भन्ते! इतने समय तक लज्जा के कारण बुद्ध की सेवा में नहीं आया।"

"उपासक! इस समय तो उसने कामुकता वश तुझे बुला कर, आने पर मौका न दे लज्जित किया। पहले पण्डितों (?) में भी आसक्त हो, बुला कर, आने पर मौका न दे, कष्ट देकर लौटा दिया।" उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में, ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व सिन्धव कुल में पैदा हो, वातग्गसिन्धव नाम से उस (राजा) का मंगल-अश्व हुआ। वह घुड़-चरवाहों द्वारा लाया जाकर गंगा में नहाता था। उसे देखकर

कुन्दली नाम की गधी उस पर आसक्त होगई। यह कामुकता के कारण काँपती हुई तृण नहीं खाती थी। पानी भी नहीं पीती थी। सूखकर कृषा, हड्डी-चाम मात्ररह गई।

उसके पुत्र—गर्दभ बच्चे— ने उसको वैसी सूखती हुई देख कर पूछा—

"अम्म ! तू न तृण खाती है, न पानी पीती है, सूखकर जहाँ तहाँ काँपती पड़ी रहती है ! तुझे क्या कष्ट है ?"

उसने पहले नहीं कहा। बार बार पूछे जाने पर वह बात कही। तब उसके पुत्र ने आश्वासन देकर कहा—माँ चिन्ता मत कर। मैं उसे ले आऊँगा। जब घोड़ा नहाने गया, उस समय उसके पास जाकर कहा—तात! मेरी माता तुम पर आसक्त है। आहार छोड़, सूख सूख कर मर जायगी। उसे जीवन दान दें।

"अच्छा तात ? दूँगा। घुड़चरवाहे मुझे नहलाकर थोड़ी देर गंगा-किनारे विचरने के लिए छोड़ते हैं। तुम (अपनी) माँ को लेकर उस स्थान में आना।"

वह जाकर माँ को ला, उस स्थान में छोड़, एक ओर छिप कर खड़ा रहा।

घुड़-चरवाहे ने वातग्ग-सिन्धव को उस स्थान पर छोड़ दिया। वह उस गधी को देखकर उसके पास गया।

जब घोड़ा उस गधी के पास पहुँच उसके शरीर को सूँघने लगा, तब उसने सोचा—अगर मैं गाम्भीर्य्य न रखकर आते ही मौका दूँगी तो मेरा यश और शान घटेगी। ऐसे रहना चाहिए जैसे हमें कोई इच्छा ही नहीं है। यह सोच सिन्धव के नीचे जबड़े में दुलत्ती मार भाग गई। दाँत की जड़ टूट जाने जैसी (वेदना) हुई। वातग्गसिन्धव ने सोचा—मुझको इससे क्या प्रयोजन ? शर्मिन्दा होकर वहाँ से भाग गया। वह दुखी हो, वहीं गिरकर सोचती हुई लेट रही।

उसके पुत्र ने जाकर पूछते हुए पहली गाथा कही—

येनासि किसिया पण्डु, येन भत्तं न रुच्चति,
अयं सो आगतो तात, कस्मादानि पलायसि ॥

[जिसके कारण शरीर कृश होकर पाण्डु-वर्ण होगया। जिसके कारण भात नहीं रुचता, वह यह तात आया है। अब क्यों भागती है ?]

पुत्र का वचन सुन, गदही ने दूसरी गाथा कही—

सचे पनादिकेनेव, सन्थवो नाम जायति,
यसो हायति इत्थीनं, तस्मा तात ! पलायहं

[अगर आरम्भ में ही सम्बन्ध हो जाय तो स्त्रियों की शान नष्ट हो जाती है। हे तात ! इसलिए मैं भागी।]

इस प्रकार उसने पुत्र को स्त्रियों का स्वभाव कहा। तीसरी गाथा शास्ता ने अभिसम्बुद्ध होने पर कही—

यसस्सीनं कुले जातं, आगतं या न इच्छति,
सोचति चिर रत्ताय, वातग्गमिव कुन्दलि।

[यशस्वियों के कुल में पैदा हुओं के आने पर जो उनकी इच्छा नहीं करती अर्थात् उपेक्षा करती है। वह चिवर काल तक चिन्तित रहती है। जैसे कुन्दलि वातग्ग के लिए।]

शास्ता ने इस अतीत-कथा को ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय गृहस्थ स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय गधी वह स्त्री थी। वातग्गसिन्धव तो मैं ही था।

२६७. कक्कट जातक

"सिङ्गीमिगो..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक स्त्री के बारे में कहीः—

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक गृहस्थ अपनी भार्य्या को लेकर कर्ज उगाहने के लिए जनपद जा, कर्ज उगाह कर वापिस आ रहा था। लौटते समय मार्ग में

चोरों ने पकड़ लिया। उसकी भार्य्या सुन्दरी मनोरमा थी। चोरों के सरदार ने उस पर आसक्त होने के कारण गृहस्थ को मारना आरम्भ किया। वह स्त्री शीलवती, सदाचारिणी, पति को देवता मानने वाली थी। उसने चोर के पैरों पर गिर कर कहा—स्वामी! अगर मुझे प्रेम करने के कारण मेरे स्वामी को मारेंगे तो मैं भी विष खाकर या साँस रोककर मर जाऊँगी। तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी। मेरे स्वामी को बे-मतलब न मारें। यह कह उसे छुड़ा लिया।

वे दोनों सकुशल श्रावस्ती में जेतवन-विहार के पीछे से गुजर रहे थे। उन्होंने सोचा—विहार में प्रविष्ट हो शास्ता को नमस्कार करके जायें। वे गन्ध-कुटी-परिवेण जा, वन्दना कर, एक ओर बैठे।

शास्ता ने पूछा—

"कहाँ गये थे?"

"कर्ज उगाहने।"

"मार्ग में अच्छी तरह आए?"

"भन्ते! मार्ग में हमें चोरों ने पकड़ लिया। जब वे मुझे मार रहे थे तो इसने चोरों के मुखिया से याचना करके छुड़ाया। इसके कारण मुझे जीवन-दान मिला।"

"उपासक! इस समय तो इसने तुझे जीवन-दान दिया। पहले पण्डितों को भी दिया।" उसके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय हिमालय प्रदेश में एक बड़ा तालाब था। उसमें सुवर्ण वर्ण का एक महान केकड़ा था। उसके उसमें रहने के कारण वह (तालाब) कुळीर-दह कहलाता था। केकड़ा विशाल था, बड़े भारी चक्के के समान। हाथी पकड़, मार कर खा जाता था। हाथी उसके भय के कारण वहाँ उतर कर चारा नहीं ग्रहण कर सकते थे। तब बोधिसत्व ने कुळीर-दह के पास रहने वाले दल के मुखिया हाथी के सहवास से हथिनी की कोख में जन्म ग्रहण किया। उसकी माता ने गर्भ की

रक्षा करूँगी, सोच दूसरे पर्वत-प्रदेश में जाकर, गर्भ की रक्षा कर पुत्र को जन्म दिया।

वह क्रमानुसार बढ़ कर महाशरीर वाला, शक्तिशाली, सुन्दर, अञ्जन पर्वत के समान हुआ। एक हथिनी के साथ उसने सहवास किया। केकड़े को पकड़ूँगा, सोच अपनी भार्य्या तथा माता को ले, उस हाथी-समूह में पहुँच, पिता को देख कर कहा—तात! मैं केकड़े को पकड़ूँगा। पिता ने कहा—तात! नहीं (पकड़) सकेगा। उसे रोका। उसके फिर फिर आग्रह करने पर बोला—(अच्छा) तू ही जानेगा।

उसने कुळीर-दह के पास जाकर वहाँ रहने वाले सभी हाथियों को इकट्ठा किया। (फिर) सब के साथ तालाब के समीप जाकर बोला—क्या वह केकड़ा तालाब में उतरते समय पकड़ता है, अथवा (बाहर) निकलते समय?

"निकलते समय।"

"तो तुम लोग कुळीर-दह में उतर कर, इच्छा भर चर कर, पहले निकलो। मैं पीछे चलूँगा।"

हाथियों ने वैसा किया। केकड़े ने पीछे निकलते हुए बोधिसत्व को दोनों अड़ों[1] से इस प्रकार दृढ़ता से पकड़ा, जैसे लोहार महासन्डासी से लोह की छड़ को पकड़ता है। हथिनी बोधिसत्व को न छोड़कर समीप ही खड़ी रही। बोधिसत्व केकड़े को खींच कर (भी) नहीं हिला सका। (लेकिन) केकड़े ने उसे खींचकर अपने सामने कर लिया। मरने के भय से भय-भीत हो बोधिसत्व ने बँधे हुए (कैदी) की आवाज की। सब हाथी मरने के भय से कुञ्चनाद करके मल-मूत्र छोड़ते हुए भागे। उसकी हथिनी भी ठहरने में असमर्थ हो भागने लगी। तब उसने अपने बँधे होने की बात कह, उसे न भागने के लिए पहली गाथा कहीः—

सिङ्गीमिगो आयतचक्खुनेत्तो,
अट्ठित्तचो, वारिसयो, अलोमो,

---

[1] अळ = अड़। अगले हिस्से के दो चंगुल। अड़ शब्द भोजपुरी में अब भी बोला जाता है।

तेनाभिभूतो कपणं रूदामि
माहेव मं पाणसमं जहेय्य ॥

[यह स्वर्ण वर्ण का जानवर है। विशाल आँखें हैं। हड्डी ही त्वचा है। जल में सोने वाला है। लोम-रहित है। ऐसे जानवर द्वारा पकड़ा जाकर दयनीय अवस्था में रो रहा हूँ। (हे प्रिये) मुझ प्राण के समान (प्यारे) को मत छोड़ो।]

तब रुक कर हथिनी ने उसे आश्वासन दे दूसरी गाथा कही :—

अय्य न तं जहिस्सामि कुञ्जर सट्ठिहायन,
पठव्या चातुरन्ताय, सुप्पियो होसि मे तुवं ॥

[आर्य्य ! साठ वर्ष के तुझ को (मैं) नहीं छोड़ूँगी। चार कोनों वाली पृथ्वी में तुम ही मेरे प्रिय हो।]

इस प्रकार उसे सहारा देकर बोली—आर्य्य ! इस केकड़े के साथ थोड़ी बात-चीत करके छुड़वाऊँगी। यह कह कर केकड़े से याचना करते हुए उसने तीसरी गाथा कही:—

ये कुळीरा समुद्दस्मिं, गंगाय नम्मदाय च,
तेसं त्वं वारिजो सेट्ठो, मुञ्च रोदन्तिया पतिं ॥

[समुद्र में, गंगा में, या नर्मदा में जितने केकड़े हैं उनमें तू श्रेष्ठ है। मुझ रोती हुई के पति को छोड़ दे।]

केकड़े ने उसके स्त्री-शब्द में रस अनुभव कर, कम्पित मन वाला हो, हाथी के पैर से अड़ों को निकाल लिया। उसने यह नहीं समझा कि छोड़ देने पर वह हाथी ऐसा करेगा।

हाथी पैर उठा उसकी पीठ पर चढ़ गया। तभी हड्डियाँ टूट गईं। हाथी ने संतोष-नाद किया। सब हाथियों ने इकट्ठे हो केकड़े को जमीन पर खींच ला, मर्दन कर, चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। उसके दो अड़ शरीर से टूट कर एक ओर गिर पड़े। वह कुळीर-दह गंगा से सम्बंधित था। गंगा में पानी आने पर गङ्गा के पानी से भर जाता था। जब पानी मन्द पड़ता तो दह का पानी गङ्गा में चला जाता। वे दोनों अड़ आकर गङ्गा में बह गये। एक समुद्र में पहुँचा। एक को पानी में खेलते हुए दस-भाई राजाओं ने प्राप्त कर आणक नाम का मृदंग बनवाया। जो समुद्र में पहुँचा था उसे असुरों ने

लेकर आलम्बर नाम की भेरी बनवाई। दूसरे समय इन्द्र के साथ संग्राम करते हुए वे उस (भेरी) को छोड़ कर भाग गये। वह इन्द्र ने अपने लिए मँगवाई। आलम्बर मेघ के समान बजती है, इसी कारण उसे (ऐसा) कहते हैं।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय दोनों पति-पत्नी स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए।

तब हथिनी यह उपासिका थी। हाथी तो मैं ही था।

२६८. आरामदूसक जातक

"यो वे सब्बसमेतानं..." यह शास्ता ने दक्षिण-गिरि जनपद में एक उद्यानपाल-पुत्र के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

वर्षा-वास के बाद जेतवन से निकल शास्ता ने दक्षिण-गिरि जनपद में चारिका की। एक उपासक ने बुद्ध-प्रमुख संघ को निमन्त्रित कर उद्यान में बिठा, यवागु, खाजे से तृप्त करा कर कहा—आर्य्य! उद्यान में घूमना हो तो इस उद्यान-पाल के साथ टहलें। 'आर्यों को फल आदि देना' कह माली को भेजा।

घूमते हुए भिक्षुओं ने एक वृक्ष-विहीन जगह को देख कर पूछा—यह स्थान वृक्ष-विहीन है, क्या कारण है? माली ने उनसे कहा—माली के लड़के ने रोपे हुए पौदों को पानी से सींचते हुए 'जड़ की लम्बाई के हिसाब से सींचूंगा' सोच उखाड़ कर जड़ के हिसाब से पानी सींचा। इसलिए वह स्थान वृक्ष-विहीन हो गया है। भिक्षुओं ने शास्ता के पास जाकर वह बात

कही। शास्ता ने 'अभी ही नहीं पहले भी वह कुमार बाग नष्ट करने वाला (आरामदूसक) ही था' यह कह पूर्व जन्म की कथा कहीः—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में विस्ससेन के राज्य करते समय, उत्सव की घोषणा होने पर 'उत्सव में शामिल होऊँगा' सोच माली ने उद्यान में रहने वाले बन्दरों से कहा—यह बाग आप लोगों के लिए बहुत उपयोगी है। मैं एक सप्ताह उत्सव मनाऊँगा। आप सात दिन तक रोपे हुए पौदों में पानी दें। उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। वह उन्हें मशकें देकर चला गया।

बन्दरों ने पानी सींचते हुए पौदों को सींचा। उनके मुखिया ने कहा—जरा सबर करो। पानी का हमेशा मिलना कठिन है। उसकी रक्षा करनी चाहिए। पौधों को उखाड़ कर, जड़ की लम्बाई जान, बड़ी जड़ में अधिक पानी, छोटी जड़ में थोड़ा पानी सींचना चाहिए। उन्होंने 'अच्छा' कहा। कुछ पौदों को उखाड़ते जाते थे, और कुछ उन्हें फिर गाड़ कर पानी देते जाते।

उस समय बोधिसत्व वाराणसी में किसी कुल का पुत्र था। वह किसी काम से उद्यान गया, तो उन बन्दरों को वैसा करते देख, पूछा—

"तुमसे ऐसा कौन कराता है?"

"मुखिया बन्दर।"

"मुखिया की ऐसी बुद्धि है तो तुम्हारी कैसी होगी?" इस बात को स्पष्ट करते हुए पहली गाथा कहीः—

यो वे सब्बसमेतानं, अहुवा सेट्ठसम्मतो,
तस्सायं एदिसी पञ्ञा, किमेव इतरा पजा॥

[जो इन सब में श्रेष्ठ है, उसकी बुद्धि ऐसी है तो शेष की कैसी होगी?]

उसकी बात सुन कर बानरों ने दूसरी गाथा कहीः—

एवमेव तुवं ब्रह्मे, अनञ्ञाय विनिन्दसि,
कथं मूलं अदिस्वान, रुक्खं जञ्ञा पतिट्ठितं॥

[हे पुरुष! तुम बिना जाने निन्दा कर रहे हो! भला जड़ को बिना देखे कैसे जानें कि पौदा जम गया है?]

यह सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही—

नाहं तुम्हे विनिन्दामि, ये चञ्ञे वानरा वने,
विस्ससेनोव गारय्हो यस्सत्था रुक्खरोपका ॥

[मैं आप लोगों की निन्दा नहीं कर रहा हूँ, और न उन दूसरे वानरों की निन्दा करता हूँ जो वन में हैं। विस्ससेन ही निन्दनीय है, जिसके लिए आप वृक्ष लगा रहे हैं]

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला जातक का मेल विठाया। वानरों का मुखिया आरामदूसक कुमार था। पण्डित पुरुष तो मैं ही था।

२६९. सुजाता जातक

"न हि वण्णेन सम्पन्ना..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय अनाथपिण्डिक की पतोहू, धनञ्जय सेठ की लड़की, विशाखा की छोटी बहन, सुजाता के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

वह बड़ी शान के साथ अनाथपिण्डिक के घर को परिपूर्ण करती हुई प्रविष्ट हुई। 'बड़े कुल की लड़की हूं' इस ख्याल के कारण वह मानिनी, क्रोधिनी, चण्ड और कठोर थी। सास, ससुर और स्वामी के प्रति अपने कर्तव्य को नहीं पालती थी। घर के लोगों को डराती-पीटती रहती थी।

एक दिन शास्ता पाँचसौ भिक्षुओं के साथ अनाथपिण्डिक के घर जाकर बैठे! महाश्रेष्ठी धर्म-(कथा) सुनता हुआ भगवान के पास बैठा था। उसी समय सुजाता दास-कमकरों के साथ झगड़ रही थी। शास्ता ने धर्म-कथा रोक कर पूछा—यह कैसा शब्द है?

"भन्ते ! यह कुल-पतोहू है, गौरव-रहित। सास, ससुर और स्वामी के प्रति इसका कोई कर्तव्य नहीं। न दान, न शील, अश्रद्धावान्, अप्रसन्न रहती है, दिन-रात कलह करती रहती है।"

"तो बुलाओ।"

वह आकर, बन्दना कर एक ओर खड़ी हुई। तब शास्ता ने उससे पूछाः—

"सुजाता ! पुरुष की सात प्रकार की भार्य्या होती हैं, उन (सातों) में तू कौन सी है ?"

"भन्ते ! मैं संक्षेप में कही गई बात का अर्थ नहीं समझी, मुझे विस्तार पूर्वक कहें।"

"तो कान लगा कर सुनो" कह कर शास्ता ने ये गाथाएँ कहीं:—

> पदुट्ठचित्ता, अहितानुकम्पिनी,
> अञ्ञेसुरत्ता, अतिमञ्ञते पतिं।
> धनेन कीतस्स वधाय उस्सुका,
> या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
> वधका च भरिया ति च सा पवुच्चति॥

[क्रोधी, अहित करने वाली, अनुकम्पारहित, दूसरे को चाहने वाली, और अपने पति की अवहेलना करने वाली, जो धन से खरीदे गये हैं (अर्थात् दास-दासी) उनको मारने के लिए उत्सुक; पुरुष की जो इस प्रकार की भार्य्या है उसे "वधक" भार्य्या कहते हैं।]

> यं इत्थिपा विन्दति सामिको धनं
> सिप्पं वणिज्जं च कसिं अधिट्ठहं
> अप्पं पि तस्मा अपहातुमिच्छति,
> या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
> चोरी च भरिया ति च सा पवुच्चति॥

[स्त्री के लिए स्वामी जिस धन को कमाता है, चाहे शिल्प से, चाहे वाणिज्य से, या कृषी से; अगर वह उसमें से थोड़ा भी चुराने की इच्छा करती है तो वह "चोर" भार्य्या कहलाती है।]

अकम्मकामा, अलसा, महग्घसा
फरुसा च चण्डी च दुरुत्तवादिनी
उपट्ठायिकानं अभिभुय्य वत्तति,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
अय्या च भरियाति च सा पवुच्चति ॥

[काम न करने वाली, आलसी, ज्यादा खाने वाली, कठोर, चण्ड स्वभाव वाली, खराब बोलने वाली, सेवकों को दबा कर रखने वाली, जो इस प्रकार की स्त्री है उसे "आर्य्या" भार्य्या कहते हैं ।]

या सब्बदा होति हितानुकम्पिनी
माता व पुत्तं अनुरक्खते पतिं
ततो धनं सम्भतमस्स रक्खति,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
माता व भरिया ति च सा पवुच्चति ॥

[सर्वदा हित और अनुकम्पा करने वाली, जैसे माता पुत्र की रक्षा करती है, वैसे ही जो पति की रक्षा करती है, उसके कमाए धन की रक्षा करती है, वह भार्य्या "माता" भार्य्या कहलाती है ।]

यथापि जेट्ठा भगिनी कनिट्ठा
सगारवा होति सकम्हि सामिके
हिरीमना भत्तुवसानुवत्तिनी,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
भगिणी च भरियाति च सा पवुच्चति ॥

[जैसे छोटी बहन बड़ी बहन के प्रति गौरव सहित रहती है, उसी भाँति जो पति के प्रति गौरवशीला है, लज्जाशीला है, पति के वश में रहने वाली है, वह "भगिणी" भार्य्या कहलाती है ।]

या चिध दिस्वान पतिं पमोदिता
सखी सखारं व चिरस्स आगतं
कोलेय्यका सीलवती पतिब्बता,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
सखी च भरियाति च सा पवुच्चति ॥

[जो पति को देख कर इस प्रकार प्रसन्न होती है जैसे चिरकाल के बाद आए सखा को देख कर सखी। जो कुलीन, शीलवती तथा पतिव्रता है, वह "सखी" भार्य्या कहलाती है।]

अकुट्ठसन्ता, वधदण्डतज्जिता
अदुट्ठचित्ता, पतिनोतितिक्खति
अक्कोधना, भत्तुवसानुवत्तिनी,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
दासी च भरियाति च सा पवुच्चति ॥

[क्रोध करने पर जो शान्त रहती है, मार और दण्ड से दबी रहनेवाली होती है, अच्छे चित्त वाली होती है, पति की सहने वाली होती है, क्रोध नहीं करती, पति के वश में रहती है। इस प्रकार की जो भार्य्या है वह "दासी" भार्य्या कहलाती है।]

सुजाता! पुरुष की यह सात प्रकार की भार्य्या होती हैं। इनमें से "वधका" "चोर" और "आर्य्या" यह तीनों नरक में पैदा होती हैं। अन्य चार निम्मानरति-देवलोक में।

या चिध भरिया वधका ति वुच्चति
चोरीति अरियाति च सा पवुच्चति,
दुस्सीलरूपा फरुसा अनादरा
कायस्सभेदा निरयं वजन्ति ता ॥

[जो ये "वधक" "चोर" और "आर्य्या" दुश्शील, कठोर, अनादर-युक्त भार्य्या हैं, वे मरने पर नरक जाती हैं।]

या चिध माता भगिणी सखी च
दासी ति भरियाति च सा पवुच्चति,
सीले ठितत्ता, चिररत्तसंवुता
कायस्स भेदा सुगतिं वजन्ति ता ॥

[जो ये "माता" "भगिनी" "सखी" और "दासी" शील में स्थित, चिरकाल तक संयत रहने वाली भार्य्या हैं, वे मरने पर सुगति को प्राप्त होती हैं।]

इस प्रकार शास्ता द्वारा इन सात प्रकार की भार्य्याओं का वर्णन किए जाते समय ही सुजाता स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हो गई। तब शास्ता ने पूछा—"इन सातों भार्य्याओं में से तू किस प्रकार की है?"

"दासी समान" कह शास्ता की वन्दना कर उसने माफी माँगी।

शास्ता ने गृह-वधू सुजाता को एक ही उपदेश में शान्त किया। भोजन समाप्त कर, जेतवन जा, भिक्षु संघ द्वारा आदर प्रदर्शित किए जा चुकने पर वे गन्ध-कुटी में प्रविष्ट हुए। धर्म-सभा में भिक्षुओं ने शास्ता की गुण कथा की चर्चा चलाई—आवुसो! शास्ता ने एक ही उपदेश में गृह-वधू सुजाता को शान्त कर स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित कराया।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?

"अमुक बात-चीत।"

"भिक्षुओ! अभी ही नहीं, पहले भी सुजाता को मैंने एक ही उपदेश में शान्त किया" कह पूर्व जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में जन्म ग्रहण किया। आयु प्राप्त होने पर तक्ष-शिला में शिल्प सीख, पिता के मरने पर, राज्य पर प्रतिष्ठित हो, धर्मानुसार राज्य करने लगा। उसकी माता क्रोधिनी, चण्ड, कठोर, कोसने वाली, परिहास करने वाली थी। उसने माँ को उपदेश देने की सोची। "बिना उदाहरण के समझाना उचित नहीं है" सोच वह उपदेश देने के लिए उदा-हरण खोजता रहा।

एक दिन उद्यान गया। माता भी पुत्र के साथ गई। मार्ग में एक मोरनी बोली। बोधिसत्व के अनुयाइयों ने उस शब्द को सुन कर कान ढक कर कहा—हे चण्डवादिनी! कठोरवादिनी! मत बोल। नाटक मण्डली से घिरे बोधिसत्व के माता के साथ उद्यान में विचरते समय पुष्पित शाल-वृक्ष में छिपी कोयल मधुर स्वर में बोली। जनता उसके स्वर से सन्तुष्ट हो, हाथ जोड़कर बोली—हे स्निग्ध बोलने वाली! हे कोमल बोलनेवाली! हे मृदुभाषिणी! बोल, बोल। वह कान लगा कर देखती रही।

बोधिसत्व ने उन दो बातों को देखकर सोचा—"अब माँ को समझा सकूँगा।" उसने कहा—माँ! मार्ग में मोरनी का शब्द सुन कर जनता ने "मत बोल, मत बोल" कह कान ढक लिये। "कठोर वाणी किसी को प्रिय नहीं होती" कह ये गाथाएँ कहीं:—

नहि वण्णेन सम्पन्ना, मञ्जुका, पियदस्सना,
खरवाचा पियाहोन्ति, अस्मिंलोके परम्हि च ॥
ननु पस्ससिमं काळिं, दुब्बण्णं, तिलकाहतं,
कोकिलं सण्हभाणेन, बहुन्नं पाणिनं पियं ॥
तस्मा सखिल वाचस्स, मन्तभाणि अनुद्धतो,
अत्थं धम्मं च दीपेति, मधुरंतस्स भासितं ॥

[सुन्दर वर्ण वाला, कोमल और देखने में प्रिय लगने पर भी खर-वाणी बोलने वाला न इस लोक में प्रिय होता है न दूसरे में।

क्या इस काली, दुर्वर्ण और तिल के दागों वाली कोयल को नहीं देखती है, जो स्निग्ध वाणी बोलने से बहुत प्राणियों को प्रिय है?

इसलिए मधुरभाषी, कोमलभाषी, अनुद्धत भाषण करने वाला अर्थ और धर्म का प्रकाश करता है। उसका भाषण मधुर होता है।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने इन तीन गाथाओं से माता को धर्मोपदेश दे उसे समझाया। तब से वह आचार-सम्पन्ना हुई।

एक ही उपदेश से माता को शान्त कर बोधिसत्व परलोक सिधारे।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, जातक का मेल बिठाया। तब वाराणसी की राजमाता सुजाता थी। राजा तो मैं ही था।

२७०. उलूक जातक

"सब्बेहि किर ञातीहि..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, कौवा-उल्लू के झगड़े के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

उस समय कौवे दिन में उल्लुओं को खाते थे। उल्लू सूर्यास्त के बाद इधर उधर सोने वाले कौवों के सिरों में ठोर मार मार कर जान निकाल देते थे। जेतवन के पास के विहार में रहने वाले एक भिक्षु को झाड़ू लगाते समय वृक्ष से गिरे हुए सात-आठ नाळि (के माप के) बहुत से कौवों के सिर बुहारने पड़ते थे। उसने वह बात भिक्षुओं से कही। भिक्षुओं ने धर्म-सभा में चर्चा चलाई—"आवुसो! अमुक भिक्षु को वासस्थान पर रोज रोज इतने कौवों के सिर बुहारने पड़ते हैं।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?"

"अमुक बात-चीत" कह कर भिक्षुओं ने पूछा—"भन्ते! कौवों और उल्लुओं का यह परस्पर का वैर किस समय से आरम्भ हुआ?"

"प्रथम कल्प से" कह कर शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में प्रथम कल्प के लोगों ने इकट्ठे हो, एक सुन्दर, शोभाशाली, आज्ञासम्पन्न, सब प्रकार से परिपूर्ण पुरुष को लेकर राजा बनाया। चतुष्पदों ने भी इकट्ठे होकर एक सिंह को राजा बनाया। महासमुद्र में मछलियों ने आनन्द नाम की मछली को राजा बनाया। तब पक्षियों ने हिमालय प्रदेश में एक चट्टान पर इकट्ठे होकर विचार किया—मनुष्यों में राजा दिखाई देता है। वैसे ही चतुष्पदों और मछलियों में भी। हमारे बीच राजा नहीं है। अराजकता की अवस्था में रहना उचित नहीं जँचता। हमें भी राजा प्राप्त करना चाहिए। (किसी) एक को राजा के स्थान पर रखना है, ऐसा (आप लोग) जानें। उन्होंने उपयुक्त पक्षी की तजवीज करते हुए एक उल्लू को चुन कर कहा—"यह हमको अच्छा लगता है।"

एक पक्षी ने सब की सम्मति जानने के लिए तीन बार घोषणा की। उसकी दो बार की घोषणा को सुन, तीसरी बार सुनाने पर एक कौवे ने उठ कर कहा—जरा ठहरो, राज्याभिषेक के समय इसका ऐसा मुख है, क्रुद्ध होने पर कैसा होता होगा? जब यह हमें क्रुद्ध होकर देखेगा तो हम तप्त तवे पर

रखे तिल के समान जहाँ तहाँ चिटक जायँगे। इसे राजा बनाना मुझे (तो) अच्छा नहीं लगता।

ऊपर कही गई बात प्रगट करने के लिए पहली गाथा कही:—

सब्बेहि किर ञातीहिं, कोसियो इस्सरो कतो,
सचे ञातीहनुञ्ञातो, भणेय्याहं एकवाचिकं ॥

[सब सम्बन्धियों द्वारा उल्लू को ईश्वर (राजा) बनाया गया। अगर भाई बन्द मुझे आज्ञा दें तो मुझे भी एक बात कहनी है।]

उसे अनुज्ञा देते हुए पक्षियों ने दूसरी गाथा कही:—

भण सम्म ! अनुञ्ञातो, अत्थं धम्मं च केवलं,
सन्ति ही दहरा पक्खी, पञ्ञावन्तो, जुतिन्धरा ॥

[हे सौम्य ! तुझे आज्ञा है, केवल मतलब की बात कह, क्योंकि छोटे पक्षियों में भी प्रज्ञावान और ज्ञानी होते ही हैं।]

उसने ऐसी अनुज्ञा पा तीसरी गाथा कही:—

न मे रुच्चति भद्दं वो उलूकस्साभिसेचनं,
अकुद्धस्स मुखं पस्स, कथं कुद्धो करिस्सति ॥

[हे भद्रो ! उल्लू का अभिषेक मुझे अच्छा नहीं लगता। अभी क्रुद्ध नहीं है तब इसका मुख देखिये, क्रुद्ध होने पर क्या करेगा ?]

वह ऐसा कह, "मुझे अच्छा नहीं लगता, मुझे अच्छा नहीं लगता" कहता हुआ आकाश में उड़ा। उल्लू ने भी उठकर उसका पीछा किया। तब से उन्होंने परस्पर वैर बाँधा। पक्षियों ने सुवर्ण हंस को राजा बना कर प्रस्थान किया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, जातक का मेला बिठाया। राज्य पर अभिषिक्त हंस-पोतक मैं ही था।

तीसरा परिच्छेद

३. अरण्य वर्ग

२७१. उदपानदूसक जातक

"आरञ्ञकस्स इसिनो..." यह शास्ता ने ऋषिपतन[1] में विहार करते समय जलाशय को दूषित करने वाले एक शृगाल के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

एक शृगाल भिक्षु संघ के (पानी) पीने के जलाशय को पेशाब-पाखाने से दूषित करके भाग गया। एक दिन उसके जलाशय के समीप आने पर श्रामणेरों ने उसे ढेलों से मार कर कष्ट पहुँचाया। तब से उसने उस स्थान को फिर लौटकर नहीं देखा। भिक्षुओं ने उस बात को जानकर धर्म-सभा में चर्चा चलाई—"आवुसो! जलाशय को दूषित करने वाले शृगाल ने श्रामणेरों द्वारा कष्ट पाने के बाद से फिर लौट कर भी नहीं देखा।" शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?

"अमुक बात-चीत।"

"भिक्षुओ! अभी ही नहीं पहले भी यह जलाशय को दूषित करने वाला ही था" कह कर पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्वसमय में वाराणसी में यही ऋषिपतन, यही जलाशय था। उस समय बोधिसत्व कुलीन घर में पैदा हो, ऋषी-प्रव्रज्या ले, ऋषी-गण के साथ ऋषिपतन में वास कर रहे थे। तब यही शृगाल इसी जलाशय को दूषित करके भागा जाता था। तब उसे एक दिन तपस्वी घेर कर खड़े हो गये,

---

[1] ऋषिपतन—वर्तमान सारनाथ, बनारस से ७ मील दूर।

और किसी उपाय से पकड़ कर बोधिसत्व के पास ले गये। बोधिसत्व ने श्रृगाल के साथ बात करते हुए पहली गाथा कहीः—

आरञ्ञकस्स इसिनो, चिररत्ततपस्सिनो,
किच्छा कतं उदपानं, कथं सम्म अवासयी ॥

[चिरकाल तक तप करने वाले, अरण्यवासी ऋषियों द्वारा बड़ी मुश्किल से तैयार किया गया यह जलाशय हे सौम्य! तू ने क्यों दूषित किया ?]

यह सुन श्रृगाल ने दूसरी गाथा कहीः—

एस धम्मो सिगालानं, यम्पीत्वा ओहदामसे,
पितु पितामहं धम्मो, न नं उज्झातुमरहसि ॥

[यह श्रृगालों का धर्म है कि जिसे पीयें उसे दूषित करें। यह हमारे पिता-पितामह का धर्म है। यह क्रोध करने योग्य नहीं।]

तब बोधिसत्व ने उसे तीसरी गाथा कहीः—

येसं वो एदिसो धम्मो, अधम्मो पन कीदिसो,
मा वो धम्मं अधम्मं वा अद्दसाम कुदाचनं ॥

[जिनका तुम्हारा धर्म ऐसा है, उनका अधर्म कैसे होगा ? हम न कहीं तुम्हारा धर्म देखते हैं न अधर्म।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने उसे उपदेश देकर कहा—फिर मत आना। तब से उसने फिर लौट कर भी नहीं देखा।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, जातक का मेल बिठाया। उस समय जलाशय को दूषित करने वाला यही श्रृगाल था। गण का शास्ता तो मैं ही था।

२७२. व्यग्घ जातक

"येन किच्चेन संसग्गा..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोकालिक भिक्षु के बारे में कही। कोकालिक-कथा तेरहवें परिच्छेद के तक्कारिय जातक[1] में आएगी।

क. वर्तमान कथा

कोकालिक ने "सारिपुत्र, मौदगल्यायन को लेकर आऊँगा" सोच, कोकालिक राष्ट्र से जेतवन आकर शास्ता को नमस्कार कर, स्थविरों के पास जाकर कहा—आवुसो कोकालिक राष्ट्र वासी लोग आपको याद कर रहे हैं; आओ चलें।

"आयुष्मान, तुम जाओ हम नहीं आएँगे।"

स्थविरों के अस्वीकार करने पर वह स्वयं लौट गया। भिक्षुओं ने धर्म-सभा में चर्चा चलाई—आयुष्मानो! कोकालिक सारिपुत्र और मौदगल्यायन के साथ भी नहीं रह सकता, (उनके) बिना भी नहीं रह सकता। संयोग भी नहीं सहता, वियोग भी नहीं सहता। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?"

"अमुक बात-चीत।"

"भिक्षुओ! अभी ही नहीं, पहले भी कोकालिक सारिपुत्र और मौदगल्यायन के साथ भी नहीं रह सकता था, (उनके) बिना भी नहीं रह सकता था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व एक अरण्य में वृक्ष-देवता होकर पैदा हुये। उसके विमान (वासस्थान) से थोड़ी ही दूर दूसरी बड़ी वनस्पति पर दूसरा वृक्ष-देवता रहता था। उस वन-

[1] तक्कारिय जातक (४८१)

खण्ड में सिंह और व्याघ्र रहते थे। उनके भय से वहाँ न कोई खेत करता था और न वृक्ष ही काटता था। ठहर कर उधर देख भी नहीं सकता था। वे सिंह और व्याघ्र भाँति-भाँति का शिकार मार कर खाते थे। अवशिष्ट वहीं छोड़कर चले जाते थे। इसलिए उस वन-खण्ड में मुर्दों की बदबू उठने लगी।

तब दूसरे अन्धे, मूर्ख, कारण-अकारण को न जानने वाले वृक्ष-देवता ने एक दिन बोधिसत्व से कहा—मित्र! इन सिंह-व्याघ्रों के कारण हमारा वन-खण्ड मुर्दों की दुर्गन्ध से भर गया है, मैं इनको भगाऊँगा। बोधिसत्व ने कहा—मित्र! इन दोनों के कारण हमारे घर सुरक्षित हैं। इनके भाग जाने से हमारे घर नष्ट हो जाएँगे। सिंह-व्याघ्रों का पद-चिन्ह न देखकर मनुष्य सारे वन को काटकर एक मैदान करके खेत बनाएँगे। तुम्हें ऐसा अच्छा न लगे। यह कह पहली दो गाथाएँ कहीं:—

> **येन मित्तेन संसग्गा, योगक्खेमो विहिंसति,**
> **पुब्बेवज्झाभवन्तस्स, रक्खे अक्खीव पण्डितो ॥**
> **येन मित्तेन संग्गा, योगक्खेमो पवड्ढति,**
> **करेय्यत्तसमं वुत्तिं, सब्बकिच्चेसु पण्डितो ॥**

[जिस मित्र के संसर्ग से कल्याण का नाश होता है, उसके द्वारा अभिभूत अपने यश आदि की आँख के समान रक्षा करे।

जिस मित्र के संसार्ग से कल्याण की वृद्धि होती है, सब कार्यों में पण्डित आदमी उसके साथ अपने जैसा बर्ताव करे।]

इस प्रकार बोधिसत्व द्वारा यथार्थ बात कही जाने पर भी उस मूर्ख देवता ने उसे न समझ, एक दिन भैरव-रूप दिखाकर उन सिंह-व्याघ्रों को भगा दिया। मनुष्यों ने उनके पद-चिन्ह को न देख, सिंह-व्याघ्र दूसरे वन चले गये, जानकर वन-खण्ड का एक भाग काट डाला। देवता ने बोधिसत्व के पास जाकर कहा—मित्र! मैंने तुम्हारे वचन का (पालन) न कर उन्हें भगा दिया। अब उनके चले जाने की बात जानकर मनुष्य वन-खण्ड को काटते हैं। क्या करना चाहिए?

"अब वे अमुक नाम के वन-खण्ड में रहते हैं; जाकर उन्हें ले आओ।"

वहीं जाकर उनके सामने खड़े हो, हाथ जोड़ उसने तीसरी गाथा कही:—

एथ ब्यग्घा, निवत्तव्हा, पच्चमेथ महावनं,
मा वनं छिन्दि निब्यग्घं, ब्यघा मा हेसु निब्बना ॥

[आओ व्याघ्रो! लौट चलो, फिर महावन चलो, जिसमें व्याघ्र रहित वन को लोग न काटें, और व्याघ्र भी बिना वन के न रहें।]

देवता के इस प्रकार याचना करने पर भी उन्होंने कहा—तुम जाओ हम नहीं आएँगे। उन्होंने अस्वीकार कर दिया। देवता अकेला वन-खण्ड लौटा। लोग भी कुछ ही दिनों में सारे वन को काट कर, खेत बनाकर कृषि-कर्म करने लगे।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया।

उस समय का मूर्ख देवता कोकालिक था। सिंह सारिपुत्र था। व्याघ्र मौदगल्यायन। पण्डित देवता तो मैं ही था।

२७३. कच्छप जातक

"को नु उद्दितभत्तोव..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोसल-राजा के दो महामंत्रियों की कलह-शान्ति के बारे में कही। वर्तमान-कथा दूसरे परिच्छेद में आ ही गई है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व काशी-राष्ट्र में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला में शिल्प सीख, काम-भोग छोड़, ऋषिप्रव्रज्या ली। फिर हिमालय प्रदेश में गंगा के किनारे आश्रम बना, वहाँ अभिज्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर, ध्यान-क्रीड़ा करते हुए रहने लगे। इस जातक में बोधिसत्व परम-मध्यस्थ थे।

उपेक्षा पारमिता को पूर्ण किया था। जब वे अपनी पर्णशाला में बैठे रहते थे, उस समय एक प्रगल्भ दुश्शील बन्दर आकर (उनके) कान के छिद्र में अपनी जननेन्द्रिय डालता था। बोधिसत्व (उसे) न रोक उपेक्षावान् हो बैठे ही रहते थे।

एक दिन एक कछुवा पानी से निकल, गङ्गा के किनारे मुँह फैलाकर धूप सेवन करता हुआ सो रहा था। उसे देख, उस चञ्चल बानर ने उसके मुख में जननेन्द्रिय डाली। तब उस कछुवे ने जागकर पेटी में डाली जाती हुई की तरह जननेन्द्रिय को डस लिया। तीव्र वेदना हुई। वेदना को रोकने में असमर्थ हो उसने सोचा—कौन मुझे इस दुःख से मुक्त करेगा? किसके पास जाऊँ? तपस्वी के अतिरिक्त दूसरा मुझे इस दुःख से मुक्त नहीं कर सकता। उसी के पास मुझे जाना चाहिए। तब कछुवे को दोनों हाथों से उठाकर बोधिसत्व के पास गया। बोधिसत्व ने उस दुश्शील बानर का मखौल उड़ाते हुए पहली गाथा कही—

को नु उद्दितभत्तोव, पूरहत्थोव ब्राह्मणो,
कहन्नु भिक्खं अचरि कं सद्धं उपसङ्कमि ॥

[अधिक भोजन से भरे हुए हाथ वाला तू कौन ब्राह्मण है? तूने कहाँ भिक्षा माँगी? किस श्रद्धावान् के पास गया था?]

यह सुन दुश्शील बानर ने दूसरी गाथा कहीः—

अहं कपिस्मि दुम्मेधो, अनामासानि आमसिं,
त्वं मं मोचय भद्दन्ते, मुत्तो गच्छेय्य पब्बतं ॥

[मैं दुर्बुद्धि बानर हूँ। स्पर्श न करने योग्य को मैंने स्पर्श किया। तुम मुझे छुड़ा दो। तुम्हारा भला हो। छूटते ही मैं पर्वत पर चला जाऊँगा।]

बोधिसत्व ने उसके प्रति करुणा कर, कछुवे के साथ वार्तालाप करते हुए तीसरी गाथा कही—

"कच्छपा कस्सपा होन्ति, कोण्डञ्ञा होन्ति मक्कटा,
मुञ्च कस्सप कोण्डञ्ञं, कतं मेथुनकं तया ॥

[कछुवे काश्यप होते हैं और बानर कौण्डन्य। हे काश्यप! कौण्डन्य ने तुम्हारे साथ (गोत्र का सादृश्य होने से) मैथुन किया। (अब) उसे छोड़ दो।]

कछुवे ने बोधिसत्व का वचन सुन, उचित बात पर प्रसन्न हो, बानर की जननेन्द्रिय छोड़ दी। बानर मुक्त होते ही बोधिसत्व की बन्दना कर, भाग गया। फिर उस स्थान को लौट कर भी नहीं देखा। कछुवा भी बोधिसत्व की वन्दना कर यथास्थान गया। बोधिसत्व भी ध्यानी बना रह कर ब्रह्मलोक-गामी हुआ।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया।

उस समय कछुवा, बानर दो महामात्य थे। तपस्वी तो मैं ही था।

२७४. लोल जातक

"कायं बलाका सिखिनी..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक लोभी भिक्षु के बारे में कहीः—

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा में लाए जाने पर उसे शास्ता ने कहा—भिक्षु! तू अभी ही लोभी नहीं है, पहले भी था। और लोभ के ही कारण मरा। उस कारण पुराने पण्डितों को भी अपने वासस्थान से बाहर होना पड़ा। यह कह पूर्वजन्म की कथा कहीः—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय वाराणसीसेठ के रसोइये ने पुण्य के लिए छींका टाँगा। उस समय बोधिसत्व कबूतर की योनि में पैदा होकर वहाँ रहते थे। रसोई-घर के ऊपर से जाते हुए एक लोभी कौवे ने मछली-माँस के नाना प्रकार के पकवान देख, सतृष्ण हो सोचा—

किसकी सहायता से मौका मिले ? इस प्रकार विचार करते हुए उसने बोधिसत्व को देख "इसकी मदद से हो सकता है" निश्चय कर, उसके चुगने के लिए जंगल जाते समय उसका पीछा किया।

तब उससे बोधिसत्व ने कहा—हे कौवे ! मैं दूसरी जगह चुगने वाला हूँ, तुम दूसरी जगह चुगने वाले हो, तो मेरे पीछे पीछे क्यों आ रहे हो ?

"भन्ते ! तुम्हारी क्रिया मुझे अच्छी लगती है, मैं भी तुम्हारा साथी चुगने वाला होकर तुम्हारी सेवा करना चाहता हूँ।"

बोधिसत्व ने स्वीकार किया। उसके साथ साथ चुगते हुए, अकेले चुगते हुए की तरह (वहाँ) से खिसक, उसने गोबर के ढेर को छितरा, कीड़े-मकोड़ों को खा, पेट भर, बोधिसत्व के पास जाकर कहा—तुम अभी तक चुग ही रहे हो ? क्या भोजन का प्रमाण नहीं जानना चाहिए ? आओ अतिसन्ध्या होने के पहले ही चलें।

बोधिसत्व उसके साथ निवास स्थान गये। रसोइये ने "हमारा कबूतर साथी लेकर आया है" सोच कौवे के लिए भी एक छींका टाँगा। कौवा चार पाँच दिन उसी ढंग से रहा। एक दिन सेठ के लिए बहुत सा मछली माँस लाया गया था। कौवा यह देख, लोभ से अभिभूत हो, प्रातः से ही कराहते हुए लेटा।

सवेरे बोधिसत्व ने कहा—"सौम्य ! आ चुगने चलें।"

"तुम जाओ, मुझे अजीर्ण की शंका है।"

"सौम्य ! कौवों को अजीर्ण नहीं होता। तुम्हारे द्वारा ग्रहण किये जाने पर दीपक की बत्ती तुम्हारे पेट में थोड़ी ही देर ठहरती है। शेष मुँह में डालते ही पच जाता है। मेरा वचन मानो, इस माँस-मछली को देखकर ऐसा मत करो।"

"स्वामी ! आप ऐसा क्या कहते हैं ? मुझे अजीर्ण ही हुआ है।"

"तो अप्रमादी होकर रहो" कह कर बोधिसत्व चले गये।

रसोइया मछली-माँस के नाना पकवान बना कर, शरीर से पसीना पोंछता हुआ रसोई घर के दरवाजे पर खड़ा हुआ। कौवा "यही माँस खाने का समय है" सोच जाकर रस की कटोरी के सिरे पर बैठा। रसोइये ने "किकि" शब्द सुन, लौट कर कौवे को देखा। अन्दर जाकर उसे पकड़, सारे शरीर

को नोच, सिर में चूल छोड़कर, अदरक-जीरा आदि पीस, मठा मिलाकर "तू हमारे सेठ के मछली-माँस को जूठा करता है" कह, सारे शरीर में मल कर, कौवे को छींके में डाल दिया। तीव्र वेदना हुई। बोधिसत्व ने चुगने की भूमि से आ, उसे कराहते हुए देखकर, मसखरी करते हुए पहली गाथा कही—

कायं बलाका सिखिनी, चोरी लङ्घी पितामहा,
ओरं बलाके आगच्छ, चण्डो मे वायसो सखा ॥

[जिसका पितामह बादल[1] है, चोर, शिखावाला, यह बगुला कौन है ? हे बगुले इधर आ, (क्योंकि) मेरा मित्र कौवा चण्ड है।]

यह सुन कौवे ने दूसरी गाथा कही—

नाहं बलाका सिखिनी, अहं लोलोस्मि वायसो,
अकत्वा वचनं तुय्हं, पस्स लूनोस्मि आगतो ॥

[मैं बगुला नहीं हूँ, मैं लोभी कौवा हूँ। देखो, तुम्हारे वचन को न मानने के कारण नोंच डाला गया हूँ।]

यह सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही—

पुनपापज्जसि सम्म, सीलं ही तव तादिसं,
नहि मानुसका भोगा, सुभुञ्जा होन्ति पक्खिना ॥

[हे सौम्य ! तू फिर उसी दण्ड को प्राप्त होगा। तुम्हारा स्वभाव ही वैसा है। मनुष्यों के भोग पक्षियों के लिए नहीं होते।]

ऐसा कह बोधिसत्व "अब मैं यहाँ नहीं रह सकता" सोच, उड़ कर दूसरी जगह चले गये। कौवा भी कराहता हुआ वहीं मर गया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्य-प्रकाशन के समय लोभी भिक्षु अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय का लोभी कौवा लोभी भिक्षु था। कबूतर तो मैं ही था।

---

[1] बादल की कड़क से बगुली गर्भ धारण करती है।

२७५. रुचिर जातक

"कायं बलाका रुचिरा" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक लोभी भिक्षु के बारे में कही। दोनों कथाएँ पहली (कथाओं) के ही समान हैं, और गाथा भी।

कायं बलाका रुचिरा, काकानीळस्मि अच्छति,
चण्डो काको सखा मय्हं तस्स चेतं कुलावकं ॥

कौवे के घोंसले में यह कौन सुन्दर बगुला पड़ा है? मेरा मित्र कौवा चण्ड है। यह उसका घोंसला है।]

ननु मं सम्म! जानासि, दिज सामाकभोजन,
अकत्वा वचनं तुय्हं, पस्स लूनोस्मि आगतो ॥

[हे द्विज! हे तृण-बीज भक्षी! क्या तुम मुझे नहीं जानते हो? तुम्हारे वचन को न मानने से ही आकर देखो मैं नोच डाला गया हूँ।]

पुनपापज्जसि सम्म! सीलं ही तव तादिसं,
नहि मानुसका भोगा, सुभुञ्जा होन्ति पक्खिना ॥

[हे सौम्य! तू फिर उसी दण्ड को प्राप्त होगा। तुम्हारा स्वभाव ही वैसा है। मनुष्यों के भोग पक्षियों के लिए नहीं होते।]

यहाँ भी बोधिसत्व "अब मैं यहाँ नहीं रह सकता" सोच उड़कर दूसरी जगह चले गये।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय लोभी भिक्षु अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ।

लोभी भिक्षु कौवा था। कबूतर तो मैं ही था।

२७६. कुरुधम्म जातक

"तव सद्धं च सीलं च . ..."यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक हंस की हत्या करने वाले भिक्षु के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती वासी दो मित्र, भिक्षु हो, उपसम्पदा प्राप्त कर, प्रायः एक साथ रहते थे। एक दिन अचिरवती (नदी) पर जा, स्नान कर, वे किनारे के बालू पर धूप लेते हुए कुशल-क्षेम पूछ रहे थे। उसी समय दो हंस आकाश मार्ग से जा रहे थे। उनमें से छोटे भिक्षु ने कंकड़ उठाकर कहा—इस हंस-बच्चे की आँख में मारता हूँ।

"नहीं सकेगा।"

"इस तरफ की बात रहने दो, दूसरी तरफ़ की आँख में मारूँगा।"

"यह तो नहीं हो सकेगा।"

"तो सब्र करो" कह तिकोना कंकड़ ले, उसने हंस के पीछे फेंका। हंस ने कंकड़ का शब्द सुन, मुड़कर देखा। तब दूसरा गोल कंकड़ ले, दूसरी तरफ की आँख में मारकर इधर वाली आँख से निकाल दिया। हंस चिल्लाता हुआ पलट कर उनके पैर में ही आ गिरा। वहाँ आस-पास खड़े भिक्षुओं ने देख, आकर कहा—आयुष्मान्! बुद्ध के शासन में प्रव्रजित होकर यह जो तुमने प्राणी की हिंसा की, सो अनुचित किया। उसे लेकर तथागत को दिखाया। शास्ता ने पूछा—सचमुच! भिक्षु तुमने जीव-हत्या की?

"सचमुच भन्ते!"

"भिक्षु! ऐसे कल्याणकारी शासन में प्रव्रजित होकर तुमने कैसे ऐसा किया? पुराने पण्डितों ने बुद्ध के पैदा होने के पहले स्त्री सहित घर में रहते समय अल्प-मात्र अनुचित कर्मों के करने में भी हिचकिचाहट की। (और) तूने इस प्रकार के शासन में प्रव्रजित होकर जरा भी हिचकिटाहट नहीं की। क्या भिक्षुओं को शरीर, वचन और मन से संयत नहीं होना चाहिए?" ऐसा कह, पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में कुरु राष्ट्र में इन्द्र-प्रस्थ नगर में धनञ्जय के राज्य करते समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में जन्म ग्रहण किया। क्रमशः बड़े हो तक्षशिला में जाकर शिल्प सीखे। पिता ने उपराज बनाया। आगे चलकर पिता के मरने पर राज्य प्राप्त कर, दस राज-धर्मों के अनुकूल चलते हुये कुरु-धर्मानुसार आचरण किया। कुरुधर्म कहते हैं पाँच शीलों को। बोधिसत्व ने उनका पवित्रता से पालन किया। जिस प्रकार बोधीसत्व ने उसी प्रकार उसकी माता, पटरानी, छोटे भाई उपराजा, ब्राह्मण पुरोहित, रज्जुग्रहण करने वाला अमात्य, सारथी, सेठ, द्रोणमापक महामात्य, द्वारपाल तथा नगर की शोभा वैश्या ने भी पालन किया। इस प्रकार उन्होंनेः—

राजा माता महेसी च उपराजा पुरोहितो,
रज्जुको सारथी सेट्ठी दोणो दोवरिको तथा;
गणिका तेकादस जना कुरुधम्मे पतिट्ठिता ॥

[राजा, माता, पटरानी, उपराजा, पुरोहित, रज्जुग्रहण करने वाला, सारथी, सेठ, द्रोणमापक, द्वारपाल और वैश्या—ये ग्यारह जन कुरुधर्म में प्रीतष्ठित रहे।]

इन सब ने पवित्रता से पाँच शीलों का पालन किया। राजा ने नगर के चारों द्वारों पर, नगर के बीच में और निवास (-गृह) के द्वार पर छः दान-शालायें बनवा प्रति दिन छः लाख धन का त्याग करते हुये सारे जम्बुद्वीप को उन्नादित कर दान दिया। उसकी दानशीलता सारे जम्बुद्वीप में प्रसिद्ध हो गयी।

उस समय कलिङ्ग राष्ट्र के दन्तपुर नगर में कालिङ्ग राजा राज्य करता था। उसके राष्ट्र में वर्षा न हुई। वर्षा के न होने से सारे राष्ट्र में अकाल पड़ गया। भोजन का कष्ट और बीमारी फैल गई। दुर्वृष्टि-भय, अकाल-भय और रोग-भय यह तीनों भय फैल गये। मनुष्य अकिंचन हो बच्चों को हाथों पर ले जहाँ तहाँ घूमते थे। सारे राष्ट्र के निवासियों ने इकट्ठे हो दन्तपुर पहुँच राजद्वार पर शोर मचाया।

राजा ने खिड़की के पास खड़े हो शोर सुनकर पूछाः—यह क्यों चिल्लाते हैं ?

"महाराज, सारे राष्ट्र में तीन भय उत्पन्न हो गये हैं—वर्षा नहीं होती, खेत नष्ट ही गये हैं, अकाल पड़ गया है, मनुष्य खराब भोजन मिलने से रोगी हो गये हैं और सब कुछ छोड़ केवल पुत्रों को हाथों पर उठाये घूमते हैं। महाराज! वर्षा बरसायें।"

"पुराने राजा वर्षा न होने पर क्या करते थे ?"

"पुराने राजा महाराज! वर्षा न होने पर दान दे, उपोसथ (व्रत) रख, शील ले, शयनागार में प्रविष्ट हो, एक सप्ताह तक दूब के बिछौने पर लेटे रहते थे। तब वर्षा होती थी।"

राजा ने 'अच्छा' कह वैसा किया। ऐसा करने पर भी वर्षा नहीं हुई।

राजा ने अमात्यों से पूछा—"मैं ने अपना कर्तव्य किया। वर्षा नहीं हुई। क्या करूँ ?"

"महाराज इन्द्रप्रस्थ नगर में धनञ्जय नामक कुरु-नरेश का अञ्जन वसभ नाम का मङ्गल-हाथी है। उसे लायें। उसके लाने से वर्षा होगी।"

"वह राजा सेना तथा वाहन से युक्त है, दुर्जय है। उसका हाथी कैसे लायेंगे ?"

"महाराज, उसके साथ युद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। राजा दानी है, दान-शील है। मांगने पर अलंकृत शीस भी काट कर दे सकता है। सुन्दर आँखें भी निकाल कर दे सकता है। सारा राज्य भी त्याग सकता है। हाथी का तो कहना ही क्या! मांगने पर अवश्य ही दे देगा।"

"उससे कौन मांग सकते हैं ?"

"महाराज, ब्राह्मण।"

राजा ने ब्राह्मण-ग्राम से आठ ब्राह्मणों को बुला, सत्कार-सम्मान करके हाथी मांगने के लिए भेजा।

उन्होंने खर्चा लिया और राही का भेस बना चल दिये। सभी जगह एक ही रात ठहरते हुये, जल्दी जल्दी जा, कुछ दिन नगर-द्वार पर दान-शालाओं में भोजन कर, थकावट उतार पूछा—

"राजा दान-शाला में कब आता है ?"

आदमियों ने उत्तर दिया—पक्ष में तीन दिन—चतुर्दशी को, पूर्णिमा को तथा अष्टमी को आता है। कल पूर्णिमा है। इसलिये कल भी आयेगा। ब्राह्मण अगले दिन प्रातः काल ही जाकर पूर्व-द्वार पर खड़े हो गये।

बोधिसत्व भी प्रातः काल ही स्नान कर, (चन्दन आदि का) लेपकर, सब अलङ्कारों से अलंकृत हो, सजे हुये श्रेष्ठ हाथी के कन्धे पर चढ़, बहुत से अनुयाइयों के साथ पूर्व-द्वार की दान शाला में पहुँचा। वहाँ उतर, सात आठ जनों को अपने हाथ से भोजन दे, 'इसी तरह से दो' कह, हाथी पर चढ़, दक्षिण द्वार को चला गया। ब्राह्मणों को पूर्व-द्वार पर सिपाहियों की अधिकता के कारण मौका न मिला। वे दक्षिण-द्वार पहुँच, राजा को आते देख, द्वार से थोड़ी ही दूर एक ऊँचे स्थान पर खड़े हुये। जब राजा पास आया तो उन्हों ने हाथ उठाकर राजा की जयजयकार बुलाई। राजा ने वज्र-अंकुश से हाथी को रोक उन के पास पहुँच पूछा—ब्राह्मणो, क्या चाहते हो ? ब्राह्मणों ने बोधिसत्व का, गुणानुवाद करते हुये पहली गाथा कही:—

तव सद्धञ्च सीलञ्च विदित्वान जनाधिप,
वण्णं अञ्जनवण्णेन कालिङ्गस्मिं निमिम्हसे ॥

[हे जनाधिप। तेरी श्रद्धा और शील को जानकर हम कलिङ्ग-देश में अञ्जन वर्ण नाग का सोने से विनिमय करें।]

भावार्थ है—हे जनाधिप ! हम तेरा शील और श्रद्धा जान यह सोच कर यहाँ आये हैं कि इस प्रकार का श्रद्धावान् तथा शीलवान् राजा मांगने पर अञ्जनवर्ण हाथी को दे देगा। फिर हम उस तेरे हाथी को अपने हाथी की तरह कलिङ्ग राजा के पास ले जायेंगे और उसका बहुत धन धान्य से विनिमय करेंगे तथा उस धन-धान्य को पेट में डालेंगे। इस प्रकार सोच कर हे देव ! हम यहां आये हैं। अब जो करना है सो हे देव ! आप जानें।

दूसरा अर्थ:—आपका श्रद्धा-शील वर्ण है, गुण है—मांगने पर पशु का तो क्या कहना, राजा जीवन भी दे दे—सुन कर कलिङ्ग-राज के पास यह अञ्जन वर्ण नाग ले जाकर धन से विनिमय करेंगे, सोच यहाँ आये हैं।

इसे सुन बोधिसत्व ने कहा—हे ब्राह्मणो, यदि इस नाग का विनिमय कर धन का भोग किया तो वह सुभोग है। मत सोच करो। मैं जैसा

अलंकृत नाग है वैसा ही दूँगा। इस प्रकार आश्वासित कर शेष दो गाथायें कहीं :—

अन्नभच्चा च भच्चा च योध उद्दिस्स गच्छति,
सब्बे ते अप्पटिक्खिप्पा पुब्बाचरियवचो इदं ॥

[अन्न-भृत्य तथा भृत्य कोई भी हो जो भी (माँगने के) उद्देश से जाते हैं, वे सभी इनकार न करने योग्य हैं। यह (हमारे) पूर्व आचार्यों का वचन है।]

ददामि वो ब्राह्मणा नागमेतं
राजारहं राजभोग्गं यसस्सिनं,
अलङ्कतं हेमजालाभिछन्नं
ससारथिं गच्छथ येन कामं ॥

[हे ब्राह्मणो, मैं तुम्हें यह राजाओं के योग्य, राज-परिभोग्य, यशस्वी, अलंकृत तथा स्वर्ण जाली से ढका हुआ हाथी देता हूं। इसका सारथी भी इसके साथ है। जहाँ चाहो (ले) जाओ।]

इस प्रकार हाथी के कन्धे पर बैठे ही बैठे बोधिसत्व ने वाणी से दान दे दिया। फिर नीचे उतर कर 'यदि कहीं हाथी अनलंकृत रह गया हो तो उस स्थान को भी अलंकृत करके दूँगा' सोच तीन बार हाथी की प्रदक्षिणा करके देखा। अनलंकृत स्थान नहीं दिखाई दिया। तब उसने हाथी की सूण्ड को ब्राह्मणों के हाथ में दे, स्वर्ण की झारी से सुगन्धित जल गिरा, हाथी दे दिया। ब्राह्मणों ने अनुयाइयों सहित हाथी को स्वीकार कर, हाथी की पीठ पर बैठ, दन्तपुर-नगर पहुँच, हाथी राजा को दिया। हाथी के आने पर भी वर्षा नहीं हुई। राजा ने पूछा—अब क्या कारण है?

"कुरु-राज धनञ्जय कुरु-धर्म पालता है। इसलिये उसके राष्ट्र में पन्द्रहवें दिन, दसवें दिन वर्षा होती है। यह राजा के ही गुणों का प्रताप है। इस पशु में गुण होने पर भी आखिर कितने गुण हो सकते हैं?"

"तो अनुयाइयों सहित इस सजे सजाये हाथी को वापिस ले जाकर राजा को दो; वह जिस कुरुधर्म का पालन करता है, वह सोने की तख्ती पर लिखवा कर लाओ" कह ब्राह्मणों और अमात्यों को भेजा। उन्होंने जाकर राजा को हाथी सौंप कर निवेदन किया—देव! इस हाथी के जाने पर भी

हमारे देश में वर्षा नहीं हुई। आप कुरुधर्म का पालन करते हैं। हमारा राजा भी कुरुधर्म का पालन करना चाहता है। उसने हमें भेजा है कि इस सोने की तख्ती पर कुरुधर्म लिखवा कर ले आओ। हमें कुरुधर्म दें।

"तात ! मैंने सचमुच कुरुधर्म का पालन किया है"। लेकिन अब मेरे मन में उसके बारे में अनुताप है। इस समय कुरुधर्म मेरे चित्त को प्रसन्नता नहीं देता है। इस लिये तुम्हें नहीं दे सकता हूँ।"

राजा का शील उसके चित्त को प्रसन्नता क्यों नहीं देता था ? उस समय प्रति तीसरे वर्ष कार्तिकमास में कार्तिकोत्सव नाम का उत्सव होता था। उस उत्सव को मनाते हुये राजागण सब अलङ्कारों से सज, देवताओं का भेस बना, चित्र-राज नामक यज्ञ के पास खड़े हो, चारों ओर फूलों से सजे हुये चित्रित-बाण फेंकते थे। इस राजा ने भी वह उत्सव मनाते समय एक तालाब के किनारे के चित्रराज के पास खड़े होकर चारों ओर चित्रित बाण फेंके। शेष तीन ओर फेंके बाण दिखाई दिये। तालाब के तल पर फेंका बाण न दिखाई दिया। राजा के मन में अनुताप हुआ कि कहीं मेरा फेंका बाण मछली के शरीर में तो नहीं चला गया ? प्राणी की हिंसा होने से शील-भेद हो गया। इसलिये शील (मन को) प्रसन्न नहीं करता था।

उसने कहा—तात ! मुझे कुरुधर्म के बारे में अनुताप है। लेकिन मेरी माता ने उसे अच्छी तरह पालन किया है। उससे ग्रहण करो।

"महाराज ! मैं जीवहिंसा करूँगा, यह आपकी चेतना नहीं थी। बिना चित्त के जीवहिंसा नहीं होती। आपने जिस कुरुधर्म का पालन किया है, वह हमें दें।"

"तो लिखो" कह सोने की तख्ती पर लिखवाया—जीवहिंसा नहीं करनी चाहिये। चोरी नहीं करनी चाहिये। कामभोग सम्बन्धी मिथ्या-चार नहीं करना चाहिये। झूठ नहीं बोलना चाहिये। मद्यपान नहीं करना चाहिये।

लिखा कर भी कहा कि ऐसा होने पर भी मेरा चित्त संतुष्ट नहीं है, मेरी माता के पास से ग्रहण करो। दूतों ने राजा को प्रणाम कर उनकी माता के पास जाकर कहा—देवी ! आप कुरुधर्म की रक्षा करती हैं। उसका उपदेश हमें दें।

"तात ! मैं सचमुच कुरुधर्म का पालन करती हूँ; लेकिन अब मेरे मन में उसके बारे में अनुताप है। मुझे वह धर्म प्रसन्न नहीं करता, इस लिए तुम्हें नहीं दे सकती।"

उसके दो पुत्र थे, ज्येष्ठ पुत्र राजा था, कनिष्ठ उपराजा। एक राजा ने बोधिसत्व के पास लाख के मूल्य का चन्दनसार और हजार के मूल्य की सोने की माला भेजी। उसने 'माता की पूजा करूँगा' सोच वह सब माता को दे दी। माँ ने सोचा, न मैं चन्दन का लेप करती हूँ, न माला पहनती हूँ; मैं ये अपनी पतोहू को दूंगी। फिर उसे ख्याल हुआ कि उसकी ज्येष्ठ-पतोहू ऐश्वर्य्यवान् है, पटरानी है, इसलिए उसे सोने की माला देगी और कनिष्ठ पतोहू दरिद्र है, इसलिये उसे चन्दनसार देगी। उसने राजा की रानी को सोने की माला दे उपराज की भार्य्या को चन्दनसार दिया। लेकिन दे चुकने पर उसे ख्याल आया—मैं तो कुरुधर्म का पालन करनेवाली हूँ। इन दोनों में कौन दरिद्र है, कौन अदरिद्र, इससे मुझे क्या ? मुझे तो जो बड़ी हो उसी का अधिक आदर करना योग्य है। कहीं उसके न करने के कारण मेरा शील भंग तो नहीं हो गया ? उसके मन में इस प्रकार का सन्देह उत्पन्न हुआ। इसीलिए ऐसा कहा।

दूतों ने उत्तर दिया—अपनी वस्तु यथारुचि दी जाती है। तुम ऐसी बात में भी सन्देह करती हो, तो तुमसे दूसरा क्या पाप-कर्म हो सकता है ? शील इस तरह भंग नहीं होता। हमें कुरु-धर्म दें। उस से भी कुरुधर्म ले सोने की तख्ती पर लिखा।

"तात ! ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। मेरी पतोहू कुरु-धर्म का पालन अच्छी तरह करती है। उससे कुरुधर्म ग्रहण करें।"

उन्होंने पटरानी के पास जा, पूर्वोक्त ढंग से कुरुधर्म की याचना की। उसने भी पूर्वोक्त ही की तरह कहा—अब मेरा शील मुझे प्रसन्न नहीं करता। इसलिये नहीं दे सकती।

उसने एक दिन झरोखे में बैठे-बैठे राजा के नगर की प्रदक्षिणा करते समय हाथी की पीठ पर उसके पीछे बैठे हुए उपराज को देख लोभाय-मान हो सोचा—यदि मैं इसके साथ सहवास करूँ तो भाई के मरने पर राज्य पर प्रतिष्ठित हो यह मेरी खातिर करेगा। तब उसे ध्यान आया—

मैंने कुरुधर्म का पालन करने वाली होकर स्वामी के रहते, दूसरे पुरुष की ओर बुरी दृष्टि से देखा। मेरा शील भंग हो गया होगा। उसके मन में यह सन्देह पैदा हुआ। इसीलिये उसने ऐसा कहा।

दूतों ने उत्तर दिया—आर्य्ये! चित्त में ख्याल आने मात्र से दुराचार नहीं होता। तुम ऐसी बात में भी सन्देह करती हो तो तुमसे उल्लंघन कैसे हो सकता है? इतने से शील भंग नहीं होता। हमें कुरुधर्म दें।

उससे भी कुरुधर्म ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

"तात! ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। उपराज अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करें।"

उन्होंने उपराज के पास जा पूर्वोक्त प्रकार ही कुरुधर्म की याचना की।

वह सन्ध्या समय राजा की सेवा में जाता हुआ, रथ पर ही बैठा, राजाङ्गन में पहुँच, यदि राजा के पास खाकर वहीं सो रहना चाहता तो रस्सी और चाबुक को धुरी के अंदर रख देता था। उस इशारे से आदमी लौट कर अगले दिन प्रातःकाल ही उसके बाहर निकलने की प्रतिक्षा करते हुए खड़े रहते। यदि उसी समय लौटने की इच्छा होती तो रस्सी और चाबुक को रथ में ही छोड़ कर राजा से भेंट करने जाता। आदमी उससे यह समझ कर कि अभी लौटेगा राजद्वार पर ही खड़े रहते। वह एक दिन ऐसा करके राजमहल में गया। उसके जाते ही वर्षा होने लगी। राजा ने 'वर्षा हो रही है' कह उसे लौटने नहीं दिया। वह वहीं खाकर सो गया। लोग 'अब निकलेगा' सोच प्रतीक्षा करते हुए सारी रात भीगते खड़े रहे। उपराज ने दूसरे दिन निकल जब लोगों को भीगे खड़े देखा तो वह सोचने लगा—मैं तो कुरुधर्म का पालन करता हूँ और मैंने इतने लोगों को कष्ट दिया। मेरा शील भंग हो गया होगा। इसी सन्देह के कारण उसने दूतों को कहा—मैं सचमुच कुरुधर्म का पालन करता हूँ। लेकिन इस समय मेरे मन में सन्देह पैदा हो गया है। इसलिये मैं कुरुधर्म (का उपदेश) नहीं दे सकता।

"देव! इन लोगों को कष्ट हो, यह तुम्हारी मंसा नहीं रही है। बिना इरादे के कर्म नहीं होता। इतनी सी बात में भी जब आप सन्देह करते हैं, तो आपसे उल्लंघन कैसे हो सकता है?"

दूतों ने उस से भी शील ग्रहण कर उन्हें सोने की पट्टी पर लिख लिया।

"ऐसा होने पर भी मेरा चित प्रसन्न नहीं है। पुरोहित अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करें।"

उन्होंने पुरोहित से जाकर याचना की। वह भी एक दिन राजा की सेवा में जा रहा था। उसने रास्ते में देखा कि एक राजा ने उसके राजा के पास मध्याह्न सूर्य्य की तरह लाल वर्ण का रथ भेजा है। "यह रथ किस का है?" पूछने पर उत्तर मिला, "राजा के लिये लाया गया है।" पुरोहित के मन में विचार पैदा हुआ—मैं बूढ़ा हूँ। यदि राजा यह रथ मुझे दे दे तो मैं इस पर चढ़ कर सुखपूर्वक घूमूँ। यह सोच, वह राजा की सेवा में पहुँचा। उसके राजा की जय बुला कर खड़े होने के समय वह रथ राजा के सामने लाया गया। राजा ने देख कर कहा—यह रथ बहुत सुन्दर है। इसे आचार्य्य को दे दो। पुरोहित ने लेना स्वीकार नहीं किया। बार बार कहने पर भी अस्वीकार ही किया। ऐसा क्यों हुआ? वह सोचने लगा—मैं कुरुधर्म का पालन करने वाला हूँ। मैंने दूसरे की वस्तु के प्रति लोभ पैदा किया। मेरा शील भंग हो गया होगा। उसने यह बात सुना कर कहा—तात! कुरुधर्म के प्रति मेरे मन में सन्देह है। मेरा मन उससे प्रसन्न नहीं है। इसलिये मैं नहीं दे सकता हूँ।

"आर्य्य! केवल (मन में) लोभ उत्पन्न होने मात्र से शील भंग नहीं होता। आप इतनी सी बात में भी सन्देह करते हैं। आपसे क्या उल्लंघन हो सकेगा?"

दूतों ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिख लिये।

"ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। रस्सी पकड़ने वाला अमात्य अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करें।"

उसके पास भी पहुँच याचना की। वह भी एक दिन जनपद में खेत की गिनती कर रहा था। डण्डे में बँधी हुई रस्सी का एक सिरा खेत के मालिक के पास था, एक उसके पास। जिस सिरे को उसने पकड़ रखा था उस सिरे की रस्सी से बँधा हुआ डंडा एक केकड़े के बिल पर आ पहुँचा। वह सोचने लगा—यदि डंडे को बिल में उतारूँगा, तो बिल के अन्दर का केकड़ा मर जायगा। यदि डंडे को आगे को सरका दूँगा तो राजा का हक

मारा जायगा। यदि पीछे की ओर करूँगा तो गृहस्थ का हक मारा जायगा। क्या किया जाय ? तब उसे सूझा—यदि बिल में केकड़ा होगा तो प्रकट होगा। डंडे को बिल में ही उतारूँगा। उसने डंडा बिल में उतार दिया। केकड़े ने 'किरी' आवाज की। तब उसे चिन्ता हुई—डंडा केकड़े की पीठ में घुस गया होगा और केकड़ा मर गया होगा। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ। मेरा शील भंग हो गया होगा। उसने यह बात सुना कर कहा—इस कारण कुरुधर्म के प्रति मेरे मन में सन्देह है। इसलिये तुम्हें नहीं दे सकता हूँ।

"आपकी यह मंसा नहीं थी कि केकड़ा मरे। बिना इरादे का कर्म नहीं होता। इतनी बात में भी आप सन्देह करते हैं। आपसे कैसे उल्लंघन हो सकता है ?"

दूतों ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिख लिये।

"ऐसा होने पर भी मेरा मन प्रसन्न नहीं है। सारथी अच्छी तरह रक्षा करता है। उससे भी ग्रहण करें।"

उन्होंने उसके पास भी पहुँच याचना की। वह एक दिन राजा को रथ से उद्यान ले गया। राजा वहाँ दिन भर क्रीड़ा कर शाम को निकल कर रथ पर चढ़ा। नगर में पहुँचने से पहले ही सूर्य्यास्त के समय बादल घिर आये। सारथी ने राजा के भीगने के डर से घोड़ों को चाबुक दिखाया। सिन्धव घोड़े तेज़ी से दौड़े। तब से घोड़े उद्यान जाते और लौटते समय भी उस स्थान पर पहुँच, तेजी से दौड़ने लगते। क्यों ? उनको ख्याल हो गया कि इस स्थान पर खतरा होगा, इसीलिये सारथी ने हमें इस स्थान पर चाबुक दिखाया था। सारथी को भी चिन्ता हुई—राजा के भीगने वा न भीगने से मुझ पर दोष नहीं आता। लेकिन मैंने सुशिक्षित सिन्धव घोड़ों को चाबुक दिखाने की गलती की। इसलिये अब यह आते-जाते भागने का कष्ट उठाते हैं। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूं। वह मेरा भंग हो गया होगा। उसने यह बात सुना कर कहा—इस कारण मेरे मन में कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। इसलिये नहीं दे सकता।

"आप की यह मंसा नहीं थी कि सिन्धव घोड़े कष्ट पायें। बिना इरादे के कर्म नहीं होता। इतनी बात में भी आप मन मैला करते हैं। आपसे कैसे उल्लंघन हो सकेगा।"

दूतों ने उस से शील ग्रहण कर उन्हें सोने की पट्टी पर लिख लिया।

"ऐसा होने पर भी मेरा मन प्रसन्न नहीं है। सेठ अच्छी तरह रक्षा करता है। उस से ग्रहण करें।"

उन्होंने सेठ के पास भी पहुँच कर याचना की। वह भी एक दिन जब धानकी बल्ली निकल आई थी, अपने धान के खेत में पहुँचा। देखकर उसने सोचा कि धान को बँधवाऊँगा और धान की एक मुट्ठी पकड़वा कर खम्भे से बंधवा दी। तब उसे ध्यान आया—इस खेत में से मुझे राजा का हिस्सा देना है। बिना राजा का हिस्सा दिये गये खेत में से ही, मैंने धान की मुट्ठी लिवाई। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ। वह भंग हो गया होगा। उसने यह बात सुना कर कहा—इस कारण मेरे मन में कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। इसलिये नहीं दे सकता हूं।

"आपकी चोरी की नीयत नहीं थी। बिना उसके चोरी का दोष नहीं घोषित किया जा सकता। इतनी सी बात में भी सन्देह करने वाले आप किसी की क्या चीज ले सकेंगे?"

दूतों ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

"ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। दोणमापक महामात्य अच्छी तरह पालता है। उस से ग्रहण करें।"

उन्होंने उसके पास भी पहुँच कर याचना की। वह एक दिन कोठी के द्वार पर बैठा राजा के हिस्से के धान की गिनती करा रहा था। बिना मापे गये धान के ढेर में से धान लेकर उसने चिह्न रख दिया। उस समय वर्षा आ गई। महामात्य ने चिह्न को गिन कर 'मापे गये धान इतने हुए' कह, चिह्न के धान बटोर, मापे गये धान में डाल दिये। फिर जल्दी से कोठी के द्वार पर पहुँच, खड़ा हो सोचने लगा—क्या मैं ने चिन्ह के धान, मापे गये खेत में फेंके वा बिना मापे गये ढेर में? यदि मापे गये ढेर में तो मैंने अकारण ही राजा के हिस्से को बढ़ा दिया और किसानों के हिस्से की हानि की। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूं। वह भंग हो गया होगा। उसने यह बात सुना कर कहा—इस कारण मेरे मन में कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। इस लिये नहीं दे सकता हूं।

"आपकी चोरी की नीयत नहीं थी। बिना उसके चोरी का दोष घोषित नहीं किया जा सकता। इतनी सी बात में भी सन्देह करने वाले आप किसी की क्या चीज ले सकेंगे।"

दूतों ने उस से भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखे।

"ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। द्वार-पाल अच्छी तरह पालन करता है। उस से ग्रहण करें।"

उन्होंने उसके पास भी पहुँच कर याचना की। उसने भी एक दिन नगर-द्वार बन्द करने के समय तीन बार घोषणा की थी। एक दरिद्र मनुष्य अपनी छोटी बहिन के साथ लकड़ी-पत्ते लेने के लिये जंगल गया था। लौटते समय उसकी आवाज सुनकर बहन को ले शीघ्रता से अन्दर आया। द्वार-पाल बोला—तू नहीं जानता कि नगर में राजा है? तू नहीं जानता कि समय रहते ही इस नगर का द्वार बन्द हो जाता है? अपनी स्त्री को ले जंगल में रति-क्रीड़ा करता घूमता है। उसने उत्तर दिया—स्वामी! यह मेरी भार्य्या नहीं है। यह मेरी बहिन है। तब द्वार-पाल चिन्तित हुआ—मैंने बहिन को भार्य्या बना दिया। यह मुझसे अनुचित हुआ। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ। वह मेरा भंग हो गया होगा। यह बात सुनाकर उसने कहा—इस बात से मेरे मन में कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। इसलिये नहीं दे सकता हूँ।

"आपने जैसा समझा, वैसा कहा। इससे शील भंग नहीं होता। इतनी बात के लिये भी आप अनुताप करते हैं तो आप कुरुधर्म का पालन करते हुए जान-बूझ कर झूठ क्या बोलेंगे?"

दूतों ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

"ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। कुरुधर्म का वेश्या अच्छी तरह पालन करती है। उससे ग्रहण करें।"

उससे भी याचना की। वेश्या ने भी पूर्वोक्त प्रकार से ही मना किया। क्यों? देवेन्द्र शक्र उसके सदाचार की परीक्षा लेने के लिये तरुण का भेस धारण कर आया, और यह कह कर कि मैं आऊँगा एक सहस्र देकर देव-लोक को ही चला गया। वह तीन वर्ष तक नहीं लौटा। उसने अपने शील के भंग होने के डर से तीन वर्ष तक किसी दूसरे आदमी से पान तक भी नहीं

ग्रहण किया। क्रमशः जब वह अति-दरिद्र हो गई, तब सोचने लगी—मुझे सहस्र देकर गया आदमी तीन वर्ष तक नहीं आया। मैं दरिद्र हो गई हूँ। जीवन-यापन नहीं कर सकती हूँ। अब मुझे न्यायाधीश अमात्य के पास जाकर खर्चा लेना चाहिये। उसने न्यायालय में जाकर निवेदन किया—स्वामी! जो आदमी मुझे खर्चा देकर गया, वह तीन वर्ष से नहीं लौटा। यह भी नहीं जानती कि वह जीता है या मर गया? मैं अब जीवन-यापन नहीं कर सकती हूँ। क्या करूँ?

तीन वर्ष तक भी नहीं आया, तो क्या करेगी? अब से खर्च लिया कर।

उसके फैसला सुन कर न्यायालय से निकलते ही एक आदमी एक सहस्र की थैली लाया। उसे लेने के लिये हाथ पसारने ही के समय इन्द्र प्रकट हुआ। उसने देखते ही हाथ खींच लिया और बोली—मुझे तीन साल पहले हजार देने वाला आदमी आ गया। मुझे तेरे कार्षापणों की जरूरत नहीं है।

शक्र अपना ही रूप धारण कर मध्यान्ह सूर्य्य की तरह चमकता हुआ आकाश में खड़ा हुआ। सारा नगर इकट्ठा हो गया। तब शक्रने जनता को संबोधन कर कहा—मैंने इसकी परीक्षा लेने के लिये तीन वर्ष हुए इसे हजार दिये थे। शील की रक्षा करनी हो तो इस की तरह रक्षा करनी चाहिये। इस प्रकार उपदेश दे, उसके घर को सातों रत्नों से भर, शक्र 'अब से अप्रमादी होकर रहना' कह देवलोक को चला गया। इस कारण उसने मना किया कि मैंने लिये खर्चे को बिना भुगताये दूसरे से प्राप्त होने वाले खर्चे के लिये हाथ पसारा। इससे मेरा शील मुझे प्रसन्न नहीं करता। इसी से तुम्हें नहीं दे सकती।

"हाथ पसारने मात्र से शील भंग नहीं होता। आपका शील परम परिशुद्ध शील है।"

दूतों ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखे।

इस प्रकार इन ग्यारह जनों द्वारा पालन किया गया शील सोने की पट्टी पर लिख, दन्तपुर पहुँच, कलिङ्ग नरेश को सोने की पट्टी दे, सब हाल सुनाया। राजा ने उस कुरुधर्म में स्थित हो पाँच शीलों को पूर्ण किया। उस समय सारे कलिङ्ग राष्ट्र में वर्षा हुई। तीनों भय शान्त हो गये। राष्ट्र का कल्याण हो गया। पैदावार खूब हुई।

बोधिसत्व जीवन पर्य्यन्त दान आदि पुण्य करके अनुयायियों सहित स्वर्ग-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में कोई स्रोतापन्न हुये, कोई सकृदागामी हुए, कोई अनागामी हुए तथा कोई अर्हत हुए। जातक के मेल के बारे में—

गणिका उप्पलवण्णा च पुण्णो दोवारिको तदा,
रज्जुगाहो च कच्चानो दोणमाता च कोलितो ॥
सारिपुत्तो तदासेट्ठि अनुरुद्धो च सारथी,
ब्राह्मणो कस्सपो थेरो उपराजा नन्द-पण्डितो ॥
महेसी राहुलमाता मायादेवी जनेत्तिया,
कुरुराजा बोधिसत्तो एवं धारेथ जातकं ॥

[उस समय की वैश्या उत्पलवर्णा थी, द्वारपाल पुण्ण था। रज्जु पकड़ने वाला कच्चान था, दोण मापने वाला कोलित था। सेठ सारिपुत्र था। सारथी अनुरुद्ध था। ब्राह्मण कस्सप स्थविर थे। उपराजा नन्द-पण्डित थे। पटरानी राहुल-माता थी। और जननी मायादेवी थी। कुरुराजा स्वयं बोधिसत्व थे। इस प्रकार जातक को समझें।]

२७७. रोमक जातक

"वस्सानि पञ्ञास..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय बध करने के प्रयत्न के बारे में कही। वर्तमान कथा प्रकट ही है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कबूतर होकर पैदा हुये। वह बहुत से कबूतरों के साथ जंगल में पर्वत-गुफा में

रहते थे। एक सदाचारी तपस्वी भी उन कबूतरों के निवासस्थान के आसपास ही एक प्रत्यन्त-ग्राम के समीप आश्रम बना पर्वत-गुफा में रहता था। बोधिसत्व बीच बीच में उसके पास आकर सुनने योग्य सुनते थे। तपस्वी वहाँ चिरकाल तक रहकर चला गया।

एक कुटिल जटाधारी आकर वहाँ रहने लगा। बोधिसत्व भी कबूतरों के साथ उसके पास प्रणाम कर, कुशलक्षेम पूछ, आश्रम के आसपास घूम, पर्वत-कन्दरा के समीप चुगकर, शाम को अपने निवासस्थान जाते। कुटिल जटाधारी वहाँ पचास वर्ष से अधिक रहा। एक दिन प्रत्यन्त-ग्रामवासियों ने कबूतर का मांस पकाकर दिया। उसने रस-लोभ से पूछा—यह किसका मांस है? "कबूतर का मांस।" उसने सोचा मेरे आश्रम पर बहुत से कबूतर आते हैं। उन्हें मारकर मांस खाना चाहिये। उसने चावल, घी, दही, ज़ीरा और मिर्च आदि मंगवा कर एक ओर रखा। फिर एक मोगरी को कपड़े से ढक, कबूतरों की प्रतीक्षा करता हुआ पर्णकुटी के द्वार पर बैठा।

बोधिसत्व ने कबूतरों के साथ आ, उस कुटिल जटाधारी की दुष्ट करनी देख सोचा—यह दुष्ट तपस्वी कुछ दूसरे ढंग से बैठा है। कहीं इसने हमारी जाति के किसी का मांस तो नहीं खाया है? मैं इसकी परीक्षा करूँगा। उसने जिधर से वायु चल रही थी उसके अनुसार खड़े हो उस (तपस्वी) की शरीर-गंध सूंघ कर जाना कि यह हमें मारकर मांस खाना चाहता है। इसके समीप नहीं जाना चाहिए। वह कबूतरों को ले वापिस लौटकर चुगने लगा। तपस्वी ने उसे न आता देख सोचा—उनसे मधुर बात चीत कर, विश्वस्त हो आने पर, मारकर खाना चाहिए। उसने पहली दो गाथायें कहीं:—

वस्सानि पञ्ञास समाधिकानि
वसिम्ह सेलस्स गुहाय रोमक,
असङ्कमाना अभिनिब्बुतत्ता
हत्थत्तमायन्ति ममण्डजा पुरे॥
तेदानि वक्कङ्ग किमत्थमुस्सुका
वजन्ति अञ्ञं गिरिकन्दरं दिजा,
न नून मञ्ञन्ति ममं यथापुरे
चिरप्पवुत्था अथवा न ते इमे॥

[हे रोमक ! हम पचास वर्ष से भी अधिक पर्वत-गुफा में रहे। पहले ये पक्षी निश्शङ्क होकर शान्त-भाव से मेरे हाथ में आ जाते थे। हे वक्कङ्ग ! क्या कारण कि वही पक्षी अब शङ्कित होकर दूसरी गिरि-कन्दरा को जाते हैं। वह मुझे जैसे पहले मानते थे, वैसे नहीं मानते हैं। क्या यह चिरकाल तक प्रवासी रहे हैं ? वा ये वे पक्षी ही नहीं हैं ?]

यह सुन बोधिसत्व ने लौट कर खड़े ही खड़े तीसरी गाथा कहीः—

जानाम तं न मयमस्म मूळ्हा
सोयेव त्वं ते मयमस्म नाञ्ञे,
चित्तञ्च ते अस्मिं जने पदुट्ठं
आजीवक तेन तं उत्तसाम ॥

[हम मूढ़ नहीं हैं। हम तुझे पहचानते हैं। तू वही है। और हम भी दूसरे नहीं हैं। लेकिन तेरा चित्त हमारे प्रति खराब हो गया है। हे आजीवक ! इसी कारण से हम तुझ से डरते हैं।]

कुटिल तपस्वी ने जब देखा कि इन्होंने मुझे जान लिया है तो मोगरी फेंक कर मारी। मोगरी चूक गई। तब वह बोला—जा। तू बच गया। बोधिसत्व ने कहा—मुझ से तू चूक गया, लेकिन चारों नरकों से तू नहीं चूकेगा। यदि अब यहां रहेगा तो ग्राम-वासियों को यह कहकर कि यह चोर है तुझे पकड़वा दूंगा। शीघ्र भाग जा ? उसे डराकर भगा दिया। जटाधारी वहां नहीं रह सका।

शास्ता ने यह धर्म देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय तपस्वी देवदत्त था। पहला सदाचारी तपस्वी सारि-पुत्र था। कबूतरों में ज्येष्ठ तो मैं ही था।

२७८. महिस जातक

"कमत्थमभिसन्धाय......" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक शरारती बन्दर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में किसी कुल में एक पालतू, शरारती बन्दर था। वह हथ-साल जाकर एक शीलवान् हाथी की पीठ पर मल-मूत्र कर देता और इधर उधर घूमता। हाथी अपने शील के कारण, शान्त होने के कारण कुछ न करता।

एक दिन उस हाथी के स्थान पर दूसरा दुष्ट हाथी-बच्चा खड़ा था। बन्दर इसे भी वह ही समझ उसकी पीठ पर चढ़ गया। उसने उसे सूण्ड से पकड़, जमीन पर रख पैर से दबा चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। यह समाचार भिक्षु-संघ में प्रकट हो गया। एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात चीत चलाई—आयुष्मानो! शरारती बन्दर दुष्ट हाथी को शीलवान् हाथी समझ उसकी पीठ पर चढ़ गया। उसने उसे मार डाला। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो?

"अमुक बात चीत।"

"भिक्षुओ, इस शरारती बन्दर का केवल अभी यह स्वभाव नहीं था, पुराने समय से लेकर यही स्वभाव रहा है।"

इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय-प्रदेश में भैंसे की योनि में पैदा हुआ। बड़े होने पर शक्ति शाली तथा महान् शरीर वाला हो, वह पर्वत, पब्भार, गिरि, दुर्ग तथा घने जंगलों में घूमता था। उसे एक सुखद वृक्ष की छाया मिली। चारा चुग कर दिन में वह उस वृक्ष की छाया में जा खड़ा हुआ।

एक शरारती बन्दर ने वृक्ष से उतर, उसकी पीठ पर चढ़ मल-मूत्र कर दिया। फिर सींग पकड़ लटकते हुये तथा पूँछ पकड़ झूलते हुए खेलने लगा। बोधिसत्व ने शान्ति, मैत्री, और दया रूपी सम्पत्ति से युक्त होने के कारण उसके अनाचार पर ध्यान नहीं दिया। बन्दर बार बार उसी तरह करता था। तब एक दिन उस वृक्ष पर रहने वाले देवता ने वृक्ष के तने पर खड़े हो, 'महिषराज! इस दुष्ट बन्दर का अनाचार क्यों सहन करते हो? इसे रोको' कहते हुये यह पहली दो गाथायें कहीं:—

कमत्थमभिसन्धाय लहुचित्तस्स दूभिनो,
सब्बकामदुहस्सेव इमं दुक्खं तितिक्खसि॥
सिङ्गेन निहनाहेतं पदसा च अधिट्ठह,
भीयो बाला पकुज्झेय्युं नो चस्स पटिसेधको॥

[किस कारण इस चंचल द्रोही को, सब कामनायें पूरी करने वाले की तरह, इस दुःख को, सहन करते हो? इसको सींग से मारो और पैर से दबा दो। यदि इसका दमन न किया गया तो और भी मूर्ख कष्ट देंगे।]

इसे सुन बोधिसत्व ने कहा—वृक्षदेवता! यदि मैं इससे जाति, गोत्र और बल में अधिक होकर भी इसके दोष को सहन नहीं करूँगा तो मेरा मनोरथ कैसे सिद्ध होगा? लेकिन यह दूसरे को भी मुझ जैसा ही समझ इसी प्रकार अनाचार करेगा। तब यह जिन प्रचण्ड भैंसों से बर्ताव करेगा, वे ही इसे मार देंगे। दूसरों द्वारा इसका वह मरण मुझे दुःख से तथा प्राणि-हिंसा से बचा लेगा। यह कह तीसरी गाथा कहीः—

ममेवायं मञ्ञमानो अञ्ञम्पेवं करिस्सति,
ते तं तत्थ वधिस्सन्ति सा मे मुत्ति भविस्सति॥

[यह दूसरे को भी मुझ जैसा समझ उसके साथ भी ऐसा ही व्यवहार करेगा। वे इसे मार देंगे। वह मेरी मुक्ति होगी।]

कुछ दिन बाद बोधिसत्व अन्यत्र गया। दूसरा प्रचण्ड भैंसा वहाँ आकर खड़ा हो गया। दुष्ट बानर ने उसे भी वही समझ उसकी पीठ पर चढ़ वैसा ही अनाचार किया।

उसने उसे हिलाकर भूमि पर गिराया और सींग से छाती चीर पैरों से कुचल कर चूर्ण-विचूर्ण कर दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया। उस समय का दुष्ट भैंसा यह अब का दुष्ट हाथी था। दुष्ट बानर यह दुष्ट बानर ही। शीलवान् महिषराज तो मैं ही था।

२७६. सतपत्त जातक

"यथा माणवको पन्थे..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पण्डुक तथा लोहितक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

छः वर्गीयों में से दो जने—मेत्तिय और भुम्मजक—राजगृह के पास रहते थे। अस्सजि तथा पुनब्बसुक कीटागिरि के पास रहते थे। और यह दो जने—पण्डुक तथा लोहितक—श्रावस्ती के पास जेतवन में रहते थे। वे जिस बात का न्याय से निर्णय हो गया रहता उसे फिर फिर उठाते थे। जो उनके परिचित मित्र होते उनको सहारा देते हुये कहते—आयुष्मानो! तुम न इनसे जाति में, न गोत्र में, न शील में, किसी बात में कम नहीं हो। यदि तुम अपना आग्रह छोड़ दोगे तो ये तुम्हें अच्छी तरह दबा लेंगे। इस प्रकार वे उन्हें अपना आग्रह न छोड़ने देते। इससे झगड़े, कलह-विग्रह तथा विवाद चालु रहते।

भिक्षुओं ने यह बात भगवान् से कही। भगवान् ने इस सम्बन्ध में, इस बारे में, भिक्षुओं को एकत्र करा, पण्डुक तथा लोहितक को बुलवा पूछा—भिक्षुओ, क्या तुम सचमुच स्वयं भी मुकदमे को बढ़ाते हो और दूसरों को भी अपना आग्रह छोड़ने नहीं देते हो?

"भन्ते! सचमुच"

"तो भिक्षुओ, यदि ऐसा है तो तुम्हारी क्रिया सतपत्त माणवक की क्रिया की तरह है।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक काशी-ग्राम में किसी कुल में पैदा हुये। बड़े होने पर कृषि-वाणिज्य आदि कोई जीविका न कर, उसने पाँच सौ चोरों का सरदार बन, बटमारी तथा सेंध लगाना आदि करते हुए जीविका चलाई।

उस समय वाराणसी के किसी गृहस्थ ने मुफस्सिल के किसी आदमी को एक सहस्र कार्षापण दिये थे। वह उन्हें बिना उगाहे ही मर गया। उसकी भार्य्या भी बीमार होकर मृत्यु-शैय्या पर लेटी। उसने पुत्र को बुलाकर कहा—तात ! तेरे पिता ने एक आदमी को हजार दिये थे। वह उन्हें बिना उगाहे ही मर गया ! यदि मैं भी मर जाऊँगी तो वह तुझे नहीं देगा। जा मेरे जीते जी ही उससे वसूल कर। उसने 'अच्छा' कह, वहाँ पहुँच कार्षापण प्राप्त किये।

उसकी माता मर कर पुत्रस्नेह के कारण उसके आने के मार्ग में गीदड़ी होकर प्रकट हुई। उस समय वह चोरों का सरदार मुसाफिरों को लूटता हुआ अपने साथियों सहित उसी रास्ते पर था।

पुत्र के जंगल की ओर मुँह करने पर उस गीदड़ी ने बार बार रास्ता रोक कर मना किया—तात ! जंगल में मत जा। वहाँ चोर हैं। वह तुझे मार कर कार्षापण छील लेंगे। उसने वह बात न जानने के कारण 'यह मनहूस गीदड़ी मेरा रास्ता रोकती है' सोच ढेले और डण्डे से माँ को भगा जंगल में प्रवेश किया। (उसी समय) एक कठफोड़ पक्षी चोरों के सामने चिल्लाता हुआ फड़फड़ाया—इस आदमी के पास हजार कार्षापण हैं। इसे मारकर वह कार्षापण ले लो। माणवक ने उसकी बात न समझ 'यह मङ्गल-पक्षी है, अब मेरा कल्याण होगा' सोच हाथ जोड़ कर कहा—बोलें स्वामी ! बोलें।

बोधिसत्व सबकी बोली समझते थे ! उन दोनों की क्रिया देखकर सोचने लगे—यह गीदड़ी इसकी मां होगी। इसीलिये वह इस डर से इसे रोकती है कि मारकर कार्षापण छीन लेंगे। यह कठफोड़ा तो शत्रु होगा। इसीलिये वह कहता है कि इसे मारकर कार्षापण छीन लो। यह इस बात को न समझता हुआ हितचिन्तक माता को डराकर धमकाता है, और अनर्थ चाहने

वाले कठफोड़े को हितचिंतक समझ उसके सामने हाथ जोड़ता है। ओह! यह मूर्ख है। [बोधिसत्व भी, जो कि महापुरुष होते हैं, जो दूसरों की चीज ले लेते हैं, उसका कारण उनका अयोग्य-जन्मग्रहण है। ऐसा भी कहते हैं कि यह नक्षत्रों के दोष से होता है।]

तरुण चोरों के बीच में आ पहुँचा। बोधिसत्व ने उसे पकड़वाकर पूछा—कहाँ रहने वाला है?

"वाराणसी रहने वाला हूँ।"

"कहाँ गया था?"

"एक गामड़े में से हजार लेना था, वहाँ गया था।"

"क्या तुझे मिला?"

"हाँ, मिला।"

"तुझे किसने भेजा?"

"स्वामी! मेरा पिता मर गया है। और माँ भी रोगिणी है। उसने यह समझ कर कि मेरे मरने पर यह नहीं पायेगा मुझे भेजा।"

"अब अपनी माँ का हाल जानता है?"

"स्वामी! नहीं जानता हूँ।"

तेरे (घर से) निकलने पर तेरी माता मर कर पुत्र-स्नेह के कारण शृगाली होकर पैदा हुई। वह तेरे मरने के डर से रास्ता रोक कर तुझे मना करती थी। तूने उसे डरा कर भगा दिया। कठफोड़ा पक्षी तो तेरा शत्रु है। उसने हमें कहा कि इसे मारकर कार्षापण छीन लो। तू अपनी मूर्खता के कारण हितचिन्तक माता को 'मेरी अहितचिन्तक है' मानता है और अनर्थ चाहने वाले कठफोड़े को 'मेरा हित चाहने वाला है' समझता है। उसका तुम पर कुछ उपकार नहीं है। तेरी माँ बहुत गुणवाली है। 'कार्षापण लेकर जा' कह विदा किया। शास्ता ने यह देशना ला ये गाथायें कहीं—

> यथा माणवको पन्थे सिगालिं वनगोचरिं,
> अत्थकामं पवेदेन्तिं अनत्थकामाति मञ्ञति
> अनत्थकामं सतपत्तं अत्थकामोति मञ्ञति।
> एवमेव इधेकच्चो पुग्गलो होति तादिसो,
> हितेहि वचनं वुत्तो पतिगण्हाति वामतो॥

ये च खो नं पसंसन्ति भया उक्कंसयन्ति च,
तं हिस्सो मञ्ञते मित्तं सतपत्तं व माणवो ॥

[जिस तरह बन में घूमने वाली गीदड़ी को जो हित की बात कहती थी, माणवक अहित चाहने वाली समझता था और अनर्थ चाहने वाले कठ-फोड़े को भला चाहने वाला समझता था; इसी प्रकार इस संसार में कोई कोई आदमी ऐसा ही होता है जो हितकर बात को उलटा ही समझता है। जो उसकी प्रशंसा करते हैं और जो भय से खुशामद करते हैं उन्हें वह वैसे ही मित्र समझता है जैसे माणवक ने कठफोड़े को (मित्र समझा)।]

इसीलिये कहा है:—

अञ्ञदत्थुहरो मित्तो यो च मित्तो वचीपरो,
अनुप्पियञ्च यो आह अपायेसु च यो सखा।
एते अमित्ते चत्तारो इति विञ्ञाय पण्डितो,
आरका परिवज्जेय्य मग्गं पटिभयं यथा ॥[1]

[जो अञ्ञदत्थुहरो मित्र है (स्वयं केवल खाली हाथ आकर मित्र के घर से कुछ न कुछ ले ही जाता है), जो बात का ही धनी है, जो अनु-कूल, प्रिय ही प्रिय बोलता है, जो नरक का साथी है—यह चार "मित्र" अमित्र ही हैं। पण्डित-जन इन्हें जानकर भय युक्त मार्ग की तरह दूर से ही छोड़ दे।]

शास्ता ने इस धर्मदेशना का विस्तार कर जातक का मेल बिठाया। उस समय चोरों का सरदार मैं ही था।

---

[1] सिगालोवाद-सुत्त (दीघनिकाय)

२८०. पुटदूसक जातक

"अद्धा हि नून मिगराजा......" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक दूने बिगाड़ने वाले के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक अमात्य ने बुद्ध की प्रमुखता में भिक्षु संघ को निमन्त्रित कर उद्यान में बिठाकर दान दिया। भोजन की समाप्ति पर उसने कहा —जो उद्यान में घूमना चाहें घूमें। भिक्षु उद्यान में घूमने लगे। उसी समय बाग का माली एक खूब पत्तों वाले वृक्ष पर चढ़, बड़े बड़े पत्तों से दूने बना, वृक्ष से नीचे गिराता था—यह दूना फूलों के लिये होगा, और यह फलों के लिये होगा। उसका पुत्र—एक बच्चा—जो जो दूने यह गिराता उन्हें नष्ट करता जाता था। भिक्षुओं ने वह बात शास्ता से निवेदन की। 'न केवल अभी, पहले भी भिक्षुओ, यह दूने नष्ट करने वाला ही था' कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वाराणसी में किसी कुल में पैदा हुये। बड़े होने पर घर में रहते समय एक दिन किसी काम से बाग में गये। वहाँ बहुत से बन्दर रहते थे। माली उक्त प्रकार से ही दूने गिराता था। बानरों का सरदार जो जो दूने वह गिराता था उन सब को नष्ट करता जाता था। बोधिसत्व ने उसे आमन्त्रित कर 'मालूम होता है तू माली द्वारा गिराये गये दूने नष्ट कर उनसे अच्छे बनाने चाहता है' कह यह गाथा कही:—

अद्धा हि नून मिगराजा पुटकम्मस्स कोविदो,
तथा हि पुटे दूसेति अञ्ञं नून करिस्सति ॥

[निश्चय से मृगराज दूने बनाने में पण्डित है। वह दूनों को ऐसे नष्ट कर रहा है, जैसे (इनसे अच्छे) दूसरे दूने बनायेगा।]

यह सुन बन्दर ने दूसरी गाथा कहीः—

न मे पिता वा माता वा पुटकम्मस्स कोविदो,

कतं कतं खो दूसेम एवं धम्ममिदं कुलं ॥

[न मेरा पिता, न मेरी माता दूने बनाने में पण्डित है। जो जो बने उसे नष्ट करें, यही हमारे कुल का धर्म है।]

यह सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कहीः—

येसं वो एदिसो धम्मो अधम्मो पन कीदिसो,

मा वो धम्मं अधम्मं वा अद्दसाम कुदाचनं ॥

[जिनका तुम्हारा धर्म ऐसा है, उनका अधर्म कैसा होगा ? हम न कहीं तुम्हारा धर्म देखते हैं, न अधर्म ।]

ऐसा कह बानर की निन्दा कर चले गये। शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय बानर दूने नष्ट करने वाला बच्चा था। पण्डित आदमी तो मैं ही था।

तीसरा परिच्छेद

४. अब्भन्तर वर्ग

२८१. अब्भन्तर जातक

"अब्भन्तरं नाम दुमो..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय सारिपुत्र के बिम्बा देवी स्थविरी को आम्र-रस देने के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

सम्यक् सम्बुद्ध के श्रेष्ठ धर्म-चक्र प्रवर्तित करने पर वैशाली की कूटागारशाला में विहार करते समय पाञ्च सौ शाक्य-देवियों को साथ ले, महाप्रजापती गौतमी ने प्रव्रज्या की याचना कर, प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त की। आगे चलकर वह पाँच सौ भिक्षुणियाँ नन्दकोवाद (सूत्र) सुनकर अर्हत्व को प्राप्त हुईं। शास्ता के श्रावस्ती के पास विहार करते समय राहुल-माता देवी ने भी सोचा—मेरे स्वामी प्रव्रजित होकर सर्वज्ञ हो गये। पुत्र भी प्रव्रजित होकर उन्हीं के पास रहता है। मैं घर में रहकर क्या करूँगी? मैं भी प्रव्रजित हो श्रावस्ती पहुँच सम्यक् सम्बुद्ध और पुत्र को निरन्तर देखती हुई रहूँगी। वह भिक्षुणियों के उपाश्रय में गई और प्रव्रजित हो आचार्य्य उपाध्यायों के साथ श्रावस्ती जा, शास्ता और प्रिय-पुत्र को देखती हुई एक भिक्षुणी-उपाश्रय में रहने लगी। राहुल श्रामणेर जाकर माता को देखता था।

एक दिन स्थविरी का उदर-वायु कुपित हो गया। पुत्र के देखने आने पर, उसे देखने के लिये बाहर न निकल सकी। दूसरों ने रोगी होने की बात कही। उसने माता से जाकर पूछा—क्या मिलना चाहिये? "तात! घर में रहते समय शक्कर मिश्रित आम्र-रस पीने से मेरा उदर-वायु शान्त हो जाता था। लेकिन अब भिक्षा माँग कर जीवन यापन करते हैं, कहाँ मिलेगा?" श्रामणेर 'मिलेगा तो लाऊँगा' कह चला गया।

उस आयुष्मान के उपाध्याय थे धर्मसेनापति (सारिपुत्र), आचार्य्य महामौद्गल्यायन, लघु-पिता आनन्द स्थविर और पिता सम्यक् सम्बुद्ध—इस प्रकार वह सम्पत्तिशाली था। ऐसा होने पर भी वह किसी दूसरे के पास न जा, उपाध्याय के पास पहुँच, प्रणाम कर चिन्तित की तरह खड़ा हुआ।

स्थविर ने पूछा—राहुल! चिन्तित सा क्यों है?

"भन्ते! मेरी माँ स्थविरी का उदर-वायु कुपित हो गया है।"

"क्या मिलना चाहिये?"

"शक्कर मिले आम्ररस से अच्छा होता है।"

"अच्छा, चिन्ता न कर मिलेगा।"

वे अगले दिन उसे ले श्रास्वती में प्रविष्ट हो, श्रामणेर को आसनशाला में बिठा राजद्वार पर पहुँचे। कोशल नरेश ने स्थविर को बिठाया। उसी क्षण उद्यानपाल डाल पर पके मधुर आमों का एक दूना लाया। राजा ने आमों का छिलका उतार शक्कर डाल, अपने हाथ से ही मल स्थविर को पात्र भर कर दिया। स्थविर ने राज-निवास से निकल आसनशाला पहुँच 'ले जाकर माता को दे' कह श्रामणेर को दिया। उसने ले जाकर दिया। स्थविरी के खाते ही उदर-वायु शान्त हो गया। राजा ने भी आदमी भेजा—स्थविर ने यहाँ बैठकर आम्र-रस नहीं पिया। जा देख किसे दिया? उसने स्थविर के साथ ही जा, आकर वह समाचार राजा से कहा। राजा ने सोचा—यदि शास्ता घर में रहते चक्रवर्ती-राजा होते। राहुल श्रामणेर ज्येष्ठ-पुत्र, स्थविरी स्त्री-रत्न। सारे चक्रवालों का राज्य इन्हीं का होता। हम इनकी सेवा में रहते। अब जब यह प्रव्रजित होकर हमारे आश्रय से रह रहे हैं, तो हमारे लिये यह उचित नहीं है कि हम इनकी ओर से लापरवाह हों। उस दिन से वह लगातार स्थविरी को आम्र-रस दिलाता रहा। स्थविर के बिम्बादेवी स्थविरी को आम्ररस देने की बात भिक्षुसंघ में प्रसिद्ध हो गई। एक दिन भिक्षुओं ने धर्म सभा में बात चीत चलाई—आयुष्मानो! सारिपुत्र स्थविर ने बिम्बादेवी स्थविरी को आम्ररस से संतर्पित किया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत।' 'भिक्षुओ, सारिपुत्र ने केवल अभी राहुल-माता को आम्ररस से संतर्पित नहीं किया, पहले भी किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी ग्राम के ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में शिल्प सीख गृहस्थी स्थापति की। माता पिता के मरने पर ऋषिप्रव्रज्या ले हिमालय प्रदेश में अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कीं। फिर ऋषियों की मण्डली के सरदार हो, बहुत समय व्यतीत होने पर, नमक-खटाई खाने के लिये पर्वत से उतर, चारिका करते हुये वाराणसी पहुँच, उद्यान में रहने लगे।

ऋषि-समूह के सदाचार के प्रताप से इन्द्र-भवन काँपने लगा। शक्र ने ध्यान देकर कारण का पता लगाया, और सोचने लगा—इन तपस्वियों को यहाँ से उखाड़ने का प्रयत्न करूँगा। जब इन्हें रहने को स्थान न मिलेगा, कष्ट सहते हुये घूमेंगे, तो इनका चित्त एकाग्र न होगा। इससे मेरा दुख दूर होगा। 'क्या उपाय किया जाय' सोचते हुये उसे यह उपाय सूझा—आधी रात के बाद राजा की पटरानी के शयनागार में प्रवेश कर आकाश में खड़ा होकर कहूँगा : अन्दर के पके आम को खाने से भद्रे! तुझे पुत्रलाभ होगा, और वह चक्रवर्ती राजा होगा। राजा देवी की बात सुन कर पके आम के लिये उद्यानभेजेगा। मैं आमों को अन्तर्धान कर दूँगा। राजा को कहेंगे—बाग में आम नहीं है। राजा के यह पूछने पर कि कौन खा जाते हैं उसे बताया जायगा कि तपस्वी खा जाते हैं। इसे सुन राजा तपस्वियों को पिटवा कर निकलवा देगा। इस प्रकार ये कष्ट पायेंगे। उसने आधी रात के बाद शयनागार में प्रविष्ट हो, आकाश में खड़े हो, अपना देवेन्द्र होना प्रकट कर उसके साथ बात चीत करते हुये पहली दो गाथायें कहीं:—

> अब्भन्तरं नाम दुमो यस्स दिब्बमिदं फलं,
> भुत्वा दोहळिनी नारी चक्कवत्तिं विजायति ॥
> त्वञ्च भद्दे महेसीसि साचासि पतिनो पिया
> आहरिस्सति ते राजा इदं अब्भन्तरं फलं ॥

[अन्दर वह वृक्ष है, जिसका यह दिव्य फल है। दोहद वाली नारी इसे खाकर चक्रवर्ती पुत्र पैदा करेगी। हे भद्रे! तू महिषी है और पति की प्यारी है। राजा तेरे लिये यह अब्भन्तर फल मंगा देगा।]

इस प्रकार शक्र देवी को ये दो गाथायें कह 'तू अप्रमादी हो, देर न करना, कल राजा को कहना' अनुशासन कर अपने निवास-स्थान को गया। दूसरे दिन देवी रोगिणी का ढंग बना सेविकाओं को इशारा कर लेट रही। ऊपर उठे श्वेत-छत्र के नीचे सिंहासन पर बैठ नाटक देखते हुये राजा ने देवी को न देख सेविकाओं से पूछा—देवी कहाँ है?

"देव! रोगिणी होगई है।"

उसने देवी के पास जा, वहां पास बैठ, पीठ मलते हुये पूछा—

"भद्रे! क्या कष्ट है?"

"महाराज! और तो कोई कष्ट नहीं है, हां दोहद उत्पन्न हुआ है।"

"भद्रे! क्या चाहती है?"

"देव! अन्दर का फल।"

"यह अन्दर का आम कहाँ होता है?"

"देव! मैं अन्दर के आम को नहीं जानती हूँ। लेकिन वह मिलेगा तो जीऊँगी, न मिलेगा नहीं जीऊँगी।"

'तो चिन्ता मतकर, मंगवायेंगे' कह राजा ने देवी को आश्वासन दिया। फिर उठ, जाकर राजसिंहासन पर बैठ अमात्यों को बुलवाकर पूछा—देवी को अन्दर के आम का दोहद पैदा हो गया है। क्या किया जाय?

"देव दो आमों के बीच में स्थित आम अन्दर का आम है। उद्यान में भेजकर दो आमों के बीच में खड़े आम के फल मंगवा कर देवी को दिलायेंगे।"

'अच्छा' इस तरह का आम लाओ कह राजा ने उद्यान भेजा।

शक्र ने अपने प्रताप से उद्यान के आमों को खाये जैसे करके अन्तर्धान कर दिया। आम के लिये गये आदमियों ने सारे उद्यान में घूम एक आम भी न पा, जाकर राजा से कहा—उद्यान में आम नहीं है।

"आमों को कौन खाते हैं?"

"देव! तपस्वी खाते हैं।"

"तपस्वियों को उद्यान से पीट कर निकाल दो।"

मनुष्य ने 'अच्छा' कह निकाल दिया। शक्र का उद्देश पूरा हो गया। देवी आम्रफल का आग्रह करके पड़ी रही।

राजा को जब और कुछ नहीं सूझा तो अमात्यों तथा ब्राह्मणों को एकत्र कर पूछा—अन्दर के आम के बारे में जानते हो ?

"देव ! परम्परा से यही सुना है कि अन्दर का आम देवताओं का भोग्य-आम होता है। वह हिमालय में कञ्चन-गुफा में होता है।"

"उस आम को कौन ला सकेगा ?"

"वहाँ कोई आदमी नहीं जा सकता। एक तोते के बच्चे को वहाँ भेजना चाहिये।"

उस समय राजकुल में एक बड़े शरीर वाला तोते का बचा था—कुमारों की गाड़ी के पहिये की नाभी जितना। वह शक्तिशाली था, प्रज्ञावान् था और था उपायकुशल। राजा ने उसे मंगवाकर कहा—तात ! मैं तुम्हारा बहुत उपकार करता हूँ। सोने के पिंजरे में रहते हो। सोने की थलिया में मधु और लाजा खाते हो। शक्कर का पानी पीते हो। तुम्हें भी हमारा एक काम पूरा करना चाहिये।

"देव ! कहें।"

"तात ! देवी को अन्दर के आम का दोहद पैदा हो गया है। वह आम हिमालय में कञ्चन-गुफा में है। वह देवताओं का भोग्य है। वहाँ कोई आदमी नहीं जा सकता। तुझे वहाँ से फल लाना चाहिये।"

"देव ! अच्छा लाऊँगा।"

राजा ने सोने की थाली में मधु-खील खिला, शक्कर का शर्बत पिला, सौ तरह के पके हुये तेल से उसे पङ्खों के बीच में चुपड़, दोनों हाथों में ले, खिड़की में खड़े हो आकाश में छोड़ दिया। वह भी राजा के प्रति नम्रता दिखा, आकाश में उड़ते हुये मनुष्य-पथ से ओझल हो हिमालय में पहुँचा। वहाँ हिमालय की प्रथम-पंक्ति के अन्दर रहने वाले तोतों के पास जा पूछा—अन्दर का आम किस जगह है ? मुझे वह स्थान बतायें।

"हम नहीं जानते। दूसरी पंक्ति के अन्दर के जानते होंगे।" उनसे सुन वह वहाँ से उड़ दूसरी पंक्ति के अन्दर पहुँचा। वहाँ से तीसरी, चौथी, पाँचवीं तथा छठी। वहाँ भी तोतों ने यही कहा—हम नहीं जानते, सातवीं पंक्ति के अन्दर के तोते जानते होंगे। उसने वहाँ भी पहुँचकर पूछा—अन्दर का आम कहाँ है ? बताया—अमुक स्थान पर कञ्चन-पर्वत के अन्दर।

"मैं उसके फल के लिये आया हूँ। मुझे वहाँ ले चलकर उसका फल दिलाओ।"

"वह वैश्रवण (कुबेर) महाराज का भोग्य है। वहाँ नहीं जाया जा सकता। सारा वृक्ष, जड़ से लगाकर लोहे की सात जालियों से घिरा है। हजार-करोड़ कुम्भण्ड राक्षस रक्षा करते हैं। उनको दिखाई दे जाने पर जान नहीं बच सकती। कल्पारम्भ की आग और अवीचि महानरक की तरह का स्थान है। वहाँ जाने की इच्छा न कर।"

"यदि तुम नहीं जाते, तो मुझे स्थान बता दो।"

"तो अमुक अमुक रास्ते से जा।"

वह उनके कथनानुसार ठीक रास्ते से वहाँ पहुँच, दिन भर छिपा रहा। आधी-रात के बाद राक्षसों के सोने के समय अन्दर के आम के पास जा एक मूल के बीच से शनैः शनैः चढ़ने लगा। लोह-जाली ने 'किली' आवाज की। राक्षस जागकर तोते के बच्चे को देख पकड़ कर विचार करने लगे—यह आमचोर है। इसे क्या दण्ड दें? एक बोला—इसे मुँह में डालकर निगल जाऊँगा! दूसरा बोला—हाथ से मलकर पोंछ कर बिखेर दूँगा। तीसरा बोला—दो टुकड़े करके अङ्गारों पर पका कर खा जाऊँगा।

उसने उनका दण्ड-विधान सुनकर भी बिना भयभीत हुये पूछा—हे राक्षसो! तुम किसके आदमी हो?

"वैश्रवण महाराज के।"

"तुम भी एक राजा के आदमी हो। मैं भी एक राजा का ही आदमी हूँ। वाराणसी राजा ने मुझे अन्दर के फल के लिये भेजा है। मैं वहीं अपने राजा के लिये जीवन परित्याग करके आया हूँ। जो अपने माता, पिता तथा स्वामी के लिये जीवन बलिदान करता है, वह देवलोक में ही पैदा होता है। इसलिये मैं भी इस तिर्यक् योनि से मुक्त होकर देवलोक में पैदा होऊँगा।"

यह कह तीसरी गाथा कहीः—

भत्तुरत्थे परक्कन्तो यं ठानमधिगच्छति,
सूरो अत्तपरिच्चागी लभमानो भवामहं ॥

[स्वामी के लिये प्रयत्न करने वाला, शूर तथा आत्मत्यागी जिस स्थान को प्राप्त होता है, मैं भी उसी स्थान को प्राप्त होऊँगा ।]

इस प्रकार इस गाथा से उसने उन्हें उपदेश दिया। उन्होंने उसका उपदेश सुन सोचा—यह धार्मिक है। इसे मार नहीं सकते। इसे छोड़ दें। वे तोते के बच्चे को छोड़कर बोले—तोते! हमारे हाथ से तू मुक्त है। सकुशल जा।

"मेरा आना व्यर्थ मत करो। मुझे एक फल दे दो।"

"तोते! तुझे एक फल देने का हमारा अधिकार नहीं है। इस वृक्ष के आमों पर अङ्क लगे हैं। एक का भी फर्क पड़ने पर हमारा जीवन नहीं रहेगा। कुवेर के क्रुद्ध होकर एक बार देखने से ही गरम तवे पर डाले तिलों की तरह हजार कुम्भाण्ड भुन कर बिखर जायेंगे। इसलिये तुझे नहीं दे सकते। हाँ मिलने का स्थान बता सकते हैं।"

"कोई भी दे। मुझे तो फल ही चाहिये। मिलने का स्थान ही बतायें।"

"इस कञ्चन-पर्वत के अन्दर जोतिरस नाम का तपस्वी अग्नि में हवन करता हुआ कञ्चन-पत्ति नाम की पर्णशाला में रहता है। उसकी वैश्रवण से घनिष्टता है। वैश्रवण उसके पास नियम से चार फल भेजता है। उसके पास जा।"

वह 'अच्छा' कह तपस्वी के पास पहुँच, प्रणाम कर एक ओर बैठा। तपस्वी ने पूछा—कहाँ से आये?

"वाराणसी राजा के पास से।"

"किस लिये आये?"

"स्वामी! हमारे राजा की रानी को पके अन्दर के आम खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। उसके लिये आया हूँ। राक्षसों ने मुझे स्वयं पका आम न दे आप के पास भेजा है।"

"तो बैठ, मिलेगा।"

वैश्रवण ने उसके पास चार फल भेजे। तपस्वी ने उनमें से दो खाये। एक तोते को खाने के लिये दिया। उसके खा चुकने पर एक फल छींके में रख, तोते की गरदन में डाल 'अब जा' कह तोते को विदा किया। उसने वह

लाकर देवी को दिया। उसने उसे खा दोहद को शान्त किया। लेकिन उसके कारण उसे पुत्र नहीं हुआ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय देवी राहुल-माता थी। तोता आनन्द था। पका आम देने वाला तपस्वी सारिपुत्र। उद्यान में रहने वाला तपस्वी मैं ही था।

२८२. सेय्य जातक

"सेय्यंसो सेय्यसो होति..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल-नरेश के एक अमात्य के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह अमात्य राजा का बहुत उपकारी था, सब काम कर देने वाला। राजा ने उसे अपना बहुत उपकारी जान महान सम्पत्ति दी। दूसरे ईर्षालुओं को यह सहन न हुआ। उन्होंने चुगली खा राजा का मन उसकी ओर से खट्टा कर दिया। राजा ने उनके कहने पर विश्वास कर, अपराध की जाँच न कर, उस निर्दोष सदाचारी को जंजीर से बँधवा कैदखाने में डलवा दिया। वह वहाँ अकेला रहता हुआ सदाचार के कारण चित्त की एकाग्रता को प्राप्त हो, संस्कारों पर विचार कर स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। आगे चलकर राजा ने उसे निर्दोष समझ जंजीर तुड़वा, पहले जितनी सम्पति दी थी उससे भी अधिक दी। वह शास्ता को प्रणाम करने की इच्छा से बहुत सुगन्धि, माला आदि ले विहार गया। वहाँ तथागत की पूजा कर, प्रणाम कर, एक ओर बैठा। शास्ता ने उसका कुशल समाचार पूछते हुए कहा—"सुना तुम्हारा अनर्थ हुआ है?"

"हाँ भन्ते, अनर्थ हुआ, लेकिन मैंने उस अनर्थ से भी अर्थ निकाल लिया। कारागार में बैठकर स्रोतापत्ति फल प्राप्त किया।"

"उपासक, केवल तू ने ही अनर्थ में से अर्थ नहीं निकाला, किन्तु पुराने पंडितों ने भी अनर्थ में से अर्थ निकाला ही है" कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला जा शिल्प सीखा। पिता के मरने पर राजा बन दस राज-धर्मों का उल्लंघन न करते हुए वह दान देता, शील की रक्षा करता, और उपोसथ (-व्रत) रखता। उसके एक अमात्य ने अन्तःपुर को दूषित कर दिया। नौकर चाकरों ने जान, राजा को सूचित किया कि अमुक अमात्य ने अन्तःपुर को दूषित किया है।

राजा ने जाँच करवा जैसा हुआ था वैसा जान उसे निकाल बाहर किया—अब से तू मेरी सेवा में मत रह। वह जाकर एक सामंत राजा की सेवा में रहने लगा। शेष सारी कथा उक्त **महासीलव जातक**[1] में आई कथा की तरह ही है।

इस कथा में भी उस राजा ने तीनबार—परीक्षा कर उस अमात्य की बात मान वाराणसी राज्य लेने की इच्छा की। बड़ी भारी सेना ले वह राज्य सीमा पर आ पहुँचा। वाराणसी राजा के ५०० महा योद्धाओं ने यह समाचार सुन, राजा से निवेदन किया—देव! अमुक राजा वाराणसी राज्य लेने की इच्छा से जनपद चीरता हुआ चला आता है। हम जाकर उसे वहीं पकड़ें।

"मुझे पराई हिंसा से प्राप्त राज्य की आवश्यकता नहीं। कुछ मत करो।"

चोर-राजा ने आकर नगर को घेर लिया। मंत्रियों ने फिर राजा से निवेदन किया—देव! हम उसे पकड़ लें? राजा ने उत्तर दिया—कुछ करने की आज्ञा नहीं है। नगर-द्वार खोल दो। वह स्वयं अमात्यों सहित ऊँचे तल्ले पर सिंहासन पर जा बैठा। चोर-राजा ने चारों दरवाजों से अपने आदमी

---

[1] महासीलव जातक (५१)

घुसा, नगर में प्रविष्ट हो, प्रासाद पर चढ़, अमात्यों सहित राजा को पकड़वा, जंजीरों से बंधवा, कारागारा में डलवा दिया।

राजा ने बंधनागार या कारागार में बैठे बैठे ही चोर राजा के प्रति मैत्री भावना करते हुए मैत्री ध्यान प्राप्त किया। उसकी मैत्री के प्रताप से चोर राजा के शरीर में जलन पैदा हुई। सारा शरीर दो मशालों से झुलस दिए की तरह होगया। उसने महान पीड़ा अनुभव करते हुए पूछा—(इस दुख का) क्या कारण है?

"तुमने सदाचारी राजा को कारागार में डलवाया है, उसी से यह दुख पैदा हुआ होगा।"

उसने जा कर बोधिसत्व से क्षमा माँग ली और उसका राज्य लौटा दिया—तुम्हारा राज्य तुम्हारे ही पास रहे। अब से तुम्हारे शत्रुओं की जिम्मेदारी मुझ पर है। उस दुष्ट अमात्य को राज-दण्ड दे, वह अपने नगर को ही लौट गया। बोधिसत्व ने अलंकृत ऊँचे तल पर श्वेत-छत्र के नीचे राज्य सिंहासन पर बैठ, इर्द गिर्द बैठे अमात्यों से बात चीत करते हुए पहली दो गाथाएँ कहीं:—

> **सेय्यंसो सेय्यसो होति यो सेय्यमुपसेवति,**
> **एकेन संधिं कत्वान सतं वज्झे अमोचयिं।**
> **तस्मा सब्बेन लोकेन संधिंकत्वान एकको,**
> **पेच्च सग्गं निगच्छेय्य इदं सुणाथ कासयो॥**

[जो श्रेष्ट कार्यकर्ता है, उस श्रेष्ट कार्य करने वाले का कल्याण होता है। एक से मेल करके सौ बद्ध होने वालों को मुक्त कराया। इस लिये सब काशीवासी यह सुनें और अकेला आदमी सारे लोक से मैत्री भावना[1] कर मर कर स्वर्ग प्राप्त करे।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने जनता को मैत्री भावना के लाभ बता बारह योजन के वाराणसी नगर का श्वेत-छत्र छोड़, हिमालय में प्रविष्ट हो ऋषि प्रव्रज्या ग्रहण की।

---

[1] **मैत्री भावना से विचार-समाधि कामावचर-लोक में जन्म देती है और अर्पणा से ब्रह्मलोक में।**

शास्ता ने सम्यक् सम्बुद्ध होने पर तीसरी गाथा कही—

इदं वत्वा महाराजा कंसो वाराणसिग्गहो,
धनुं तूणिञ्च निक्खिप सञ्ञमं अज्झुपागमि ॥

[यह कह वाराणसी पर अधिकार करने वाला राजा कंस, धनुष और तूणीर छोड़कर संयम के मार्ग पर आरुढ़ हो गया।]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय चोर-राजा आनन्द था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

२८३. वड्ढकीसूकर जातक

"वरं वरं त्वं ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय धनुग्गह तिस्स स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

प्रसेनजित राजा के पिता महाकोशल ने बिम्बिसार राजा को अपनी लड़की कोशल-देवी व्याहने के समय उसके स्नान-चूर्ण के मूल्य के तौर पर उसे काशी गाँव दिया जिससे लाख की आदमनी होती थी। अजातशत्रु के पिता की हत्या करने पर कोशल देवी भी शोकाभिभूत हो मर गई। तब प्रसेन जित राजा ने सोचा—अजात शत्रु ने पिता को मार डाला—स्वामी के मरण-शोक से मेरी बहन भी मर गई। मैं इस पितृ-घातक चोर को काशी गाँव नहीं दूँगा। उसने अजातशत्रु को वह गाँव नहीं दिया। उस गाँव के कारण उन दोनों का समय समय पर युद्ध होता। अजातशत्रु तरुण था, सामर्थ्य-वान था, प्रसेनजित था बूढ़ा। वह बार-बार पराजित होता, महा-कोशल के भी आदमी बहुत करके पराजित हो गए। राजा ने अमात्यों से पूछा—हम बार बार हार जाते हैं, क्या करना चाहिये?

"देव ! आर्य (= भिक्षु) मंत्रणा में बड़े पटु होते हैं । जेतवन विहार में भिक्षुओं की बात-चीत सुननी चाहिये ।"

राजा ने चर-पुरुषों को आज्ञा दी—समय समय पर उनकी बात-चीत सुनो । वे तब से वैसा करने लगे ।

उस समय दो वृद्ध स्थविर विहार की सीमा पर पर्ण-शाला में रहते थे । उत्तर स्थविर और धनुग्गहतिस्स स्थविर । उनमें से धनुग्गहतिस्स स्थविर रात्रि के पहले और मध्यम पहर में सो, आखिरी पहर में उठ, जलावन को तोड़, आग बाल, बैठे ही बैठे बोले—भन्ते उत्तर स्थविर !

"क्या है भन्ते तिस्सस्थविर ?"

"क्या आप सो रहे हैं ?"

"न सोते हों, तो क्या करेंगे ?"

"उठ कर बैठें ।"

वह उठ बैठे । उन्होंने उत्तर स्थविर से कहा—

"यह तुम्हारा लोभी महापेटू कोशल (नरेश) चाटी भर भात को ही गन्दा करता है । युद्ध संचालन कुछ नहीं समझता । हार-गया, हार-गया ही कहलवाता है ।"

"तो उसे क्या करना चाहिये ?"

उस समय चर-पुरुष खड़े उनकी बात चीत सुन रहे थे । धनुग्गह-तिस्स स्थविर ने युद्ध के बारे में अपना विचार कहा—

"भन्ते ! युद्ध में तीन तरह के व्यूह होते हैं—पद्म-व्यूह, चक्र-व्यूह और शकट-व्यूह । अजातशत्रु को पकड़ने के इच्छुक को चाहिये कि वह अमुक पर्वत की कोख में दो पर्वतों की ओट में मनुष्यों को छिपा, आगे दुर्बल सेना दिखाए । फिर शत्रु को पर्वत में पा, पर्वतों के बीच में प्रविष्ट हुआ जान, प्रवेश-मार्ग को बन्द कर दे । इस प्रकार आगे और पीछे दोनों ओर पर्वत की ओट से कूद कर शोर मचाते हुए उसे घेरलें, जैसे जाल में फँसी मछली अथवा मुट्ठी में आया मेंढक का बच्चा । इस प्रकार उसे पकड़ा जा सकता है ।"

चर-पुरुषों ने यह बात राजा से कही । यह सुन राजा ने संग्राम-दुन्दुभी बजवायी और जाकर शकट-व्यूह बना अजातशत्रु को जीता पकड़-वाया । फिर अपनी लड़की वजिर कुमारी भाँजे को ब्याह, उसके स्नान-मूल्य

के तौर पर काशी गाँव दे विदा किया। वह समाचार भिक्षु-संघ में फैल गया। एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बैठे बैठे चर्चा चलाई—आयुष्मानो ! कोशल राजा ने धनुग्गहतिस्स की मंत्रणा के अनुसार अजात शत्रु को जीत लिया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?

"अमुक बात-चीत।"

"भिक्षुओ, न केवल अभी, धनुग्गहतिस्स युद्ध-मंत्रणा में पटु है, किन्तु वह पहले भी पटु रहा है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व जंगल में वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुए। उस समय वाराणसी के पास एक बढ़इयों का गाँव था। उनमें से एक बढ़ई लकड़ी के लिये जंगल गया। वहाँ उसने गढ़े में पड़े एक सुअर-बच्चे को देख घर, लाकर पोसा। वह बड़ा होकर महान शरीर वाला, टेढ़ी डाढ़ों वाला, किन्तु सदाचारी हुआ। बढ़ई द्वारा पोसे जाने के कारण उसका नाम बढ़ई-सूअर ही पड़ गया। वह बढ़ई के वृक्ष छीलने के समय थूथनी से वृक्ष को उलटता पलटता, मुँह से उठा कर वासी (छुरी-कुल्हाड़ी) फरसा, रुखानी, तथा मोगरी ला देता। काले डोरे का सिरा पकड़ लेता।

वह बढ़ई, कोई इसे खा न जाय, इस भय से ले जाकर जंगल में छोड़ आया। उसने भी जंगल में क्षेमकर, सुखकर स्थान खोजते हुए एक पर्वत की ओट में एक महान गिरि-कन्दरा देखी, जहाँ खूब कन्द मूल थे और सुख से रहा जा सकता था। सैकड़ों सूअर उसे देख उसके पास पहुँचे। उसने उन्हें कहा—"मैं तुम्हें ही ढूँढ़ता था। तुम यहाँ मिल गए। यह स्थान रमणीए है। मैं अब यही कहूँगा।"

"सचमुच यह स्थान रमणीए है, लेकिन यहाँ खतरा है।"

"मैंने भी तुम्हें देखकर यही जाना। चरने के लिये ऐसी अच्छी जगह रहते हुए भी शरीर में मांस रक्त नहीं है। यहाँ क्या खतरा है?"

"एक व्याघ्र प्रातःकाल ही आकर जिसे देखता है, उसे उठा ले जाता है।"

"क्या यह लगातार ले जाता है या कभी कभी ?"

"लगातार।"

"व्याघ्र कितने हैं ?"

"एक ही।"

"तुम इतने हो एक से पार नहीं पा सकते ?"

"हाँ नहीं सकते।"

"मैं उसे पकड़ूँगा, तुम केवल मेरा कहना करना। वह व्याघ्र कहाँ रहता है ?"

"इस पर्वत में।"

उसने रात को ही सूअरों को चरा, युद्ध संचालन का विचार करते हुए 'व्यूह तीन तरह के होते हैं—पद्म-व्यूह, चक्र-व्यूह तथा शकट-व्यूह' कह पद्म-व्यूह का निश्चय किया। वह उस भूमि-भाग से परिचित था। इसलिये यहाँ युद्ध की योजना करनी चाहिये, सोच उसने पाहुरों और उनकी माताओं को बीच में रखा। उनके गिर्द बाँझ सूअरियों को, उनके गिर्द बच्चे-सूअरों को, उनके गिर्द लड़के-सूअरों को, उनके गिर्द लम्बी दाढ़ वाले सूअरों को और उनके गिर्द युद्ध करने में समर्थ, बलवान सूअरों के दस दस, बीस बीस के झुण्ड जहाँ तहाँ स्थापित किए। अपने खड़े होने के स्थान के आगे एक गोल गढ़ा खुदवाया। पीछे से एक छाज की तरह, क्रमानुसार नीचे होता हुआ ढलवान भूमि के सदृश। उसके साठ सत्तर योद्धा सूअरों को जहाँ तहाँ 'मतडरें' कह नियुक्त करते हुए अरुणोदय हो गया।

व्याघ्र ने उठकर देखा कि समय हो गया। उसने जाकर उनके सामने के पर्वत-तल पर खड़े हो आँखें खोल सूअरों को देखा। बढ़ई-सूअर ने सूअरों का इशारा किया कि वे भी उसकी ओर घूर कर देखें। उन्होंने वैसे देखा। व्याघ्र ने मुँह खोल कर सांस लिया। सूअरों ने भी वैसे किया। व्याघ्र ने पेशाब किया। सूअरों ने भी किया। इस प्रकार जो जो उसने किया, वही उन्होंने भी किया। वह सोचने लगा—पहले सूअर मेरे देखने पर भागने का प्रयत्न करते हुए भाग भी नहीं सकते थे, आज बिना भागे मेरे प्रति-शत्रु बन जो मैं करता हूँ, वह करते हैं। एक ऊँचे से स्थल पर खड़ा हुआ उनका नेता भी है। आज मैं गया तो जीतने की सम्भावना नहीं है।

वह रुक कर अपने निवास स्थान को लौट गया। उसके मारे मांस को खाने वाला एक कुटिल, जटिल तपस्वी था। उसने उसे खाली आता देख उससे बात चीत करते हुए पहली गाथा कही :—

वरं वरं त्वं निहनं पुरे चरि
अस्मिं प्रदेसे अभिभुय्य सूकरे,
सोदानि एको व्यपगम्य झायसि
बलन्नु ते व्यग्घ नचज्ज विज्जति ॥

[पहले तू इस प्रदेश के सूअरों को अभिभूत कर उनमें से अच्छे अच्छे मार कर खाता था। अब एक ओर अकेला होकर ध्यान कर रहा है। हे व्याघ्र ! आज तुझ में बल नहीं है।]

यह सुन व्याघ्र ने दूसरी गाथा कही:—

इमे सुदं यन्ति दिसोदिसं पुरे
भयट्टिता लेणगवेसिनो पुथू,
ते दानि सगंम्म रसन्ति एकतो
यत्थट्ठिता दुप्पसहज्ज मे मया ॥

[पहले ये डर के मारे अपनी अपनी गुफाओं को खोजते हुए जिस तिस दिशा में भाग जाते थे। अब एक जगह इकट्ठे होकर आवाज लगाते हैं। आज मेरे लिये इनका मर्दन करना दुष्कर है।]

इस प्रकार उसे उत्साहित करते हुए कुटिल तपस्वी ने कहा—जा तेरे चिंग्घाड़ कर छलांग मारने पर सभी डर कर तितिर-बितिर हो भाग जायेंगे। उसके उत्साह दिलाने पर व्याघ्र बहादुर बन फिर जाकर पर्वत शिखर पर खड़ा हुआ। बढ़ई-सूअर दोनों गढ़ों के बीच में खड़ा था। सूअर बोले—

"स्वामी महाचोर फिर आ गया है।"

"डरो मत। अब उसे पकड़ूँगा।"

व्याघ्रने गरज कर बढ़ई-सूअर पर आक्रमण किया। सूअर उसके अपने ऊपर आने के समय जल्दी से पलट कर सीधे खने गढ़े में जा पड़ा। व्याघ्र वेग को न रोक सकने के कारण ऊपर ऊपर जाकर छाज की तरह टेढ़े खने गढ़े में अत्यन्त बीहड़ जगह गिर कर ढेर सा हो गया। सूअर गढ़े से निकला। उसने बिजली की तेजी से जा व्याघ्र की जाँघों में अपनी काँपों

से प्रहार कर नाभि तक चीर डाला। फिर पांच प्रकार का मधुर मांस काँपों से लपेट व्याघ्र के मस्तक को छेद "लो अपने शत्रु को" कह उठाकर गढ़े से बाहर किया। पहले जो आये उन्हें मांस मिला। पीछे आने वाले उनका मुँह सूँघते फिरते थे कि व्याघ्र-मांस कैसा होता है? सूअरों को अभी सन्तोष नहीं था। बढ़ई-सुअर ने उनका आकार प्रकार देख पूछा—क्या अभी सन्तुष्ट नहीं हो?

"स्वामी, इस एक व्याघ्र के मारे जाने से क्या लाभ? दूसरे दस व्याघ्र ला सकने वाला कुटिल तपस्वी जीता ही है।"

"यह कौन है?"

"एक दुराचारी तपस्वी।"

"उसकी क्या सामर्थ्य है जब व्याघ्र भी मैंने मार डाला।"

वह उसे पकड़ने के लिये सूअर समूह के साथ चला।

कुटिल तपस्वी ने जब देखा कि व्याघ्र को देर हो रही है तो सोचने लगा कि कहीं सूअरों ने व्याघ्र को पकड़ तो नहीं लिया है। वह जिधर से सूअर आ रहे थे, उधर ही जा रहा था। सूअरों को आता देख अपना सामान लेकर भागा। सूअरों ने पीछा किया। वह सामान छोड़कर जल्दी से गूलर के पेड़ पर चढ़ गया। सूअर बोले—स्वामी! हम मारे गये। तपस्वी भागकर वृक्ष पर चढ़ गया।

"यह कौनसा वृक्ष है?"

"यह गूलर वृक्ष है"

उसने सूअरियों को आज्ञा दी कि वे पानी लायें, सूअर-बच्चों को आज्ञा दी कि वे खोदें, और बड़े दाँतों वाले सूअरों को कहा कि वे जड़ें काटें। फिर स्वयं गूलर की सीधी मोटी जड़को फर्से से काटते हुये की तरह, एक प्रहार से ही गूलर को गिरा दिया। घेर कर खड़े सूअरों ने कुटिल तपस्वी को जमीन पर गिरा, टुकड़े टुकड़े कर, हड्डियाँ मात्र छोड़ खा डाला। फिर बढ़ई-सूअर को गूलर की जड़ में ही बिठा, कुटिल तपस्वी के शङ्ख में ही पानी मंगवा, अभिषिक्त कर राजा बनाया। एक तरुण सूअरी का अभिषेक कर उसे उसकी पटरानी बनाया।

उस दिन से आज तक राजाओं को गूलर के श्रेष्ठ पीढ़े पर बिठा कर तीन शङ्खों से उनका अभिषेक किया जाता है। उस वन-खण्ड में रहने वाले देवता ने यह आश्चर्य देख एक खोह में सूअरों के सामने खड़े हो तीसरी गाथा कही :—

> नमत्थु सङ्घानं समागतानं
> दिस्वा सयं सख्यं वदामि अब्भुतं,
> व्यग्घं मिगा यत्थ जिनिंसु दाठिनो
> सामग्गिया दाठबलेसु मुच्चरे ॥

[आये हुए (सूअरों के) संघ को मेरा नमस्कार है। मैं इस अद्भुत मैत्री-भाव को स्वयं देखकर नमस्कार करता हूँ। जहाँ दाँतों वाले मृगों (सूअरों) ने व्याघ्र को जीत लिया। सूअरों में एकता होने से ही वे मुक्त हुए।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय धनुग्गह तिस्स बढ़ई-सूअर था। वृक्ष-देवता मैं ही था।

२८४. सिरि जातक

"यं उस्सुका संघरन्ति..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक श्री-चोर ब्राह्मण के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

इस जातक की वर्तमान-कथा पूर्वोक्त खदिरङ्गार जातक[1] में आई ही है। इस कथा में भी वह अनाथ-पिण्डिक के घर में चौथी ड्योढ़ी में रहने-

---

[1] खदिरङ्गार जातक (१.४.४०)।

वाली मिथ्या-धारणा वाली देवी रहती थी। उसने दण्डकर्म-स्वरूप चौवन करोड़ सोना लाकर कोठों में भर, अनाथ-पिण्डिक के साथ मैत्री स्थापित की। वह उस देवी को शास्ता के पास ले गया। शास्ता ने उसे धर्मोपदेश दिया। वह धर्मोपदेश सुन स्रोतापन्न हुई। तब से सेठ का धन पूर्ववत हो गया।

एक श्रावस्ती-वासी श्रीलक्षण ब्राह्मण ने सोचा कि अनाथ-पिण्डिक दरिद्र होकर फिर ईश्वर हो गया। मैं उसे देखने जाने वाले की तरह जा उसके घर से श्री चुरा लाऊँ। वह उसके घर पहुँचा। अनाथ-पिण्डिक द्वारा सत्कृत हो, कुशल-क्षेम की बात होने पर जब उससे पूछा गया कि किस लिये आये हो, तो वह ढूँढने लगा कि श्री कहाँ प्रतिष्ठित है? सेठ का एक धुले शङ्ख जैसा सूर्यश्वेत मुर्गा सोने के पिंजरे में बन्द था। उसकी कलगी में श्री प्रतिष्ठित थी। ब्राह्मण ने यह देखा कि श्री मुर्गे की कलगी में प्रतिष्ठित है। बोला—महासेठ! मैं पाँच सौ विद्यार्थियों को मन्त्र पढ़ाता हूँ। एक मुर्गे के कारण जो समय असमय बोलता है, वे और मैं कष्ट पाते हैं। यह मुर्गा समय से बोलने वाला है। मैं इसके लिये आया हूँ। मुझे यह मुर्गा दे दे।

"ब्राह्मण मुर्गा ले ले। मैं तुझे मुर्गा देता हूँ।"

'देता हूँ' कहते ही उसकी कलगी से निकल कर श्री तकिये में रखी मणि में जा प्रतिष्ठित हुई। ब्राह्मण ने यह जान कि श्री मणि में प्रतिष्ठित हो गई, उसे भी माँगा। 'मणि भी देता हूँ' कहते ही श्री मणि से निकल तकिये पर रखी छड़ी में जा प्रतिष्ठित हुई। ब्राह्मण ने यह जान कि श्री वहाँ प्रतिष्ठित है, उसे भी माँगा। 'मंगवाकर (ले)जा' कहते ही श्री सेठ की पटरानी पुण्य-लक्षण-देवी के सिर में प्रतिष्ठित हो गई। श्री-चोर ब्राह्मण ने जब देखा कि श्री वहाँ प्रतिष्ठित हो गई, तब यह सोच कर कि 'यह वस्तु तो दी नहीं जा सकती है, इसलिये माँगी नहीं जा सकती' कहा—महा सेठ! मैं तुम्हारे घर श्री चुराने के लिये आया था। श्री तुम्हारे मुर्गे की कलगी में प्रतिष्ठित थी। जब वह मुझे दे दिया गया, तो मणि में प्रतिष्ठित हुई। जब मणि दे दी गई, तो छड़ी में प्रतिष्ठित हुई। जब छड़ी दे दी गई, तो पुण्य-लक्षणा देवी के सिर में प्रतिष्ठित हुई। यह दी जा सकने वाली चीज़ नहीं, इसका नाम भी नहीं लिया। मैं तुम्हारी श्री नहीं चुरा सकता। तुम्हारी श्री तुम्हारी ही रहे।

वह आसन से उठ कर चला गया।

अनाथ-पिण्डिक ने यह बात शास्ता को सुनाने की इच्छा से विहार जा, शास्ता की पूजा तथा वन्दना कर, एक ओर बैठ सारी बात तथागत से निवेदन की। शास्ता ने यह बात सुन 'गृहपति ! दूसरों की श्री दूसरी जगह नहीं जाती। हाँ पूर्व-समय में अल्प-पुण्यों की श्री पुण्यवानों के चरणों में जा पहुँची' कह उसके पूछने पर पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी राष्ट्र में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में शिल्प सीख गृहस्थी की। माता पिता के मरने पर वैराग्य हुआ तो घर छोड़ हिमालय प्रदेश में जा, ऋषि-प्रव्रज्या ग्रहण कर समापत्तियाँ प्राप्त कीं। फिर बहुत समय बीतने पर नमक-खटाई खाने के लिए जन-पद लौट वाराणसी-नरेश के उद्यान में रहने लगे। अगले दिन भिक्षाटन करते हुए हाथी-आचार्य्य के घर भिक्षा के लिये पहुँचे। वह उसकी चर्य्या तथा व्यवहार से प्रसन्न हुआ और भिक्षा दे, उद्यान में बसा, नित्य सेवा करने लगा।

उस समय एक लकड़हारा जंगल से लकड़ियाँ ला समय से नगर में प्रविष्ट न हो सका। शाम को एक देव-कुल में लकड़ियों की ढेरी का तकिया बना लेट रहा। देवकुल में रहने वाले बहुत से मुर्गे उससे थोड़ी ही दूर पर एक वृक्ष पर सो रहे थे। उनमें से ऊपर सोये मुर्गे ने प्रातःकाल बीठ गिराते समय नीचे सोये हुए मुर्गे के शरीर पर गिरा दी। "मेरे शरीर पर किसने बीठ गिराई?" पूछने पर उत्तर दिया—

"मैंने गिराई।"

"क्यों गिराई?"

"असावधानी से।"

किन्तु, फिर भी उसने बीठ गिराई। तब दोनों में झगड़ा हो गया— "तुझमें कौन सा बल है? और 'तुझ में कौनसा बल है?"

नीचे सोए मुर्गे ने कहा—मुझे मार कर अङ्गार पर पका कर मेरा मांस खाने वाला प्रातः काल ही एक हजार कार्षापण पाता है। ऊपर सोया हुआ मुर्गा बोला—तू इतने से ही मत गर्ज। स्थूल मांस को खाने वाला

राजा होता है। बाहरी मांस खाने वाला सेनापति होता है और यदि स्त्री हो तो पटरानी होती है। और मेरे अस्थि-मांस को खाने वाला यदि गृहस्थ हो तो खजानची बनता है, यदि प्रव्रजित हो राज-कुल विश्वस्त होता है।

लकड़हारे ने उनकी बात सुन सोचा—राज्य मिलने पर हजार की क्या आवश्यकता? उसने धीरे से चढ़, ऊपर सोये मुर्गे को पकड़, मार कर अपने पल्ले में बांधा। फिर 'राजा बनूंगा' सोच, जा, खुले-द्वार से नगर में प्रवृष्ट हो, मुर्गे की चमड़ी उतार, पेट साफ कर अपनी भार्य्या को दिया—इस मुर्गे के मांस को अच्छी तरह पका। उसने मुर्गे का मांस और भात तैयार कर सामने ला कर रखा—

"स्वामी! खायें।"

"भद्रे! यह मांस बड़े प्रभाव वाला है। इसे खाकर मैं राजा बनूंगा और तू पटरानी बनेगी। इस भात और मांस को लेकर गङ्गा किनारे जा नहाकर खायेंगे।"

वे भात का बरतन किनारे पर रख नहाने के लिए उतरे। उस समय हवा से क्षुब्ध हुआ पानी आकर भात का बरतन बहा ले गया। नदी की धार में बहते उस बरतन को हाथियों को नहलाने वाले एक बड़े हाथी-आचार्य्य ने देखा। उसने उठवाकर, उघड़वाकर पूछा—इसमें क्या है?

"स्वामी! भात है और मुर्गे का मांस है।"

उसने उसे बंद करवा, उस पर मोहर लगवा अपनी भार्य्या के पास भेज दिया—जब तक हम न आयें तब तक इस भात को न बाँटे। वह लकड़हारा भी मुंह में बालू और पानी भर जाने से, पेट फूल जाने के कारण भाग गया।

उस हाथी-आचार्य्य का एक कुल-विश्वस्त तपस्वी था दिव्य-चक्षु धारी। वह सोचने लगा कि मेरा सेवक हाथी के स्थान को नहीं छोड़ रहा है। उसे सम्पत्ति कब मिलेगी? उसने दिव्य-चक्षु से इसका विचार करते हुए उस आदमी को देखा और बात समझ कर पहले ही जाकर हाथी-आचार्य्य के घर बैठ रहा। हाथी-आचार्य्य ने आकर प्रणाम किया और एक ओर बैठ कर कहा—तपस्वी को मांस और भात परोसो। तपस्वी ने भात ले, मांस दिये जाने पर, न ले कर कहा—इस मांस को मैं बाँटूँगा। 'भन्ते! बाँटे।' कहने पर स्थूल

माँस आदि हिस्से करके स्थूल-मांस आचार्य्य को दिलवाया। बाहर का माँस उसकी भार्य्या को और अस्थि-माँस स्वयं खाया। जाते समय वह कह गया —आज से तीसरे दिन तू राजा होगा। अप्रमादी होकर रह। तीसरे दिन एक सामन्त राजा ने आकर वाराणसी को घेर लिया। वाराणसी नरेश ने हाथी-आचार्य्य को राजकीय भेष-भूषा पहना, हाथी पर चढ़ा आज्ञा दी—तू युद्ध कर। स्वयं छिपे भेष में सेना-संचालन करते समय एक तेज तीर से बींधा जाकर उसी समय मर गया।

उसे मरा जान हाथी-आचार्य्य ने बहुत से कार्षापण मंगवा मुनादी कराई—जिन्हें धन की चाह हो वह आगे बढ़ कर लड़ें। सेना ने मुहूर्त भर में ही विरोधी राजा को मार डाला। अमात्यों ने राजा की शरीर-क्रिया कर सोचा—किसे राजा बनायें? उन्होंने निर्णय किया—राजा ने अपने जीवन-काल में अपना भेष हाथी-आचार्य्य को दिया और फिर इसी ने युद्ध करके राज जीता। इसे ही राजा बनायें। उसे ही राज्याभिषिक्त किया। उसकी भार्य्या को पटरानी बनाया। बोधिसत्व राजकुल-विश्वस्त हुए। शास्ता ने यह धर्मोपदेश ला अभिसम्बुद्ध होने पर ये दो गाथाएँ कहीं:—

यं उस्सुका सङ्करन्ति अलक्खिका बहुँ धनं,
सिप्पवन्तो असिप्पा च लक्खिवा तानि भुञ्जति।
सब्बथ कतपुञ्ञस्स अतिच्चञ्ञेव पाणिनो,
उप्पज्जन्ति बहू भोगा अप्पनायतनेसुपि॥

[अभागे लोग जिस धन के संग्रह के लिये बहुत उत्सुक होते हैं, उसे शिल्पी हों चाहे अशिल्पी हों, भाग्यवान् ही उपभोग में लाते हैं। सर्वत्र दूसरे प्राणियों को छोड़कर पुण्य-वान् प्राणी को ही भोग प्राप्त होते हैं, जहां से भोग नहीं प्राप्त होते वहां से भी।]

शास्ता ने ये गाथायें कह 'हे गृहपति! इन प्राणियों के लिए पुण्य के समान दूसरा आयतन नहीं है। पुण्यवान के लिए जो खानें नहीं हैं, उनमें से भी रत्न पैदा होते हैं' कहा। फिर ये धर्मदेशना की—

एस देवमनुस्सानं सब्बकामददो निधी,
यं यदेवाभिपत्थेन्ति सब्बमेतेनलब्भति॥१॥

सुवरणता सुस्सरता सुसण्ठान सुरूपता,
आधिपच्चपरिवारा सब्बमेतेन लब्भति ॥२॥
पदेसरज्जं इस्सरियं चक्कवत्तिसुखम्पि यं,
देवरज्जम्पि दिब्बेसु सब्बमेतेन लब्भति ॥३॥
मानुस्सिका च सम्पत्ति देवलोके च या रति,
या च निब्बाणसम्पत्ति सब्बमेतेन लब्भति ॥४॥
मित्तसम्पदमागम्म योनिसो वे पयुञ्जतो,
विज्जा विमुत्तिवसीभावो सब्बमेतेन लब्भति ॥५॥
पटिसम्भिदा विमोक्खो च या च सावकपारमी,
पच्चेकबोधि बुद्धभूमि सब्बमेतेन लब्भति ॥६॥
एवं महिद्धिया एसा यदिदं पुञ्ञसम्पदा,
तस्मा धीरा पसंसन्ति पण्डिता कतपुञ्ञतं ।[1]

[यह (पुण्य) सब देवताओं तथा मनुष्यों की सभी कामनायें पूरी करने वाला खजाना है। इससे जिस जिस की इच्छा करते हैं, वह सभी मिलता है ॥१॥ सुवर्ण, सुस्वर, सुन्दर आकार, सुन्दर रूप, आधिपत्य और परिवार इससे सभी कुछ मिलता है ॥२॥ प्रदेश-राज्य, ऐश्वर्य्य, चक्रवर्ती सुख और दिव्य-लोकों में देवराज्य भी—इससे सभी कुछ मिलता है ॥३॥ मानुषिक सम्पत्ति, दिव्य-लोक का आनन्द और निर्वाण सम्पत्ति—इससे सभी कुछ मिलता है ॥४॥ मित्र-सम्पत्ति को प्राप्त कर उसका ठीक उपयोग करने वाले को विद्या, विमुक्ति, वशीभाव इससे सभी कुछ मिलता है ॥५। पटिसम्भिदा-ज्ञान, विमोक्ष और जो श्रावक-पारमिता है, प्रत्येक-बोधि और बुद्ध भूमि भी—इससे सभी कुछ मिलता है ॥६॥ यह जो पुण्य-सम्पत्ति है, यह ऐसी ही महान् प्रभाव वाली है। इसीलिए धीर पण्डित जन पुण्य-कर्तृत्व की प्रशंसा करते हैं ॥७॥]

अब जिन जिन रत्नों में अनाथ-पिण्डिक की श्री प्रतिष्ठित हुई। उन सब को कहने के लिये यह 'कुक्कट' गाथा कही :—

---

[1] खुद्दक पाठ, निधिकण्ड सुत्त ।

कुक्कुटमणयो दण्डो थियो च पुञ्ञलक्खणो,
उप्पज्जन्ति अपापस्स कतपुञ्ञस्स जन्तुनो ॥

[पाप-रहित, पुण्यवान् प्राणी को मुर्गा, मणि, छड़ी तथा स्त्री 'रत्न' पैदा होते हैं ।]

गाथा कह कर जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द स्थविर था। कुल-विश्वासी तपस्वी तो सम्यक् सम्बुद्ध थे।

२८५. मणिसूकर जातक

"दरिया सत्तवस्सानि..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय सुन्दरी की हत्या के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

'उस समय भगवान् का सत्कार होता था, गौरव होता था' कथा खन्धक में आई ही है। यहाँ संक्षिप्त कथा दी गई है। भगवान् तथा भिक्षुसंघ का जब पाँचों नदियों में आई बाढ़ की तरह लाभ-सत्कार होने लगा, तो दूसरे तैर्थिकों ने, जिनका लाभ सत्कार जाता रहा—सूर्य्योदय के समय जुगुनु की तरह निष्प्रभ हो, इकट्ठे हो सलाह की—जब से श्रमण गौतम हुआ है, तब से हमारा लाभ सत्कार जाता रहा। कोई यह भी नहीं जानता कि हम भी हैं। किसके साथ शामिल होकर हम श्रमणगौतम को निन्दित बना उसका लाभ-सत्कार नष्ट करें ? उन्हें सूझा कि सुन्दरी के साथ मिलकर ऐसा कर सकेंगे।

एक दिन जब सुन्दरी तैर्थिकों के आराम में प्रवेश कर, प्रणाम कर खड़ी हुई तो उससे कोई नहीं बोला। उसके बार बार बोलने पर भी जब कोई नहीं बोला तो उसने पूछा—क्या आर्यों को किसी ने कष्ट दिया ?

"बहन ! क्या नहीं देखती है कि श्रमण गौतम हमें कष्ट दे, हमारे लाभ-सत्कार को नष्ट कर घूमता है ?"

"मैं उस विषय में क्या कर सकती हूँ ?"

"बहन तू रूपवान है, अति सुन्दर है। श्रमण गौतम को अपयश दे, जनता को अपनी बात का विश्वास करा, उसका लाभ-सत्कार नष्ट कर।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और चली गई। उस दिन से शाम को जब जनता शास्ता का धर्मोपदेश सुनकर नगर को लौटती, तो वह माला-गन्ध, विलेपन, कपूर, कटुकप्फल आदि सुगन्धियाँ ले जेतवन की ओर जाती।

"कहाँ जाती है ?"

"श्रमण गौतम के पास। मैं उसके साथ एक गन्धकुटी में रहती हूँ" कह किसी एक तैर्थिकों के आराम (विहार) में रात बिता प्रातःकाल ही जेतवन के रास्ते से उतर सड़क की ओर जाती। "क्यों सुन्दरी कहाँ गई थी ?" पूछने पर उत्तर देती—

"श्रमण गौतम के साथ एक साथ गन्धकुटी में रह कर उससे रति-क्रीड़ा करके आई हूँ।"

इसके कुछ दिन बाद तैर्थिकों ने धूर्तों को कार्षापण देकर कहा—"जाओ सुन्दरी को मार कर, श्रमण गौतम की कुटी के समीप कूड़े की ढेरी में छिपा आओ।" उन्होंने वैसा ही किया। तब तैर्थिकों ने हल्ला मचाया—सुन्दरी नहीं दिखाई देती। राजा को खबर दी। पूछा कहीं सन्देह है ? कहा—इन दिनों जेतवन जाती थी। वहाँ क्या हुआ, नहीं जानते ?

राजा ने आज्ञा दी—तो जाओ उसे खोजो। तैर्थिक अपने सेवक ले, जेतवन पहुँचे और खोजते हुये कूड़े के ढेर में देख उसे चारपाई पर लिटा नगर में ला राजा से कहा—श्रमण गौतम के शिष्यों ने (अपने) शास्ता के पापकर्म को छिपाने के लिये सुन्दरी को मारकर मालाओं के कूड़े के ढेर में छिपा दिया।

"तो जाओ, नगर में घूमो।"

वे 'श्रमणों की करतूत देखो' आदि कहते हुए नगर की गलियों में घूम-फिर राज-द्वार पर पहुँचे। राजा ने सुन्दरी के शरीर को कच्चे श्मशान में एक मचान बनवाकर उस पर रखवा दिया। आर्य-श्रावकों को छोड़ शेष

श्रावस्ती-वासी नगर में, नगर के बाहर, उपवन में, आरण्य में—सभी जगह भिक्षुओं की निन्दा करते घूमते थे—शाक्य-पुत्र श्रमणों की करतूत देखो। भिक्षुओं ने तथागत से यह बात कही।

शास्ता ने कहा—उन मनुष्यों का इस प्रकार प्रतिवाद करो:—

अभूतवादी निरयं उपेति
यो वापि कत्वा न करोमीति चाह,
उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति
निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥

[असत्य-वादी नरक में जाता है, जो करके 'नहीं किया' कहता है, वह भी नरक में जाता है। दोनों ही प्रकार के नीच-कर्म करने वाले मरकर बराबर हो जाते हैं।]

राजा ने आदमियों को नियुक्त किया कि पता लगायें कि किन दूसरों ने सुन्दरी को मारा है? वह धूर्त उन कार्षापणों की शराब पी, एक दूसरे के साथ झगड़ा करते थे। उन में से एक बोला—तू ने सुन्दरी को एक ही प्रहार से मार दिया, उसकी लाश को मालाओं के कूड़े के ढेर में छिपा दिया। अब उसी से मिले कार्षापणों की शराब पीता है, अच्छा अच्छा। राजपुरुष उन धूर्तों को पकड़ कर राजा के पास ले गये। राजा ने पूछा—तुम ने मारा?

"हाँ देव!"

"किसने मरवाया?"

"दूसरे तैर्थिकों ने देव!"

राजा ने तैर्थिको को बुलवाकर आज्ञा दी—जाओ, तुम सुन्दरी को उठवाकर उसके साथ नगर में यह कहते हुए घूमो कि श्रमण गौतम को बदनाम करने के लिये हमने इस सुन्दरी को मरवाया। इस में न गौतम का दोष है, न गौतम-श्रावकों का दोष है। उन्होंने वैसा किया। मूर्ख जनता तब श्रद्धावान् हुई। तैर्थिकों ने भी मनुष्य-बध का दण्ड भोगा। तब से बुद्धों का सत्कार बढ़ गया।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात-चीत चलाई—आयुष्मानो! तैर्थिक बुद्धों को कलङ्कित करना चाहते थे, स्वयं कलङ्कित हो गये। बुद्धों का

तो लाभ-सत्कार बढ़ गया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बात चीत कर रहे हो?

"अमुक बात चीत"

"भिक्षुओ, बुद्धों को कोई कालिख नहीं लगा सकता। बुद्धों को कालिख लगा सकना वैसा ही है जैसे मणि को कालिख लगा सकना। 'पूर्व समय में मणि को कालिख लगाने का प्रयत्न करने वाले कालिख नहीं लगा सके' कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक गाँव में ब्राह्मण कुल में पैदा हो, बड़े होने पर काम-भोगों में दोष देख, निकलकर, हिमालय प्रदेश की तीन पर्वत मालायें पार कर, तपस्वी बन, पर्ण-शाला में रहने लगे। उसके थोड़ी ही दूर पर मणि-गुफा थी। वहाँ तीस सूअर रहते थे। गुफा के पास एक सिंह घूमता था। मार्ग में उसकी प्रति-छाया पड़ती थी। सिंह की छाया देख, डरके मारे सूअरों का खून और माँस सूख गया। उन्होंने सोचा—इस मणि के चमकदार होने से ही यह प्रति-छाया दिखाई देती है। इस मणि को मैला, भद्दा बना दें। वे समीप के एक तालाब में गये और वहाँ कीचड़ में लेट आकर मणि से बदन रगड़ने लगे। सूअरों के बालों की रगड़ खाने से मणि और भी चमकने लगी। सूअरों को जब मणि को मैला करने का कोई उपाय नहीं सूझा, तो उन्होंने सोचा कि मणि को मैला करने का उपाय तपस्वी से पूछें। बोधिसत्व के पास आ, प्रणाम कर, एक ओर खड़े हो उन्होंने पहली दो गाथायें कहीं:—

दरिया सत्तवस्सानि तिंसमत्ता वसामसे,

हञ्छेम मणिनो आभं इति नो मन्तितं अहु।

याव याव निघंसाम भीयो वोदायते मणि,

इदञ्चदानि पुच्छाम किं किच्चं इध मञ्ञसि॥

[हम तीस जने सात वर्ष से मणि-गुफा में रहते हैं। हमने निश्चय किया है कि मणि की आभा नष्ट कर दें। ज्यों ज्यों रगड़ते हैं, त्यों त्यों मणि अधिक अधिक चमकती जाती है। अब हम यह पूछते हैं कि क्या करना चाहिए?]

उन्हें उत्तर देते हुए बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही:—

अयं मणि वेळुरियो अकाचो विमलो सुभो,
नास्स सक्का सिरिं हन्तुं अपक्कमथ सूकर ॥

[यह मणि बिल्लौर है, चिकनी है, विमल है, शुभ है। तुम इसकी चमक को नष्ट नहीं कर सकते। हे सूअरो! (यहाँ से) चले जाओ।]

उन्होंने बोधिसत्व की बात सुन वैसा किया। बोधिसत्व ध्यान कर ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय तपस्वी मैं ही था।

२८६. सालुक जातक

"मा सालुकस्स पिहयि..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक प्रौढ़ कुमारी के प्रति आसक्ति के बारे में कही।

कथा चुल्लनारदकस्सप[1] जातक में आएगी।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच उत्तेजित है?"

"भन्ते! हाँ।"

"तुझे किसने उत्तेजित किया है?"

"भन्ते! प्रौढ़ कुमारी ने।"

---

[1] चुल्लनारद जातक (४७७); देखो मुनिक जातक (१.२.१०)

'भिक्षु ! यह तेरी अनर्थ-कारिणी है। पूर्व-जन्म में भी तू इसके विवाह के लिये आई परिषद का जल-पान बना' कह भिक्षुओं के प्रार्थना करने पर पूर्वजन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व महालोहित नाम का बैल हुआ। उसके छोटे भाई का नाम था चुल्ललोहित। दोनों गामड़े के एक परिवार में काम करते थे। उस परिवार में एक आयु-प्राप्त कुमारी थी। उसकी दूसरे परिवार में शादी पक्की कर दी गई।

उस कुल में सालुक नाम का एक सूअर यवागु-भात खिला खिला कर पोसा जाता था कि विवाह के समय जल-पान का काम देगा। वह चारपाई के नीचे सोता था। एक दिन चुल्ललोहित ने भाई को कहा:—

"भाई ! हम इस कुल में काम करते हैं। हमारे ही सहारे यह कुल जीता है। लेकिन यह मनुष्य हमें केवल तृण-पुआल भर देते हैं। इस सूअर को यवागु-भात खिला खिला कर पालते हैं। चारपाई के नीचे सुलाते हैं। यह इनका क्या (काम) करेगा?"

महालोहित ने कहा—तात ! तू इसके यवागु-भात की इच्छा मत कर। इस कुमारी के विवाह के दिन, इसका जल-पान बनाने के लिये इसे पोस रहे हैं कि इसका मांस मोटा जाय। थोड़े ही दिन बाद देखना—चारपाई के नीचे से निकाल, मारकर, टुकड़े टुकड़े करके आगन्तुकों का भोजन बनायेंगे। यह कह उसने पहली दो गाथाएँ कहीं:—

मा सालुकस्स पिहयि आतुरन्नानि भुञ्जति,
अप्पोसुक्को भुसं खाद एतं दीघायुलक्खणं ॥
इदानि सो इधागन्त्वा अतिथि युत्तसेवको,
अथ दक्खसि सालूकं सयन्तं मुसलुत्तरं ॥

[सालुक (सूअर के भोजन) की इर्षा (= इच्छा) मतकर। वह मरणान्त भोजन खाता है। (तू) उत्सुक्ता-रहित होकर भूसे को खा। यह दीर्घायु का लक्षण है।

[अब वह (= विवाह करने वाला) यहाँ आकर अतिथि होगा। तब तू मूसल की तरह होंठ वाले सूअर को सोता (मरा हुआ) देखेगा।]

उसके कुछ दिन बाद बारात के आने पर सालुक को मारकर जल-पान किया गया। दोनों बैलों ने उसका यह हाल देख सोचा—हमारा भूसा ही अच्छा है।

शास्ता ने अभिसम्बुद्ध होने पर इस अर्थ को प्रकट करने वाली तीसरी गाथा कही:—

विकतं सूकरं दिस्वा सयन्तं मुसलुत्तरं,
जरग्गवा विचिन्तेसुं वरम्हाकं भुसामिव ॥

[मूसल जैसे होंठ वाले सूअर को काटा जाकर मरा हुआ देख, बैलों ने सोचा—हमारा भूसा ही अच्छा है।]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्य के अन्त में वह भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय की प्रौढ़ कुमारी इस समय की प्रौढ़ कुमारी। सालुक उत्तेजित भिक्षु था। चुल्ललोहित आनन्द और महालोहित तो मैं ही था।

२८७. लाभगरह जातक

"नानुमत्तो..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय सारिपुत्र स्थविर के शिष्य के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

स्थविर के शिष्य ने पास आकर, प्रणाम कर, एक ओर बैठ पूछा—भन्ते! मुझे लाभ का मार्ग बतायें। क्या करने से चीवर आदि की प्राप्ति होती है? स्थविर ने उत्तर दिया—आयुष्मान्! चार बातों से युक्त होने से लाभ-सत्कार की प्राप्ति होती है। लाज-शर्म छोड़, श्रमणत्वका ख्याल न

कर, थोड़ा पागल की तरह होना चाहिए, नट की तरह होना चाहिए, असंयत-भाषी तथा सयंमरहित होना चाहिए। वह उस मार्ग की निन्दा करता हुआ आसन से उठकर चला गया। स्थविर ने शास्ता के पास पहुँच यह समाचार कहा। "सारिपुत्र ! इस भिक्षु ने केवल अभी लाभ की निन्दा नहीं की, पहले भी की है" कह, स्थविर के याचना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर सोलह वर्ष की आयु में तीनों वेदों तथा अठारह शिल्पों की शिक्षा समाप्त कर चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य हुए। वह पाँच सौ ब्रह्मचारियों को शिल्प सिखाते थे। एक सदाचारी ब्रह्मचारी ने एक दिन आचार्य के पास जाकर पूछा—प्राणियों को (वस्तुओं की) प्राप्ति कैसे होती है ?

"तात ! प्राणियों को चार बातें होने से (वस्तुओं की) प्राप्ति होती है" कह पहली गाथा कही:—

> **नानुमत्तो नापिसुणो नानटो नाकुतूहलो,**
> **मूळ्हेसु लभते लाभं एसा ते अनुसासनी ॥**

[जो उन्मत्त (की तरह) नहीं है, जो चुगली नहीं खाता है, जो नाट्य करनेवालों की तरह नहीं है तथा जो असंयत नहीं है, वह मूर्ख आदमियों से लाभ नहीं प्राप्त करता—यही तेरे लिए शिक्षा है।]

शिष्य ने आचार्य का कहना सुन 'प्राप्ति' की निन्दा करते हुए ये दो गाथाएँ कहीं:—

> **धिरत्थु तं यसलाभं धनलाभञ्च ब्राह्मण,**
> **या वुत्ति विनिपातेन अधम्मचरियाय वा ॥**
> **अपि चे पत्तमादाय अनागारो परिब्बजे,**
> **एसाव जीविका सेय्या या चाधम्मेन एसना ॥**

[हे ब्राह्मण, उस यश-लाभ तथा धन-लाभ को धिक्कार है, जो जीविका आत्म-पतन से तथा अधर्मचर्य्या से प्राप्त होती है। अधर्म से जीविका

खोजने की अपेक्षा यही अच्छा है कि भिक्षा-पात्र लेकर अनागारिक बन प्रव्रजित हो भिक्षा माँगे ।]

इस प्रकार वह ब्रह्मचारी प्रव्रज्या का गुणानुवाद कर, (घर से) निकल, ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, धर्म से भिक्षाटन करता हुआ, समापत्तियाँ प्राप्त कर, ब्रह्मलोकगामी हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया ।

उस समय ब्रह्मचारी लाभ-निन्दक भिक्षु था । आचार्य्य तो मैं ही था ।

२८८. मच्छुद्दान जातक

"अग्घन्ति मच्छा..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक कुटिल व्यापारी के बारे में कही । (वर्तमान) कथा पहले आ ही चुकी है ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने एक कुटुम्बी के कुल में पैदा हो, बड़े होने पर कुटुम्ब की स्थापना की । उसका एक छोटा भाई भी था । आगे चलकर उनका पिता मर गया । एक दिन वे दोनों पिता का कर्जा उगाहने गये । एक गाँव में पहुँच, वहाँ से एक हजार कार्षापण पा लौटते समय नदी-तीर्थ पर नाव की प्रतीक्षा करते हुए उन्होंने एक पोटली का भात खाया । बोधिसत्व ने बचा हुआ भात गङ्गा में मछलियों को दे, नदी-देवता को (पुण्य का) हिस्सा दिया । देवता ने पुण्यानुमोदन किया । उसी से उसके पक्ष में वृद्धि हुई । उस वृद्धि के कारण का ध्यान करके उसने उसे जाना । बोधिसत्व ने भी बालू पर अपना उत्तरीय फैलाया और लेट कर सो रहा ।

इसका छोटा भाई कुछ चोर-प्रकृति का था । उसने वे कार्षापण बोधिसत्व को न दे, स्वयं ही लेने की इच्छा से, उन कार्षापणों की पोटली

जैसी ही एक और पोटली बना, उसे कंकरों से भर, दोनों पोटलियों को एक साथ रखा। जब वे नाव पर चढ़कर गङ्गा के बीच में गये तो छोटे भाई ने नौका में उलझ कर अपनी समझ में कंकरों की पोटली पानी में फेंकते हुए (वास्तव में) कार्षापणों की पोटली पानी में फेंक दी और भाई से कहा—कर्षापणों की पोटली पानी में गिर पड़ी, अब क्या करें?

"जब पानी में गिर पड़ी तो अब क्या कर सकते हैं, चिन्ता मत करो।"

नदी-देवता ने सोचा—मैंने इसके दिये पुण्य के हिस्से का अनुमोदन कर यश-वृद्धि प्राप्त की। इसकी चीज की रक्षा करूँगा। उसने अपने प्रताप से वह पोटली एक बड़ी मछली को निगलवा दी, और स्वयं हिफाजत करने लगा।

उस चोर ने भी घर पहुँच 'मैंने भाई को ठगा है' सोचते हुए पोटली को खोला। उसमें कंकर देख उसका हृदय सूखने लगा। वह चारपाई की दौन में छिपकर पड़ रहा। उस समय मछुओं ने मछली पकड़ने के लिये जाल फेंके। देवता के प्रताप से वह मछली जाल में आ फँसी। मछुए उसे बेचने नगर में आए। बड़ी मछली देख मनुष्य मूल्य पूछते थे। मछुवे कहते—एक हजार कार्षापण और सात मासक देकर ले लें। मनुष्य हँसी उड़ाते—हज़ार की कीमत की मछली भी हमने देख ली!

मछुए मछली लेकर बोधिसत्व के घर के दरवाजे पर पहुँचे और बोले—"यह मछली ले लो।"

"इसकी कीमत क्या है?"

"सात मासक देकर ले लो।"

"दूसरों को कितने में दोगे?"

"औरों को एक हजार कार्षापण तथा सात मासक में देंगे। आप (केवल) सात मासक देकर ले लें।"

उसने उन्हें सात मासक दे, मछली भार्य्या के पास भेजी। भार्य्या ने मछली का पेट फाड़ते समय हजार की पोटली देखी तो बोधिसत्व को कहा। बोधिसत्व ने उसे देख, अपने चिह्न से पहचान लिया कि पोटली उसकी है। "इसीलिये," उसने सोचा, "यह मछुवे दूसरों को हजार कार्षापण और सात मासक लेकर मछली देते, लेकिन हमारे पास पहुँच कर, हजार कार्षापण हमारे ही होने के कारण, वह हमें सात ही मासक लेकर दे गये।" इस भेद

को भी जो न समझे उसे श्रद्धावान् नहीं बनाया जा सकता। यह सोच पहली गाथा कही :—

अग्घन्ति मच्छा अधिकं सहस्सं,
न सो अत्थि यो इमं सद्दहेय्य।
मय्हञ्च अस्सु इध सत्तमासा,
अहम्पि तं मच्छुद्दानं किणेय्यं॥

[एक हजार कार्षापण अधिक (सात मासक) मछली का मूल्य है, इस पर विश्वास करने वाला कौन है? लेकिन मेरे लिये उसका मूल्य सात मासक कहा गया। मैंने भी उस मछली (समूह) को खरीद लिया।]

यह कह कर सोचने लगा—ये कार्षापण मुझे क्यों मिले? उस समय नदी-देवता ने आकाश में दिखाई देते हुए खड़े हो कहा :—

"मैं गङ्गा-देवता हूँ। तूने बचा हुआ भात मछलियां को दे मुझे (पुण्य में) हिस्सा दिया। उसी से मैंने तुम्हारी सम्पत्ति की रक्षा की।" यह गाथा भी कही :—

मच्छानं भोजनं दत्वा मम दक्खिणमादिसि,
तं दक्खिणं सरन्तिया कतं अपचितिं तया॥

[मछलियों को भोजन दे मुझे दक्षिणा (पुण्य में हिस्सा) दी। उसी दक्षिणा को, उसी तेरे द्वारा किये उपकार को याद करते हुए, मैंने तेरी सम्पत्ति की रक्षा की।]

यह कह उस देवता ने, उसके छोटे भाई ने जो कुटिल कर्म किया था सब बताया और कहा :—"यह अब हृदय सुखा रहा है और पड़ा है। दुष्ट-चित्त की उन्नति नहीं होती। मैंने तुम्हारी चीज़ नष्ट न हो इसलिये तुम्हारा धन लाकर दिया। यह अपने चोर छोटे भाई को न दे केवल तुम ही रखना।"

इतना कह तीसरी गाथा कही :—

पदुट्ठचित्तस्स न फाति होति
न चापि नं देवता पूजयन्ति,
यो भातरं पेत्तिकं सापतेय्यं
अवञ्चयि दुक्कतकम्मकारि॥

[जो दुष्कर्म करने वाला अपने भाई की पैतृक-सम्पत्ति को ठगता है, उस दुष्ट-चित्त की न उन्नति होती है, न ही देवता उसकी पूजा करते हैं ।]

देवता ने मित्रद्रोही चोर को कार्षापण न दिलाने के लिए ऐसा कहा । लेकिन बोधिसत्व ऐसा नहीं कर सकते । उन्होंने उसे भी पाँच सौ कार्षापण भेज दिये ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया । सत्यों के अन्त में व्यापारी स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय का कुटिल व्यापारी अब कुटिल व्यापारी । ज्येष्ठ भाई तो मैं ही था ।

२८९. नानच्छन्द जातक

"नानच्छन्दा महाराज..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय आयुष्मान आनन्द की आठ वरों की प्राप्ति के बारे में कही । (वर्तमान-) कथा ग्यारहवें परिच्छेद की जुण्ह-जातक[1] में आएगी ।

ख. वर्तमान कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हो, बड़े होने पर तक्षशिला में शिल्प सीख पिता के मरने पर राज्यारूढ़ हुए । उसके यहाँ पिता के समय का एक पुरोहित था, जिसे पदच्युत कर दिया गया था । वह दरिद्र अवस्था में एक पुराने घर में रहता था । एक दिन बोधिसत्व अपरिचित्त भेष में रात को नगर में घूमते थे । चोरी करके लौटते हुए चोरों ने एक सुरा की दुकान पर सुरा पी और

---

[1] जुण्ह जातक (४५६)

घड़े में भरकर घर ले चले। उन्होंने उसे देख लिया और पूछा—कौन है? फिर पीटा और चादर छीन ली तथा घड़ा उठवा कष्ट देते हुए चले।

उस ब्राह्मण ने भी उस समय बाहर निकल, गली में खड़े हो नक्षत्र देखकर जाना कि राजा शत्रुओं के हाथ में पड़ गया। उसने ब्राह्मणी को बुलाया। वह शीघ्रता से उसके पास आई—आर्य! क्या है? वह बोला—भगवति। हमारा राजा शत्रुओं के हाथ में जा पड़ा है।

"आर्य्य! तुम्हें राजा के समाचार से क्या? (उसके)ब्राह्मण जानेंगे।"

राजा ने ब्राह्मण की बात सुन, थोड़ा आगे बढ़, चोरों से प्रार्थना की—स्वामी! मैं दुखिया हूँ। मेरी चादर लेकर मुझे छोड़ दें।

बार बार कहने पर उन्हों ने दया करके छोड़ दिया। वह उनका निवास-स्थान समझ रुका। ब्राह्मण ने कहा—भगवति! हमारा राजा शत्रु के हाथ से मुक्त हो गया।

राजा ने यह बात भी सुनी और प्रासाद पर चढ़ गया। रात बीत कर प्रभात होने पर उसने ब्राह्मणों को बुलाकर पूछा—आचार्यो! क्या रात को नक्षत्र देखे?

"देव! हाँ।"

"नक्षत्र शुभ हैं वा अशुभ?"

"देव! शुभ हैं।"

"कोई ग्रह है?"

"कोई ग्रह नहीं है।"

'अमुक घर से ब्राह्मण को बुला लाओ' आज्ञा दे राजा ने पूर्व पुरोहित को बुलाकर पूछा—

"आचार्य्य! क्या आप ने नक्षत्र देखा?"

"देव! हाँ देखा।"

"कोई ग्रह है?"

"हाँ महाराज! आज रात आप शत्रु के हाथ में पड़कर थोड़ी ही देर में मुक्त हो गये।"

'नक्षत्र जानने वाले को ऐसा होना चाहिए' कह राजा ने ब्राह्मणों को निकाल दिया और (पूर्व पुरोहित से) कहा—

"ब्राह्मण ! मैं प्रसन्न हूँ । वर माँग ।"

"महाराज ! स्त्री-पुत्र से सलाह करके माँगूँगा ।"

"जा सलाह करके आ ।"

उसने जाकर ब्राह्मणी, पुत्र, पुत्री, पुत्र-वधु तथा दासी को बुलाकर पूछा—राजा मुझे वर देना चाहता है । क्या वर माँगू ?

ब्राह्मणी बोली—मेरे लिये सौ गौवें लायें ।

छत्त माणवक नाम के पुत्र ने कहा—मेरे लिये कुमुद वर्ण के घोड़ों वाला श्रेष्ठ रथ लायें ।

पुत्र-वधु बोली—मुझे मणि-कुण्डल से आरम्भ करके सारे अलङ्कार चाहिए ।

पूर्णा दासी बोली—मुझे उखली, मूसल और सूप चाहिए ।

ब्राह्मण की इच्छा थी कि एक श्रेष्ठ गाँव ले । वह राजा के पास पहुँचा । राजा ने पूछा—ब्राह्मण, क्या स्त्री-पुत्र से सलाह कर ली ?

"हाँ महाराज सलाह की, लेकिन सब की एक राय नहीं ।" उसने पहली गाथा कही—

नानच्छन्दा महाराज एकागारे वसामसे,
अहं गामवरं इच्छे ब्राह्मणी च गवं सतं ॥
छत्तो च आजञ्ञरथं कञ्ञा च मणिकुण्डलं,
या चेसा पुण्णिका जम्मी उदुक्खलं अभिकङ्खति ॥

[महाराज ! हम भिन्न-भिन्न इच्छाओं वाले हैं, (यद्यपि) एक घर में रहते हैं । मेरी इच्छा तो है श्रेष्ठ गांव मिले, ब्राह्मणी की इच्छा है सौ गौवें । छत्त श्रेष्ठ-रथ चाहता है और पुत्र-बधु (कन्या) मणि-कुण्डल । और यह जो निकम्मी पुण्णिका दासी है, यह चाहती है ऊखल ।]

राजा ने आज्ञा दी कि सभी जो जो चाहते हैं वह सब दे दिया जाय । उसने यह गाथा कही—

ब्राह्मणस्स गामवरं ब्राह्मणिया गवं सतं
पुत्तस्स आजञ्ञरथं कञ्ञाय मणि कुण्डलं,
यञ्चेतं पुण्णिकं जम्मिं पटियादेथ उदुक्खलं ॥

[ब्राह्मण को श्रेष्ठ गाँव, ब्राह्मणी को सौ गौवें, पुत्र को श्रेष्ठ-रथ, कन्या को मणि-कुण्डल और यह जो पुण्णिका ऊखल (माँगती है) वह उसे दे दो।]

इस प्रकार जो जो ब्राह्मण ने इच्छा की वह सब तथा और भी सम्पत्ति दे 'अब से हमारे कामों को करने में उत्सुक रहें' कह राजा ने ब्राह्मण को अपने पास रख लिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ब्राह्मण आनन्द था। राजा तो मैं ही था।

२६०. सीलवीमंस जातक

"सीलं किरेव कल्याणं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक शील की परीक्षा करने वाले ब्राह्मण के बारे में कही। वर्तमान कथा और अतीतकथा दोनों ही प्रथम परिच्छेद की **सीलवीमंस जातक**[1] में विस्तार से आ ही गई हैं।

ख. अतीत कथा

इस कथा में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय उसके पुरोहित ने अपने शील की परीक्षा करने के लिए सुनार के तख्ते से दो दिन एक एक कार्षापण उठाया। तीसरे दिन उसे चोर बना राजा के पास ले गये। उसने रास्ते में सपेरे को सर्प खिलाते देखा। राजा ने पूछा—भो! ऐसा किस लिये किया? ब्राह्मण ने 'अपने शील की परीक्षा लेने के लिए' कह ये गाथायें कहीं:—

सीलं किरेव कल्याणं सीलं लोके अनुत्तरं,
पस्स घोरविसो नागो सीलवाति न हञ्ञति॥

---

[1] **सीलवीमंस जातक** (१. ६. ६)

सोहं सीलं समादिस्सं लोके अनुमतं सिवं,
अरियवुत्तिसमाचारो येन वुच्चति सीलवा ॥
जातीनञ्च पियो होति मित्तेसु च विरोचति,
कायस्स भेदा सुगतिं उपपज्जति सीलवा ॥

[शील ही कल्याणकर है; लोक में शील से बढ़कर कुछ नहीं। देखो! यह घोर विषैला सर्प (भी)शीलावान् (है) करके मारा नहीं जाता। मैंने उस शील के पालन करने का निश्चय किया है, जिसे लोक में कल्याणकर कहा गया है, और जिस शील से युक्त आदमी बुद्धि के मार्ग पर चलने वाला कहा जाता है। वह रिश्तेदारों का प्रिय होता है और मित्रों में प्रकाशित होता है। मरने पर शीलवान् आदमी सुगति को प्राप्त होता है।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने तीन गाथाओं से सदाचार का माहात्म्य कह, राजा को उपदेश दे निवेदन किया—

"महाराज! मेरे घर में पिता से प्राप्त, माता से प्राप्त, अपना अर्जित तथा आपका दिया बहुत धन है। उसकी सीमा नहीं है। मैंने केवल शील की परीक्षा करने के लिये सुनार के तख्ते से कार्षापण उठाये। अब मुझे यह स्पष्ट हो गया कि लोक में जाति, गोत्र, कुल सब निकृष्ठ हैं, शील ही श्रेष्ट है। मैं प्रव्रजित होऊँगा। मुझे प्रव्रजित होने की आज्ञा दें।" राजा से आज्ञा ले, उसके बार बार प्रार्थना करने पर भी (घर से) निकल, हिमालय में प्रविष्ट हो, (वह) ऋषि-प्रव्रज्या ले, समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोकगामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शील की परीक्षा करने वाला पुरोहित ब्राह्मण मैं ही था।

तीसरा परिच्छेद

५. कुम्भ वर्ग

२९१. भद्रघट जातक

"सब्बकामददं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय अनाथ-पिण्डिक (सेठ) के भानजे के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह माता पिता से प्राप्त चालीस करोड़ हिरण्य (सुरा-) पान में नष्ट कर सेठ के पास गया। उसने उसे हजार देकर कहा—व्यापार करो। उन्हें भी गँवा वह फिर गया। फिर उसे पाँच सौ दिलाये। उन्हें भी गँवा फिर आने पर दो मोटे वस्त्र दिलाये। उन्हें भी गँवा कर आया, तो गर्दन पकड़ कर निकलवा दिया। वह अनाथ होकर दूसरे की दीवार (के नीचे आ जाने) के कारण मर गया। उसे निकाल कर बाहर फिंकवाया। अनाथपिण्डिक ने विहार जाकर भानजे का सब समाचार तथागत से निवेदन किया। शास्ता ने कहा—तू इसे कैसे सन्तुष्ट करता? पूर्वजन्म में इसे मैं सब कामनायें पूरी करने वाला घड़ा देकर भी संतुष्ट नहीं कर सका। तब प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्वजन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व सेठ-कुल में पैदा हो, पिता के मरने पर सेठपद के लाभी हुए। उसके घर चालीस करोड़ धन तो केवल जमीन में गड़ा था। पुत्र उसका एक ही था। बोधिसत्व दानादि पुण्य करके मरने पर शक्र-देवराज होकर पैदा हुए।

उसके पुत्र ने गली घेरकर मण्डप बनवाया और लोगों को साथ ले सुरा पीने बैठा। वह छलांग मारना, दौड़ना, गाना, नाचना आदि करनेवालों

को हजार हजार देता था। उसे स्त्री की लत, सुरा की लत, मांस की लत लग गई। वह 'गाना कहाँ है ?' 'नाचना कहाँ है ?' 'बजाना कहाँ है ?' ढूंढता हुआ तमाशे का अत्यधिक अभिलाषी हो भटकता था। उसने थोड़े ही समय में अपना चालीस करोड़ धन और काम में आने लायक सामान नष्ट कर दिया और दरिद्र हो चीथड़े पहन घूमने लगा।

शक्र ने ध्यान लगाकर उसके दरिद्र होने की बात जानी। पुत्र-प्रेम के वशीभूत हो उसने आकर उसे सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला घड़ा दिया और कहा—इस घड़े को संभाल कर रखना जिसमें टूटने न पाये। यह तेरे पास रहने से धन की सीमा नहीं रहेगी। अप्रमादी होकर रहना। यह उपदेश दे (इन्द्र) देवलोक को ही लौट गया। वह तब से सुरापान करता हुआ घूमने लगा। बदमस्त होकर वह उस घड़े को आकाश में फेंकता और फिर वापिस रोकता था। एक बार वह चूक गया। घड़ा जमीन पर गिरा और टूट गया। उसके बाद फिर दरिद्र हो, चीथड़े लपेट, हाथ में खप्पर ले, भीख माँगता हुआ घूमने लगा। इस प्रकार वह दूसरे की दीवार [के नीचे आ जाने] के कारण मर गया। शास्ता ने पूर्वजन्म की कथा कह ये गाथायें कहीं :—

सब्बकामददं कुम्भं कुटं लद्धान धुत्तको,
याव सो अनुपालेति ताव सो सुखमेधति ॥
यदा मत्तो च दित्तो च पमादा कुम्भमभिदा,
ततो नग्गो च पोत्थो च पच्छा बालो विहञ्ञति ।
एवमेव यो धनं लद्धा अमत्ता परिभुञ्जति,
पच्छा तपति दुम्मेधो कुटं भिन्नोव धुत्तको॥

[धूर्त्त सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले घड़े को पाकर जब तक उसकी रक्षा करता है तब तक सुख भोगता है। लेकिन जब बेहोशी से, अभिमान से तथा प्रमाद से घड़े को फोड़ डालता है, तो पीछे वह मूर्ख नग्न हो तथा चीथड़े लपेटे मारा जाता है। उसी तरह जो कोई धन प्राप्त कर बेहिसाब खर्च करता है, वह मूर्ख उस धूर्त्त की तरह जिसका घड़ा फूट गया पीछे कष्ट पाता है।]

ये गाथायें कह जातक का मेल बैठाया, उस समय घड़ा फोड़ने वाला धूर्त्त सेठ का भान्जा था। शक्र तो मैं ही था।

२९२. सुपत्त जातक

"वाराणस्सं महाराज..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बिम्बा देवी को सारिपुत्र द्वारा लाकर दिये गये रोहित मछली के सूप तथा नवीनघृत-मिश्रित शाली भात के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कथा पूर्वोक्त **अब्भन्तर जातक**[1] की कथा के सदृश ही है। उस समय भी स्थविरी को उदर-पीड़ा हुई। राहुल भद्र ने स्थविर को कहा। स्थविर उसे आसनशाला में बिठा कोशल-नरेश के निवास-स्थान पर गये। वहाँ से उन्होंने रोहित मछली का सूप और नवीन घृत-मिश्रित शाली भात लाकर उसे दिया। उसने माता स्थविरी को दिया। उसके खाते ही उसकी उदर-पीड़ा शान्त हो गई। राजा ने आदमियों को भेज पता लगवाया और उस समय से वह स्थविरी को उस तरह का भात दिलवाता रहा। एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बात चलाई—आयुष्मानो! धर्म-सेनापति ने स्थविरी को वैसा भोजन कराया। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, न केवल अभी सारिपुत्र ने राहुल-माता की इच्छा पूरी की, पहले भी की है।" इतना कह पूर्वजन्म की कथा कहीः—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कौवे की योनी में पैदा हुये। बड़े होने पर अस्सी हजार कौओं में

---

[1] अब्भन्तर जातक (३.४.१)

प्रधान हो सुपत्त नामक काक राजा हुए। पटरानी का नाम था सुफस्सा। सेनापति का नाम सुमुख था। वह अस्सी हजार कौओं के साथ वाराणसी के समीप रहने लगा। एक दिन सुफस्सा को ले वह वाराणसी राजा के रसोईघर के ऊपर से चुगने जा रहा था। रसोइये ने राजा के लिये नाना प्रकार का मत्स-मांसयुक्त भोजन तैयार किया था। वह बर्तनों को नङ्गा कर उनका भात निकाल रहा था। सुफस्सा को मत्स-मांस की गन्ध आई, और राज-भोजन खाने की इच्छा हुई। वह उस दिन कुछ नहीं बोली। दूसरे दिन 'भद्रे! आ चुगने चलें' कहने पर बोली—आप जायें। मुझे एक दोहद पैदा हुआ है।

"कैसा दोहद?"

"वाराणसी-नरेश का भोजन खाने की इच्छा है।"

"पर मैं उसे नहीं ला सकता।"

"तो देव, मैं जान दे दूँगी।"

बोधिसत्व बैठ कर सोचने लगा। सुमुख ने आकर पूछा, महाराज, असन्तुष्ट क्यों हैं? राजा ने वह बात कही। सेनापति बोला—महाराज, चिन्ता न करें। वह उन दोनों को आश्वासन दे 'आज आप यहीं रहें, हम भात लायेंगे' कह चला गया।

उसने कौओं को इकट्ठा कर वह बात कही। फिर 'आओ भात लायें' कह कौओं के साथ वाराणसी में प्रविष्ट हुआ। उसने रसोईघर के समीप ही कौओं की टोलियाँ बना, उन्हें जहाँ-तहाँ सुरक्षा के लिये खड़ा किया। स्वयं आठ कौओं के साथ राजा का भोजन ले जाने के समय की प्रतीक्षा करता हुआ रसोईघर की छत पर बैठा। उसने उन कौओं से कहा:—मैं राजा का भात ले जाने के समय बर्तनों को गिरा दूँगा। बर्तनों के गिरते ही मेरी जान नहीं बचेगी। तुममें से चार जने भात से मुँह भर कर और चार जने मत्स-मांस से मुँह भर कर, ले जाकर, प्रजापति सहित काकराज को खिलाना। "सेनापति कहाँ है?" पूछने पर कहना—पीछे आता है।

रसोइया भोजन तैयार कर, बहँगी पर रख राजकुल ले चला। उसके राजाङ्गण में पहुँचने पर, काक-सेनापति ने कौओं को इशारा किया और स्वयं उछल कर भात ले जाने वाले के कन्धे पर बैठ, पञ्जे के नाखूनों से प्रहार कर,

बर्छी की नोक जैसी चोट से उसकी नाक पर चोट कर, उड़कर दोनों परों से उसका मुँह ढक दिया। राजा ने महान तल्ले पर घूमते हुये उस कौवे की वह करतूत देख भात लाने वाले को कहा—अरे भात लाने वाले! बर्तनों को छोड़, कौवे को ही पकड़। उसने बर्तन छोड़ कौवे को ही जोर से पकड़ लिया। राजा बोला—यहाँ आ। उस समय कौवे आये और जितना स्वयं खा सकते थे खाकर जैसे कहा गया था वैसे लेकर गये। तब बाकियों ने आकर शेष भोजन किया। उन आठ जनों ने भी जाकर रानी सहित काक-राज को खिलाया। सुफस्सा का दोहद शान्त हो गया। भात लाने वाला कौवे को राजा के पास ले गया।

राजा ने उससे पूछा—अरे काक, तूने मेरा भय नहीं किया। भात लाने वाले की नाक तोड़ दी। भात के बर्तन फोड़ डाले। अपनी जान गँवाई। ऐसा काम क्यों किया?

"महाराज, हमारा राजा वाराणसी के समीप रहता है। मैं उसका सेनापति हूँ। उसकी सुफस्सा नामक भार्य्या को तुम्हारा भोजन खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। मैं वहीं अपने जीवन का बलिदान कर यहाँ आया। अब मैंने उसके पास भोजन भेज दिया। मेरा मनोरथ पूरा हो गया। इस कारण से मैंने ऐसा किया।"

उसने ये गाथायें कहीं :—

> बाराणस्सं महाराज काकराजा निवासिको,
> असीतिया सहस्सेहि सुपत्तो परिवारितो ॥
> तस्सा दोहलिनी भरिया सुफस्सा मच्छमिच्छति,
> रञ्ञो महानसे पक्कं पच्चग्घं राजभोजनं ॥
> तेसाहं पहितो दूतो रञ्ञो चम्हि इधागतो
> भत्तु अपचितिं कुम्मि नासायमकरं वणं ॥

[महाराज, अस्सी हजार कौओं के साथ सुपत्त नामक काकराजा वाराणसी के पास रहता है। उसकी सुफस्सा नाम की भार्य्या को दोहद उत्पन्न हुआ और उसने राजा की रसोई में पके कीमती राज-भोजन—मछली—की इच्छा की। उस राजा का भेजा हुआ दूत मैं यहाँ आया। मैंने अपने स्वामी की आज्ञा का पालन किया और (इसी कारण से) नाक पर चोट की।]

राजा ने उसकी बात सुन सोचा—हम मनुष्यों को भी बहुत सा धन देकर अपने सुहृद नहीं बना सकते। ग्रामादि देकर भी हमें ऐसे आदमी नहीं मिलते जो हमारे लिये जीवन बलिदान कर सकें। यह कौआ होकर भी अपने राजा के लिये जान देता है—बड़ा सत्-पुरुष है, मधुर-भाषी है तथा धार्मिक है। उसके इन गुणों पर प्रसन्न हो राजा ने श्वेत-छत्र से उसकी पूजा की। उसने उस छत्र से अपने राजा की पूजा कर सुपत्त का ही गुणानुवाद किया। राजा ने उसे बुलवा, धर्मोपदेश सुन, उन दोनों के लिये अपने ही सदृश भोजन का प्रबन्ध किया। शेष कौओं के लिये वह प्रतिदिन एक अम्मण चावल पकवाता था। स्वयं बोधिसत्व के उपदेशानुसार चल, सभी प्राणियों को अभय बना, पञ्च-शीलों की रक्षा करता था।

सुपत्त कौवे का उपदेश सात सौ वर्ष तक चला।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। सेनापति सारिपुत्र। सुफस्सा राहुल-माता। सुपत्त तो मैं ही था।

२९३. कायविच्छिन्द जातक

"पुट्टस्स मे..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक पुरुष के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक आदमी पाण्डु रोग से पीड़ित था। वैद्यों ने जवाब दे दिया था। उसके स्त्री-बच्चे भी सोचते थे—इसकी सेवा कौन कर सकता है? उसे ख्याल आया—यदि मैं इस रोग से बच जाऊँ तो प्रव्रजित हो जाऊँगा। वह कुछ ही दिन में कोई अनुकूल पथ्य मिलने से निरोग हो गया।

उसने जेतवन पहुँच प्रव्रज्या की याचना की। शास्ता से प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त कर वह शीघ्र ही अर्हत हो गया।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक पाण्डु रोगी 'इस रोग से मुक्त होने पर प्रव्रजित होऊँगा' सोच प्रव्रजित हुआ और उसने अर्हत्व प्राप्त किया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

"अमुक बातचीत!"

"भिक्षुओ! न केवल इसी ने किन्तु पूर्व समय में पण्डितों ने भी यही कह, रोग से उठ, प्रव्रजित हो अपनी उन्नति की।"

इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर कुटुम्ब का पालन करते हुए पाण्डु रोगी हुए। वैद्य भी चिकित्सा न कर सके। स्त्री-बच्चे भी निराश हो गये। वह 'इस रोग से मुक्त होने पर प्रव्रजित होऊँगा' सोच कोई पथ्य पा निरोग हो गया। तब उसने हिमालय में प्रवेश कर ऋषि-प्रव्रज्या ली। उसने समापत्तियां और अभिञ्ञा उत्पन्न कर, ध्यान-सुख से विहार करते हुए 'अब तक इस तरह का सुख नहीं मिला' यह प्रीति-वाक्य कहते हुए, ये गाथाएँ कहीं:—

पुट्ठस्स मे अञ्ञतरेन व्याधिना
रोगेन बाळ्हं दुखितस्स रुप्पतो,
परिसुस्सति खिप्पमिदं कळेवरं
पुप्फं यथा पंसुनि आतपे कतं॥
अजञ्ञं जञ्ञसङ्खातं असुचिं सुचिसम्मतं,
नानाकुणपपरिपूरं जञ्ञरूपं अपस्सतो॥
धिरत्थु तं आतुरं पूतिकायं
जेगुच्छियं असुचिं व्याधिधम्मं,
यत्थप्पमत्ता अधिमुच्छिता पजा
हापेन्ति मग्गं सुगतुपपत्तिया॥

[रोग से अति दुखित-पीड़ित मेरा यह शरीर धूप में पड़े फूल की तरह सूख जायेगा। असुन्दर है किन्तु सुन्दर लगता है, अपवित्र है किन्तु पवित्र लगता है। नाना प्रकार की गन्दगी से भरा होने पर भी न देख सकने वाले को मनोरम लगता है। इस नित्य रोगी, गन्दे, जिगुप्सित, अपवित्र, तथा व्याधि-स्वभाव शरीर को धिक्कार है, जिसके प्रति आसक्त होकर बदहवास जन सुगति प्राप्ति के मार्ग को छोड़ देते हैं।]

इस प्रकार बोधिसत्व नाना प्रकार से (शरीर की) अपवित्रता तथा नित्य रोगीपन का विचार कर शरीर के प्रति अनासक्त हो जीवन पर्यन्त चारों ब्रह्म-विहारों की भावना कर ब्रह्म-लोक-परायण हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बिठाया। बहुत से जन स्रोतापत्ति फल आदि में प्रतिष्ठित हुए। उस समय तपस्वी मैं ही था।

२९४. जम्बुखादक जातक

"कोयंविन्दुस्सरो वग्गु..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त और कोकालिक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय देवदत्त का लाभ-सत्कार नष्ट हो गया था। कोकालिक भिक्षु गृहस्थों के पास जा देवदत्त के गुणों का बखान करता—देवदत्त स्थविर महासम्मत परम्परा में ओकाक-राज-वंश में पैदा हुआ है। विशुद्ध क्षत्रिय वंश में पला है, त्रिपिटकधारी है, ध्यान-लाभी है, मधुरभाषी है, धर्म-कथिक है, स्थविर को दें, स्थविर का कहना करें। देवदत्त भी कोकालिक के गुण बखानता—कोकालिक उदीच्य ब्राह्मण कुल से निकल प्रव्रजित हुआ है.

बहुश्रुत है, धर्म-कथिक है, दें, करें।" इस प्रकार वे दोनों एक दूसरे के गुण बखानते हुये गृहस्थों के घर में खाते-पीते विचरते।

एक दिन धर्म-सभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो! देवदत्त और कोकालिक एक दूसरे की झूठी प्रशंसा करते खाते पीते घूमते हैं।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, न केवल अभी ये झूठी प्रशंसा कर के खाते पीते हैं, पहले भी ऐसा ही किया है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक जम्बु-खण्ड में वृक्ष देवता होकर पैदा हुए। वहाँ एक कौआ जम्बु शाखा पर बैठा हुआ पके जामुन खाता था। एक गीदड़ ने आकर ऊपर कौवे को देख सोचा—मैं इसकी झूठी प्रशंसा कर जामुन खाऊँ। उसने उसकी प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

कोयं बिन्दुस्सरो वग्गु पवदन्तानमुत्तमो,
अच्चुतो जम्बुसाखाय मोरच्छापोव कूजति ॥

[पूर्ण स्वर वाला, सुन्दर शब्द वाला; सर्व श्रेष्ठ वाणी वाला ये कौन है जो जम्बू की शाखा पर बैठ कर मोर-बच्चे की भाँति कूजता है?]

कौवे ने भी उसकी प्रशंसा करते हुये दूसरी गाथा कही:—

कुलपुत्तोव जानाति कुलपुत्तं पसंसितुं,
व्यग्घच्छापसरीवण्णो भुञ्ज सम्म ददामि ते ॥

[कुल पुत्र ही कुल-पुत्र की प्रशंसा करना जानता है। हे व्याघ्र-बच्चे के सदृश वर्ण वाले मित्र मैं तुझे (जामुन) देता हूँ, खा।]

यह कह जम्बू-शाखा हिला उसने फल गिराये। उस जम्बू वृक्ष पर पैदा हुये देवता ने उन दोनों को परस्पर झूठी प्रशंसा कर जामुन खाते देख तीसरी गाथा कही:—

चिरस्संवत पस्सामि मुसावादी समागते,
वन्तादं कुणपादञ्च अञ्ञमञ्ञं पसन्सके ॥

[मैं इन आये हुये मिथ्या-भाषियों को देर से देख रहा हूँ—एक वमन खाने वाला है, दूसरा मुर्दार। दोनों एक दूसरे की झूठी प्रशंसा कर रहे हैं।]

यह गाथा कह, देवता ने उन्हें भयानक रूप दिखा वहाँ से भगा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शृगाल देवदत्त था। कौआ कोकालिक। वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

२९५. अन्त जातक

"उसभस्सेव ते खन्धो..." यह भी शास्ता ने वहीं विहार करते समय उन्हीं दो जनों के बारे में कही। वर्तमान कथा पूर्व कथा सदृश ही है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक गाँव के पास एरण्ड वृक्ष पर देवता होकर पैदा हुये। उस समय एक गाँव में मरे बूढ़े बैल को निकाल कर ग्राम-द्वार पर एरण्ड वन में फेंक दिया था। एक शृगाल आ कर उसका मांस खाने लगा। एरण्ड पर छिपे किसी कौवे ने उसे देख सोचा—मैं इसकी झूठी प्रशंसा कर मांस खाऊँ। उसने पहली गाथा कही :—

उसभस्सेव ते खन्धो सीहस्सेव विजम्भितं,
मिगराज नमोत्यत्थु अपि किञ्चि लभामसे ॥

[तेरे स्कन्ध वृषभ की तरह हैं और तेरा विजृम्भण सिंह जैसा है। हे मृगराज! तुझे नमस्कार है। हमें कुछ मिले।]

इसे सुन शृगाल ने दूसरी गाथा कही:—

कुलपुत्तोवजानाति कुलपुत्ते पसंसितुं,
मयूरगीवसङ्कास इतो पीरयाहि वायस ॥

[कुल-पुत्र ही कुल-पुत्र की प्रशंसा करना जानता है। हे मयूर की गर्दन सदृश कौवे ! यहाँ चला आ।]

उनकी करतूत देख कर उस वृक्ष-देवता ने तीसरी गाथा कही:—

मिगानं कोत्थुको अन्तो पक्खीनं पन वायसो,
एरण्डो अन्तो रुक्खानं तयो अन्ता समागता ॥

[जानवरों में सब से अधिक निकृष्ट शृगाल है, पक्षियों में कौआ और वृक्षों में एरण्ड। यहाँ तीनों निकृष्ट इकट्ठे हो गये हैं।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, जातक का मेल बैठाया। उस समय शृगाल देवदत्त था। कौआ कोकालिक। वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

२९६. समुद्द जातक

"कोनायं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उपनन्द स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह बड़ा पेटू था, महान तृष्णा से युक्त, गाड़ी भर सामान से भी सन्तुष्ट न हो सकने वाला। वर्षावास के समय दो तीन विहारों में वर्षा-वास करना आरम्भ कर, एक में जूता रखता, एक में हाथ की लकड़ी, एक में पानी का घड़ा, और एक में स्वयं रहता। जनपद में चारिका के लिये निकलता तो ऐसे भिक्षुओं को, जिनके पास अच्छे परिष्कार होते आर्यवंश-कथा[1] सुना कर

[1] जैसे तैसे चीवर, जैसे तैसे पिण्ड-पात (=भोजन) जैसे तैसे शयन-आसन से सन्तुष्ट होने का उपदेश [अं २।२९—३६]

उनसे पाशुकूल चीवर[1] लिवा उनके चीवर स्वयं ले लेता। मिट्टी के वर्तन दिला कर अच्छे अच्छे पात्र और थाल ले गाड़ी भर जेतवन लौटता।

एक दिन धर्म सभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो! शाक्य पुत्र उपनन्द पेटू है, महेच्छुक है। दूसरों को धर्माचरण का उपदेश दे स्वयं श्रमण-परिष्कारों से गाड़ी भर लाता है।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, क्या बातचीत कर रहे हो?

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, उपनन्द ने दूसरों को आर्यवंश कथा का उपदेश दे अनुचित किया। पहले स्वयं अल्पेच्छ होना चाहिए, तब दूसरे को आर्यवंश-कथा का उपदेश देना चाहिये :—

अत्तानं एव पठमं पटिरूपे निवेसये।
अथञ्ञमनुसासेय्य न किलिस्सेय्य पण्डितो[2] ॥

[जो उचित है उसे यदि पहले अपने करके पीछे दूसरे को उपदेश करे, तो पण्डित (जन) को क्लेश न हो।]

इस धम्मपद की गाथा का उपदेश दे, उपनन्द की निन्दा कर 'भिक्षुओ, न केवल अभी उपनन्द महेच्छुक है, यह पहले महासमुद्र के भी जल की रक्षा करना आवश्यक समझता था' कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व समुद्र-देवता होकर पैदा हुआ। एक जल-कौवा समुद्र पर उड़ता हुआ मछलियों और पक्षियों को रोकता था—समुद्र का जल अधिक न पीओ, सँभाल कर पीओ। यह देख समुद्र-देवता बोला:—

कोनायं लोणतोयस्मिं समन्ता परिधावति,
मच्छे मकरे च वारेति ऊमिसु च विसज्जति ॥

---

[1] जहाँ तहाँ फेंके हुए चीथड़ों से बना चीवर।

[2] धम्मपद १२।२

[ये कौन है जो मछलियों मगर-मच्छों को मना करता हुआ नमकीन जल पर चारों ओर दौड़ता है और लहरों में कष्ट पाता है ?]

इसे सुन समुद्री कौवे ने दूसरी गाथा कहीः—

अनन्तपायी सकुणो अतित्तोति दिसासुतो,
समुद्दपातुमिच्छामि सागरं सरितं पतिं ॥

[मैं अनन्त-पायी पक्षी हूँ, अतृप्त हूँ, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है। मैं नदी-पति सागर को पी जाने की इच्छा करता हूँ।]

इसे सुन समुद्र देवता ने तीसरी गाथा कहीः—

स्वायं हायति चेव पूरते च महोदधि,
नास्स नायति पीतन्तो अपेय्यो किर सागरो ॥

[यह महोदधि घटता है और सम्पूर्ण होता है। यह पीने से समाप्त नहीं होता है। सागर अपेय है।]

यह कह भयानक रूप दिखा समुद्र-कौवे को भगा दिया। शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय समुद्र-काक उपनन्द था। देवता तो मैं ही था।

२९७. कामविलाप जातक

"उच्चे सकुण डेमान..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व भार्य्या की आसक्ति के बारे में कही। वर्तमान कथा पुप्फरत्त-जातक में आयेगी। अतीत-कथा इन्द्रिय जातक[1] में आयेगी। उस पुरुष को जीते जी सूली का त्रास दिया। उसने वहाँ बैठे-बैठे उस तीव्र वेदना की भी ओर ध्यान न दे, आकाश में उड़े जाते एक कौवे को देख, प्यारी भर्य्या के पास सन्देश भेजने के लिये कौवे को सम्बोधन करते हुये ये गाथायें कहीः—

---

[1] इन्द्रिय जातक (४२३)

उच्चे सकुण डेमान पत्तयान विहङ्गम,
वज्जासि खोत्वं वामूरु' चिरं खो सा करिस्सति ॥
इदं खो सा न जानाति असिं सत्तिञ्च ओड्डितं,
सा चण्डी काहति कोधं तं मे तपति नो इध ॥
एस उप्पलसन्नाहो निक्खमुस्सीसके कतं,
कासिकञ्च मुदु' वत्थं तप्पतु धनकामिका ॥

[हे ऊँचे उड़ने वाले आकाशगामी पंख-वाहन पक्षी, तू उस कोमल जंघावाली को मेरा समाचार कहना। नहीं तो वह चिरकाल तक चिन्ता करती रहेगी। वह यह नहीं जानती है कि मैं यहाँ सूली का त्रास पा रहा हूँ। इसलिये वह चण्डी क्रोध करेगी। मुझे उसी का दुख है, इस सूली का नहीं। मेरे सिराहने कमल सदृश पोशाक है, और स्वर्ण की अङ्गुटी है, और है काशी का कोमल वस्त्र। वह धनेच्छुका इन्हें पा कर सन्तुष्ट हो।]

इस प्रकार रोता पीटता वह मर कर नरक में पैदा हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में उद्विग्नचित्त भिक्षु स्रोतापत्ती-फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय की भार्य्या ही इस समय की भार्य्या है। जिस देव-पुत्र ने वह घटना देखी वह मैं ही था।

२६८. उदुम्बर जातक

"उदुम्बराचिमे पक्का..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह एक प्रत्यन्त के गामड़े में विहार बनवा कर रहता था—रमणीक विहार, चट्टान पर बना हुआ, झाड़ने बुहारने को बहुत नहीं, पानी का

आराम, भिक्षा के लिये गाँव बहुत दूर नहीं, और प्रेम पूर्वक भिक्षा देने वाले मनुष्य। एक भिक्षु चारिका करता हुआ उस विहार में पहुँचा। निवासी-भिक्षु आगन्तुक-भिक्षु के प्रति जो कर्त्तव्य था उसे कर, अगले दिन उसे ले, गाँव में भिक्षा माँगने गया। लोगों ने उसे भिक्षा दे दूसरे दिन के लिये निमंत्रित किया। आगन्तुक-भिक्षु ने कुछ दिन भोजन पा सोचा—एक उपाय से इस भिक्षु को धोका दे, निकाल बाहर कर, यह विहार ले लूँ। उसने स्थविर की सेवा में आने पर उसे पूछा—आयुष्मान, बुद्ध की सेवा में नहीं गया?

"भन्ते, इस विहार की कोई देखभाल करने वाला नहीं है। मैं अभी तक नहीं गया हूँ।"

"जब तक तू बुद्ध का दर्शन करके लौटे, तब तक मैं देखभाल करूँगा।"

"भन्ते, अच्छा।"

निवासी-भिक्षु मनुष्यों को 'जब तक मैं आऊँ तब तक स्थविर की सेवा ठीक तरह से करते रहना' कह चल दिया। उस दिन से आगन्तुक-भिक्षु ने निवासी-भिक्षु में यह यह दोष हैं, कह मनुष्यों का दिल खट्टा कर दिया। निवासी-भिक्षु भी शास्ता को प्रणाम करके लौटा। आगन्तुक ने उसका निवास-स्थान उसे नहीं दिया। वह एक जगह रह कर गांव में भिक्षा माँगने निकला। मनुष्यों ने शिष्टाचार भी नहीं किया। उसको अफसोस हुआ। उसने जेतवन जा भिक्षुओं को समाचार सुनाया। भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बात चीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक भिक्षु अमुक भिक्षु को विहार से निकाल कर स्वयं वहाँ रहता है। शास्ता ने पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

"अमुक बातचीत"

"न केवल अभी, किन्तु पहले भी हे भिक्षुओ! उसने इसे निवास-स्थान से निकाला ही है" कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व जंगल में वृक्ष-देवता होकर पैदा हुये। उस समय वर्षा काल में सात सप्ताह तक वर्षा हुई। एक लाल मुँह वाला छोटा बन्दर एक पत्थर

की दरार में जहाँ पानी नहीं पड़ता था रहता था। एक दिन वह दरार के द्वार पर, न भीगने वाली जगह पर, सुख से बैठा था। वहीं एक काले मुँह वाला बड़ा बन्दर आया। वह भीगा था और शीत से कष्ट पा रहा था। उसने उसे उस तरह बैठे देख सोचा—इसे कौशल से यहाँ से हटा, मैं यहाँ रहूँगा। उसने पेट का सहारा ले ऐसा दिखाया जैसे पेट खूब भरा हो, और उसके सामने खड़े हो पहली गाथा कही:—

उदुम्बराचिमे पक्का निग्रोधा च कपित्थना,
एहि निक्खम भुञ्जस्सु किं जिघच्छाय मीयसि ॥

[यह गूलर पके हैं, निग्रोध और कैथ भी। आ बाहर निकल उन्हें खा। भूख से क्यों मरता है ?]

उसने उसकी बात पर विश्वास कर, फलाफल खाने की इच्छा से बाहर निकल, जहाँ-तहाँ घूम कुछ भी न पाया। लौटकर देखा तो उसे दरार में बैठा पाया। उसने उसे ठगने के लिए उसके सामने खड़े हो दूसरी गाथा कही:—

एवं सो सुहितो होति यो बद्धमपचायति,
यथाहमज्ज सुहितो दुमपक्कानि मासितो ॥

[जो बड़ों का आदर करता है उसका पेट भरता है; जैसे आज मैं पके फल खाकर संतुष्ट हूँ।]

इसे सुन बड़े बन्दर ने तीसरी गाथा कही :—

यं वनेजो वनेजस्स वंचेय्य कपिनो कपि,
दहरो पि तं सद्देय्य, न हि जिण्णो जराकपि ॥

[जो वन में पैदा हुआ वानर बन में पैदा हुये बानर को ठगे, कोई बच्चा भी उसका विश्वास नहीं कर सकता, मेरे जैसा जरा-जीर्ण कपि तो कर ही नहीं सकता।]

"इस प्रदेश में सभी फलाफल वर्षा से भीग कर गिर गये हैं। अब तेरे लिये यहाँ जगह नहीं है जा।" वह वहाँ से चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय छोटा बन्दर निवासी-भिक्षु था। काला बड़ा बन्दर आगन्तुक-भिक्षु। वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

२९९. कोमायपुत्त जातक

"पुरे तुवं..." यह शास्ता ने पूर्वाराम में विहार करते समय क्रीड़ा-प्रिय भिक्षुओं के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जिस समय शास्ता ऊपर प्रासाद में रहते थे उस समय भिक्षु नीचे प्रासाद में बैठे हुये देखा-सुना बतियाते, झगड़ा करते और हँसी-मजाक उड़ाते थे। शास्ता ने महामोग्गल्लान को सम्बोधित कर कहा—आ भिक्षु, कम्पन उत्पन्न कर। स्थविर ने आकाश में उछल, पैर के अंगूठे से उछल, प्रासाद के खम्भे पर प्रहार कर, जहाँ तक जल था वहाँ तक कँपा दिया। वे भिक्षु मृत्यु-भय से निकल कर बाहर खड़े हुये। उनकी वह क्रीड़ा-प्रियता भिक्षुओं में प्रकट हो गई। एक दिन भिक्षुओं ने धर्म सभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! कुछ भिक्षु इस प्रकार के कल्याणकारी बुद्धशासन में प्रव्रजित होकर भी खिलवाड़ करते रहते हैं; अनित्य, दुख तथा अनात्म की भावना की विपश्यना नहीं बढ़ाते हैं। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो ?

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ न केवल अभी, ये क्रीड़ा-प्रिय हैं,पहले भी ये क्रीड़ा-प्रिय ही रहे हैं।"

इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व सकय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक गाँव में ब्राह्मण कुल में पैदा हुये। उनका नाम हुआ कोमायपुत्त। आगे

चल कर वह गृहत्याग, ऋषि-प्रव्रज्या ले, हिमालय में रहने लगा। दूसरे क्रीड़ा-प्रिय तपस्वी भी हिमालय में आश्रम बना रहते थे। कसिणकर्म[1] का नाम तक न था। वे जङ्गल से फलाफल ला खाते हुये नाना प्रकार की क्रीड़ा में समय बिताते थे। उनके पास एक बन्दर भी था। वह भी क्रीड़ा-प्रिय। नाना प्रकार की शकलें बना तपस्वियों को तमाशा दिखाता। तपस्वी चिरकाल तक वहाँ रह नमक-खटाई खाने के लिये बस्ती में गये। उनके चले जाने पर बोधिसत्व वहाँ आकर रहने लगे। बन्दर ने उनकी तरह बोधिसत्व को भी तमाशा दिखलाया। बोधिसत्व ने चुटकी बजा उसे उपदेश दिया—सुशिक्षित प्रव्रजितों के पास रहने वाले को सदाचारी होना चाहिये; काय, वाक, मन से सुसंयत होना चाहिये तथा ध्यानी होना चाहिये। वह भी उस समय से शीलवान तथा आचारवान हो गया। बोधिसत्व अन्यत्र चले गये।

नमक-खटाई सेवनानन्तर वह तपस्वी भी वहाँ लौटे। बन्दर ने पहले की तरह उन्हें तमाशा नहीं दिखाया। तपस्वियों ने पूछा—आयुष्मान, पहले तू हमारे सामने तमाशा करता था। क्या कारण है कि अब नहीं करता? उन्होंने पहली गाथा कहीः—

पुरे तुवं सीलमतं सकासे
ओक्कन्दिकं कीळसि अस्समम्हि,
करोहरे मक्कटियानि मक्कट
न तं मयं सीलवतं रमाम ॥

[अरे बन्दर, तू पहले सदाचारियों के पास आश्रम में रहता हुआ कूदना फाँदना आदि खेल करता था। अपनी वह बन्दर-लीला कर। हम शीलवान उसमें रमण नहीं करते।]

यह सुन बन्दर ने दूसरी गाथा कहीः—

सुता हि मय्हं परमा विसुद्धि
कोमायपुत्तस्स बहुस्सुतस्स,
मा दानि मं मञ्ञी तुवं यथा पुरे
झानानुयुत्ता विहराम आवुसो ॥

---

[1] योगाभ्यास-विधि।

[मैंने बहु-श्रुत कोमायपुत्त से परम विशुद्धि सुनी। अब तू मुझे पहले जैसा मत समझ। आयुष्मान मैं अब ध्यानी हो कर विहार करता हूँ।]

यह सुन तपस्वियों ने तीसरी गाथा कही:—

> सचेपि सेलस्मिं वपेय्यु' बीजं
> देवो च वस्से नेव'हितं रुहेय्य,
> सुता हि ते सा परमा विसुद्धि
> आरा तुवं मक्कट झानभूमिया॥

[अगर चट्टान पर बीज बोया जाय तो वर्षा होने पर भी वह नहीं उगेगा। इसी प्रकार (यद्यपि) तू ने वह परम-विशुद्धि सुनी है तो भी तू (पशु योनि में उत्पन्न होने के कारण) ध्यान-भूमि से दूर है।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय क्रीड़ा-प्रिय तपस्वी ये तपस्वी थे। कोमायपुत्त तो मैं ही था।

३००. वक जातक

"परपाणरोधा..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पुराण-मैत्री के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

(वर्तमान-) कथा विस्तार से विनाय (-पिटक) में आई ही है। यहाँ तो यह संक्षिप्त है। दो वर्ष की आयु[1] के आयुष्मान उपसेन एक वर्ष की आयु वाले सब्रह्मचारी के साथ शास्ता के पास गये। शास्ता ने आलोचना की। वह प्रणाम करके चले आये और विपश्यना-भावना का अभ्यास कर अर्हत्व प्राप्त किया। फिर अल्पेच्छता आदि गुणों से युक्त हो, तेरह धुतंग धारण किये और अपने

---

[1] उपसम्पन्न भिक्षु की आयु उपसम्पदा से गिनी जाती है।

अनुयाइयों को भी तेरह धुतंगधारी बनाया। भगवान के तीन महीने तक ध्यानावस्थित रहने पर अनुयाइयों सहित शास्ता की सेवा में पहुँचे। पहली बार अनुयाइयों के कारण निन्दित हुआ था। इस बार अधार्मिक वार्ता के अनुसार न चलने से प्रशंसा हुई। शास्ता ने कृपा की—अब से धुतंग-धारी भिक्षु मुझ से यथासुविधा भेंट कर सकते हैं। उसने बाहर आ भिक्षुओं को यह बात कही। तब से भिक्षुओं ने धुतंग-धारी हो, शास्ता के दर्शनार्थ जा, शास्ता के ध्यानावास्था से उठने पर, पांशुकूल चीवरों को जहाँ-तहाँ छोड़ अपने अपने साफ चीवर पहने। बहुत से भिक्षुओं के साथ शास्ता ने शयनासन को देखते हुये, घूमने के समय जहाँ तहाँ पांशुकूल चीवर को देख कर पूछा। वह बात सुन शास्ता ने कहा—भिक्षुओ! इन भिक्षुओं का व्रत चिरायु नहीं होगा। यह बगुले के उपोसथ-व्रत के समान हुआ है।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय शक्रदेव राजा हुये। एक भेड़िया गंगा के किनारे पत्थर पर रहता था। गंगा में हिम-जल ने आकर उस पत्थर को घेर लिया। भेड़िया चढ़ कर पत्थर के ऊपर जा लेटा। न उसे शिकार मिला न शिकार का रास्ता। पानी बढ़ता ही जाता। वह सोचने लगा—न मेरे लिये शिकार है न मेरे लिये शिकार का रास्ता निकम्मे पड़े रहने से तो उपोसथ व्रत करना ही अच्छा है। उसने मन से ही उपोसथ व्रत तथा शील ग्रहण किया और लेट रहा। उस समय शक्र ने ध्यान दे उसके दुर्बल व्रत की बात जान सोचा—इस भेड़िये को तंग करूँगा। उसने मेमने का रूप बना अपने को भेड़िये से थोड़ी दूर खड़ा हुआ दिखाया। भेड़िये ने उसे देख सोचा—व्रत दूसरे दिन रखूँगा। वह उसे पकड़ने के लिये उछला। मेमने ने भी इधर-उधर उछल अपने को पकड़ने न दिया। भेड़िया जब उसे नहीं पकड़ सका तो लौट आ कर फिर वैसे ही लेट रहा—अभी मेरा उपोसथ व्रत नहीं टूटता। शक्र ने इन्द्र रूप से ही आकाश में प्रकट हो कहा—तेरे जैसे दुर्बल निश्चय वाले को उपोसथ व्रत से क्या? तू बिना यह जाने कि मैं

शक्र हूँ मेमने का मांस खाना चाहता था । इस प्रकार भेड़िये को तंग कर और उसकी निन्दा कर इन्द्र देवलोक को चला गया।

ये तीनों अभिसम्बुद्ध गाथायें हैं:—

परपाणरोधा जीवन्तो मंसलोहित भोजनो,
वको वतं समादाय उपपज्जि उपोसथं ॥
तस्स सक्को वतञ्ञाय अजरूपेनुपागमि,
वीततपो अज्झप्पत्तो भञ्जि लोहितपो तपं ॥
एवमेवं इधेकच्चे समादानस्मिं दुब्बला
लहुँ करोन्ति अत्तानं वकोव अजकारणा॥

[दूसरे प्राणियों की हत्या करके जीवित रहने वाले, रक्त मांस का भोजन करने वाले भेड़िये ने भी उपोसथ व्रत धारण किया। शक्र उसके दुर्बल व्रत की बात जान मेमने के रूप में आया। उस रक्त-पायी ने विगत-तप हो (उसे खाने की इच्छा से) अपना व्रत तोड़ दिया । इसी तरह इसमें कुछ दुर्बल निश्चय वाले प्राणी अपने को ओछा बना लेते हैं, वैसे ही जैसे भेड़िये ने मेमने के कारण (अपने को ओछा बनाया।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शक्र मैं ही था।

चौथा परिच्छेद

१. विवर वर्ग

३०१. चुल्लकालिङ्ग जातक

"विवरथ इमासं द्वारं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय चार परिव्राजिकाओं की प्रव्रज्या के बारे में कही :—

क. वर्तमान कथा

वैशाली में सात हजार सात सौ सात लिच्छवी-राजा रहते थे। वे सभी शास्त्रार्थ-कुशल थे।

एक पाँच सौ वादों (-मतों) में पंडित निर्ग्रन्थ वैशाली पहुँचा। उन्होंने उसका आदर-सत्कार किया। एक दूसरी उसी तरह की निर्ग्रन्थी भी आ पहुँची। राजाओं ने दोनों का शास्त्रार्थ कराया। दोनों बराबर रहे। तब लिच्छवियों ने सोचा—इन दोनों से उत्पन्न पुत्र मेधावी होगा। उन्होंने दोनों का विवाह करा, उन्हें एक जगह बसाया। दोनों के सहवास से क्रमशः चार लड़कियाँ और एक लड़का पैदा हुआ। लड़कियों का सच्चा, लोला, अववादका और पटाचारा नाम रखा गया तथा लड़के का सच्चक। उन पाँचों ने बड़े होने पर माता से पाँच सौ वाद और पिता से पाँच सौ वाद, इस प्रकार एक हजार वाद सीख लिये। माता-पिता ने लड़कियों को यह नसीहत दी—यदि कोई गृहस्थ तुम्हें शास्त्रार्थ में हरा दे तो उसकी चरण-दासियाँ बन जाना और यदि कोई प्रव्रजित हरा दे तो उसके पास प्रव्रजित हो जाना। समय बीतने पर माता-पिता चल बसे।

उनके मरने पर सच्चक निर्ग्रन्थ वहीं वैशाली में लिच्छवियों को शिल्प (-विद्या) सिखाता हुआ रहने लगा। बहनों ने जम्बु-शाखा ले, शास्त्रार्थ के लिये नगर नगर घूमना आरम्भ किया। श्रावस्ती पहुँच उन्होंने नगर-द्वार पर शाखा गाड़ दी और बालकों को यह कह कर कि जो हमसे शास्त्रार्थ

कर सके वह गृहस्थ हो या प्रव्रजित इस वालू की ढेरी को पाँव से बिखेर, इस जम्बु-शाखा को पाँव से ही कुचल दे, भिक्षार्थ नगर में गईं।

आयुष्मान् सारिपुत्र बिना बुहारी जगह को बुहार, खाली घड़ों में पानी भर, रोगियों की सेवा कर दिन चढ़ने पर भिक्षार्थ निकले। उन्होंने वह शाखा देख, पूछकर, उसे लड़कों से ही गिरवाकर कुचलवा दिया और लड़कों को कहा कि जिन्होंने यह शाखा गाड़ी हो वह खाना-पीना समाप्त कर जेतवन की ड्योढ़ी में मुझे मिलें। भिक्षा से लौट कर भोजनान्तर वह विहार की ड्योढ़ी में ही रहे। उन परिव्राजिकाओं ने भी भिक्षा से लौट उस शाखा को मर्दित देख कर पूछा :—

"इसे किसने कुचला?"

"सारिपुत्र स्थविर ने। यदि तुम शास्त्रार्थ करना चाहो, तो विहार की ड्योढ़ी पर जाओ।"

वे बच्चों से यह सुन फिर नगर में गईं और जनता को इकट्ठा कर विहार की ड्योढ़ी पर पहुँची। वहाँ उन्होंने स्थविर से एक हजार प्रश्न पूछे। स्थविर ने उत्तर देकर पूछा :—"और भी कुछ जानती हो?"

"स्वामी! नहीं जानती हैं।"

"मैं कुछ पूछूँ?"

"स्वामी पूछें। जानतीं होंगी तो कहेंगी।"

स्थविर ने पूछा—"एक बात क्या है?"

वह नहीं जानती थीं। स्थविर ने बताया। वे बोलीं—

"स्वामी! हमारी पराजय हुई। आपकी जय हुई।"

"अब क्या करोगी?"

"हमारे माता पिता ने हमें कहा था कि यदि गृहस्थ से पराजित होना तो उसकी गृहिणी हो जाना और यदि प्रव्रजित से पराजित होना तो उसके पास प्रव्रजित हो जाना। आप हमें प्रव्रजित करें।"

स्थविर ने 'अच्छा' कह उन्हें उत्पलवर्णा स्थविरी के पास प्रव्रजित कराया। सभी शीघ्र ही अर्हत्व को प्राप्त हुईं।

भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, सारिपुत्र स्थविर ने चारों परिव्राजिकाओं का सहायक हो सभी को अर्हत्व प्राप्त करा दिया।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?”

“अमुक बातचीत।”

“भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पहले भी यह इनका सहायक हुआ है। अब तो प्रव्रज्याभिषेक दिलवाया है, किन्तु पहले पटरानी के पद पर स्थापित किया है।”

यह कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में कालिङ्ग राष्ट्र के दन्तपुर नगर में कालिङ्गराज के राज्य करने के समय अस्सक राज्य के पोतलि नगर में अस्सक नाम का राजा राज्य करता था। कालिङ्गराज के पास सैन्यबल था और स्वयं भी वह हाथी के बल का था। उसे कोई अपने से लड़ सकने वाला नहीं दिखाई देता था। उसने युद्धेच्छुक हो अमात्यों से कहा—मेरी युद्ध करने की इच्छा है। प्रतिपक्षी नहीं दिखाई देता। क्या करूँ ?

“महाराज, एक उपाय है। आपकी चारों लड़कियां सुन्दर रूपवाली हैं। उन्हें अलङ्कृत कर, पर्देवाले रथ में बिठा, सेना के साथ ग्राम-निगम तथा राजधानियों में चक्कर लगवायें। जो राजा उन्हें अपने घर में रखना चाहेगा, उससे युद्ध करेंगे।”

राजा ने वैसा कराया। जहाँ जहाँ वह जातीं राजा लोग भय से उन्हें नगर में न आने देते। भेंट भेजकर उन्हें बाहर ही रखते। इस प्रकार सारे जम्बुद्वीप में घूम कर अस्सक राष्ट्र के पोतलि नगर पहुँचीं। अस्सक (राजा) ने भी (नगर-) द्वार बन्द करवा भेंट भेजी। उसका नन्दिसेन नामक अमात्य पण्डित था, बुद्धिमान था और था उपाय-कुशल। उसने सोचा—इन राज-कन्याओं को सारे जम्बुद्वीप में घूम आने पर भी प्रतिपक्षी नहीं मिला। ऐसा होने पर तो सारा जम्बूद्वीप तुच्छ होता है। मैं कालिङ्ग-राज के साथ युद्ध करूँगा। उसने नगरद्वार पर पहुँच, द्वार-पालों को सम्बोधित कर उनके लिये नगर-द्वार खुलवा देने को पहली गाथा कही :—

विवरथ इमासं द्वारं नगरं पविसितुं मया,
अरुणराजस्स सीहेन सुसिट्ठेन सुरक्खितं नन्दिसेनेन ॥

[अरुणराज (अस्सक-नरेश) के (मन्त्री) मुझ पुरुष-सिंह सुशिक्षित नन्दिसेन द्वारा सुरक्षित द्वार खोल दो, जिसमें ये नगर में प्रवेश कर सकें।]

यह कह उसने द्वार खुलवा दिया और उन लड़कियों को अस्सकराजा को दिखाकर कहा—आप डरें नहीं। यह सुन्दर रूपवाली राजकन्यायें हैं। इन्हें अपनी रानियाँ बना लें। उसने उन्हें अभिषिक्त करा उनके साथ आए आदमियों को विदा किया—जाओ, अपने राजा से कहो कि अस्सक-राजा ने राजकन्याओं को रानी बना लिया। उन्होंने जाकर कहा। कलिङ्ग नरेश उसी समय बड़ी भारी सेना ले निकल पड़ा—अस्सकराजा मेरी सामर्थ्य से अभी परिचित नहीं।

नन्दिसेन ने जब उसका आगमन सुना तो सन्देश भिजवाया—अपनी ही सीमा में रहे। हमारी सीमा में न रहे। दोनों राजाओं की सीमाओं के बीच ही युद्ध होगा। उसने लेख सुना तो अपनी राज्य-सीमा पर रुका। अस्सक (नरेश) भी अपनी राज्य-सीमा पर ही रुका।

उस समय बोधिसत्व ऋषि-प्रव्रज्या ग्रहण कर उन दोनों राज्यों के बीच पर्णकुटी में रहते थे। कलिङ्ग-नरेश ने सोचा—श्रमण कुछ जानने वाले होते हैं। कौन कह सकता है कि क्या हो ? किसकी जीत हो, किसकी हार हो ? तपस्वी को पूछूंगा।

उसने भेस बदल, बोधिसत्व के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर बैठ, कुशलक्षेम पूछते हुए कहा—भन्ते, कलिङ्ग-नरेश तथा अस्सकराज युद्ध करने की इच्छा से अपनी-अपनी सीमा में तैयार खड़े हैं। इनमें किसकी जय होगी और किसकी पराजय ?

"महापुण्यवान् ! मैं नहीं जानता कि किसकी जीत होगी और किसकी हार ? हाँ, देवराज शक्र यहाँ आता है। उसे पूछ कर कहूँगा। कल आना।"

शक्र बोधिसत्व की सेवा में आ विराजमान हुआ। बोधिसत्व ने उसे वह बात पूछी। "भन्ते, कालिङ्ग विजयी होगा। अस्सक पराजित होगा। यह इसके पूर्व-लक्षण दिखाई देंगे।"

कालिङ्ग ने अगले दिन आकर पूछा। बोधिसत्व ने कह दिया। वह बिना यह पूछे कि क्या पूर्व-लक्षण प्रकट होगा, खुशी से फूला हुआ चला

गया। वह बात फैल गई। इसे सुन अस्सक-राज ने नन्दिसेन को बुलवाकर पूछा—कलिङ्ग विजयी होगा। हम हारेंगे। अब क्या करना चाहिये?

"महाराज; इसे कौन जानता है कि किसकी जीत होगी, किसकी हार? आप चिन्ता न करें" कह राजा को आश्वासन दे, बोधिसत्व के पास पहुँचा। उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा—भन्ते! किसकी विजय होगी? कौन पराजित होगा?

"कलिङ्ग जीतेगा, अस्सक हारेगा"

"भन्ते विजयी का क्या पूर्व-लक्षण होगा और पराजित होने वाले का क्या?"

"महापुण्यवान्! विजयी का रक्षक देवता सर्वश्वेत वृषभ होगा, दूसरे का एक दम काला। दोनों के रक्षक-देवता जीत-हार का निर्णय करेंगे।"

नन्दिसेन ने यह सुन जाकर राजा के एक हजार महायोद्धा मित्रों को एकत्र कर पास के पर्वत पर ले जाकर पूछा—

"भो! अपने राजा के लिये जीवन परित्याग कर सकोगे?"

"हाँ, कर सकेंगे।"

"तो, इस प्रपात पर से गिरो।"

वह गिरने लगे। उन्हें रोक कर कहा—बस! गिरो मत अपने राजा के लिये जीवन परित्याग करने को दिल से डट कर लड़ो। उन्होंने स्वीकार किया।

संग्राम उपस्थित होने पर 'मेरी विजय होगी ही' सोच कलिङ्ग ढीला पड़ गया। उसकी सेना भी 'हमारी विजय होगी ही' सोच ढीली पड़ गई। (सैनिक) कवच उतार पृथक पृथक हो यथारुचि चल दिये। जोर लगाने के समय जोर नहीं लगाया। दोनों राजा घोड़े पर चढ़ युद्ध करने के लिये एक दूसरे के पास आये। दोनों के रक्षक-देवता भी पहले ही पहुँचे—कलिङ्ग का रक्षक-देवता सर्व-श्वेत वृषभ और दूसरे का एक दम काला। वे परस्पर युद्ध करने के लिये तैयार हुए। लेकिन वे बैल केवल दोनों राजाओं को ही दिखाई देते थे और किसी को नहीं। नन्दिसेन ने अस्सक (-राज) से पूछा—

"महाराज! आपको देवता दिखाई देता है?"

"हाँ दिखाई देता है।"

"कैसा आकार है ?"

"कलिङ्ग का रक्षक-देवता सर्व-श्वेत वृषभ के रूप में दिखाई दे रहा है, हमारा रक्षक-देवता एक दम काला थका हुआ सा।"

"महाराज, आप भयभीत न हों। हम जीतेंगे। कालिङ्ग की हार होगी। आप घोड़े की पीठ से उतर, यह शक्ति (-आयुध) ले, सुशिक्षित सैन्धव (घोड़े) को पेट के पास बायें हाथ से दबा, इन एक सहस्र आदमियों के साथ तेजी से जा, कालिङ्ग के रक्षक-देवता को शक्ति प्रहार से गिरा दें। तब हम हजार जने हजार शक्तियों से प्रहार करेंगे। इस प्रकार कालिङ्ग का रक्षक-देवता नष्ट हो जायगा। तब कालिङ्ग की हार होगी और हम जीत जायेंगे।"

राजा ने 'अच्छा' कह नन्दिसेन के सुझाव के अनुसार जाकर शक्ति से प्रहार किया। अमात्यों ने भी हजार शक्तियों से प्रहार किया। रक्षक-देवता का वहीं प्राणान्त हो गया। उसी समय कालिङ्ग हार कर भाग गया। उसे भागता देख हजार अमात्यों ने हल्ला किया—कालिङ्ग भाग रहा है। कालिङ्ग ने मरने के भय से भागते हुए उस तपस्वी को गाली देते हुए दूसरी गाथा कही:—

जय कलिङ्गानं असय्हसाहिनं
पराजयो अनयो अस्सकानं,
इच्चेव ते भासितं ब्रह्मचारि
न उज्जुभूता वितथं भणन्ति ॥

[असह्य को भी सह सकने वाले कालिङ्गों की विजय होगी और अस्सक-वासियों की पराजय निश्चित है—यही हे ब्रह्मचारी ! तू ने कहा था। जो ऋजु हैं, वह तो झूठ नहीं बोलते !]

इस प्रकार वह तपस्वी को गाली देता हुआ भाग कर अपने नगर पहुँचा। (मार्ग में) रुक कर कहीं (पीछे) देख तक नहीं सका। उसके कुछ दिन बाद शक्र तपस्वी की सेवा में आया। तपस्वी ने उसके साथ बात-चीत करते हुए तीसरी गाथा कही:—

देव मुसावादमुपातिवत्ता
सच्चं धनं परमं तेसु सक्क,
तं ते मुसा भासितं देवराज
किं वा पटिच्च मघवा महिन्द ॥

[हे शक्र ! देवता तो मृषावादी नहीं होते। उनका परम धन सत्य (ही) है। हे देवराज ! हे मघवा ! हे महिन्द ! तू ने जो झूठ बोला वह किस कारण से बोला ?]

यह सुन शक्र ने चौथी गाथा कही :—

ननु ते सुतं ब्राह्मण भञ्ञमाने
देवा न इस्सन्ति पुरिसपरक्कमस्स,
दमो समाधि मनसो अदेज्झो
अव्यग्गता निक्खमणञ्चकाले
दळहञ्च विरियं पुरिसपरक्कमो च,
तेनेव आसि विजयो अस्सकानं ॥

[क्या तूने कभी ब्राह्मणों को यह कहते नहीं सुना कि देवता पराक्रमी पुरुष से ईर्ष्या नहीं करते। संयम, समाधि, मन की एकाग्रता, अव्यग्रता, समय पर निष्क्रमण और दृढ़-वीर्य्य तथा पुरुष-पराक्रम—इन्हीं गुणों के होने से अस्सकों की विजय हुई है।]

कलिङ्ग-राजा के भाग जाने पर अस्सक राजा लूट का माल उठवा अपने नगर को लौटा। नन्दिसेन ने कलिङ्ग के पास सन्देश भेजा—इन चारों राजकन्याओं का दहेज भेजो। यदि नहीं भेजोगे तो जो करना उचित है करूँगा। उसने वह संदेश सुन, डर के मारे उन कन्याओं को जितना दहेज मिलना चाहिए था भेजा। तब से दोनों राजाओं में मेल रहा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय कलिङ्ग-राजा की कन्यायें यह तरुण भिक्षुणियाँ थीं। नन्दिसेन सारिपुत्र। तपस्वी तो मैं ही था।

२०२. महाअस्सारोह जातक

"अदेय्येसु ददं दानं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय आनन्द स्थविर के बारे में कही। 'वर्तमान-कथा' पहले आ ही गई है[1]। शास्ता ने 'पूर्वकाल में पंडितों ने भी अपने उपकारियों का उपकार किया' कह पूर्वजन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बोधिसत्व वाराणसी का राजा हो उत्पन्न हुए। वह धर्मपूर्वक, न्यायपूर्वक राज्य करता था, दान देता था, शील की रक्षा करता था।

प्रत्यन्त-देश के विद्रोह को शान्त करने के लिये वह सेना सहित गया। उसे हार कर घोड़े पर चढ़ भागना पड़ा। भागता भागता वह एक प्रत्यन्त-ग्राम में पहुँचा। वहाँ तीस राज-सेवक रहते थे। वह प्रातःकाल ही गाँव के मध्य में इकट्ठे हो ग्राम-कृत्य करते थे। उसी समय राजा कसे हुए घोड़े पर चढ़ सजा-सजाया ही ग्रामद्वार से गाँवों में प्रविष्ट हुआ। वह 'यह क्या' डर कर, भाग कर, अपने अपने घर में जा घुसे। लेकिन एक ने अपने घर पहुँच राजा की अगवानी कर पूछा—सुना है कि राजा तो प्रत्यन्त-देश में गया है। तू कौन है? राज-पुरुष वा चोर-पुरुष?

"सौम्य! राज-पुरुष।"

'तो आ' कह राजा को घर ले जा अपने पीढ़े पर बिठाया। फिर भार्य्या को 'भद्रे, आ मित्र के पाँव धो' कह भार्य्या से पैर धुलवा अपनी सामर्थ्यानुसार भोजन कराया। फिर 'थोड़ा विश्राम करें' कह बिछौना बिछा दिया। राजा लेट रहा। उसने इतने में घोड़े की काठी खोल, घुमा, पानी पिला, पीठ पर तेल की मालिश कर उसे घास दिया।

इस प्रकार तीन चार दिन राजा की सेवा करता रहा। जिस दिन राजा ने कहा—'मित्र, जाता हूँ' उस दिन भी राजा और अश्व के लिए जो जो करना उचित था, किया। राजा खाकर जाता हुआ बोला—सौम्य!

---

[1] गुण जातक (१५७)

मेरा नाम महाश्वारोह है। मेरा घर नगर के बीच में है। यदि किसी काम से आना हो तो दक्षिण-द्वारपाल से पूछना कि महाश्वारोह किस घर में रहता है और उसे साथ ले हमारे घर आना। इतना कह चला गया। सेना ने भी राजा को न देख नगर के बाहर छावनी डाल ली थी। राजा को देखा तो अगवानी कर राजा के पास पहुँची।

राजा ने नगर में प्रवेश करते समय द्वार में एक द्वारपाल को बुलाया और जनता को एक ओर हटा कर कहा—तात। एक प्रत्यन्त-ग्रामवासी मुझे मिलने की इच्छा से आयगा और तुझे पूछेगा कि महाश्वारोह का घर कहाँ है? तू उसे हाथ से पकड़ मेरे पास लाना। तुझे हजार मिलेगा। वह नहीं आया। उसे न आता देख राजा ने जिस गाँव में वह रहता था उस गाँव की मालगुजारी (बलि) बढ़ा दी। मालगुजारी बढ़ने पर भी नहीं आया। इस प्रकार दूसरी और तीसरी बार भी मालगुजारी बढ़ाई। वह नहीं ही आया।

तब उस गाँव के रहने वालों ने इकट्ठे हो उसे कहा—आर्य! तेरे अश्वारोह के आने के समय से हम मालगुजारी से इतने पीड़ित हो गये कि सिर भी नहीं उठा सकते! जा महाश्वारोह से कहकर हमें मालगुजारी से मुक्त करा।

"अच्छा, जाता हूँ। लेकिन खाली हाथ नहीं जा सकता। मेरे मित्र के दो बच्चे हैं। उनके लिये, उसकी भार्य्या के लिये तथा मेरे मित्र के लिये कपड़े लत्ते तथा गहने तैयार करो।"

"अच्छा, तैयार करते हैं" कह उन्होंने सब भेंट तैयार की।

उसने वे सब और अपने घर पके पूए ले, दक्षिण-द्वार पहुँच, द्वारपाल से पूछा—"मित्र, महाश्वारोह का घर कहाँ है?" उसने "आ, तुझे बताऊँ" कह उसे हाथ से लिवा जाकर राजद्वार पर पहुँचाया। राजा 'द्वारपाल प्रत्यन्त-वासी को लेकर आया है' सुनते ही आसन से उठ खड़ा हुआ और बोला—मेरा मित्र और उसके साथ आये हुए (सब) आवें। उसने उसकी अगवानी कर, देखते ही गले लगा कर पूछा—मेरी मित्राणी और बच्चे स्वस्थ तो हैं न? फिर हाथ पकड़, महान् तल्ले पर चढ़, उसे श्वेत-छत्र के नीचे बिठाया और पटरानी को बुलाकर कहा—भद्रे! मेरे मित्र के पाँव धो।

उसने उसके पाँव धोये। राजा ने सोने की झंकारी से पानी डाला। देवी ने पाँवों धोकर उनमें सुगन्धित तेल की मालिश की। राजा ने पूछा—मित्र हमारे लिये कुछ खाने को है? उसने "है" कह थैली में से पूए निकाले। राजा ने सोने की थाली में ले उसका आदर करते हुए 'मेरे मित्र का लाया हुआ खाओ' कह देवी और अमात्यों को दे स्वयं भी खाये।

उसने दूसरी भेंट भी सामने रखी। राजा ने उसके प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए काशी (के बने) वस्त्र उतार कर उसके लाये वस्त्र पहने। देवी ने भी काशी-वस्त्र और अलङ्कार उतार उसके लाये वस्त्र तथा गहने पहने। राजा ने उसे भोजन खिलवा एक अमात्य को आज्ञा दी—जा, जैसे मेरी हजामत बनती है उसी तरह इसकी हजामत बनवा, सुगन्धित जल से स्नान करा, लाख के मूल्य का काशी-वस्त्र पहनवा, राजाभरण से अलङ्कृत करवा कर ला। उसने वैसा किया।

राजा ने नगर में मुनादी करा, अमात्यों को इकट्ठा किया और श्वेतछत्र के मध्य में शुद्ध हिंगुल से रंगा सूत्र गिरा, आधा-राज्य दे दिया। उस समय से खाना, पीना सोना इकट्ठा होने लगा। परस्पर विश्वास दृढ़ हो गया, ऐसा जिसे कोई छिन्न-भिन्न न कर सके। राजा ने उसके स्त्री-पुत्रों को भी बुलवा, नगर में मकान बनवा दिया। वे मिल-जुल कर प्रसन्न चित्त रह राज्य करते।

अमात्यों ने क्रोधित हो राजपुत्र को कहा—कुमार! राजा ने एक गृहस्थ को आधा राज्य दे दिया है। वह उसके साथ खाता, पीता, सोता है और बच्चों से उसे नमस्कार करवाता है। हम नहीं जानते कि इसने राजा का क्या उपकार किया है? राजा क्या करता है? हमें लज्जा आती है। तू राजा से कह।

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। फिर सारी बात राजा को सुनाकर निवेदन किया—महाराज, ऐसा न करें।

"तात! मैं युद्ध में पराजित होकर कहाँ रहा, जानते हो?"

"देव! नहीं जानता हूं।"

"मैं इसी के घर में रहकर स्वस्थ हो आकर राज्य करने लगा हूँ। जिसने मेरा इतना उपकार किया, उसे कैसे सम्पत्ति न दूँ?"

इतना कह बोधिसत्व ने 'तात ! जो जिसे देना अयोग्य है, उसे देता है और जिसे देना योग्य है उसे नहीं देता है वह जब आपत्ति में पड़ता है तो (कोई) उसका कुछ उपकार नहीं करता' स्पष्ट करते हुए ये गाथायें कहीः—

अदेय्येसु ददं दानं देय्येसु नप्पवेच्छति,
आपासु व्यसनं पत्तो सहायं नाधिगच्छति ॥
नादेय्येसु ददं दानं देय्येसु यो पवेच्छति,
आपासु व्यसनं पत्तो सहायमधिगच्छति ॥
सञ्ञोग सम्भोग विसेसदस्सनं
अनरियधम्मेसु सठेसु नस्सति,
कतञ्च अरियेसु च अञ्जसेसु च
महप्फलो होति अणुम्पि तादिसु ॥
यो पुब्बे कतकल्याणो अका लोके सुदुक्करं,
पच्छा कयिरा न वा कयिरा अच्चन्तं पूजनारहो ॥

[जो जिन्हें देना अयोग्य है उन्हें देता है और जिन्हें देना चाहिए उन्हें नहीं देता, उसे आपत्ति में कष्ट भोगना पड़ने पर सहायक नहीं मिलता। जो जिन्हें देना अयोग्य है उन्हें नहीं देता और जिन्हें देना योग्य है उन्हें देता है, उसे आपत्ति में कष्ट भोगना पड़ने पर सहायक मिलता है।

अनार्य-स्वभाव शठ पुरुषों के साथ का संयोग, संभोग अथवा उनके प्रति किया गया विशेष उपकार नष्ट हो जाता है। आर्यों के श्रेष्ट मार्गानुयायियों वा स्थिरचित्त-मनुष्यों के प्रति किया गया थोड़ा भी उपकार महान् फल का देने वाला होता है।

जिसने पहले उपकार किया है उसने लोक में दुष्कर कार्य्य किया है, वह पीछे उपकार करे वा न करे, वह अत्यन्त पूजनीय है।]

और कहा भी गया :—

यथा बीजं अग्गिस्मिं डहति न विरूहति,
एवं कतं असप्पुरिसे डय्हति न विरूहति ॥
कतञ्ञुम्हि च पोसम्हि सीलवन्ते अरियवुत्तिने,
सुखेत्ते विय बीजानि कतं तम्हि न नस्सति ॥

[जिस प्रकार आग में पड़ा हुआ बीज उगता नहीं है जल जाता है, उसी प्रकार असत्पुरुष का जो उपकार किया जाता है वह भी फलता नहीं है जल जाता है।]

यह सुन न अमात्य ही फिर कुछ बोले, न राजकुमार।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय प्रत्यन्त-वासी आनन्द था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

२०३. एकराज जातक

"अनुत्तरे कामगुणे समिद्धे ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल राजा के एक सेवक के बारे में कही। वर्तमान-कथा नीचे सेय्यंस जातक[1] में आ ही गई है। यहाँ इस कथा में तो शास्ता ने 'केवल तू ही अनर्थ से अर्थ करने वाला नहीं है, पुराने पण्डितों ने भी अपने अनर्थ से अर्थ किया है' कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पुराने समय में वाराणसी राजा के उपस्थायक अमात्य ने राजा के अन्तःपुर को दूषित कर दिया। राजा ने प्रत्यक्ष उसका दोष देख उसे राष्ट्र से निकाल दिया। वह दब्बसेन नामक कोशलराज की सेवा में रहने लगा... आदि सब **महासीलव जातक**[2] में आया ही है।

इस कथा में तो दब्बसेन ने महान् तल्ले पर मन्त्रियों के बीच बैठे वाराणसी नरेश को पकड़वा, छींके में डलवा, उत्तर की देहली में सिर नीचे पैर ऊपर कर लटकवा दिया। राजा चोर-राजा के प्रति मैत्री भावना कर योग द्वारा

---

[1] **सेय्यंस जातक (२८२)**

[2] **महासीलव जातक (५१)**

ध्यानावस्थित हुआ। उसका बन्धन टूट गया। तब राजा आकाश में पालथी मार बैठा। चोर-राजा के शरीर में जलन पैदा हुई। 'जलता हूँ' कहता हुआ इधर उधर लोटने लगा। 'इसका क्या कारण है?" पूछने पर बताया गया कि महाराज आप ने इस प्रकार के धार्मिक राजा को निरपराध द्वार की उंदर की देहली में सिर नीचे करके लटकवा दिया है।

"तो जल्दी से जाकर उसे मुक्त करो।"

लोगों ने जाकर राजा को आकाश में बैठा देख आकर दब्ब सेन को कहा। उसने जल्दी से पहुँच, उसकी वन्दना कर, क्षमा मांग पहली गाथा कही:—

> अनुत्तरे कामगुणे समिद्धे
> भुत्वान पुब्बेवसि एकराजा,
> सो दानि दुग्गे नरकम्हि खित्तो
> नप्पजहे वण्ण बलं पुराणं ॥

[हे एकराज ! तू पहले अनुत्तर स्मृद्ध काम-भोगों को भोगता हुआ रहा। अब तुझे दुष्कर नरक में फेंक दिया है। तो भी तू अपने पुराने वर्ण-बल को (कैसे) बनाये है?]

यह सुन बोधिसत्व ने शेष गाथायें कहीं:—

> पुब्बे खन्ती च तपो च मय्हं
> सम्पत्थिता दब्बसेना अहोसि,
> तं दानि लद्धान कथन्नु राज
> जहे अहं वण्णबलं पुराणं ॥
> सब्बे किरेव परिनिट्ठितानि
> यसस्सिनं पञ्ञवन्तं विसय्ह,
> यसो च लद्धा पुरिमं उळारं
> नप्पजहे वण्णबलं पुराणं
> पनुज्ज दुक्खेन सुखं जनिन्द
> सुखेन वा दुक्खमसय्हसाहि,
> उभयत्थ सन्तो अभिनिब्बुतत्ता
> सुखे च दुक्खे च भवन्ति तुल्या ॥

[हे दिव्यसेन ! मेरे द्वारा शान्ति और तप की पहले ही प्रार्थना की गई थी । उन्हें पाकर मैं अब अपने पुराने वर्ण को कैसे त्यागूं ? हे यशस्वी ! हे प्रज्ञावान् ! हे सहनशील ! ये सब (दान शील आदि) कर्म पहले ही कर चुका हूँ और अपूर्व तथा उदार यश की प्राप्ति भी हो जाने के कारण मैं अपने पुराने वर्ण बल (सौन्दर्य) को नहीं छोड़ता हूँ । हे जनेन्द्र ! दुःख से सुख को दूरकर अथवा हे सहन शील ! सुख से दुःख को दूर कर जो शान्त पुरुष हैं, वे दोनों के प्रति उपेक्षावान् हो सुख तथा दुःख दोनों के प्रति समान-भाव रखते हैं ।]

यह सुन दब्बसेन ने बोधिसत्व से क्षमा माँगी । अपना राज्य आप ही संभालें, मैं चोरों से रक्षा-करूँगा, कह उस दुष्ट-अमात्य को राज-दण्ड दिला चला गया । बोधिसत्व भी अमात्यों को राज्य सौंप ऋषि-प्रव्रज्या ले ब्रह्मलोक परायण हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल विठाया । उस समय दब्बसेन आनन्द था । वाराणसी राजा तो मैं ही था ।

३०४. दद्दर जातक

"इमानि मं दद्दर तापयन्ति..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक क्रोधी के बारे में कही:—

क. वर्तमान कथा

कथा तो नीचे कही ही गई है। उस समय धर्मसभा में उसके क्रोधीपन की बात चलने पर शास्ता ने आकर पूछा:—

"भिक्षुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत ।"

"शास्ता ने उस भिक्षु को बुलवा कर पूछा—

"भिक्षु ! क्या तू सचमुच क्रोधी है?"

"भन्ते ! हाँ।"

'भिक्षुओ, यह केवल अभी क्रोधी नहीं है, पूर्व (जन्म) में भी यह क्रोधी ही रहा है। इसके क्रोध के कारण शुद्ध नागराज-योनि में उत्पन्न पुराने पण्डितों को भी तीन वर्ष तक गन्दगी भरी कुरड़ी में रहना पड़ा था' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में जो दद्दरपर्वत में दद्दर नागभवन है, वहाँ राज्य करने वाले दद्दर राजा के महादद्दर नाम के पुत्र हुए। छोटे भाई का नाम था चूळदद्दर। वह क्रोधी कठोर स्वभाव का था और नाग-माणवकों को गाली दिया करता तथा पीटा करता था। नागराजा को जब उसके कठोर स्वभाव का पता लगा तो उसने उसे नागभवन से निकाल देने की आज्ञा दी। महादद्दर ने पिता से क्षमा माँग आज्ञा टलवा दी। दूसरी बार भी राजा को उस पर क्रोध आया। दूसरी बार भी क्षमा माँग ली। लेकिन तीसरी बार उसने आज्ञा दी—तू इस अनाचारी को निकालने से मुझे रोकता है, जाओ तुम दोनों इस नागभवन से निकल वाराणसी में कूड़ा फेंकने की जगह जाकर तीन वर्ष तक रहो। वे वहाँ जाकर रहने लगे।

उन्हें पानी तक कूड़ा फेंकने की जगह में भोजन ढूँढ़ते फिरते देख गाँव के लड़के प्रहार करके, पत्थर लकड़ी आदि फेंकते और गाली देते थे—कौन हैं ये बड़े बड़े सिरवाले, चीते (जैसे) पानी के सर्प। चूळदद्दर क्रोधी होने के कारण उनका वह अपमान सहन नहीं कर सकता था। वह बोला—भाई ! यह बालक हमारा मजाक उड़ाते हैं। यह नहीं जानते कि हम विषैले सर्प हैं। मैं इनका अपमान नहीं सह सकता हूँ। मैं इनको फुँकार मार कर नष्ट करूँगा। इस प्रकार भाई के साथ बातचीत करते हुए उसने पहली गाथा कही:—

इमानि मं दद्दर तापयन्ति
वाचा दुरुत्तानि मनुस्सलोके,

मण्डूकभक्खा उदकन्तसेवी
आसीविसं मं अविसा सपन्ति ॥

[हे दद्दर ! ये मनुष्यलोक की दूषित वाणियाँ मुझे दुःख देती हैं। ये निर्विष ग्राम-बालक मुझे 'मेण्डक खाने वाला तथा पानी के तट पर रहने वाला' कह कह कर गाली देते हैं।]

उसकी बात सुन महादद्दर ने शेष गाथायें कहीं—

सका रट्ठा पब्बाजितो अञ्ञं जनपदं गतो,
महन्तं कोट्ठं कयिराथ दुरुत्तानं निधेतवे ॥
यत्थ पोसं न जानन्ति जातिया विनयेन वा,
न तत्थ मानं कयिराथ वसमञ्ञातके बने ॥
विदेसवासं वसतो जातवेदसमेनपि,
खमितब्बं सपञ्ञेन अपि दासस्स तज्जितं ॥

[अपने देश से निकाल दिये जाने पर तथा दूसरे जनपद में जाने पर दुरुक्त वाणी (को रखने) के लिये आदमी अपने पास बड़ा कोठा रखे। अपरिचित जनों में रहते समय, जहाँ कोई अपनी जाति तथा शील से परिचित न हो, मान न करे। अग्नि के समान (प्रचण्ड) होने पर भी बुद्धिमान आदमी को चाहिए कि वह विदेश में रहते दास की घुड़की तक को भी क्षमा कर दे।]

इस प्रकार वे वहाँ तीन वर्ष तक रहे। तब उनके पिता ने उन्हें बुलवा लिया। उस समय से वे अभिमान रहित हो गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर क्रोधी भिक्षु अनागामी-फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय चूळदद्दर क्रोधी भिक्षु था। महादद्दर तो मैं ही था।

३०५. सीलवीमंसन जातक

"नत्थि लोके रहो नाम..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कामुकता के निग्रह करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कथा एकादश परिच्छेद के **पाणीय जातक**[1] में आयेगी। यहाँ यह संक्षिप्त वर्णन है। जेतवन-निवासी पाँच सौ भिक्षु आधी रात के बाद मन में काम भोग सम्बन्धी संकल्प उठाने लगे। शास्ता दिन-रात के छओं हिस्सों में उसी प्रकार भिक्षुओं पर सदा नजर रखते थे जैसे एक आँख वाला अपनी (एक) आँख की रक्षा करता है, एक ही पुत्र वाला अपने पुत्र की तथा चमरी अपनी पूँछ की। उन्होंने रात को दिव्यचक्षु से जेतवन को देखा तो उन्हें वे भिक्षु ऐसे लगे जैसे चक्रवर्ती राजा के महल में चोर घुस गये हों। गन्धकुटी खुलवा आनन्द स्थविर को बुलवा उन्होंने कहा—"आनन्द ! कोटि-सन्थार में भिक्षुओं को इकट्ठा कर गन्धकुटी द्वार पर आसन बिछा दो।" उसने वैसा करके शास्ता को सूचना दी। शास्ता ने बिछे आसन पर बैठ भिक्षुओं को सामुहिक तौर पर आमन्त्रित कर "भिक्षुओ, पुराने पण्डितों ने यह सोचकर कि कोई भी जगह 'छिपी' नहीं होती, पाप नहीं किया" कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्वजन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मणकुल में पैदा हुए। बड़े होने पर वहीं वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य के पास पाँच सौ विद्यार्थियों में ज्येष्ठ होकर विद्या सिखाने लगे। आचार्य की आयु-प्राप्त लड़की थी। उसने सोचा कि इन विद्यार्थियों के शील की परीक्षा कर जो सदाचारी होगा उसे ही पुत्री दूँगा। उसने विद्यार्थियों को बुला कर कहा—तात ! मेरी लड़की आयुप्राप्त हो गई। मैं इसका विवाह करूँगा।

---

[1] **पाणीय जातक (४५९)**

वस्त्रों तथा अलङ्कारों की अपेक्षा है। तुम अपने सम्बन्धियों की आँख बचाकर चुराकर वस्त्र तथा अलङ्कार लाओ। जिसे किसी ने न देखा हो, ऐसे ही वस्त्रा-लङ्कार ग्रहण करूँगा। जिन्हें किसी ने देख लिया होगा ऐसे नहीं ग्रहण करूँगा। वे 'अच्छा' कह स्वीकार कर तब से सम्बधियों की आँख बचा चुराकर वस्त्र तथा आभरण लाने लगे। आचार्य जो कुछ कोई लाता उसे पृथक पृथक ही रखते जाते। बोधिसत्व कुछ नहीं लाये। आचार्य ने पूछा—तात तू कुछ नहीं लाता ?

"आचार्य्य ! हाँ।"

"तात ! क्यों ?"

"तुम किसी के देखते लाई चीज ग्रहण नहीं करते। मैं पाप करने के लिए कोई 'छिपी' जगह नहीं देखता।"

यह प्रकट करते हुए ये दो गाथायें कहीः—

नत्थि लोके रहो नाम पापकम्मं पकुब्बतो,
पस्सन्ति वनंभूतानि तं बालो मञ्ञती रहो।
अहं रहो न पस्सामि सुञ्ञंवापि न विज्जति,
यत्थ अञ्ञं न पस्सामि असुञ्ञं होति तंमया॥

[पाप कर्म करने वाले के लिये ऐसी कोई जगह नही है जहाँ कोई न हो। मूर्ख आदमी उस स्थान को जहाँ वन के प्राणी देखते रहते हैं 'छिपी जगह' मानता है। मैं किसी जगह को 'छिपी' जगह नहीं देखता। कोई स्थान 'शून्य' स्थान नहीं है। जहाँ और कोई नहीं दिखाई देता उस स्थान पर मैं स्वयं तो होता ही हूँ।]

आचार्य ने उस पर प्रसन्न हो कहा—तात ! मेरे घर में धन है। मैं ने तो सदाचारी को लड़की देने की इच्छा से इन विद्यार्थियों की परीक्षा लेने के लिए ऐसा किया। उसमें 'मेरी लड़की तुम्हारे ही योग्य है' कह, लड़की अलंकृत कर बोधिसत्व को दी और शेष विद्यार्थियों से कहा—तुम जो धन लाये हो उसे अपने अपने घर ले जाओ।

शास्ता ने 'भिक्षुओ ! अपनी दुःशीलता के कारण ही उन दुःशील विद्यार्थियो को वह स्त्री नहीं मिली। दूसरे पंडित विद्यार्थियों ने शीलवान होने के ही कारण प्राप्त की।' इतना कह अभिसम्बुद्ध होने पर शेष दो गाथाएँ कहीः—

दुज्जच्चो च सुजच्चो च नन्दो च सुखवच्छको,
वेज्जो अद्धुवसीलोच ते धम्मं जहुमत्थिका ।
ब्राह्मणो च कथं जहे सब्बधम्मानपारगू,
यो धम्ममनुपालेति धितिमा सच्चनिक्कमो ॥

[दुज्जच्च, सुजच्च, नन्द, सुखवच्छक, वेज्ज तथा अद्धुव शील आदि स्त्री की अपेक्षा रखने वाले उन विद्यार्थियों ने धर्म छोड़ दिया । लेकिन सभी धर्मों में पारंगत ब्राह्मण जो धृतिमान हैं जो सत्य में दृढ़ है, तथा जो धर्म का पालन करता है वह उसे कैसे छोड़े ?]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में वे पाँच सौ भिक्षु अर्हत हो गये । उस समय आचार्य सारिपुत्र थे । पण्डित विद्यार्थियों तो मैं ही था ।

३०६. सुजाता जातक

"किं अण्डका..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय मल्लिका देवी के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन उसका राजा से प्रेम-कलह हो गया—शयन-कलह भी कहा जाता है । राजा क्रोधित हो उसकी ओर से एक दम लापरवाह हो गया । मल्लिका देवी सोचने लगी—मैं समझती हूँ कि शास्ता यह नहीं जानते कि राजा मुझ पर क्रुद्ध है । शास्ता जानकर, 'इन दोनों का मेल कराऊँगा' सोच पूर्वाह्ण समय पात्र-चीवर ले पाँच सौ भिक्षुओं के साथ श्रावस्ती में प्रविष्ट हो राजद्वार पर पहुँचे । राजा ने तथागत का पात्र ले, घर में लिवा लाकर, बिछे आसन पर बिठाया । फिर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ के चरण धुला यवागू तथा खाने को कुछ लाया । शास्ता ने पात्र को हाथ से ढककर पूछा—देवी कहाँ है ?

"भन्ते ! उससे क्या काम ? वह अपने यश के मान में चूर है।"

"महाराज, स्वयं यश देकर, स्त्री को ऊँचा स्थान दे, उसके द्वारा किये अपराध को न सहना अयोग्य है।"

राजा ने शास्ता का वचन सुन उसे बुलवाया। उसने शास्ता को परोसा। शास्ता 'परस्पर मिलकर रहना चाहिये' कह ऐक्य-रस की प्रशंसा कर चले गये। उस समय से दोनों मिलकर रहने लगे।

भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात चलायी—आयुष्मानो ! शास्ता ने एक शब्द से ही दोनों में मेल करा दिया। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत।"

"न केवल अभी किन्तु भिक्षुओ, मैंने पहले भी एक उपदेश से ही इनमें मेल कराया है।"

इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके अर्थधर्मानुशासक अमात्य थे। एक दिन राजा खिड़की खोले राजाङ्गन की ओर देखता खड़ा था। उसी समय एक माली की लड़की, जो सुन्दर थी और जिसकी चढ़ती जवानी थी, बेरों की टोकरी सर पर रख, 'बेर लो, बेर लो' कहती हुई राजाङ्गन में से गुजर गई। राजा ने उसका शब्द सुना तो आसक्त हो गया। यह जान कि वह किसी की नहीं है, उसने उसे बुलवा पटरानी बना, बहुत संपत्ति दी। वह राजा की प्रिया हुई, मन को अच्छी लगने वाली। एक दिन राजा सोने की थाली में बैठा बेर खा रहा था। सुजाता देवी ने राजा को बेर खाते देख 'महाराज ! आप यह क्या खा रहे हैं ?' पूछते हुए पहली गाथा कही:—

किं अण्डका इमे देव निक्खित्ता कंसमल्लके,
उपलोहितका वग्गु तम्मे अक्खाहि पुच्छितो ॥

[देव ! यह सोने की थाली में रखे हुए सुन्दर लालवर्ण अण्डे से क्या हैं ?—मैं पूछ रही हूँ, मुझे कहें।]

राजा ने क्रोधित हो 'बेर बेचनेवाली माली की लड़की अपने कुल के बेरों को भी नहीं पहचानती' कह दो गाथाएँ कहीं:—

यानि पुरेतुवं देवि भण्डुनन्तकवासिनी,
उच्छङ्गहत्था पचिनासि तस्सा ते कोलियं फलं ॥
उड्डय्हते न रमति भोगा विप्पजहन्ति तं,
तत्थेविमं पटिनेथ यत्थ कोलं पचिस्सति ॥

[हे देवि ! जिन्हें तुम पहले सिरमुँडी, चिथड़े पहने, अपनी गोद में इकट्ठे करती थीं, ये वही तेरे कुल के फल हैं ।

यह यहाँ उबल रही है, यहाँ मन नहीं लगता, इसे राज-भोग छोड़ रहे हैं । इसे वहीं ले जाओ जहाँ यह जाकर बेर चुगेगी ।]

बोधिसत्व ने सोचा मुझे छोड़ कोई दूसरा इनका मेल न करा सकेगा । मैं राजा को समझा इसका घर से निकालना रोकूँगा । उसने चौथी गाथा कही:—

होन्ति हेते महाराज इद्धिपत्ताय नारिया,
खम देव सुजाताय मास्सा कुज्झि रथेसभ ॥

[महाराज ! ऊँचे स्थान पर पहुँची स्त्रियों में यह दोष होते ही हैं । हे देव ! सुजाता को क्षमा करें । हे राजश्रेष्ठ ! इस पर क्रोध न करें ।]

राजा ने उसके वचन से देवी के उस अपराध को क्षमा कर दिया और उसे यथास्थान रहने दिया । तब से दोनों मेल से रहने लगे ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय वाराणसी राजा कोशल-राजा थे । सुजाता मल्लिका थी । अमात्य तो मैं ही था ।

२०७. पलास जातक

"अचेतनं ब्राह्मण..." यह शास्ता ने परिनिर्वाण-शैय्या पर लेटे लेटे आनन्द स्थविर के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह आयुष्मान् शोकाभिभूत हो उद्यान के बरामदे में कुण्डी पकड़े रो रहे थे कि आज रात को तड़के ही शास्ता का परिनिर्वाण हो जायगा, मैं अभी शैक्ष्य ही हूँ, मेरा जीवनोद्देश्य अभी पूरा नहीं हुआ, और मेरे शास्ता परिनिर्वृत्त हो जायेंगे। मैं पच्चीस वर्ष तक जो उनकी सेवा में रहा वह सब निष्फल होगा। शास्ता ने उसे न देख, पूछा—आनन्द कहाँ है? वृत्तान्त ज्ञात होने पर उसे बुलवा शास्ता ने कहा—आनन्द! तू ने पुण्यार्जन किया है। प्रयत्न कर। तू शीघ्र ही अनाश्रव हो जायगा। चिन्ता मत कर। जब पूर्व जन्म में सराग होने के समय भी तू ने मेरी जो सेवा की वह निष्फल नहीं हुई, तो अब जो तूने मेरी सेवा की है वह कैसे निष्फल होगी?

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वाराणसी से थोड़ी दूर पलास वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए। उस समय वाराणसी-निवासी देवता-पूजक थे। नित्य बलि-कर्म आदि में लगे रहने वाले। एक दरिद्र ब्राह्मण ने सोचा—मैं भी एक देवता की सेवा करूँगा। वह एक ऊँचाई पर खड़े बड़े-बड़े पत्तों वाले वृक्ष की जड़ में (भूमि) बराबर कर, घास छील, चारों ओर बालु बिछवा, झाड़ू दे, वृक्ष पर पञ्चाङ्गुलि का चिह्न बना, माला, गन्ध, धूप से पूजा कर, दीपक जला, तथा वृक्ष की प्रदक्षिणा कर जाता और कहता—सुखपूर्वक सोना। दूसरे दिन प्रातःकाल ही जाकर पूछता—सुख से तो सोये? एक दिन उस वृक्ष-देवता ने सोचा—यह ब्राह्मण मेरी बहुत सेवा करता है। मैं इसे पूछ कर जिस इच्छा की पूर्ति के लिये यह मेरी सेवा करता है वह पूरी करूँगा। उसने उस ब्राह्मण के आकर झाड़ू लगाते समय वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर, पास खड़े हो पहली गाथा कही :—

अचेतनं ब्राह्मण अस्सुणन्तं,
जानो अजानन्तमिमं पलासं।
आरद्धविरियो धुवं अप्पमत्तो,
सुखसेय्यं पुच्छसि किस्स हेतु?

[हे ब्राह्मण ! तू जान-बूझ कर मुझ चेतना-रहित, न सुन सकने वाले, न जान सकने वाले पलास-वृक्ष से क्यों नित्य आलस्य-रहित होकर पूछता है—क्या सुखपूर्वक सोये ? इसमें क्या हेतु है ?]

यह सुन ब्राह्मण ने दूसरी गाथा कही :—

दूरे सुतोचेव ब्रहाच रुक्खो,
देसे ठितो भूतनिवासरूपो ।
तस्मा नमस्सामि इमं पलासं,
ये चेत्थ भूता ते च धनस्स हेतु ॥

[दूर से ही प्रगट, महान्, (ऊँचे) प्रदेश में स्थित, तथा देवता का निवास स्थान होने के योग्य है । इसी लिये इस पलास-वृक्ष और इसमें रहने वाले देवता की पूजा करता हूँ, जिससे मुझे धन की प्राप्ति हो ।]

यह सुन ब्राह्मण पर प्रसन्न हो वृक्ष-देवता ने कहा—ब्राह्मण ! मैं इस वृक्ष पर रहने वाला देवता हूँ । डर मत । मैं तुझे धन दूँगा ।

इस प्रकार उसे आश्वासन दे, अपने विमान-द्वार पर देव-प्रताप के साथ आकाश में खड़े हो शेष दो गाथायें कहीं :—

सो ते करिस्सामि यथानुभावं,
कतञ्ञुतं ब्राह्मण पेक्खमानो ।
कथं हि आगम्म सतं सकासे,
मोघानि ते अस्सु परिफन्दितानि ॥
यो तिन्दुरुक्खस्स परो पिलक्खु,
परिवारितो पुब्बयञ्ञो उळारो ।
तस्सेव मूलस्मिं निधी निखातो,
अदायादो गच्छ तं उद्धराहि ॥

[हे ब्राह्मण ! मैं अपने में कृतज्ञता को देखता हूँ । इसलिये मैं यथा-सामर्थ्य तुम्हारा उपकार करूँगा । यह कैसे हो सकता है कि सत्पुरुष के पास आने पर भी तुम्हारा प्रयत्न असफल हो !

यह जो तिन्दु (?) वृक्ष के आगे पाकर-वृक्ष है, उसी की जड़ में चारों ओर पूर्व-यज्ञों के फलस्वरूप विशाल खजाना गड़ा हुआ है । वह किसी का नहीं है । जा उसे खोद कर निकाल ले ?]

इतना कह चुकने पर उस देवता ने उसे फिर कहा :—

"ब्राह्मण ! तुझे इसे खोद कर निकालने में कष्ट होगा। तू जा। मैं ही इसे तेरे घर ले जाकर अमुक स्थान में गाड़ दूँगा। तू आजन्म इस धन का भोग करना, दान देना और सदाचार-पूर्वक रहना।"

इस प्रकार ब्राह्मण को उपदेश दे वह धन उसके घर पहुँचा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय ब्राह्मण आनन्द था। वृक्ष देवता तो मैं ही था।

३०८. जवसकुण जातक

"अकरह्मस ते किच्चं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय देवदत्त की अकृतज्ञता के बारे में कही...। "भिक्षुओ, देवदत्त केवल अभी अकृतज्ञ नहीं है, पहले भी अकृतज्ञ ही रहा है" कह पूर्वजन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में कठफोड़ पक्षी की योनि में पैदा हुए। एक दिन मांस खाते समय एक सिंह के गले में हड्डी फँस गई। गला सूज गया। शिकार नहीं कर सकता था। बड़ी वेदना होती थी। चुगने जाते समय उस पक्षी ने शाखा पर बैठे ही बैठे उसे देखकर पूछा—मित्र ! तुझे क्या कष्ट है ? उसने वह हाल कहा। "मित्र ! मैं यह तेरी हड्डी निकाल दूँ। लेकिन भय से तेरे मुँह में प्रविष्ट होने का साहस नहीं होता। कहीं मुझे खा ही न जाये !"

"मित्र ! डर मत। मैं तुझे नहीं खाऊँगा। मेरा प्राण बचा।"

उसने 'अच्छा' कह उसे करवट लिटाया। फिर 'कौन जानता है यह क्या कर बैठे' सोच उसके नीचे और ऊपर के जबड़े में एक लकड़ी लगा जिसमें वह मुँह न बंद कर सके, (उसके) मुँह में घुस हड्डी के सिरे पर

चोंच से चोट की। हड्डी गिर कर (बाहर) गई। उसने हड्डी गिरा, सिंह के मुँह से निकलते समय लकड़ी को चोंच से गिरा दिया और निकल कर शाखा पर जा बैठा। सिंह निरोग होकर एक दिन जंगली भैंसे को मार कर खा रहा था। पक्षी ने सोचा—इसकी परीक्षा करूँगा। उसने उसके ऊपर शाखा पर लटकते हुए उससे बातचीत करते हुए पहली गाथा कही :—

अकरह्मस ते किच्चं यं बलं अहुवह्मसे,
मिगराज नमो त्यत्थु अपि किञ्चि लभामसे ॥

[हे मृगराज ! यथाशक्ति हमने तेरा उपकार किया था। तुझे नमस्कार है। कुछ हमें भी मिले।]

यह सुन शेर ने दूसरी गाथा कही :—

मम लोहितभक्खस्स निच्चं लुद्दानि कुब्बतो,
दन्तन्तरगतो सन्तो तं बहुं यम्पि जीवसि ॥

[मेरे नित्य शिकार खेलने वाले, रक्त पीने वाले के मुँह में जाकर यही बहुत है कि तू जीता है।]

यह सुन पक्षी ने शेष दो गाथायें कहीं :—

अकतञ्ञुमकत्तांर कतस्स अप्पतिकारकं,
यस्मिं कतञ्ञुता नत्थि निरत्था तस्स सेवना।
यस्स सम्मुखचिण्णेन मित्तधम्मो न लब्भति,
अनुसुय्यमनक्कोसं सणिकं तह्मा अपक्कमे ॥

[जो अकृतज्ञ है, जो कुछ कर नहीं सकता, जो उपकार के बदले में प्रत्युपकार नहीं कर सकता, जिसमें कृतज्ञता का भाव नहीं है उसकी सेवा करना निरर्थक है।

जिसका साक्षात् उपकार करने पर भी मित्र-धर्म की प्राप्ति नहीं होती, उसके प्रति विना असूया किये और उसे विना बुरा भला कहे, उसके पास से शीघ्र ही दूर हो जाना चाहिये।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय सिंह देवदत्त था। पक्षी तो मैं ही था।

३०६. छवक जातक

"सब्बं इदं चरिमवतं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय षड्वर्गीय भिक्षुओं के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कथा विनय (पिटक) में[1] विस्तार से आई ही है। यहाँ यह संक्षेप से है। शास्ता ने षड्वर्गीय भिक्षुओं को बुलाकर कहा—भिक्षुओ, क्या तुम सचमुच नीचे आसन पर बैठ, ऊँचे आसन पर बैठे हुए को धर्मोपदेश देते हो?"

"भन्ते! हां।"

शास्ता ने उन भिक्षुओं की निन्दा करते हुए कहा—भिक्षुओ, मेरे धर्म का इस प्रकार अपमान करना अनुचित है। पुराने पण्डितों ने नीचे आसन पर बैठ बाहरी मन्त्र बँचवाने वालों तक की भी निन्दा की है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व चाण्डाल योनि में पैदा हो, बड़े होने पर कुटुम्ब पालने लगे। उसकी स्त्री को आम का दोहद पैदा हुआ। वह बोली—स्वामी! आम खाना चाहती हूँ।

"भद्रे! इस समय आम नहीं है। कोई दूसरा खट्टा फल लाऊँगा।"

"स्वामी! मुझे आम मिलेगा तभी जीऊँगी, नहीं मिलेगा तो जीती नहीं रहूँगी।"

---

[1] विनयपिटक (सुत्त विभंग, ६८, ६९)

वह उसपर आसक्त था, सोचने लगा—आम कहाँ मिलेगा ? उस समय वाराणसी नरेश के उद्यान में आम सदैव फलता था। उसने सोचा, वहाँ से पका आम लाकर इसका दोहद शान्त करूँगा। वह रात को उद्यान में पहुँचा और आम के पेड़ पर आम्र-फल खोजता हुआ एक शाखा से दूसरी शाखा पर घूमता रहा। उसके वैसा करते रहते ही रात बीत गई। उसने सोचा—यदि अब उतर कर जाऊँगा, तो मुझे देखकर 'चोर' समझ पकड़ लेंगे। रात को ही जाऊँगा। वह एक वृक्ष पर चढ़ छिप रहा।

उस समय वाराणसी राजा पुरोहित से (वेद-) मन्त्र पढ़ता था। वह उद्यान में आम्रवृक्ष की छाया में ऊँचे आसन पर बैठ, आचार्य को नीचे आसन पर बिठा, मन्त्र सीखता था। बोधिसत्व ने ऊपर बैठे बैठे सोचा—यह राजा अधार्मिक है जो ऊँचे आसन पर बैठ कर मन्त्र सीखता है, ब्राह्मण भी अधार्मिक है जो नीचे आसन पर बैठ मन्त्र सिखाता है और मैं भी अधार्मिक हूँ जो स्त्री के कारण अपने जीवन की परवाह न कर आम ले जा रहा हूँ। वह वृक्ष से उतरते हुए एक लटकती हुई शाखा के सहारे उन दोनों के बीच में आ खड़ा हुआ, (और बोला—) महाराज ! मैं नष्ट हुआ, तुम मूर्ख हो और पुरोहित मर गया है। राजा ने पूछा क्यों ? उसने पहली गाथा कही:—

सब्बं इदं चरिमवतं उभो धम्मं न पस्सरे,
उभो पकतिया चुता यो चायं मन्तज्झायति
यो च मन्तं अधीयति ॥

[ये सब नीच-कर्म हैं।[1] धर्म[2] को दोनों नहीं देखते हो। दोनों ही धर्म से च्युत हो—जो यह मन्त्र सीखता है और यह जो मन्त्र सिखाता है।]

इसे सुन ब्राह्मण ने दूसरी गाथा कही:—

---

[1] अपने चौर-कर्म की भी निन्दा करता है।

[2] पुराने धर्म को। कहा भी है:—

धम्मो हवे पातुरहोसि पुब्बे,
पच्छा अधम्मो उदपादि लोके ॥

[पहले लोक में धर्म ही प्रादुर्भूत हुआ, अधर्म पीछे पैदा हुआ।]

सालीनं भोजनं भुञ्जे सुचिं मंसूपसेवनं,
तस्मा एतं न सेवामि धम्मं इसिहि सेवितं ॥

[मैं (इस राजा के पास) अच्छी तरह पके मांस के साथ शालि-धान का भोजन खाता हूँ। इसीलिये ऋषियों द्वारा सेवित इस धर्म का पालन नहीं करता हूँ।]

इसे सुन दूसरे ने दो गाथायें कहीं :—

परिब्बज महालोको पचन्तञ्जेपि पाणिनो,
मा तं अधम्मो आचरितो अस्मा कुम्भमिवाभिदा।
धिरत्थु तं यसलाभं धनलाभञ्च ब्राह्मण,
या वुत्तिविनिपातेन अधम्मचरणेन वा ॥

[इस स्थान को छोड़ अन्यत्र जा। यह संसार बड़ा है। दूसरे भी प्राणी (भोजन) पकाते ही हैं। ऐसा न हो कि यह तेरा आचरण किया अधर्म तुझे वैसे ही फोड़ दे जैसे पत्थर के घड़े को। हे ब्राह्मण! उस सम्पत्ति को धिक्कार है, उस धन को धिक्कार है, जो पापपूर्ण जीविका या अधर्माचरण से प्राप्त हो।]

राजा ने उसके धार्मिक भाव से प्रसन्न हो पूछा—

"तुम्हारी जाति क्या है?"

"देव! मैं चाण्डाल हूँ।"

"भो! यदि तू जाति वाला होता तो मैं तुझे राजा बनाता, अब से मैं दिन का राजा होऊँगा तू रात का राजा हो।"

उसने अपने गले में पहनी फूलों की माला उसके गले से बांध उसे नगर का कोतवाल बना दिया। यही नगर कोतवालों के गले में लाल फूलों की माला पड़ने की परम्परा है। तब से राजा उसका उपदेश मान, आचार्य्य का आदर कर, नीचे आसन पर बैठकर मन्त्र सीखने लगा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय राजा आनन्द था। चाण्डाल-पुत्र तो मैं ही था।

३१०. सय्ह जातक

"ससमुद्द परियायं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती में भिक्षा मांगते समय एक सुन्दर स्त्री को देखकर उद्विग्न हो गया और (बुद्ध) शासन में उसकी अरुचि हो गई। भिक्षु उसे भगवान के पास ले गये। भगवान ने पूछा—भिक्षु! क्या तू सचमुच उद्विग्न-चित्त हुआ है?

"भन्ते! सचमुच।"

"तुझे किसने उद्विग्न किया है?"

उसने वह वृत्तान्त कहा। "इस प्रकार के कल्याणकारी शासन में प्रव्रजित होकर भी तू क्यों उद्विग्न हुआ है? पूर्व समय में पण्डितों को पुरोहित का पद मिलता था, तो भी उसे छोड़ वे प्रव्रजित हुए" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने पुरोहित की ब्राह्मणी की कोख में आ, जिस दिन राजा के पुत्र ने जन्म ग्रहण किया, उसी दिन जन्म ग्रहण किया। राजा ने अमात्यों से पूछा—कोई है जो मेरे पुत्र के साथ एक ही दिन पैदा हुआ हो?

"महाराज, पुरोहित का पुत्र है।"

राजा ने उसे मँगवा, धाइयों को दे, पुत्र के साथ इकट्ठा पालन-पोषण कराया। दोनों के गहने और खाना पीना आदि सब समान था। बड़े होने पर वे तक्षशिला जा, सब विद्यायें सीख कर आये। राजा ने पुत्र को युवराज बना दिया। बड़ी शान रही।

तब से बोधिसत्व और राजपुत्र साथ इकट्ठे खाने पीने तथा सोने लगे। दोनों का परस्पर विश्वास दृढ़ हो गया। आगे चलकर पिता के मरने पर राज-पुत्र राजा बन बड़ी सम्पत्ति का उपभोग करने लगा। बोधिसत्व ने सोचा —मेरा मित्र राज्यानुशासन करता है। ध्यान आते ही मुझे पुरोहित-पद देगा। लेकिन मुझे गृहस्थ-जीवन से क्या ? प्रव्रजित हो एकान्त सेवन करूंगा। उसने माता पिता को प्रणाम कर प्रव्रजित होने की आज्ञा मांगी। (फिर) महा सम्पत्ति छोड़, अकेला ही घर से निकल, हिमालय पहुँचा। वहाँ सुन्दर-प्रदेश में कुटी बना, ऋषि-प्रव्रज्या ले, अभिज्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर ध्यान-क्रीड़ा में रत रहने लगा।

राजा ने उसे याद कर पूछा—मेरा मित्र दिखाई नहीं देता, कहाँ है ? अमात्यों ने उत्तर दिया—वह प्रव्रजित हो गया है और सुन्दर वन-खण्ड में रहता है। राजा ने उसका निवास-स्थान पूछ सय्ह नाम के अमात्य को कहा—जा मेरे मित्र को लिवा ला। उसे पुरोहित-पद दूँगा।

उसने 'अच्छा' कह वाराणसी से निकल, क्रमशः प्रत्यन्त-देश के गाँव में पहुँच पड़ाव किया। फिर एक वनचर को साथ ले बोधिसत्व के निवास-स्थान पर पहुँच, बोधिसत्व को स्वर्ण-प्रतिमा की तरह कुटी के द्वार पर बैठा देखा। वह बोधिसत्व को प्रणाम कर, एक ओर बैठ, कुशल क्षेम पूछ कर बोला—भन्ते। राजा आप को पुरोहित-पद देना चाहता है। उसकी इच्छा है कि आप पधारें।

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—पुरोहित-पद की क्या बात ! मैं सारा काशी, कोशल, जम्बुद्वीप का राज्य तथा चक्रवर्ती श्री मिलने पर भी नहीं जाऊँगा। पण्डित एक बार के छोड़े भोगों को फिर नहीं ग्रहण करते। यह तो थूके को चाटने जैसा हो जाता है। इतना कह ये गाथायें कहीं:—

> **समुद्दपरियायं महिंसागर कुण्डलं,**
> **न इच्छे सह निन्दाय एवं सय्ह विजानहि ॥१॥**
> **धिरत्थु तं यसलाभं धनलाभञ्च ब्राह्मण,**
> **या वुत्ति विनिपातेन अधम्मचरणेन वा ॥**
> **अपिचे पत्तमादाय अनागारो परिब्बजे,**
> **सायेव जीविका सेय्यो याचाधम्मेन एसना ॥**

अपि चे पत्तमादाय अनागारो परिब्बजे,
अञ्ञं अहिंसयं लोके अपि रज्जेन तं वरं ॥

[चक्रवाल पर्वत सहित समुद्र के मध्य स्थित पृथ्वी को भी हे सह्य ! तू जान ले, मैं निन्दनीय होकर ग्रहण करने की इच्छा नहीं करता ॥१॥ हे ब्राह्मण ! उस यश-लाभ तथा धन-लाभ को धिक्कार है जिसकी प्राप्ति नीच-वृत्ति या अधर्माचरण से हो ॥२॥ अधर्म से जीविका चलाने की अपेक्षा पात्र लेकर बे-घर हो प्रव्रजित हो जाना ही अच्छा है ॥३॥ दुनिया में किसी की हिंसा न करते हुए पात्र लेकर अनागरिक हो प्रव्रजित होना राज्य-लाभ से भी अच्छा है ॥४॥]

इस प्रकार उसके बार बार प्रार्थना करने पर भी उसने अस्वीकार किया। सह्य ने भी उसकी स्वीकृति न पा, प्रणाम कर जाकर राजा से कहा—वह नहीं आया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्यों का प्रकाशन हो चुकने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। अनेक दूसरों ने भी स्रोतापत्तिफल आदि साक्षात किया। उस समय राजा आनन्द था। सह्य सारिपुत्र। पुरोहित-पुत्र तो मैं ही था।

चौथा परिच्छेद

२. पुचिमन्द वर्ग

३११. पुचिमन्द जातक

"उट्ठेहि चोर..." यह शास्ता ने वेलुवन में विहार करते समय आयुष्मान महामौद्गल्यायन के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

स्थविर (महामौद्गल्यायन) राजगृह के पास अरण्य-कुटी में विहार करते थे। एक चोर नगर-द्वार गाँव के एक घर में सेंध लगा, जो कुछ मूल्यवान् पदार्थ हाथ में आया ले, भाग कर, स्थविर की कुटी के आङ्गन में जा घुसा। उसने सोचा—यहाँ मैं सुरक्षित रहूँगा। वह स्थविर की कुटिया के सामने लेट रहा। स्थविर ने उसे सामने सोया जान उस पर शङ्का कर सोचा—चोर का संसर्ग उचित नहीं है और बाहर निकल कर उसे खदेड़ दिया—यहाँ मत सो। चोर वहाँ से निकल पद-चिह्नों को बिगाड़ता हुआ भागा।

आदमी मशाल लेकर चोर के पद-चिह्न देखते हुए वहाँ आए। उसके आने का स्थान, ठहरने का स्थान, बैठने का स्थान तथा सोने का स्थान देखकर वे कहने लगे—यहाँ आया, यहाँ ठहरा, यहाँ बैठा और यहाँ सोया; लेकिन इस स्थान से भागा यह हमने नहीं देखा। इधर उधर भटक कर वे बिना उसे देखे ही लौट गये।

अगले दिन स्थविर ने पूर्वाह्ण समय राजगृह में भिक्षाटन कर, लौट, वेलुवन जा शास्ता से वह समाचार कहा। "मौद्गल्यायन! केवल तुझे सशङ्कित विषय में शङ्का नहीं हुई है, पुराने पण्डितों को भी हुई थी।" स्थविर के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व नगर के श्मशानवन में नीम वृक्ष पर देवता होकर पैदा हुए। एक दिन नगर-द्वार-गाँव में चोरी करके एक चोर वहाँ पहुँचा। उस समय वहाँ नीम और पीपल के दो बड़े वृक्ष थे। चोर नीम के वृक्ष के नीचे सामान रखकर सो गया। उन दिनों चोरों को पकड़ते थे तो उन्हें नीम के खूंटे से त्रास देते थे। उस देवता ने सोचा—यदि मनुष्य आकर इस चोर को पकड़ लेंगे तो इसी नीम की शाखा छील, खूंटा बना इसे त्रास देंगे। ऐसा होने से वृक्ष की हानि होगी। मैं इसे यहाँ से भगाऊँगा।

उसने उससे बात-चीत करते हुए पहली गाथा कही:—

उट्ठेहि चोर किं सेसि को अत्थो सुपितेन ते,
मा तं गहेसुं राजानो गामे किब्बिसकारकं ॥

[हे चोर ! उठ। सोने से क्या लाभ ? क्या सोता है ? कहीं तुझ डाका डालने वाले को राजपुरुष आकर पड़क न लें।]

उसे यह कह 'राजपुरुषों के आकर पकड़ने से पहले भाग जा' डरा कर भगा दिया। उसके भाग जाने पर पीपल वृक्ष के देवता ने दूसरी गाथा कही:—

यन्नु चोरं गहेस्सन्ति गामे किब्बिसकारकं,
किं तत्थ पुचिमन्दस्स वने जातस्स तिट्ठतो ॥

[यदि गाँव में डाका डालने वाले चोर को (राजपुरुष) पकड़ लेंगे, तो वन में पैदा हुए स्थित तुझ नीम-वृक्ष को इससे क्या लेना देना ?]

इसे सुन नीम (-वृक्ष पर के) देवता ने तीसरी गाथा कही:—

न त्वं अस्सत्थ जानासि मम चोरस्स चन्तरं,
चोरं गहेत्वा राजानो गामे किब्बिसकारकं,
अप्पेन्ति निम्बसूलस्मिं तस्मिं मे सङ्कते मनो ॥

[हे पीपल-वृक्ष ! तू मेरे और चोर के भेद को नहीं जानता। राज-पुरुष गाँव में डाका डालने वाले चोर को पकड़ कर नीम-वृक्ष पर ही त्रास देंगे। मेरे मन में यही आशङ्का थी।]

इस प्रकार उन देवताओं के परस्पर वार्तालाप करते समय ही, सामान के मालिक, हाथ में मशाल लिये वहाँ पहुँचे। उन्होंने पद-चिन्हों का अनुसरण करते हुए वहाँ पहुँच और चोर के सोने की जगह देख सोचा—"भो ! चोर अभी उठकर भाग गया। हमें नहीं मिला। यदि मिलेगा तो या तो इसी नीम की शूलों पर ठोंक कर जायेंगे, या शाखा से लटका जायेंगे।" वे इधर-उधर भटक चोर को बिना देखे ही चले गये। उनकी उस बात को सुन पीपल-वृक्ष ने चौथी गाथा कहीः—

सङ्केय्य सङ्कितब्बानि रक्खेय्यानागतं भयं
अनागतभया धीरो उभो लोके अवेक्खति ॥

[शङ्का करने योग्य बातों में शङ्का करनी चाहिये। भावी भय से अपनी रक्षा करनी चाहिए। धीर आदमी भावी-भय से बचता हुआ दोनों लोकों को देखता है।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय पीपल-वृक्ष पर उत्पन्न देवता सारिपुत्र था। नीम-देवता तो मैं ही था।

३१२. कस्सप मन्दिय जातक

"अपि कस्सप मन्दिय..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक वृद्ध भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक कुल-पुत्र काम-भोगों के दुष्परिणाम को देख शास्ता के पास प्रव्रजित हो, योगाभ्यास में लग, शीघ्र ही अर्हत्व को प्राप्त हुआ। आगे चलकर उसकी माता का देहान्त हो गया। माता के मरने पर उसने पिता और छोटे भाई को भी प्रव्रजित करा लिया। वे जेतवन में रहे। वर्षावास के समय चीवर-प्राप्ति सुलभ जान, वे तीनों एक गाँव के आवास में वर्षावास कर

फिर जेतवन लौटे। जेतवन के पास पहुँचने पर तरुण भिक्षु ने कहा—श्रामणेर! स्थविर को विश्राम कराता हुआ ले आ। मैं आगे जाकर परिवेण को झाड़ता बुहारता हूँ। वह जेतवन गया। बूढ़ा स्थविर धीरे धीरे चलता था। श्रामणेर सिर में पीड़ा पहुँचाते हुए की तरह उसे बार-बार 'भन्ते! चलें, भन्ते! चलें' कह कर जबर्दस्ती ले चलता था। स्थविर 'तू मुझ पर हुक्म चलाता है' कह फिर आरम्भ से चलना आरम्भ करता। उनके इस प्रकार परस्पर कलह करते हुए ही सूर्यास्त हो गया। अंधकार हो गया। दूसरे ने भी परिवेण साफ कर, पानी रख, उन्हें न आता देख मशाल ले अगवानी की। उन्हें आता देख पूछा—क्यों देर हुई? बूढ़े ने वह कारण बताया। वह उन दोनों को आराम कराता हुआ शनैः शनै लाया। उस दिन उसे बुद्ध की सेवा में जाने का अवकाश नहीं मिला। दूसरे दिन बुद्ध की सेवा में पहुँच, प्रणाम कर बैठने पर शास्ता ने पूछा—कब आया?

"भन्ते! कल।"

"कल आकर आज बुद्ध की सेवा में आया है?"

उसने "हाँ भन्ते!" कह वह कारण बताया। शास्ता ने बूढ़े की निन्दा करते हुए कहा—"यह केवल अभी ऐसा काम नहीं करता है, पहले भी किया है। अब इसने तुझे कष्ट दिया है, पहले भी पण्डितों को कष्ट दिया है।" फिर उसके प्रार्थना करने पर पूर्वजन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी-ग्राम में एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। उसके बड़े होने पर माता मर गई। उसने माता का शरीर-कृत्य कर महीना, आधा-महीना बीतने पर धन दान दे, पिता और छोटे भाई को ले, हिमालय प्रदेश में जा, देव-दत्त वल्कल चीर पहन, ऋषि-प्रव्रज्या ग्रहण की। वहाँ वह जगह जगह से चुनकर मूल-फलादि खाकर रमणीय वन-खण्ड में रहने लगा। हिमालय में वर्षा-काल में जब मूसलाधार वर्षा होती है तब कन्दमूल खनना सम्भव नहीं होता और फलाफल तथा पत्ते भी गिर जाते हैं। प्रायः तपस्वी हिमालय से उतर बस्ती में चले आते हैं। उस समय बोधिसत्व भी पिता और छोटे भाई को ले बस्ती में

चले आये। फिर हिमालय के फलने फूलने पर उन दोनों को ले अपने आश्रम को लौटा। आश्रम के थोड़ी दूर रहने पर और सूर्य्य को अस्त होते देख 'तुम धीरे धीरे आओ मैं आगे जाकर आश्रम को ठीकठाक करता हूँ' कह उन्हें छोड़ गया। छोटा तपस्वी पिता के साथ धीरे आता हुआ, उसे कमर में सिर से टक्कर मारता हुआ 'चल चल' कह जबरदस्ती ले चलता था। बूढ़ा 'तू मुझे अपनी इच्छानुसार ले चलता है' कह लौटकर फिर आरम्भ से आता। इस प्रकार उनके झगड़ा करते रहते ही अँधेरा हो गया।

बोधिसत्व ने भी कुटी को साफकर, पानी रख, मशाल लेकर उन्हें रास्ते में आते देखा तो पूछा—इतनी देर क्या करते रहे? छोटे तपस्वी ने पिता की करनी कही। बोधिसत्व ने उन दोनों को शनैः शनैः ले जा, कपड़ा लत्ता सम्भाल, पिता को स्नान करा, पैर धोना, (तेल) मारवना, पीठ दबाना आदि कर्म कर अंगीठी रखी। जब थकावट उतर गई तो पिता के पास बैठ कर कहा—तात! तरुण लड़के मिट्टी के बरतनों की तरह होते हैं। क्षण भर में टूट जाते हैं। एक बार टूट जाने पर फिर जुड़ नहीं सकते। वे गाली दें, मखौल करें तब भी बड़ों को सहन करना होता है। इस प्रकार पिता को उपदेश देते हुए बोधिसत्व ने ये गाथायें कहीं:—

अपि कस्सप मन्दिया युवा सपति हन्ति वा,
सब्बन्तं खमते धीरो पण्डितो तं तितिक्खति ॥
सचेपि सन्तो विवदन्ति खिप्पं सन्धीयरे पुन,
बाला पत्ताव भिज्जन्ति न ते समथमज्झगु ॥
एते भिय्यो समायन्ति सन्धि तेसं न जीरति,
यो चाधिपन्नं जानाति यो च जानाति देसनं ॥
एसोहि उत्तरितरो भारवाहो धुरन्धरो,
यो परेसाधिपन्नानं सयं सन्धातुमरहति ॥

[हे काश्यप! मन्द-बुद्धि युवक गाली भी दे देते हैं और मार भी बैठते हैं। धीर ये सब क्षमा करता है। पण्डित इसे सहन करता है। यदि सज्जन कभी विवाद करते हैं तो फिर मिल जाते हैं। मूर्ख (मिट्टी के) बरतनों की तरह टूटते हैं और शान्ति को प्राप्त नहीं होते। ये दो जन फिर मिल जाते हैं, इनकी परस्पर की सन्धि नष्ट नहीं होती—जो अपना दोष स्वीकार कर

सकता है और जो दोष स्वीकार करने वाले को क्षमा कर सकता है। जो दूसरे दोषियों को स्वयं मिला सकता है, वह बढ़कर है, वही भारवाह है, वही धुरन्धर है।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने पिता को उपदेश दिया। वह भी तब से शान्त हो गया, अच्छी प्रकार शान्त।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का पिता तपस्वी बूढ़ा स्थविर था। छोटा तपस्वी श्रामणेर। पिता को उपदेश देने वाला तो मैं ही था।

२१३. खन्तिवादी जातक

"यो ते हत्थे च पादे च..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक क्रोधी भिक्षु के बारे में कही। कथा पहले आ ही गई है। शास्ता ने उस भिक्षु को 'भिक्षु! तू अक्रोधी बुद्ध के शासन में प्रव्रजित होकर क्रोध क्यों करता है? पुराने पण्डितों ने शरीर पर हजारों प्रहार होने पर, हाथ पाँव कान नाक के काट लिये जाने पर भी, दूसरे के प्रति क्रोध नहीं किया' कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में कलाबु नाम का काशीराज राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व अस्सी करोड़ धन वाले ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। उनका नाम था कुण्डकुमार। बड़े होने पर वह तक्षशिला में सब शिल्प सीख कर आया और कुटुम्ब को पालने लगा। माता पिता के मरने पर उसने धनराशी की ओर देखते हुए सोचा—यह धन कमाकर मेरे सम्बन्धी इसे यहीं छोड़ गये, बिना साथ लिये ही चले गये। मुझे इसे साथ ले जाना चाहिए। उसने अपना वह सारा धन विचेय्यदान अर्थात् 'जो जो कुछ ले जाये वह

उसे दिया, करके दान दे दिया और अपने हिमालय में प्रवेश कर, प्रव्रजित हो, फल-मूल खाता हुआ चिरकाल वहीं रहा। फिर नमक-खटाई खाने के लिए बस्ती में, क्रमानुसार वाराणसी पहुँच, राजोद्यान में रहने लगा। अगले दिन नगर में भिक्षाटन करता हुआ सेनापति के गृहद्वार पर पहुँचा। सेनापति ने उसकी चर्य्या से प्रसन्न हो, घर में लिवा लाकर, अपने लिये तैयार भोजन कराया और वचन लेकर वहीं राजोद्यान में बसाया।

एक दिन कलाबुराज शराब के नशे में मस्त हो तमाशों से घिरा हुआ बड़ी शान के साथ उद्यान में पहुँचा। वहाँ उसने मङ्गल शिला-पट पर बिछौना बिछवाया और एक प्रिय मनोज्ञ स्त्री की गोद में सोया। गाने बजाने में होशियार नर्तकियाँ गाना बजाना करने लगीं। देवेन्द्र शक्र की तरह बड़ा ठाठ बाट था। राजा को नींद आ गई।

उन स्त्रियों ने सोचा—जिसके लिये हम गाना बजाना करती हैं, वह ही सो गया। अब गाने बजाने से क्या लाभ? वे वीणा, तुरिया आदि जहाँ तहाँ छोड़ उद्यान में घूमने लगीं और फूल, फल तथा पत्तों से अनुरक्त हो बाग में रमण करने लगीं। उस समय बोधिसत्व उस उद्यान में पुष्पित शालवृक्ष की छाया में प्रव्रज्या-सुख का आनन्द लेते हुए वैसे ही बैठे थे जैसे श्रेष्ठ मस्त हाथी हो।

उद्यान में घूमती हुई वे स्त्रियाँ उसे देख 'आर्य्याओ, आओ इस वृक्ष की छाया में प्रव्रजित बैठा है। जब तक राजा सोता है तब तक हम इस के पास बैठी रहकर कुछ सुनें' कह जाकर, प्रणाम कर घेर कर बैठीं। वे बोलीं—हमारे योग्य कुछ उपदेश दें। बोधिसत्व ने उन्हें धर्मोपदेश दिया।

उस स्त्री की गोद के हिलने से राजा की आँख खुल गई। जब राजा ने जागने पर उन्हें न देखा तो वह बोला—कहाँ गईं वे चण्डालिनियाँ?

"महाराज। वे एक तपस्वी को घेर कर बैठी हैं।"

राजा को क्रोध आया। उसने तलवार निकाली और बड़े वेग से चला—उस दुष्ट तपस्वी को सबक सिखाता हूँ।

उन स्त्रियों ने राजा को क्रोध में भरा आता देखा तो उनमें जो राजा की अधिक प्रिया थी उसने जाकर राजा के हाथ से तलवार ले ली। इस प्रकार उन्होंने राजा को शान्त किया। उसने आकर बोधिसत्व के पास खड़े होकर पूछा:—

"श्रमण! तुम्हारा क्या वाद (मत) है?"

"महाराज क्षमा-वाद।"

"यह क्षमा क्या ?"

"गाली देने पर, प्रहार करने पर, मजाक करने पर, अक्रोधी रहना।" राजा ने "देखता हूँ अभी तुझमें क्षमा है वा नहीं ?" जल्लाद को बुलवाया।

वह अपने स्वभावानुसार कुल्हाड़ा और कण्टेदार चाबुक लिये, पीतवस्त्र तथा लाल-माला धारण किये आ पहुँचा। आकर राजा को प्रणाम कर बोला—"क्या आज्ञा है ?"

"इस चोर दुष्ट तपस्वी को पकड़, घसीट, जमीन पर गिरा, कटीला चाबुक ले, आगे, पीछे और दोनों ओर दो हजार चाबुक लगाओ।"

उसने वैसा किया। बोधिसत्व की खलड़ी उतर गई, चमड़ी उधड़ गई, माँस फट गया आदि और खून बहने लगा।

राजा ने फिर पूछा—"भिक्षु, क्या वादी हो ?"

"महाराज ! क्षमावादी। क्या तुम समझते हो कि मेरी चमड़ी में क्षमा (छिपी) है ? नहीं महाराज, मेरी चमड़ी में क्षमा नहीं है। तुम उसे नहीं देख सकते। क्षमा मेरे हृदय में है।"

चाण्डाल ने पूछा—क्या करूं महाराज ?

"इस दुष्ट तपस्वी के दोनों हाथ काट डाल।" उसने कुल्हाड़ा ले गण्डक पर रखकर हाथ काट डाले। तब कहा—

"पैर काट डाल।"

उसने पाँव काट डाले। हाथ पाँव की जड़ों से घड़े के मुँह में से लाख-रस बहने की तरह रक्त बहने लगा।

राजा ने फिर पूछा—"क्या वादी है ?"

"महाराज, क्षमावादी। तुम समझते हो कि (क्षमा) हाथ पाँव के मूल में है ? वह यहाँ नहीं है। मेरी क्षमा बड़ी गहराई में प्रतिष्ठित है।"

राजा ने आज्ञा दी—"कान नाक काट डाल।" उसने कान नाक काट डाले। सारा शरीर लहू-लोहान हो गया।

फिर पूछा—"क्या वादी है ?"

"महाराज ! क्षमावादी। ऐसा मत समझें कि मेरी क्षमा कान नाक के मूल में प्रतिष्ठित है। मेरी क्षमा हृदय के अन्दर बहुत गहराई में स्थित है।"

राजा उसके हृदय-स्थल पर एक ठोकर मार कर चल दिया—

"दुष्ट तपस्वी ! तेरी क्षमा तुझे उठाकर बिठाये।"

उसके चले जाने पर सेनापति ने बोधिसत्व के शरीर से रक्त पोंछ और हाथ, पाँव, कान तथा नाक के मूल पर वस्त्र बाँध, बोधिसत्व को धीरे से बिठा, प्रणाम किया। फिर एक ओर बैठ कर निवेदन किया कि भन्ते ! यदि आप क्रोधित हों तो केवल इस राजा पर क्रोधित हों जिसने आपको इतना कष्ट पहुँचाया है, किसी और पर क्रोध न करें। उसने यह प्रार्थना करते हुए पहली गाथा कहीः—

यो ते हत्थे च पादे च कण्णनासञ्च छेदयि,
तस्स कुज्झ महावीर मा रट्ठं विनस्स इदं ॥

[हे महावीर ! जिसने आपके हाथ-पाँव तथा नाक-कान कटवाये उसी पर क्रोधित हों; इस (काशी) राष्ट्र का विनाश न करें।]

यह सुन बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

यो मे हत्थे च पादे च कण्णनासञ्च छेदयि,
चिरं जीवतु सो राजा नहि कुज्झन्ति मा दिसा ॥

[जिस राजा ने मेरे हाथ, पाँव तथा कान-नाक काट डाले वह चिरकाल तक जीवित रहे। मेरे जैसे (लोग) क्रोध नहीं करते।]

राजा ज्यों ही उद्यान से निकल बोधिसत्व की आँख से ओझल हुआ, यह दो लाख चालीस हजार योजन मोटी महापृथ्वी बैल के वस्त्र की तरह फट गई। अवीची (नरक) से ज्वाला ने निकल कर उसे वैसे ही लपेट लिया जैसे कुल-प्राप्त लाल कम्बल लपेट ले।

वह उद्यान के द्वार पर ही पृथ्वी में घुस महावीची नरक में पहुँचा। बोधिसत्व उसी दिन काल कर गये। राज-पुरुषों तथा नागरिकों ने गन्धमाला तथा दीप-धूप हाथ में ले, बोधिसत्व का शरीर-कृत्य किया। कोई कहते हैं कि बोधिसत्व हिमालय चले गये, सो यह सत्य नहीं है। ये दो सम्बुद्ध गाथायें हैं:—

अहु अतीतमद्धानं समणो खन्तिदीपनो,
तं खन्तियायेव ठितं कासिराजा अछेदयि ॥

तस्स कम्मस्स फरुसस्स विपाको कटुको अहु,
यं कासिराजा वेदेसि निरयम्हि समप्पितो ।।

[अतीत-काल में क्षमावान् श्रमण हुआ । उसके क्षमाशील रहते काशी राजा ने उसे कटवा डाला। उस राजा के उस कठोर कर्म का फल (भी) कडुआ हुआ, जिसे काशीराज ने नरक में जाकर भोगा ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्यों के अन्त में क्रोधी भिक्षु अनागामीफल में प्रतिष्ठित हुआ। बहुत जनों को स्रोतापत्तिफल आदि प्राप्त हुये। उस समय कलाबु राजा देवदत्त था। सेनापति सारिपुत्र था। क्षमावादी तपस्वी तो मैं ही था।

३१४. लोहकुम्भी जातक

"दुज्जीवितं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल राजा के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय कोशल नरेश ने रात को चार नारकीय प्राणियों की आवाज सुनी। एक केवल 'दु' बोला, दूसरा केवल 'स' बोला, तीसरा केवल 'न' बोला और चौथा केवल 'सो'।

वे पूर्वजन्म में श्रावस्ती में ही परस्त्री-गमन करने वाले राजपुत्र थे। उन्होंने पराई, सुरक्षित, छिपाई स्त्रियों के प्रति अपराध कर, तरह तरह की विचित्र क्रीड़ायें कर, बहुत पापकर्म किया था। मृत्यु-चक्र से कट कर वे श्रावस्ती के पास ही चार लोहकुम्भियों में पैदा हो साठ हजार वर्ष तक वहीं जलते रहे। लोहकुम्भियों के मुँह के घेरे को ऊपर की ओर उठा देख चारों बड़े ऊँचे स्वर में क्रमशः चिल्लाये कि हम कब इस दुख से मुक्त होंगे? राजा ने

उनकी आवाज सुन मृत्युभय के कारण बैठे ही बैठे सारी रात बिता दी। अरुणोदय के समय ब्राह्मणों ने आकर पूछा—महाराज ! सुखपूर्वक सोये ?

"आचार्यों, मेरा सुखपूर्वक सोना कहाँ ! आज मैंने इस प्रकार के चार भयानक काण्ड सुने।" ब्राह्मणों ने हाथ पीटे।

"आचार्यो ! क्या बात है ?"

"महाराज ! खतरनाक शब्द हैं।"

"इनका कुछ इलाज है, वा नहीं है ?"

"चाहे इलाज नहीं है, तो भी महाराज ! हम लोग कुशल हैं।"

"क्या करके इससे बचाओगे ?"

"महाराज ! इसका प्रतिकर्म तो बहुत बड़ा है, हो नहीं सकता; लेकिन हम सर्वचतुष्क यज्ञ करके इसका बचाव करेंगे।"

"तो शीघ्र ही चार हाथी, चार घोड़े, चार बैल, चार आदमी, तीतर से आरम्भ करके सभी चार चार प्राणी लें, सर्वचतुष्क यज्ञ करके मुझे सकुशल करें।"

"महाराज ! अच्छा" कह उन्होंने जो-जो चाहिये सब ले, जाकर यज्ञकुण्ड तैयार किया।

बहुत सारे पापियों को खम्भे के पास जाकर खड़ा किया। 'बहुत सा मत्स्यमांस खाने को मिलेगा और बहुत सा धन' सोच वे उत्साह से भर गए। 'देव, यह मिलना चाहिए, देव ! यह मिलना चाहिए' चिल्लाते हुए इधर से उधर घूमते थे। मल्लिका देवी ने पूछाः—"महाराज ! क्या कारण है ब्राह्मण बहुत फूले फूले घूम रहे हैं ?"

"तुझे इससे क्या ! तू अपने ऐश्वर्य में मस्त है ! दुःख तो हमें ही है।"

"महाराज ! क्या है ?"

"देवि ! मैंने इस प्रकार का न सुनने योग्य शब्द सुना। तब ब्राह्मणों से पूछा कि इन शब्दों के सुनने का क्या प्रभाव पड़ेगा ? ब्राह्मणों ने कहा, महाराज ! आपके राज्य पर अथवा भोगों पर अथवा जीवन पर खतरा दिखाई देता है। सर्वचतुष्क यज्ञ करके कल्याण करेंगे। वे मेरे कहने से यज्ञ-कुण्ड का निर्माण कर जिस जिस चीज़ की जरूरत होती है, उसके लिए आते हैं।"

"देव ! क्या तुम्हें जो शब्द सुनाई दिये उनकी उत्पत्ति देवताओं सहित लोक में जो अग्र-ब्राह्मण हैं उनसे पूछी ?"

"देवि ! कौन हैं यह देव सहित लोक में अग्र-ब्राह्मण ?"

"महागौतम सम्यक् सम्बुद्ध ।"

"देवि ! सम्यक् सम्बुद्ध को तो मैंने नहीं पूछा ।"

"तो, जाकर पूछें ।"

राजा उसकी बात सुन प्रातःकाल का भोजन करने के बाद श्रेष्ठ रथ पर चढ़ जेतवन पहुँचा । वहाँ शास्ता को प्रणाम कर उसने पूछा—भन्ते ! मैंने रात में चार आवाजें सुनीं । तब ब्राह्मणों को पूछा । वे 'सर्व चतुष्क यज्ञ करके कल्याण करेंगे' कह यज्ञ-कुण्ड बनवा रहे हैं । उन आवाज़ों के सुनने से मुझे क्या होगा ?

"महाराज ! कुछ नहीं । नारकीय प्राणी दुख अनुभव करने के कारण इस प्रकार बोले हैं । यह शब्द केवल अभी तूने ही नहीं सुने हैं । पुराने राजाओं ने भी सुने ही हैं । वे भी ब्राह्मणों को पूछ कर पशुघात यज्ञ करना चाहते थे । पण्डितों की बात सुनकर यज्ञ नहीं किया । पण्डितों ने उन आवाज़ों का कारण बता प्राणियों को मुक्त करा कल्याण किया ।"

उसके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व काशी (-जनपद) के किसी गाँव में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए । बड़े होने पर काम-भोगों को छोड़ ऋषियों की प्रव्रज्या ग्रहण की । ध्यान तथा अभिञ्जा उत्पन्न कर, ध्यान में ही रत रह हिमालय में रमणीय वनखण्ड में रहते थे ।

उस समय वाराणसी-राजा ने चारों नारकीयों की ये चारों आवाज़ें सुन इसी प्रकार ब्राह्मणों से पूछा । उन्होंने तीन खतरों में एक खतरे की बात कह, सर्वचतुष्क यज्ञ द्वारा उसे शान्त करने की बात कही । उनके ऐसा कहने पर (राजा ने यज्ञ कराना) स्वीकार किया । पुरोहित ने ब्राह्मणों के साथ यज्ञ-कुण्ड बनवाया । अनेक प्राणी खम्भे के पास लाये गए ।

उस समय बोधिसत्व ने मैत्री-भावना युक्त चारिका करते हुए दिव्य-चक्षु से लोक को देखा। जब उन्हें यह दिखाई दिया तो उन्होंने सोचा कि मुझे जाना चाहिए, अनेक जनों का कल्याण होगा। वह ऋद्धि-बल से आकाश में उठ, वाराणसी-राजा के उद्यान में उतर, मंगल शिलापट पर सुवर्ण-प्रतिमा की तरह बैठे।

तब पुरोहित के ज्येष्ठ शिष्य ने आचार्य के पास आकर निवेदन किया, "आचार्य! क्या हमारे वेदों में पराए को मार कर कल्याण करना असम्भव नहीं बताया है?" पुरोहित ने मना किया—"तू राजधन चाहता है, चुप रह। हम बहुत मत्स्य मांस खाएँगे और धन पायेंगे।" "मैं इसमें सहायक नहीं होऊँगा" कह निकल कर, वह राज-उद्यान में पहुँचा। वहाँ बोधिसत्व को देख, प्रणाम कर कुशलक्षेम पूछ एक ओर बैठा।

बोधिसत्व ने पूछा—"माणवक! क्या राजा धर्मानुसार राज्य करता है?"

"भन्ते! राजा धर्मानुसार राज्य करता है। किन्तु, राजा को रात में चार आवाजें सुनाई दीं। उसने ब्राह्मणों से पूछा। ब्राह्मणों ने कहा—सर्व-चतुष्क यज्ञ करके कल्याण करेंगे। राजा पशुघात कर अपना कल्याण करना चाहता है। अनेक जन (यज्ञ) स्तम्भ के पास ले जाए गये हैं। क्या भन्ते! आप जैसे सदाचारियों के लिए यह उचित नहीं है कि उन आवाज़ों की उत्पत्ति बताकर अनेक जनों को मृत्यु के मुख से बचाएँ?"

"माणवक! राजा हमें नहीं जानता, हम भी उसे नहीं जानते। लेकिन हम इन आवाज़ों की उत्पत्ति जानते हैं। यदि राजा हमारे पास आकर पूछे तो हम कह कर उसका शक मिटा देंगे।"

"तो भन्ते! मुहूर्त भर यहीं रहें। मैं राजा को लाऊँगा!"

"माणवक! अच्छा।"

उसने जाकर राजा को वह बात कही और राजा को ले आया।

राजा ने बोधिसत्व को प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा—"क्या आप सचमुच मेरे सुने शब्दों का कारण जानते हैं?"

"महाराज! हाँ।"

"भन्ते! कहें।"

"महाराज ! ये पूर्व जन्म में दूसरों की स्त्रियों से व्यभिचार करने वाले रहे हैं, और वाराणसी के आस पास चार लोह-कुम्भी नरकों में पैदा हुए। उबलते हुए, लहकते, पिघले लोहे में बुलबुले उठाते हुए पकते रहे। तीस हजार वर्ष तक नीचे रह, कुम्भी-तल से टकरा, ऊपर उठ तीस हजार वर्ष बाद कुम्भीमुख देखा। चारों जने चार गाथाएं पूरी कर कहना चाहते थे। वैसा न कर सके। एक एक अक्षर ही कह कर फिर लोह-कुम्भी में डूब गए। उनमें से 'दु' कह कर डूब जाने वाला प्राणी यह कहना चाहता था:—

दुज्जीवितं अजीविम्ह ये सन्ते न ददम्हसे।
विज्जमानेसु भोगेसु दीपं नाकम्ह अत्तनो॥

[पास होने पर भी जो नहीं दिया यह जीवन भी खराब जीवन ही रहा। भोगों के होने पर भी अपने लिये द्वीप नहीं बनाया।]

'लेकिन, सका नहीं' कह बोधिसत्व ने अपने ज्ञान से ही वह गाथा पूरी की। शेष गाथाओं में भी इसी प्रकार। उनमें 'स' कह कर जो बोलना चाहता था उसकी यह गाथा है—

सट्ठिवस्ससहस्सानि परिपुण्णानि सब्बसो,
निरये पच्चमानानं कदा अन्तो भविस्सति॥

[हर प्रकार से पूरे साठ हज़ार वर्ष तक नरक में जलते रहने का कब अन्त होगा?]

'न' कह कर बोलने की इच्छा रखने वालीकी यह गाथा—

नत्थि अन्तो कुतो अन्तो न अन्तो पटिदिस्सति।
तदा हि पकतं पापं मयं तुय्हं च मारिस॥

[अन्त नहीं है। अन्त कहाँ से होगा! अन्त दिखाई नहीं देता! मित्र उस समय मेरा और तुम्हारा पाप विशेष रहा है।]

'स' कह कर बोलने की इच्छा रखने वाले की गाथा—

सोहं नून इतो गन्त्वा योनिं लद्धान मानुसिं।
वदञ्ञू सीलसम्पन्नो काहामि कुसलं बहुं॥

[अब मैं निश्चय से यहां से जा कर मनुष्य देह प्राप्त करने पर दयालु तथा सदाचारी हो बहुत कुशल-कर्म करूंगा।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने एक एक गाथा कह राजा को समझाया—महाराज ! वह नारकीय प्राणी यह गाथा पूरी करके कहना चाहता था। लेकिन अपने पाप की महानता के कारण वैसा न कर सका। वह अपने कर्म-फल को भोगता हुआ चिल्लाया। आपको इस आवाज के सुनने के कारण कोई खतरा नहीं है। आप न डरें।

राजा ने सब प्राणियों को मुक्त करा, सोने का ढोल पिटवा, यज्ञ-कुण्ड नष्ट करा दिया। बोधिसत्व प्राणियों का कल्याण कर, कुछ दिन रह, वहीं जा, ध्यानावस्थित हो, ब्रह्म-लोक में पैदा हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पुरोहित-माणवक सारिपुत्र था। तपस्वी तो मैं ही था।

२१५. मंस जातक

"फरुसा वत ते वाचा..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय सारिपुत्र द्वारा जुलाब लेने वालों को सरस-भोजन के देने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन में कुछ भिक्षुओं ने स्निग्ध जुलाब लिया। उन्हें सरस भोजन चाहिये था। रोगी सेवक 'रसपूर्ण भोजन लायेंगे' सोच श्रावस्ती में गये। उन्हें रसोइयों की गली में भिक्षाटन करने पर भी सरस भोजन नहीं मिला। वे लौट आये। (सारिपुत्र) स्थविर दिन चढ़े भिक्षाटन के लिये निकले। उन भिक्षुओं को देख उन्होंने पूछा—आयुष्मानो ! क्यों जल्दी ही लौट रहे हो ? उन्होंने वह बात कही। 'तो आओ' कह स्थविर उन्हें ले उसी गली में गये। मनुष्यों ने (पात्र) भर भर कर रस-पूर्ण भोजन दिया। रोगी-सेवकों ने विहार में लाकर रोगियों को दिया। उन्होंने रस का उपभोग किया।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बात-चीत चलाई—आयुष्मानो ! स्थविर ने जुलाब लेने वालों के सेवकों को रस-पूर्ण भोजन न पा लौटते देख, लेजाकर रसोइयों की गली में से भिक्षाटन कर, बहुत रसपूर्ण भोजन भिजवाया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?

"अमुक बात चीत।"

"भिक्षुओ, न केवल अभी सारिपुत्र को श्रेष्ठ मांस मिला, पहले भी कोमल प्रिय-वचन बोल सकने वाले पण्डितों को मिला ही है।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व सेठ-पुत्र थे। एक दिन एक शिकारी गाड़ी में बहुत सा मांस लिए शहर में बेचने के लिये चला आ रहा था। उसी समय वाराणसी-निवासी चार सेठ-पुत्र नगर से निकल किसी सार्वजनिक स्थान पर बैठे कुछ देखा-सुना बतिया रहे थे। उनमें से एक सेठ-पुत्र ने मांस की गाड़ी देख पूछा—इस शिकारी से मांस-खण्ड मँगवाऊं ?

"जा लिवा ला।"

उसने पास जाकर कहा—अरे शिकारी मुझे मांस का टुकड़ा दे। शिकारी बोला—"दूसरे से कुछ मांगते समय प्रिय-भाषी होना चाहिये। तेरी वाणी के अनुरूप ही तुझे मांस-खण्ड मिलेगा।" उसने पहली गाथा कहीः—

फरुसा वत ते वाचा मंसं याचनको असि,
किलोमसदिसी वाचा किलोमं सम्म ददासि ते॥

[तू मांस माँगता है किन्तु तेरी वाणी कठोर है। मित्र ! तेरी वाणी नीरस है, इसलिये तुझे कठोर (मांस-खण्ड) ही देता हूँ।]

उसने उसे एक नीरस मांस-खण्ड उठाकर दे दिया।

दूसरे सेठ-पुत्र ने पूछा—क्या कहकर मांगा ? 'अरे' कहकर। 'मैं भी मांगूँगा' कह उसने जाकर माँगा—"बड़े भाई ! मांस-खण्ड दे।" 'तुझे तेरी वाणी के अनुसार मिलेगा', कह उसने दूसरी गाथा कही—

अङ्गमेतं मनुस्सानं भाता लोके पवुच्चति,
अङ्गस्स सदिसी वाचा अङ्गं सम्म ददामि ते ॥

[संसार में 'भाई' मनुष्यों का 'अङ्ग' कहलाता है। तुम्हारी वाणी अङ्ग सदृश है, इसलिये हे मित्र, तुझे (मांस का) अङ्ग देता हूँ।]

ऐसा कह उसने उसे (मांस का) एक अङ्ग उठाकर दिया। तीसरे सेठ-पुत्र ने उसे भी पूछा—क्या कहकर माँगा? 'भाई' कहकर। 'मैं भी माँगूँगा' कह उसने जाकर माँगा—"तात! मुझे मांस-खण्ड दें।" 'तुझे तेरी वाणी के अनुरूप मिलेगा' कह शिकारी ने तीसरी गाथा कही:—

तातांति पुत्तो वदमानो कम्पेति हदयं पितु,
हदयस्स सदिसी वाचा हदयं सम्म ददामि ते ॥

[पुत्र 'तात' कहता है तो पिता का हृदय काँप उठता है। तुम्हारी वाणी हृदय सदृश है, इसलिये मित्र! तुझे हृदय देता हूँ।]

इस प्रकार कह हृदय-मांस के साथ मधुर-मांस उठाकर दिया। चौथे सेठपुत्र ने पूछा—क्या कहकर माँगा? 'तात' कहकर। 'मैं भी माँगूँगा' कह उसने भी जाकर याचना की—दोस्त! मुझे मांस-खण्ड दे। 'तेरी वाणी के अनुसार मिलेगा' कह शिकारी ने चौथी गाथा कही—

यस्स गामे सखा नत्थि यथारञ्ञं तथेव तं,
सब्बस्स सदिसी वाचा सब्बं सम्म ददामि ते ॥

[जिसका गाँव में कोई सखा नहीं है, उसके लिये वह (गाँव) वैसा ही है जैसा जंगल। तुम्हारी वाणी 'सर्वस्व' सदृश है, इसलिये मित्र, मैं तुम्हें सारा मांस देता हूँ।]

इतना कहकर वह बोला—मित्र! यह सारी मांस की गाड़ी मैं तेरे घर ले चलता हूँ। सेठ-पुत्र उससे गाड़ी हँकवा अपने घर ले गया। वहाँ मांस उतरवा, शिकारी का सत्कार-सम्मान किया। फिर उसके स्त्री-बच्चों को भी बुलवा उसे शिकारी के काम से छुड़वा अपने कुटुम्ब में बसा लिया। उसके साथ वह अभिन्न भाव से जीवन-भर एकचित्त होकर रहा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शिकारी सारिपुत्र था। सब मांस प्राप्त करने वाला सेठ-पुत्र तो मैं ही था।

३१६. सस जातक

"सत्त मे रोहिता मच्छा......" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय सभी आवश्यकताओं के दान के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक गृहस्थ ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघ के लिये सभी आवश्यक वस्तुओं के दान की तैय्यारी की । उसने गृह-द्वार पर मण्डप रचवा, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघ को निमन्त्रित कर, मण्डप में बिछे श्रेष्ठ आसनों पर बिठाया । फिर नाना प्रकार के रस-पूर्ण श्रेष्ठ भोजन करा,अगले दिन के लिये, और फिर अगले दिन के लिए, इस प्रकार सात दिन तक दान दिया । सातवें दिन पाँच सौ भिक्षुओं को जिनमें बुद्ध प्रमुख थे, सभी आवश्यक वस्तुओं का दान किया । शास्ता ने भोजनानन्तर (दान-) अनुमोदन करते समय कहा—उपासक ! तुझे प्रसन्न होना चाहिये । यह दान पुराने पण्डितों की परम्परा के अनुरूप है । पुराने पण्डितों ने याचकों के आने पर अपना बलिदान कर अपना मांस तक दिया है । उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व खरगोश की योनि में उत्पन्न हो, जंगल में रहते थे । उस जंगल के एक तरफ पर्वत, एक तरफ नदी और एक तरफ प्रत्यन्त-ग्राम था । उसके तीन मित्र भी थे—बन्दर, गीदड़ और ऊद-बिलाव ।

ये चारों पण्डित एक साथ रहते हुये अपनी अपनी जगह भोजन खोजकर शाम को एक जगह इकट्ठे होते । खरगोश पण्डित तीनों जनों को

उपदेश देता—दान देना चाहिये, शील की रक्षा करनी चाहिये, उपोसथ-व्रत रखना चाहिए। वे उसका उपदेश मान अपने अपने निवास स्थान में जाकर रहते।

इस प्रकार समय व्यतीत होते रहने पर एक दिन बोधिसत्व ने आकाश में चन्द्रमा को देख और यह जान कि कल ही उपोसथ (व्रत) का दिन है शेष तीनों जनों को कहा—कल उपोसथ है। तुम भी तीनों जने शील ग्रहण कर उपोसथ-व्रत धारी बनो। शील में प्रतिष्ठित हो जो दान दिया जाता है उसका महान् फल होता है। इस लिये किसी याचक के आने पर अपने खाने के आहार में से उसे देकर खाना। वे 'अच्छा' कह स्वीकार कर अपने निवास-स्थान पर चले गये।

अगले दिन उनमें से ऊदबिलाव प्रातःकाल ही शिकार खोजने के लिए निकल कर गङ्गा तीर पर पहुँचा। एक मछुवे ने सात रोहित मछलियां पकड़ीं और उन्हें रस्सी में बाँध ले जाकर गंगा किनारे बालु में छिपा दिया। वह और मछलियाँ पकड़ने के लिए गंगा के नीचे की ओर जा रहा था। ऊद-बिलाव ने मछली की गन्ध सूंघ, बालू हटा, मछलियों को देख, निकाल कर तीन बार घोषणा की—कोई इनका मालिक है? जब उसे उनका मालिक न दिखाई दिया तो रस्सी के सिरे को मुँह से पकड़ अपने निवास-स्थान पर लाकर रख दिया—समय पर खाऊँगा। उन्हें देख वह अपने शील का विचार करता हुआ लेट रहा।

गीदड़ ने भी निकल कर, भोजन खोजते हुए एक खेत की रखवाली करने वाली की झोपड़ी में, दो कबाब की सींखें, एक गोह और एक दही की हांडी देखी। उसने तीन तीन बार घोषणा की—कोई इनका मालिक है? जब कोई मालिक न दिखाई दिया तो दही की हाँडी लटकाने की रस्सी को गर्दन में लटका, कबाब की सींख और गोह को मुँह में उठा लाकर अपनी माँद में रक्खा—समय पर खाऊँगा। वह भी अपने शील का विचार करता हुआ लेट रहा।

बन्दर भी वन-खण्ड में जा आमों का गुच्छा ले आया। वह भी उसे अपने निवास-स्थान पर रख 'समय पर खाऊँगा' सोच अपने शील का विचार करता हुआ लेट रहा।

बोधिसत्व तो समय पर ही निकल कर बढ़िया घास खाऊँगा सोच अपनी झाड़ी में ही पड़े पड़े विचार करने लगे—मेरे पास आने वाले मंगतों को मैं घास नहीं दे सकता। तिल-तण्डुल आदि भी मेरे पास नहीं हैं। यदि मेरे पास मंगता आयेगा तो मैं उसे अपना शरीर-मांस दूँगा।

उसके शील-तेज से शक्र का पाण्डुकम्बलवर्ण शिलासन गर्म हो गया। उसने ध्यान लगाकर कारण मालूम किया। तब सोचा—शशराज की परीक्षा लूंगा। वह पहले ऊद-बिलाव के निवास-स्थान पर पहुँच, ब्राह्मण वेश बना खड़ा हुआ। 'ब्राह्मण! किस लिए खड़ा है?' पूछने पर बोला—

"पण्डित! यदि कुछ आहार मिले तो उपोसथ-व्रती होकर श्रमण धर्म पालन करूँ।"

उसने 'अच्छा' तुझे आहार दूँगा' कह उससे बातचीत करते हुए पहली गाथा कही:—

सत्त मे रोहिता मच्छा उदका थलमुब्भता,
इदं ब्राह्मण मे अत्थि एतं भुत्वा वने वस॥

[हे ब्राह्मण! पानी में से स्थल पर लाई हुई मेरे पास सात रोहित मछलियाँ हैं। इन्हें खाकर वन में निवास कर।]

ब्राह्मण 'अभी सवेरा है, रहे पीछे देखूंगा' कह गीदड़ के पास गया। उसके भी 'किस लिए खड़ा है?' पूछने पर वही कहा। गीदड़ ने 'अच्छा दूँगा' कह उसके साथ बात चीत करते हुए दूसरी गाथा कही:—

दुस्स मे खेत्तपालस्स रत्तिभत्तं अपाभतं,
मंस सूला च द्वे गोधा एकञ्च दधिवारकं,
इदं ब्राह्मण मे अत्थि एतं भुत्वा वने वस॥

[उस खेत की रखवाली करने वाले का रात्रि-भोजन लाया हुआ मेरे पास है—दो कबाब की सीखें, दो गोह और एक दही की हांडी। हे ब्राह्मण! यह मेरे पास है। इसे खाकर वन में रह।]

ब्राह्मण 'अभी सवेरा ही है, पीछे देखूँगा' कह बन्दर के पास गया। उसके भी 'किस लिए खड़ा है?' पूछने पर वैसा ही उत्तर दिया। बन्दर ने 'अच्छा, देता हूँ' कह उससे बातचीत करते हुए तीसरी गाथा कही:—

अम्बपक्कोदकं सीतं सीतच्छायं मनोरमं,
इदं ब्राह्मण मे अत्थि एतं भुत्वा वने वस ॥

[पके आम, ठण्डा जल और शीतल छाया—यह है हे ब्राह्मण ! मेरे पास । इसे खाकर बन में रह ।]

ब्राह्मण 'अभी सवेरा ही है, पीछे देखूँगा' कह शश-पंडित के पास गया । उसके भी 'किस लिये खड़ा है ?' पूछने पर वही बात कही । इसे सुन बोधिसत्व अति-प्रसन्न हो बोले—ब्राह्मण ! तूने अच्छा किया जो आहार के लिये मेरे पास आया । आज मैं ऐसा दान दूंगा जैसा पहले कभी नहीं दिया । तू सदाचारी है, इसलिये हिंसा नहीं करेगा । जा अनेक लकड़ियाँ इकट्ठी कर, अङ्गार बना कर मुझे सूचना दे । मैं आत्म-बलिदान कर अङ्गारों के बीच में गिरूँगा । मेरे शरीर के पकने पर तू मांस खाकर श्रमण-धर्म करना । इस प्रकार उससे बातचीत करते हुए बोधिसत्व ने चौथी गाथा कही—

न ससस्स तिला अत्थि न मुग्गा नपि तण्डुला,
इमिना अग्गिना पक्कं ममं भुत्वा वने वस ॥

[शश के पास न तिल हैं, न मूंग हैं और न हैं चावल । इस आग से पके हुए मुझको ही खाकर बन में रह ।]

शक्र ने उसकी बात सुन अपने प्रताप से एक अङ्गारों का ढेर रच बोधिसत्व को सूचना दी । उसने बढ़िया घास की शैय्या से उठ तीन बार अपने शरीर को झाड़ा—यदि शरीर के बालों में कोई प्राणी हों तो न मरें । फिर सारे शरीर को दान कर, उछलकर प्रसन्नचित्त हो अङ्गारों के ढेर पर ऐसे कूदा मानों राजहंस कमलों के ढेर में कूदा हो । वह आग बोधिसत्व के शरीर के रोम-छिद्र तक को भी गर्म नहीं कर सकी । ऐसा हुआ जैसे हिम-गृह में प्रवेश किया हो । उसने शक्र को सम्बोधित कर पूछा—ब्राह्मण ! तेरी बनाई हुई आग अति शीतल है । मेरे शरीर के रोम-छिद्र तक को गर्म नहीं कर सकी है । यह क्या बात है ?

"पण्डित ! मैं ब्राह्मण नहीं हूँ । मैं शक्र हूँ । तेरी परीक्षा लेने आया हूँ ।"

बोधिसत्व ने सिंह-नाद किया—शक्र ! तेरी तो बात क्या ! यदि यह सारा संसार भी मेरे दान की परीक्षा लेना चाहे, तो वह मुझमें न देने की इच्छा नहीं देख सकेगा ।

शक्र बोला—शश-पण्डित ! तेरा गुण सारे कल्पों तक प्रसिद्ध रहे। उसने पर्वत को निचोड़, पर्वत का रस ले चन्द्रमण्डल में शश का आकार बना दिया। फिर बोधिसत्व को बुला उस वन-खण्ड में, उसी झुरमुट में, नई दूब की घास पर लिटाया और (स्वयं) अपने देवलोक को चला गया। वे चारों पण्डित भी एकमत हो, प्रसन्न-चित्त रहते हुये शील को पूरा कर, उपोसथ-व्रत का पालन कर कर्मानुसार (परलोक) गये।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बिठाया। सत्यों के अन्त में सभी आवश्यक वस्तुयें दान करने वाला गृहस्थ स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय ऊद-बिलाऊ आनन्द था। गीदड़ मौद्गल्लायन था। बन्दर सारिपुत्र था। शक्र अनुरुद्ध था और शश-पण्डित तो मैं ही था।

२१७. मतरोदन जातक

"मतमतमेव रोदथ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक श्रावस्ती-वासी गृहस्थ के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसका भाई मर गया था। वह उसके मरने से शोकाभिभूत हो न नहाता, न खाना खाता, न (चन्दनादि) लेप करता; प्रातःकाल ही श्मशान में पहुँच शोकाकुल हो रोने लगता। शास्ता ने ब्राह्म-मुहूर्त में लोक का विचार करते हुए उसकी स्रोतापत्तिफल प्राप्ति की संभावना को देखा। उन्होंने सोचा कि इसके पूर्वजन्म की बात ला, शोक को शान्त कर इसे स्रोतापत्ति फल दे सकने वाला मेरे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं, इसलिये मुझे इसका सहारा होना चाहिये। अगले दिन भिक्षाटन से लौट भोजनानन्तर अनुगामी-श्रमण के साथ शास्ता उसके गृह-द्वार पर पहुँचे। गृहस्थ ने सब सुना कि शास्ता आये

हैं तो उसने आसन बिछा कर कहा—उन्हें लिवा लाओ। शास्ता अन्दर जाकर बिछे आसन पर बैठे। गृहस्थ भी आकर शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। तब शास्ता ने पूछा—

गृहस्थ ! क्या चिन्तित हो ?

"भन्ते ! हाँ जब से मेरा भाई मरा है, मैं चिन्तित हूँ।"

"आयुष्मान् ! सभी संस्कार अनित्य हैं, भेदन-स्वभाव का भेदन होता ही है। उस विषय में चिन्ता नहीं करनी चाहिए। पुराने पण्डितों ने भाई के मरने पर भी 'भेदन-स्वभाव का भेदन होता ही है' सोच चिन्ता नहीं की।"

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व अस्सी करोड़ धन वाले सेठ-कुल में पैदा हुए। उसके बड़े होने पर माता-पिता मर गये। उनके मरने पर बोधिसत्व का भाई कुटुम्ब को पोसता था। बोधिसत्व उसी के सहारे जीते थे। आगे चलकर वह भी किसी बीमारी से मर गया। ज्ञाति-मित्र इकट्ठे हो हाथ पकड़कर रोते पीटते थे, एक जना भी होश में नहीं रह सका। बोधिसत्व न रोते थे न पीटते। मनुष्यों ने निन्दा की—देखो, इसका भाई मर गया है, लेकिन इसके चेहरे पर एक चिन्ता की रेखा भी नहीं है। बहुत ही कठोर हृदय है। मालूम होता है दोनों हिस्से स्वयं भोगने के लिये यह भाई का मरण ही चाहता है। रिश्तेदार भी निन्दा करने लगे—तू भाई के मरने पर रोता नहीं है।

उसने उनकी बात सुन कर पूछा—तुम अपने अन्धेपन के कारण, मूर्खता के कारण, आठ लोक-धर्मों से अपरिचित होने से 'मेरा भाई मरा है' कहकर रोते हो। मैं भी मरूँगा, तुम भी मरोगे, अपने आपको भी, 'हम भी मरेंगे' कह कर क्यों नहीं रोते हो ? सभी संस्कार अनित्य हैं, होकर नहीं रहते हैं, ऐसा एक संस्कार भी नहीं है जो उसी अवस्था में स्थिर रह सके। तुम अपने अन्धेपन तथा मूर्खता के कारण आठ लोकधर्मों से अपरिचित होने से रोते हो तो मैं क्यों रोऊँ ? इतना कह ये गाथायें कहीं :—

मतमतमेव रोदथ नहि तं रोदथ यो मरिस्सति,
सब्बेव सरीरधारिनो अनुपुब्बेन जहन्ति जीवितं ॥
देवमनुस्सा चतुप्पदा पक्खिगणा उरगा च भोगिनो,
सम्हि सरीरे अनिस्सरा रममानाव जहन्ति जीवितं ॥
एवं चलितं असण्ठितं सुखदुक्खं मनुजेसु अपेक्खिय,
कन्दित-रुदितं निरत्थकं किं वो सोकगणाभिकीररे ॥
धुत्ता सोण्डा अकता बाला सूरा अयोगिनो,
धीरं मञ्ञन्ति बालोति ये धम्मस्स अकोविदा ॥

[मरे मरे को ही रोते हो, उसे नहीं रोते जो मरेगा। सभी शरीरधारी क्रमशः जीवन त्याग करेंगे। देवता, मनुष्य, चतुष्पाद, पक्षिगण, और बड़े फन वाले नाग तक अपने अपने शरीर पर कोई अधिकार न रख, भोगों में आसक्त रहते ही शरीर त्याग करेंगे। इस प्रकार मनुष्यों में सुख-दुःख जब चञ्चल है, अस्थिर है तो उसे देखते हुए रोना पीटना निरर्थक है। तुम ये सब शोक क्यों करते हो? जो धूर्त हैं, जो सुरा आदि पीते हैं, जिन्होंने शास्त्राभ्यास नहीं किया है, जो मूर्ख हैं, जो (अकर्तव्य में) शूर हैं, जो अयोगी हैं और जो आठ लोकधर्मों से अपरिचित हैं वे (मेरे जैसे) धीर को समझते हैं कि यह मूर्ख है।]

शास्ता ने यह धर्मोपदेश ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्यों के अन्त में गृहस्थ स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय जनता को धर्मोपदेश दे, उसके शोक को दूर करने वाला पण्डित मैं ही था।

२१८. कणवेर जातक

"पन्तं वसन्तसमये......" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्वभार्य्या के आकर्षण के बारे में कही। (वर्तमान) कथा

इन्द्रिय जातक[1] में आएगी। शास्ता ने उस भिक्षु को 'भिक्षु! इसी के कारण पूर्वजन्म में तलवार से तेरा सिर काटा गया है' कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व काशी (जनपद के) गाँव में एक गृहस्थ के घर में चोर-नक्षत्र में पैदा हुए। बड़े होने पर चोरी द्वारा जीविका चलाने लगे और लोक में बड़े बलवान बहादुर प्रसिद्ध हो गये। कोई भी उस चोर को पकड़ न सकता था। वह एक दिन एक सेठ के घर में सेंध लगाकर बहुत सा धन ले गया। नागरिकों ने आकर महाराज से शिकायत की—देव! एक डाकू नगर लूट रहा है। उसे पकड़वायें। राजा ने नगर-कोतवाल को उसे पकड़ने की आज्ञा दी।

उसने रात को जहाँ-तहाँ लोगों की टोलियाँ बनाकर उन्हें नियुक्त कर उसे धन सहित पकड़ लिया और राजा को सूचना दी। राजा ने नगर-कोतवाल को ही आज्ञा दी—इसका सिर काट डालो।

नगर-कोतवाल ने उसके दोनों हाथ पीछे कस कर बँधवा दिये, गर्दन में लाल कनेर की माला डलवा दी, सिर पर ईंट का चूरा बिखरवा दिया और उसे चौरस्ते-चौरस्ते पर चाबुक मारता हुआ, जोर से ढोल बजवाकर बध-स्थान की ओर ले चला। सारा नगर क्षुब्ध हो उठा—इस नगर में डाकू-चोर पकड़ा गया है।

उस समय वाराणसी में हजार लेने वाली सामा नाम की वैश्या थी—राजा की प्रिया और पाँच सौ सुन्दर दासियों वाली। उसने महल की खिड़की खोल खड़े हो उसे ले जाये जाते देखा।

वह रूपवान था, सुन्दर था, अत्यन्त शोभायमान था, देव-वर्ण वाला था, सभी का सिर-मौर प्रतीत होता था। उसे ले जाते देख, आसक्त हो वह सोचने लगी—किस उपाय से इस पुरुष को मैं अपना स्वामी बनाऊँ? उसे सूझा—एक उपाय है। उसने अपना काम करने वाली के हाथ नगर-कोतवाल के पास एक हजार मुद्रा भिजवाई और कहलवाया—यह चोर सामा

---

[1] इन्द्रिय जातक (४२३)।

का भाई है। सामा के अतिरिक्त इसका और कोई सहारा नहीं है। तुम यह हजार लेकर इसे छोड़ दो। उस काम करने वाली ने वैसा किया। नगर-कोतवाल ने उत्तर दिया—यह प्रसिद्ध चोर है। इसे ऐसे नहीं छोड़ सकता। इसकी जगह कोई दूसरा आदमी मिले तो इसे गाड़ी में छिपाकर, बिठाकर भेज सकता हूँ। उसने जाकर उसे कहा।

उस समय सामा पर आसक्त एक सेठ-पुत्र प्रतिदिन हजार दिया करता था। वह उस दिन भी हजार ले उसके घर पहुँचा। सामा हजार की थैली को जाँघ में दबा बैठ कर रोने लगी। 'क्या बात है?' पूछने पर बोली—स्वामी! यह चोर मेरा भाई है। मैं नीच-कर्म करती हूँ, इसलिये मेरे पास नहीं आता। नगरकोतवाल के पास भेजने पर उसने संदेश भिजवाया है कि हजार मिलेगा तो छोड़ दूँगा। अब ऐसा कोई नहीं मिलता जो इस हजार को लेकर नगर-कोतवाल के पास जाय। उसने उसपर आसक्त होने के कारण कहा—मैं जाऊँगा। तो यह जो तुम लाये हो, यही लेकर जाओ।

वह उसे ले नगर-कोतवाल के घर पहुँचा। नगर-कोतवाल ने उस सेठ-पुत्र को छिपी जगह में रख, चोर को छिपी गाड़ी में बिठा, सामा के पास भेजा और कहलाया कि यह चोर देश भर में प्रसिद्ध है, अच्छी तरह अन्धेरा हो जाने दे। उसने बहाना बनाया कि लोगों के सो जाने के समय इसे मरवाऊँगा। फिर थोड़ा समय व्यतीत होने पर, जब लोग सोने चले गये थे, उसने सेठ-पुत्र को बड़े पहरे में बध-स्थान पर ले जा तलवार से सिर काट शरीर को सूली पर टाँग नगर में प्रवेश किया।

उस समय से सामा किसी दूसरे के हाथ से कुछ न ग्रहण कर उसी के साथ रमण करती। वह सोचने लगा—यदि यह किसी दूसरे पर असक्त हो गई तो यह मुझे भी मरवाकर किसी दूसरे के साथ रमण करेगी। यह अत्यन्त मित्र-द्रोही है। मुझे चाहिये कि यहाँ न रह कर शीघ्र भाग जाऊँ। लेकिन हाँ जाते समय खाली हाथ नहीं जाऊँगा। इसके गहनों की गठड़ी लेकर जाऊँगा। यह सोच बोला:—

"भद्रे! हम पिञ्जरे में बन्द मुर्गों की तरह नित्य घर में ही रहते हैं। एक दिन उद्यान-क्रीड़ा के लिये चलें।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया

और सब खाद्य-भोजन सामग्री तैयार करा, सभी गहनों से अलंकृत हो उसके साथ पर्दे वाली गाड़ी में बैठ उद्यान को गई।

उसने उसके साथ खेलते हुए 'अब मुझे भागना चाहिए' सोच उसके साथ रमण करने जाते हुए की तरह, उसे कनेर के वृक्षों के बीच ले जा, उसका आलिङ्गन करने के बहाने, उसे दबाकर बेहोश कर गिरा दिया। फिर उसके सब गहने उतार, उसी की ओढ़नी में गठरी बाँध, उन्हें कंधे पर रख, बाग की दीवार लाँघ भाग गया।

उसे होश आई तो उसने सेविकाओं के पास जाकर पूछा—आर्य-पुत्र कहाँ है? "आर्ये! हम नहीं जानतीं।" उसने सोचा—मुझे मरा समझ डर कर भाग गया होगा। वह दुखी हुई और घर पहुँच जमीन पर लेट रही—मैं तभी अलंकृत शैय्या पर लेटूँगी जब अपने प्रिय स्वामी को देख सकूंगी।

उसने अच्छे वस्त्र पहनने छोड़ दिये। दोनों शाम भोजन करना छोड़ दिया। गन्धमाला धारण करना छोड़ दिया। 'जिस किसी तरह भी आर्य-पुत्र का पता लगाकर उसे बुलवाऊँगी' सोच उसने नटों को बुलवाकर उन्हें एक हजार दिये। उन्होंने पूछा:—

"आर्ये! क्या करें?"

"ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ तुम्हारी पहुँच न हो। तुम ग्राम-निगम तथा राजधानियों में घूमते हुए तमाशा करते समय तमाशा देखने वालों के इकट्ठे होने पर पहले पहल यह गीत गाना।" उसने नटों को पहली गाथा सिखाते हुए "यदि आर्य-पुत्र उस परिषद में होगा तो तुम्हारे साथ बातचीत करेगा। उसे मेरा आरोग्य कहकर उसे लिवा लाना। यदि न आये तो मुझे सन्देशा भेजना" कह खर्चा दे विदा किया।

वे वाराणसी से निकल जहाँ तहाँ तमाशा करते हुए एक प्रत्यन्त-ग्राम में पहुँचे। वह चोर भी भाग कर वहीं रहता था। उन्होंने वहाँ तमाशा करते समय पहले पहल यही गीत गाया—

यन्तं वसन्तसमये कणवेरेसु भानुसु,
सामं बाहाय पीळेसि सा तं आरोग्यमब्रवि॥

[तूने वसन्त समय में लाल लाल कनेर के वृक्षों के बीच में जिस सामा को हाथों से दबाया था, वह तुझे अपने आरोग्य की सूचना देती है।]

चोर ने यह गीत सुन नट के पास आ "तू सामा जीती है' कहता है, मैं इस पर विश्वास नहीं करता" कह उसके साथ बतियाते हुए दूसरी गाथा कही—

> अम्भो न किर सद्धेय्यं यं वातो पब्बतं वहे,
> पब्बतञ्च वहे वातो सब्बम्पि पठविं वहे
> यत्थ सामा कालकता सामं आरोग्यमब्रु वि ॥

[भो ! इस पर विश्वास नहीं होता कि हवा पर्वत को बहा ले जा सकती है, यदि वह पर्वत को बहा ले जाये तो फिर वह सारी पृथ्वी को भी बहा ले जा सकती है। (इसी लिये इस पर विश्वास नहीं होता कि) जो सामा मर गई वह मुझे अपने आरोग्य की सूचना दे।]

उसका कथन सुन नट ने तीसरी गाथा कही—

> न चेव सा कालकता न च सा अञ्ञमिच्छति,
> एकभत्ता किर सामा तमेव अभिकङ्खति ॥

[न वह मरी है, न किसी दूसरे की इच्छा करती है। एक ही भर्ता वाली वह सामा उसी एक ही की इच्छा करती है।]

इसे सुन चोर ने 'चाहे वह जीती हो, चाहे न हो, मुझे उससे प्रयोजन नहीं' कह चौथी गाथा कही—

> असन्थुतं मं चिरसन्थुतेन
> निमीनि सामा अधुवं धुवेन,
> मयापि सामा निमिनेय्य अञ्ञं
> इतो अहं दूरतरं गमिस्सं ॥

[सामा ने चिरकाल से संसर्ग किये हुए, ध्रुव-स्वामी को छोड़ कर मुझे जिसका पूर्व संसर्ग नहीं था और जो अध्रुव था अपनाया। अब सामा मुझसे भी किसी दूसरे को बदल सकती है। इसलिये मैं यहाँ से भी और दूर जाता हूँ।]

'उसे मेरे यहाँ से भी चल देने की बात कहना' कह उसने उनके देखते ही देखते कपड़े को और जोर से ओढ़ा और भाग निकला।

नट ने जाकर उसका किया उसे सुनाया। उसने पश्चाताप करते हुए अपने ढङ्ग से ही दिन काटे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्यों के अन्त में उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय सेठ-पुत्र यह भिक्षु था। सामा पूर्व-भार्य्या। चोर तो मैं ही था।

३१९. तित्तिर जातक

"सुसुखं वत जीवामि..." यह शास्ता ने कोसम्बी के बदरिकाराम में विहार करते समय राहुल स्थविर के बारे में कही। (वर्तमान) कथा उक्त **तिपल्लत्थ जातक**[1] में आ ही गई है। धर्मसभा में भिक्षुओं के उस आयुष्मान के गुण कहने पर कि आयुष्मानो, राहुल शिक्षा-प्रेमी है, (बुरे कर्म में) अति संकोची है, उपदेश सुनता है, शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ, न केवल अभी राहुल शिक्षा-प्रेमी है, (बुरे कर्म में) अति-संकोची तथा उपदेश सुनने वाला है, पहले भी राहुल शिक्षा-प्रेमी, (बुरे कर्म में) अति-संकोची तथा उपदेश सुनने वाला ही रहा है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में सभी विद्यायें सीख, निकल कर, हिमालय प्रदेश में ऋषि-प्रव्रज्या ग्रहण कर, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कीं। फिर ध्यान-क्रीड़ा में रत रह रमणीय वन-खण्ड में वास करते हुए निमक-खटाई खाने के लिए एक प्रत्यन्त-ग्राम में पहुँचे। मनुष्यों

---

[1] तिपल्लत्थमिग जातक (१६)

ने उन्हें वहाँ देख उनके प्रति श्रद्धावान हो किसी जङ्गल में पर्ण-कुटी बनवा सभी आवश्यक वस्तुयें पहुँचाते हुए (उस कुटी में) बसाया।

उस समय उस गाँव का एक चिड़िमार एक फँसाऊ तीतर को अच्छी तरह से सिखा-पढ़ा पिंजरे में रख पालता था। वह उसे जंगल में ले जा उसकी आवाज़ पर जो जो तीतर आते उन्हें पकड़ कर जीविका चलाता। तीतर सोचने लगा—मेरे कारण मेरे बहुत से जाति-वाले मारे जाते हैं। मैं पाप का भागी होता हूँ। उसने आवाज लगानी बन्द करदी। चिड़ीमार ने उसे चुप देखा तो वह बाँस की चपटी से उसके सिर पर मारने लगा। तीतर दुखित हो आवाज़ लगाता। इस प्रकार वह शिकारी उसकी मदद से तीतरों को पकड़ जीविका चलाता।

वह तीतर सोचने लगा—ये मरें ऐसी तो मेरी इच्छा नहीं है, लेकिन जिस कर्म के होने से मरते हैं वह कर्म मुझे स्पर्श करता है। मैं आवाज नहीं लगाता तब ये नहीं आते, आवाज लगाता हूँ तभी आते हैं। जो जो आ फँसते हैं, उन्हें यह शिकारी पकड़ कर मार डालता है। मुझे इसमें पाप लगता है वा नहीं? उस समय से वह किसी ऐसे पण्डित को खोजता हुआ विचरने लगा जो उसके इस सन्देह को मिटा सके।

एक दिन शिकारी बहुत से तीतरों को पकड़, टोकरा भर, पानी पीने के लिए बोधिसत्व के आश्रम गया। उस पिंजरे को बोधिसत्व के पास रख पानी पी, बालु पर लेट सो गया। उसे सोया जान तीतर ने सोचा कि मैं अपना सन्देह इस तपस्वी से पूछूँ। जानता होगा तो मेरे सन्देह को दूर करेगा। उसने पिंजरे में पड़े ही पड़े उसे पूछते हुए पहली गाथा कही:—

सुसुखं वत जीवामि लभामि चेव भुञ्जितुं,
परिपन्थे च तिट्ठामि कानु भन्ते गति मम ॥

[मैं सुख से रहता हूँ और खाना पाता हूँ लेकिन साथ ही उस रस्ते पर रहता हूँ (जहाँ मेरे जाति-वाले आकर फँसते हैं) भन्ते! मेरी क्या गति होगी?]

उसके प्रश्न का उत्तर देते हुए बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

मनो चे ते न पणमति पक्खि पापस्स कम्मुनो,
अब्यावटस्स भद्रस्स न पापमुपलिप्पति ॥

[हे पक्षि ! यदि तेरा मन पापकर्म की ओर नहीं झुकता तो पाप-कर्म न करने वाले तुम भद्र को पाप नहीं लगता ।]

उसे सुन तीतर ने तीसरी गाथा कही—

ञातको नो निसिन्नोति बहु आगच्छते जनो,
पटिच्चकम्मं फुसति तस्मिं मे सङ्कते मनो ॥

[हमारी जाति का बैठा है; समझ बहुत से आ जाते हैं । मेरे होने से इन्हें (प्राणि-हत्या का) कर्म स्पर्श करता है । इस विषय में मेरे मन में सन्देह है ।]

उसे सुन बोधिसत्व ने चौथी गाथा कही—

पटिच्चकम्मं न फुसति मनो चे नप्पदुस्सति,
अप्पोसुक्कस्स भद्रस्स न पापमुपलिप्पति ॥

[यदि मन दूषित न हो तो प्रतीत्य-कर्म स्पर्श नहीं करता । जो पाप करने के लिए उत्सुक नहीं है, ऐसे भद्रजन को पाप नहीं लगता ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने तीतर को समझाया । वह भी उनके कारण निश्शंक हो गया । चिड़ीमार जागने पर बोधिसत्व को प्रणाम कर पिंजरा ले चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया । उस समय तीतर राहुल था । तपस्वी तो मैं ही था ।

३२०. सुच्चज जातक

"सुच्चजं वत नच्चजी..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक गृहस्थ के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

वह गाँव में कर्जा वसूल करने के लिए भार्य्या सहित वहाँ गया । कर्जा वसूल कर 'गाड़ी लाकर बाद में ले जाऊँगा' सोच उसने वसूल किया हुआ

सामान एक गृहस्थ के घर में रख दिया और श्रावस्ती की ओर चला। रास्ते में उन्होंने एक पर्वत देखा। उसकी भार्या बोली—स्वामी ! यदि यह पर्वत स्वर्णमय हो जाय तो मुझे भी कुछ दोगे ?

"तू कौन है, कुछ नहीं दूंगा।"

वह असन्तुष्ट हो गई—कितना कठोर-हृदय है यह ! पर्वत के स्वर्णमय होने पर भी मुझे कुछ नहीं देगा। वे जेतवन के समीप आये तो पानी पीने के लिये विहार में जा उन्होंने पानी पिया। शास्ता भी अति प्रातःकाल हो उनकी प्रतीक्षा करते हुए गन्धकुटी के बरामदे में बैठे थे, क्योंकि उन्होंने उनकी स्रोतापत्ति-फल प्राप्ति की संभावना को देखा था। उनके शरीर से छः वर्ण की रश्मियाँ निकल रही थीं। वे भी पानी पी आकर शास्ता को प्रणाम कर बैठ रहे। शास्ता ने उनका कुशलक्षेम पूछने के बाद पूछा—कहाँ गये थे ?

"भन्ते ! अपने गाँव में वसूली करने के लिये।"

"उपासिका ! क्या तेरा स्वामी तेरा हितचिंतक है ? तेरा उपकार करता है ?"

"भन्ते ! मैं तो इससे स्नेह करती हूँ, किन्तु यह मुझ से स्नेह नहीं करता। आज मैंने पूछा—यदि यह पर्वत स्वर्णमय हो, तो मुझे कुछ देगा ? यह बोला—तू कौन है ? कुछ नहीं दूंगा। यह ऐसा कठोर-हृदय है।"

"उपासिका ! यह ऐसा कहता भर है लेकिन जब यह तेरे गुणों को याद करता है तो तुझे सब ऐश्वर्य देता है।"

उनके प्रार्थना करने पर कि भन्ते ! (पूर्व-जन्म की कथा) कहें, शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व उसके सर्वार्थसाधक अमात्य हुए ! एक दिन राजा ने राजकुमार को सेवा में आते देख सोचा, शायद यह मेरे विरुद्ध षड़यंत्र करे। उसने उसे बुलाकर आज्ञा दी—तात जब तक मैं जीता हूँ तुम नगर में नहीं रह सकते, अन्यत्र रहकर मेरे मरने पर राज्य सँभालना।

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर पिता को प्रणाम किया। ज्येष्ठ भार्या को साथ ले नगर से निकल पड़ा। प्रत्यंत-देश में पहुँच पर्ण-कुटी बना जंगल के फल मूल खाकर रहने लगा। समय बीतने पर राजा मर गया।

उपराज ने नक्षत्र देख जाना, कि उसका पिता मर गया। वाराणसी आते हुये रास्ते में एक पर्वत देखा।

भार्य्या बोली—देव ! यदि यह पर्वत स्वर्णमय हो तो मुझे कुछ देंगे ?

"तू कौन है कुछ नहीं दूंगा।" वह असन्तुष्ट हो गई—मैं इसके प्रति स्नेह न छोड़ सकने के कारण जंगल में आई और यह इस तरह बोलता है। अति कठोर-हृदय है। राजा होकर यह मेरा क्या भला करेगा ?

उसने आकर राज्य पर प्रतिष्ठित होने पर उसे पटरानी बनाया। उसे यह यशमात्र दिया, और सत्कार सम्मान कुछ नहीं। मानो वह है ही नहीं। बोधिसत्व ने सोचा—इस देवी ने इस राजा का उपकार किया। अपने दुःख का ख्याल न कर इसके साथ जंगल में रही। लेकिन यह राजा इसका ख्याल न कर दूसरी के साथ रमण करता रहता है। मैं कुछ ऐसा करूं जिसमें इसे सब ऐश्वर्य्य मिलें। एक दिन बोधिसत्व ने उस देवी के पास आकर कहा—महादेवी ! हमें तुम से भिक्षा-मात्र भी नहीं मिलती ? हमारे प्रति इतनी उपेक्षा क्यों ? आप बड़ी कठोर-हृदया हैं ?

"तात ! यदि मुझे मिले तो तुम्हें भी दूं। कुछ न मिलने पर क्या दूं ? राजा भी मुझे अब क्या देगा जिसने रास्ते में इस पर्वत के स्वर्णमय होने पर 'मुझे कुछ दोगे ?' पूछने पर 'तू कौन है ? कुछ न दूंगा' उत्तर दिया था। जो आसानी से दिया जा सकता था वह भी नहीं दिया।"

"क्या तुम राजा के सामने यह बात कह सकोगी।"

"तात ! क्यों न कह सकूंगी ?"

"तो राजा की उपस्थिति में पूछूंगा। तुम कहना।"

"तात ! अच्छा।"

बोधिसत्व ने देवी के राजा की सेवा में आकर खड़ी होने पर कहा—आर्ये ! हमें तुम से कुछ नहीं मिलता ?

"तात ! मुझे मिले तो मैं तुम्हें दूं। मुझे ही कुछ नहीं मिलता। राजा भी मुझे अब क्या देगा। इसने तो जंगल से लौटते समय मेरे एक पर्वत

को देखकर 'इस पर्वत के स्वर्णमय होने पर मुझे दोगे ?' पूछने पर 'तू कौन है ? कुछ नहीं दूंगा' उत्तर दिया था। जो आसानी से दिया जा सकता था वह भी नहीं दिया।"

यही बात कहने के लिये उसने पहली गाथा कही—

सुच्चजं वत नच्चजी वाचाय अदुदं गिरिं,
किं हि तस्स चजन्तस्स वाचाय अददं पब्बतं ॥

[वाणी से पर्वत का त्याग न कर जो सरलता से दिया जा सकता था, वह भी नहीं दिया। उसका त्याग करने में क्या लगा था ? इसने वाणी से भी पर्वत नहीं दिया।]

इसे सुन राजा ने दूसरी गाथा कही—

यं हि कयिरा तंहि वदे यं न कयिरा न तं वदे,
अकरोन्तं भासमानं परिजानन्ति पण्डिता ॥

[जो करे वही कहे, जो न करे वह न कहे। न करते हुए केवल कहने वाले को पण्डित जन पहचान लेते हैं।]

इसे सुन देवी ने राजा के सामने हाथ-जोड़ तीसरी गाथा कही—

राजपुत्त नमो त्यत्थु सच्चे धम्मे ठितोवसि,
यस्स ते व्यसनं पत्तो सच्चस्मिं रमते मनो ॥

[राजपुत्र ! तू सत्य और धर्म में स्थित है। आपत्ति में पड़ने पर भी तेरा मन सत्य में ही रमण करता है, तुझे नमस्कार है।]

इस प्रकार देवी के राजा का गुणानुवाद करने पर उसकी बात सुन बोधिसत्व ने उसके गुण कहने के लिये चौथी गाथा कही—

या दलिद्दी दलिद्दस्स अड्ढा अड्ढस्स कित्तिमा,
सा हिस्स परमा भरिया सहिरञ्ञस्स इत्थियो ॥

[जो स्त्री दरिद्र पति के साथ दरिद्री बनकर रहती है और धनी होने पर धनवान बनकर रहती है, वही कीर्तिमान नारी ही उसकी परं श्रेष्ठ भार्य्या है; यूँ धनवान की स्त्रियाँ तो होती ही हैं।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने देवी के गुण कहे और राजा से निवेदन किया—महाराज ! यह तुम्हारी विपत्ति के समय तुम्हारे दुःख में शामिल रही। इसका सम्मान करना चाहिये।

राजा ने उसके कहने से देवी के गुणों का ध्यान कर 'पण्डित तेरे कहने से मुझे देवी के गुण याद आये' कह उसे सब ऐश्वर्य दिया। 'और तूने मुझे देवी का गुण याद कराया' कह बोधिसत्व का भी बड़ा सत्कार किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर पति-पत्नी स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुए।

उस समय वाराणसी राजा यह गृहस्थ था। देवी यह उपासिका। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

चौथा परिच्छेद

३. कुटिदूसक वर्ग

३२१. कुटिदूसक जातक

"मनुस्सस्सेव ते सीसं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय महाकश्यप स्थविर की कुटि जला देने वाले तरुण भिक्षु के बारे में कही। घटना राजगृह में घटी।

क. वर्तमान कथा

उस समय स्थविर राजगृह के पास जंगल में कुटी में रहते थे। दो तरुण (भिक्षु) उसकी सेवा में थे। उनमें से एक स्थविर का उपकारी था और दूसरा बात न सहन करने वाला। वह दूसरे के किये को अपने किये जैसा करके दिखाता था। उपकारी भिक्षु के मुँह धोने का पानी आदि लाकर रखने पर वह स्थविर के पास जा प्रणाम कर 'भन्ते! मैंने पानी रख दिया है, मुँह धोयें' आदि कहता। उसके प्रातःकाल ही उठकर स्थविर का परिवेण साफ करने पर स्थविर के बाहर निकलने के समय इधर उधर (झाड़ू) मार सारा परिवेण अपने साफ किया जैसा कर देता। कर्तव्य-परायण भिक्षु ने सोचा—यह, बात न सह सकने वाला जो कुछ मैं करता हूँ उसे अपना किया बना देता है। मैं इसकी करतूत प्रकट करूँगा। उसके गाँव में जाकर, खाकर, आकर सोते समय नहाने का पानी गर्म कर पीछे की कोठरी में रख दिया, और दूसरा आधी नाली मात्र पानी चूल्हे पर रख दिया। उसने उठकर आकर भाप उठती देखी। सोचा—पानी गर्म करके कोठरी में रखा होगा। स्थविर के पास जाकर बोला—भन्ते! स्नानागार में पानी रखा है, स्नान करें। स्थविर 'नहाता हूँ' कह उसी के साथ आये। कोठरी में जब पानी नहीं दिखाई दिया तो पूछा—कहाँ है? उसने जल्दी से अग्निशाला में पहुँच खाली बर्तन में कड़छी घुमाई। कड़छी ने खाली बर्तन के तल में

लग 'सर' आवाज की। तब से उसका नाम ही 'उलुङ्कशब्दक' अर्थात् उलुङ्क शब्द करने वाला पड़ गया। उस समय दूसरे ने पीछे की कोठरी में से पानी लाकर कहा—भन्ते! स्नान करें। स्थविर ने स्नान कर विचार करने पर 'उलुङ्कशब्दक' के बारे में यह जान कि यह कठिनाई से बात मानने वाला है, शाम को उसके सेवा में आने पर उसे उपदेश दिया—आयुष्मान! श्रमण को चाहिये कि अपने किये को ही किया कहे, अन्यथा जानबूझ कर झूठ बोलना होता है। अब से ऐसा न करना। वह स्थविर से क्रुद्ध हो अगले दिन स्थविर के साथ भिक्षाटन के लिये गाँव में नहीं गया। स्थविर दूसरे के ही साथ गये। उलुङ्कशब्दक भी स्थविर के सेवक-परिवार में पहुँचा। वहाँ पूछा—भन्ते! स्थविर कहाँ है?

"अस्वस्थ होने के कारण विहार में ही बैठे हैं।"

"भन्ते! तो क्या क्या चाहिये?"

"यह दें, वह दें" कह लेकर अपने मन की जगह जा, खाकर विहार में पहुँचा। अगले दिन स्थविर उसी परिवार में जाकर बैठे। मनुष्यों ने पूछा—भन्ते आर्य को क्या कष्ट है? कल विहार में बैठे रहे। हमने अमुक तरुण के हाथ आहार भेजा। आर्य ने आहार ग्रहण किया? स्थविर ने चुप चाप भोजन समाप्त कर विहार जा शाम को उसके सेवा में आने पर कहा—आयुष्मान अमुक गांव में अमुक परिवार में स्थविर के लिए यह चाहिए कह तुम खागये। मुँह से माँगना अनुचित है। फिर ऐसा अनाचार न करना। इससे उसके मन में स्थविर के प्रति बैर बढ़ गया। उसने सोचा, कल इसने केवल पानी के लिए मेरे साथ झगड़ा किया आज इसके सेवकों के घर जो मैंने एक मुट्ठी भात खा लिया उसे न सह सकने के कारण फिर झगड़ा करता है। देखूँगा इसके साथ क्या करना चाहिए। अगले दिन जब स्थविर भिक्षाटन के लिए गये, उसने मुग्दर ले काम में आने वाले बर्तनों को तोड़ फोड़ दिया। और पर्णकुटी में आग लगा भाग गया। वह जीते जी मनुष्य-प्रेत हो सूख गया और मरने पर अवीची नरक में पैदा हुआ। उसका अनाचार जनता में प्रकट हो गया। कुछ भिक्षु राजगृह से श्रवास्ती आये। उन्होंने अनुकूल स्थान पर अपना पात्र चीवर संभाल कर रखा, और शास्ता के समीप जा प्रणाम कर बैठे। शास्ता ने उनसे कुशल-प्रश्न करके पूछा—कहां से आये?

"भन्ते ! राज-गृह से ।"

"वहां उपदेश देने वाला आचार्य कौन है ?"

"भन्ते ! महाकाश्यप स्थविर ।"

"भिक्षुओ ! काश्यप सकुशल है ?"

"हाँ भन्ते ! स्थविर तो सुख से हैं, लेकिन उनका शिष्य उनके उपदेश देने से क्रोधित हो, जिस समय स्थविर भिक्षाटन के लिये गये थे, मुग्दर ले काम के बर्तनों को तोड़ फोड़ स्थविर की पर्ण-कुटी में आग लगा भाग गया ।"

शास्ता ने कहा—भिक्षुओ इस प्रकार के मूर्ख के साथ रहने से काश्यप के लिए अकेले रहना ही अच्छा है । उन्होंने धम्म पद की यह गाथा कही:—

चरं चे नाधिगच्छेय्य सेय्यं सदिसमत्तनो,
एकचरियं दळहं कयिरा नित्थ बाले सहायता[1] ॥

[यदि अपने से श्रेष्ठ वा अपने जैसा साथी न मिले तो दृढ़ता पूर्वक अकेला ही रहे । मूर्ख की संगति (अच्छी नहीं है ।]

यह कह उन भिक्षुओं को फिर सम्बोधन कर भगवान बोले—

"भिक्षुओ न केवल अभी यह कुटी को नष्ट करने वाला है पहले भी यह कुटी को नष्ट करने वाला ही रहा है । न केवल अभी यह उपदेश देने वाले पर क्रोधित होता है पहले भी क्रोधित हुआ ही है ।" फिर उनके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व बये की योनि में पैदा हुए । बड़े होने पर अपने लिये वर्षा से सुरक्षित सुन्दर घोंसला बना, हिमालय प्रदेश में रहने लगे । एक दिन मूसलाधार वर्षा के समय सर्दी से ठिठुरता हुआ दाँत कटकटाता हुआ एक बन्दर बोधिसत्व के पास आ बैठा । बोधिसत्व ने उसे कष्ट पाते देख, उससे बात चीत करते हुए पहली गाथा कहीः—

---

[1] बाल वग्ग (२)

मनुस्ससेव ते सीसं हत्थपादा च वानर,
अथ केन नु वण्णेन अगारं ते न विज्जति ॥

[हे वानर ! तेरा सिर भी मनुष्य के समान है और तेरे हाथ पाँव भी। तो फिर क्या कारण है कि तुझे घर नहीं है ?]

इसे सुन बन्दर ने दूसरी गाथा कही:—

मनुस्ससेव मे सीसं हत्थपादा च सिंगिल,
याहु सेट्ठा मनुस्सेसु सा मे पञ्ञा न विज्जति ॥

[हे बये ! मेरा सिर मनुष्य का ही है और हाथ पाँव भी। लेकिन मनुष्यों में जो श्रेष्ठ कहलाती है वह प्रज्ञा मेरे पास नहीं है।]

यह सुन बोधिसत्व ने शेष दो गाथायें कहीं:—

अनवट्ठितचित्तस्स लहुचित्तस्स दुब्भिनो,
निच्चं अध्धुवसीलस्स सुचिभावो न विज्जति ॥
सो करस्सानुभावं वीतिवत्तस्सु सीलियं;
सीतवातपरित्ताणं करस्सु कुटिकं कपि ॥

[जो अस्थिर-चित्त है, जो हलके चित्त का है, जो मित्रद्रोही है तथा जिसका शील स्थिर नहीं है उसे सुख नहीं होता। इसलिये हे कपि ! तू दुश्शीलता को त्याग कर (कुछ) उपाय कर और एक घर बना, जो शीत-वात से रक्षा कर सके।]

बन्दर ने सोचा यह स्वयं वर्षा से सुरक्षित स्थान में बैठा होने के कारण मेरा परिहास करता है। इसे इस घोंसले में न बैठने दूँगा। वह बोधिसत्व को पकड़ने के लिये कूदा। बोधिसत्व उड़कर अन्यत्र चले गये। बन्दर ने घोंसले को नष्ट कर चूर्ण-विचूर्ण कर दिया और चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बन्दर (यह) कुटी जलाने वाला था। बया तो मैं ही था।

३२२. दद्दभ जातक

"दद्दभायति भद्दन्ते..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक तैर्थिक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

तैर्थिक जेतवन के पास जहाँ तहाँ काँटों पर सोते थे, पंचाग्नि ताप तपते थे तथा अन्य नाना प्रकार के मिथ्या तप करते थे। बहुत से भिक्षुओं ने श्रावस्ती में भिक्षाटन कर जेतवन आते समय रास्ते में उन्हें देखा। उन्होंने शास्ता के पास जाकर पूछा—भन्ते! इन अन्य सम्प्रदायों के श्रमण ब्राह्मणों के व्रतों में सार है? शास्ता ने उत्तर दिया—उनके व्रतों में सार या विशेषता नहीं है, उन्हें कसौटी पर कसने पर या परीक्षा करने पर गोबर की पहाड़ी पर खरगोश की चिल्लाहट के समान ठहरते हैं। "भन्ते! हम इसका चिल्लाहट जैसा होना नहीं जानते हैं, हमें कहें।" उनके प्रार्थना करने कर शास्ता ने अतीत कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व शेर की योनि में पैदा हुए। बड़े होने पर जंगल में रहते थे। उस समय पश्चिम समुद्र के पास बेल और ताड़ का बन था। वहाँ एक खरगोश बेल वृक्ष की जड़ में एक ताड़ के गाछ के नीचे रहता था।

एक दिन वह शिकार लेकर आया और ताड़ की छाया में लेट रहा। उसने पड़े पड़े सोचा यदि यह महान पृथ्वी उल्टे तो मैं कहाँ जाऊँगा? उसी समय एक पका हुआ बेल ताड़ के पत्ते पर गिरा। उसने उसकी आवाज सुन समझा कि पृथ्वी उलट रही है और बिना पीछे देखे भागा। मरने के डर के मारे तेजी से भागते हुये उसे देख दूसरे खरगोश ने पूछा—भो! क्या बात है, अत्यन्त डरकर भाग रहे हो? "भो! मत पूछ।" क्या डर की बात है, पूछता हुआ वह भी पीछे दौड़ने लगा। दूसरे ने रुककर बिना देखे ही कहा—यहाँ पृथ्वी उलट रही है। वह भी उसके पीछे भागा। इस प्रकार उसे दूसरे ने

देखा और फिर तीसरे ने और एक हजार खरगोश इकट्ठे होकर भागने लगे।

एक मृग भी उन्हें देख उनके पीछे भागा। एक सुअर, एक नीलगाय, एक भैंस, एक बैल, एक गैंड़ा, एक व्याघ्र, एक सिंह तथा एक हाथी भी उन्हें देख, 'यह क्या है ?' पूछ 'यहाँ पृथ्वी पलटती है' बताये जाने पर भागा। इस प्रकार क्रमशः योजन भर की पशु-सेना हो गई।

तब बोधिसत्व ने उस सेना को भागते देख पूछा—यह क्या है ? जब उसने सुना यहाँ पृथ्वी उलटती है तो सोचा पृथ्वी उलटना कभी नहीं होता। निःसंशय इन्होंने कुछ देखा होगा। यदि मैं कुछ प्रयत्न न करूँगा तो यह सब नष्ट हो जायेंगे। मैं इन्हें जीवनदान दूँगा। उसने सिंहवेग से आगे पहुँच पर्वत के दामन में खड़े हो तीन बार सिंह-नाद किया। सिंह-भय से भयभीत वे रुक कर इकट्ठे हो खड़े हो गये।

सिंह ने उनके बीच में जा पूछा—क्यों भाग रहे हो ?

"पृथ्वी उलट रही है।"

"पृथ्वी को उलटते किसने देखा ?"

"हाथी जानते हैं।"

हाथियों से पूछा। वे बोले—हम नहीं जानते, सिंह जानते हैं। सिंह भी बोले—हम नहीं जानते, व्याघ्र जानते हैं। व्याघ्र भी—हम नहीं जानते, गैंड़े जानते हैं। गैंड़े भी—हम नहीं जानते, बैल जानते हैं। बैल भी—हम नहीं जानते, भैंसे जानते हैं। भैंसे भी—हम नहीं जानते, नीलगायें जानती हैं। नीलगायें भी—हम नहीं जानतीं, सुअर जानते हैं। सुअर भी· हम नहीं जानते, मृग जानते हैं। मृग भी—हम नहीं जानते, खरगोश जानते हैं। खरगोशों से पूछने पर उन्होंने वह खरगोश दिखाकर कहा—यह कहता है।

तब उसे पूछा—सौम्य ! क्या तूने ऐसा देखा कि पृथ्वी उलट रही है ? "स्वामी ! हाँ मैंने देखा।"

"कहाँ रहते हुये देखा ?"

"पश्चिम समुद्र के पास बेल और ताड़ के वन में रहता हूँ। मैंने वहाँ बेल-वृक्ष की जड़ में, ताड़-वृक्ष के ताड़-पत्र की छाया में लेटे लेटे सोचा था,

पृथ्वी उलटी तो मैं कहाँ जाऊँगा ? उसी क्षण पृथ्वी के उलटने का शब्द सुन कर मैं भागा हूं।"

सिंह ने सोचा, निश्चय से उस ताड़-पत्र पर पका बेल गिरने से 'धव' शब्द हुआ होगा। उसी शब्द को सुन कर यह पृथ्वी पलट रही है समझ भागा होगा। मैं यथार्थ बात जानूंगा। उसने उस खरगोश को ले जनता को आश्वासन दिया—मैं जहाँ उसने देखा है वहाँ पृथ्वी का उलटना वा न उलटना यथार्थ रूप से जानकर आऊँगा। जब तक मैं आऊँ तब तक तुम यहीं रहो।

उसने खरगोश को पीठ पर चढ़ाया और सिंह-वेग से छलांग मार उसे ताड़-वन में उतार कर कहा—आ, अपनी देखी जगह दिखा।

"स्वामी ! साहस नहीं होता।"

"आ, डर मत।"

उसने वेल-वृक्ष के पास न जा सकने के कारण कुछ दूर पर ही खड़े हो "स्वामी ! यह 'धव' आवाज होने का स्थान है" कहते हुए पहली गाथा कही—

दद्दभायति भद्दन्ते यस्मिं देसे वसामहं,
अहम्पेतं न जानामि किमेतं दद्दभायति ॥

[तुम्हारा भला हो, जहाँ मैं रहता हूँ वहाँ 'धव' शब्द होता है। मैं भी नहीं जानता हूँ कि यह क्या है जो 'धव' आवाज करता है।]

ऐसा करने पर सिंह ने बेल-वृक्ष के नीचे जा ताड़-वृक्ष के नीचे खरगोश के लेटे रहने की जगह और ताड़ के पत्ते पर गिरा हुआ पका बेल देखकर पृथ्वी के न पलटने की बात यथार्थ रूप से जानी। वह खरगोश की पीठ पर बिठा सिंह-वेग से पशुओं के संघ में पहुँचा। और पशु समूह को आश्वासन दिया कि डरें नहीं। तब सिंह ने सब को विदा किया। यदि तब बोधिसत्व न होते तो सभी समुद्र में गिरकर नष्ट हो जाते। बोधिसत्व के कारण सब के प्राण बचे।

ये तीन सम्बुद्ध गाथायें हैं:—

वेलुवं पतितं सुत्वा दद्दभंति ससो जवि,
ससस्स वचनं सुत्वा सन्तत्ता मिगवाहिनी ॥

अप्पत्वा पदविञ्जाणं परघोसानुसारिनो,
पमादपरमावाळा ते होन्ति परपत्तिया ॥
ये च सीलेन सम्पन्ना पञ्ञायुपसमे रता ,
आरता विरता धीरा न होन्ति परपत्तिया ॥

[बेल के गिरने की 'धब' आवाज को सुनकर खरगोश भागा। खरगोश की बात सुन पशु-समूह त्रस्त हुआ। दूसरों की बात सुन वैसा ही करने वाले स्वयं ज्ञान न प्राप्त कर, दूसरों का ही विश्वास करने वाले परं प्रमादी होते हैं। जो सदाचारी हैं, जो प्रज्ञा द्वारा (चित्ताग्नि को) शान्त करने में रत हैं, जो (पाप कर्मों से) दूर हैं, जो विरत हैं, वे धीर-जन दूसरों का अन्धानुकरण करने वाले नहीं होते ॥ २ ॥]

इसी से कहा गया है :—

अस्सद्धो अकतञ्ञू च संधिच्छेदो च यो नरो,
हतावकासो वन्तासो स वे उत्तमपोरिसो[1] ॥

[जो (अन्धी) श्रद्धा से रहित है, जो अकृत का ज्ञाता है, जो (जन्म मरण रूपी) सन्धि का छेद कर चुका है, जिसने (दुष्कर्म के अवकाश को नष्ट कर दिया, जिसकी सब आशायें जाती रहीं वही उत्तम पुरुष है।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय सिंह मैं ही था।

३२३. ब्रह्मदत्त जातक

"द्वयं याचनको राज..." यह शास्ता ने अळवी के पास अग्गाळव चैत्य में विहार करते समय कुटी बनाने के नियम के बारे में कही।

---

[1] धम्म-पद, अरहत्तवग्गो ।

क. वर्तमान कथा

कथा ऊपर मणिकण्ठ जातक[२] में आ ही गई है। इस कथा में भगवान ने पूछा—भिक्षुओ! क्या तुम सचमुच अत्यधिक याचना करते, अत्यधिक मांगा करते हो? 'भन्ते! हां' कहने पर भगवान ने उन भिक्षुओं की निन्दा की और बोले—भिक्षुओ, पुराने पण्डितों में राजा के मांगने का आग्रह करने पर भी पत्तों की छतरी और एक तले का जूती-जोड़ा माँगने की इच्छा रहने पर भी लज्जाभय के कारण जनता के सामने न मांग, एकान्त में ही माँगा। इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में कम्पिल राष्ट्र में उत्तर-पञ्चाल नगर में पाञ्चाल-राज के राज्य करते समय बोधिसत्व एक निगम-ग्राम में ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुये। बड़े होने पर तक्षशिला जा, सब शिल्प सीखे। फिर तपस्वी प्रव्रज्या ले हिमालय में फल-मूल चुगकर खाते हुए जीवनयापन करने लगे। चिर काल तक हिमालय में रह नमक-खटाई खाने के लिए बस्ती की ओर आ उत्तर पञ्चाल-नगर में पहुँचे। वहाँ राजोद्यान में ठहर, अगले दिन भिक्षार्थ नगर में जाकर वापिस उद्यान में लौटे।

राजा ने उसकी चर्य्या से प्रसन्न हो, उसे महान् तल्ले पर बिठा राज-भोजन खिलवाया। फिर प्रतिज्ञा ले राजोद्यान में ही वर्साया। उसने नित्य राजा के यहाँ ही भोजन करते हुये वर्षाकाल की समाप्ति पर हिमालय लौटना चाहा। उसकी इच्छा हुई कि रास्ता चलते समय उसके पास एक तले का जूता और एक पत्तों का छाता होना चाहिये। उसने सोचा—राजा से मांगूँगा। एक दिन राजा उद्यान में आकर प्रणाम करके बैठा। उसे देख सोचा, जूता और छाता मांगूँगा। फिर सोचा—दूसरे से 'यह दो' (मांगने वाला) माँगते समय रोता है, दूसरा भी 'नहीं है' कहता हुआ रोता है। जनता

---

[२] मणिकण्ठ जातक (२५३)

मुझे और राजा को रोता हुआ न देखे। एकान्त में छिपे हुये स्थान पर दोनों रोकर चुप हो जायेंगे।

उसने राजा से कहा—महाराज ! एकान्त चाहिये। राजा ने सुना तो राज-पुरुषों को दूर हटा दिया। बोधिसत्व ने सोचा—यदि मेरे याचना करने पर राजा ने न दिया तो हमारी मैत्री टूटेगी। इसलिये नहीं माँगूँगा। उस दिन नाम न ले सकने के कारण कहा—महाराज ! जायें फिर किसी दिन देखूँगा।

फिर एक दिन राजा के उद्यान आने पर उसी तरह, और फिर उसी तरह, इस प्रकार याचना न करते हुए ही बारह वर्ष बीत गये। तब राजा ने सोचा—आर्य ! मुझसे एकान्त चाहते हैं। लेकिन परिषद के चले जाने पर कुछ नहीं कह सकते। कहने की इच्छा रक्खे ही रक्खे बारह वर्ष बीत गये। इन्हें ब्रह्मचारी अवस्था में रहते चिरकाल बीत गया। मालूम होता है उद्विग्न-चित्त हो भोग भोगने की इच्छा से राज चाहते हैं। लेकिन राज्य का नाम न ले सकने के कारण चुप हो जाते हैं। आज मैं इन्हें राज्य से लेकर जो चाहेंगे सो दूँगा।

उसने उद्यान में जा, प्रणाम कर, बैठने पर, जब बोधिसत्व ने एकान्त चाहा तब लोगों के चले जाने पर, बोधिसत्व के कुछ भी न कह सकने पर कहा—तुम बारह वर्ष से 'एकान्त चाहिये' कह एकान्त मिलने पर कुछ भी नहीं कह सकते। मैं राज्य से लेकर सब कुछ देने को तैयार हूँ। जो इच्छा हो, वह निर्भय होकर माँगें।

"महाराज ! जो मैं माँगूँगा, वह देंगे ?"

"भन्ते ! दूँगा।"

"महाराज ! मुझे रास्ता चलते समय एक तलेवाला एक जोड़ा जूता और एक पत्तों का छाता चाहिये।"

"भन्ते ! बारह वर्ष तक आप यह न माँग सके ?"

"महाराज ! हाँ।"

"भन्ते ! ऐसा क्यों किया ?"

"महाराज ! जो 'यह मुझे दो' कह कर माँगता है, वह रोता है, जो 'नहीं है' कहता है, वह रोता है। यदि तुम मेरे मांगने पर न दो तो हम दोनों का रोना जनता न देखे, इसीलिये एकान्त चाहता रहा।"

यह कह आरम्भ से तीन गाथायें कहीं—

द्वयं याचनको राज ब्रह्मदत्त निगच्छति,
अलाभं धनलाभं वा एवं धम्मा हि याचना ॥
याचनं रोदनं आहु पञ्चालानं रथेसभ,
यो याचनं पच्चक्खाति तमाहु पटिरोदनं ॥
मा मद्दसंसु रोदन्तं पञ्चाला सुसमागता,
तुवं वा पटिरोदन्तं तस्मा इच्छामहं रहो ॥

[हे ब्रह्मदत्त राजन् ! मांगने वाले की दो ही गतियाँ होती हैं—धन-प्राप्ति अथवा अप्राप्ति। याचना का यही धर्म है ॥१॥ हे पञ्चालेश्वर ! माँगना रुदन कहलाता है और जो मांगने पर न देना है वह प्रतिरुदन कहलाता है ॥२॥ इसलिये मैं एकान्त चाहता रहा जिसमें यहाँ इकट्ठे हुये पञ्चाल मेरा रुदन और तेरा प्रतिरुदन न देख सकें ॥३॥]

राजा ने बोधिसत्व के आत्म-गौरव के भाव पर प्रसन्न हो, वर देते हुये चौथी गाथा कहीः—

ददामि ते ब्राह्मण रोहिणीनं
गवं सहस्सं सह पुङ्गवेन,
अरियो हि अरियस्स कथं न दज्जे
सुत्वान गाथा तव धम्मयुत्ता ॥

[ब्राह्मण ! मैं तुझे बैलों सहित हजार लाल गौवें देता हूँ। तुम्हारी धर्म-युक्त गाथाओं को सुनकर एक (आर्य) दूसरे (आर्य) को कैसे न देवे ?]

'महाराज ! मुझे वस्तुओं की इच्छा नहीं है। जो मैं चाहता हूँ तुझे वही दे दें।' एक तले का जूता और पत्तों का छाता ले उन्होंने राजा को उपदेश दिया—महाराज ! प्रमाद रहित रहें। दान दें। शील की रक्षा करें। उपोसथ-कर्म करें। फिर, राजा ठहरने का आग्रह ही करता रह गया, वे हिमालय चले गये। वहाँ अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोक-गामी हुये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। तपस्वी तो मैं ही था।

३२४. चम्म साटक जातक

"कल्याणरूपो वतयं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक चम्मसाटक नामक परिव्राजक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

चमड़ा ही उसका पहनना-ओढ़ना होता था। वह एक दिन परिव्राजकाराम से निकलकर भिक्षाटन करता हुआ मेढ़ों के लड़ने की जगह पहुँचा। मेढ़ा उसे देख टक्कर मारने के लिये पीछे हटा। परिव्राजक ने सोचा यह मेरे प्रति गौरव प्रकट कर रहा है। वह न हटा। मेढ़े ने जोर से आ उसकी जाँघ में टक्कर मार गिरा दिया। उसका इस प्रकार चण्ड के पास जाना भिक्षु-संघ में प्रसिद्ध हो गया। भिक्षुओं ने धर्म सभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! चर्म-साटक परिव्राजक चण्ड के पास जाने से विनाश को प्राप्त हुआ।

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, केवल अभी नहीं, यह पहले भी चण्ड के पास जाकर विनाश को प्राप्त हो चुका है।"

इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक व्यापारी-कुल में पैदा हो व्यापार करते थे। उस समय चम्मसाटक परिव्राजक वाराणसी में भिक्षाटन करता हुआ मेढ़ों के युद्ध करने की जगह पहुँचा। जब उसने मेढ़े को पीछे हटता देखा तो समझा मेरे प्रति गौरव प्रदर्शित करता है। वह पीछे नहीं हटा। उसने सोचा इतने मनुष्यों में यह

मेढ़ा ही मेरे गुणों से परिचित है। उसने हाथ जोड़े खड़े ही खड़े पहली गाथा कही —

कल्याणरूपो वतयं चतुप्पदो,
सुभद्दको चेव सुपेसलो च,
यो ब्राह्मणं जातिमन्तुपपन्नं,
अपचायति मेण्डवरो यसस्सी ॥

[जो यह यशस्वी मेढ़ा जाति मन्त्रयुक्त ब्राह्मण के प्रति गौरव प्रदर्शित करता है, वह यह चतुष्पाद सुन्दर है, भद्र है, प्रियकर है।]

उस समय दुकान पर बैठे हुये पंडित-व्यापारी ने उस परिब्राजक को मना करते हुए दूसरी गाथा कही—

मा ब्राह्मण इत्तरदस्सनेन,
विस्सासमापज्जि चतुप्पदस्स,
दळहप्पहारं अभिकङ्खमानो,
अपसक्कति दस्सति सुप्पहारं ॥

[ब्राह्मण ! क्षण-मात्र के दर्शन से चौपाये का विश्वास मत कर। यह जोर की चोट मारने के लिये पीछे हटा है। यह जोर की चोट करेगा।]

उस पण्डित-व्यापारी के कहते ही समय मेढ़े ने जोर से आकर जाँघ पर चोट कर उसे वहीं गिरा दिया। वह वेदनामय हो गया। और पड़ा-पड़ा चिल्लाता था।

शास्ता ने उस बात को प्रकट करते हुये तीसरी गाथा कही—

ऊरट्ठि भग्गं पतितो खारिभारो,
सब्बं भण्डं ब्राह्मणस्सेव भिन्नं।
उभोपि बाहा पग्गय्ह कन्दति,
अभिधावथ हञ्ञति ब्रह्मचारि ॥

[जाँघ की हड्डी टूट गई। खारि-भार गिर पड़ा। ब्राह्मण के सभी भाण्डे टूट गये। अब दोनों बाहें पकड़ कर रोता है—दौड़ो, ब्रह्मचारि मारा जाता है।]

परिब्राजक ने चौथी गाथा कही:—

एवं सो निहतो सेति यो अपूजं पसंसति,
यथाहमज्ज पहतो हतो मेण्डेन दुम्मति ॥

[जो अपूज्य की प्रशंसा करता है वह इसी तरह मारा जाता है जैसे मैं मूर्ख उस मेढ़े द्वारा चोट खा गया।]

वह रोता पीटता वहीं मर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का चम्मसाटक अब का चम्मसाटक ही था। पण्डित-व्यापारी तो मैं ही था।

३२५. गोध जातक

"समणं तं मञ्ञमानो..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय ढोंगी भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कथा पहले आ ही गई है। यहां भी उस भिक्षु को शास्ता के सामने लाकर भिक्षुओं ने कहा—भन्ते! यह भिक्षु ढोंगी है। शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी यह ढोंगी ही रहा है' कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गोह की योनि में पैदा हुए। बड़ी आयु तथा शरीर के होने पर जङ्गल में रहने लगे।

एक दुराचारी तपस्वी उससे कुछ ही दूर पर्ण-कुटी बना रहता था। बोधिसत्व ने शिकार खोजते हुए उसे देख समझा सदाचारी तपस्वी की पर्ण-कुटी होगी। वहाँ जा तपस्वी को प्रणाम कर अपने निवास-स्थान पर गये।

एक दिन उस कुटिल तपस्वी को सेवकों के घर पका मधुर मांस मिला। पूछा—यह क्या मांस है? यह सुन कर कि गोह का माँस है, रस-तृष्णा से अभिभूत होने के कारण उसने सोचा कि जो गोह मेरे आश्रम पर नित्य आती है उसे मार कर यथारुचि पका कर खाऊँगा। घी, दही और मसाले आदि ले वहाँ जा काषाय-वस्त्र से मुँगरी को ढक, पर्ण-कुटी के दरवाजे पर बोधिसत्व की प्रतीक्षा करता हुआ शान्त, दान्त की तरह बैठा।

गोह ने आकर उसकी द्वेष-भरी शकल देख, सोचा, इसने हमारी जाति के किसी का मांस खाया होगा। मैं इसकी जाँच करती हूँ। उसने जिधर हवा जा रही थी उधर खड़े होकर शरीर की गन्ध सूँघी। उसे पता लग गया कि उसकी जाति के किसी का मांस खाया गया है। वह तपस्वी के पास आकर लौट गई। तपस्वी ने भी उसे न आते देख मुँगरी फेंकी। मुँगरी शरीर पर न लग, पूंछ के सिरे पर लगी। तपस्वी बोला, जा मैं चूक गया। बोधिसत्व ने उत्तर दिया, मुझे तो चूक गया लेकिन चार अपायों को नहीं चूकेगा। उसने भाग कर चंक्रमण के सिरे पर स्थित, बिल में घुस दूसरे छिद्र से सिर निकाल कर उससे बात करते हुए दो गाथाएँ कहीं—

समणं तं मञ्ञमानो उपगच्छिं असञ्ञतं।
सो मं दण्डेन पाहासि यथा अस्समणो तथा॥
किन्ते जटाहि दुम्मेध किं ते अजिनसाटिया,
अब्भन्तरं ते गहणं बाहिरं परिमज्जसि॥

[तुझे श्रमण समझ कर (तुझ) असंयत के पास आयी। जैसे कोई अश्रमण मारे वैसे ही तूने मुझे डण्डे से मारा। हे दुर्बुद्धि! जटाओं से तुझे क्या (लाभ?) और मृगचर्म के पहनने से क्या? अन्दर से तू मैला है, बाहर से धोता है।]

इसे सुन तपस्वी ने तीसरी गाथा कही—

एहि गोध निवत्तस्सु भुञ्ज सालीनमोदनं,
तेलं लोणञ्च मे अत्थि पहूतं मय्ह पिप्फली॥

[हे गोह! आ रुक, शाली धान का भात खा। मेरे पास तेल है, नमक है (और हींग, ज़ीरा, अदरक, मिरच, तथा) पिप्फली आदि मसाले भी बहुत हैं।]

इसे सुन बोधिसत्व ने चौथी गाथा कही—

एस भीय्यो पवेक्खामि वम्मिकं सतपोरिसं,
तेलं लोणञ्च कित्तेसि अहितं मय्ह पिप्फली ॥

[इस सौ पोरसे के बिल में फिर प्रवेश करूँगी। तू तेल और निमक की बड़ाई करता है। पिप्फली मेरे अनुकूल नहीं पड़ती।]

ऐसा कह कर फिर उस कुटिल तपस्वी को डराया—अरे कुटिल जटिल ! यदि यहाँ रहेगा तो आस पास के मनुष्यों द्वारा 'यह चोर है' कह पकड़वा, अपमानित कराऊँगी। शीघ्र भाग जा ! कुटिल जटिल वहीं से भाग गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय कुटिल जटिल तो यह ढोंगी भिक्षु ही था। गोह-राजा तो मैं ही था।

३२६. कक्कारु जातक

"कायेन यो नावहरे..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसके संघ में फूट डालकर अग्र-श्रावकों तथा परिषद के साथ चले जाने पर मुँह से गर्म खून गिरा। भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात चलाई—आयुष्मानो ! देवदत्त ने झूठ बोलकर संघ में फूट डाली। अब रोगी होकर महान दुःख भोग रहा है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ! 'अमुक बातचीत' कहने पर 'न केवल अभी भिक्षुओ, पहले भी यह मृषावादी ही था, न केवल अभी मृषावाद के कारण यह दुःख भोगता है, पहले भी भोगा ही है' कह शास्ता ने पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व त्रयोत्रिंश-भवन में एक देव-पुत्र हुए। उस समय वाराणसी में महोत्सव था। बहुत से नाग, गरुड़ और भुम्मट्ठक देवताओं ने आकर उत्सव देखा। त्रयोत्रिंस भवन से भी चारों देवपुत्र कक्कारु नाम के दिव्य पुष्पों से बने गजरे पहन उत्सव देखने आये। बारह योजन का नगर उन फूलों की सुगन्ध से महक गया। मनुष्य सोचते थे—इन पुष्पों को किसने पहना है? उन देवपुत्रों ने जब देखा कि लोग हमें खोज रहे हैं तो वे राजाङ्गण में ऊपर उठ महान् देवता-प्रताप से आकाश में स्थित हुए। जनता इकट्ठी हुई। राजा, सेट्ठी तथा उपराज आदि भी आ पहुँचे।

लोगों ने पूछा—स्वामी! किस देवलोक से आना हुआ?

"त्रयस्त्रिंश देवलोक से आये हैं।"

"किस कार्य्य से आये हैं?"

"उत्सव देखने के लिये।"

"इन फूलों का क्या नाम है?"

"यह दिव्य-कक्कारु पुष्प हैं।"

"स्वामी! आप दिव्यलोक में दूसरे पहन लें। यह हमें दे दें।"

"यह दिव्य-पुष्प बड़े प्रताप वाले हैं। देवताओं के ही योग्य हैं। मनुष्य-लोक में रहने वाले खराब, मूर्ख, तुच्छ-विचार वाले, दुश्चरित्र लोगों के योग्य नहीं। लेकिन जिन लोगों में यह यह गुण हों उनके योग्य हैं।"

इतना कह, उनमें जो ज्येष्ठ देवपुत्र था, उसने यह पहली गाथा कही:—

> **कायेन यो नावहरे वाचाय न मुसाभणे,**
> **यसो लद्धा न मज्जेय्य स वे कक्कारुमरहति॥**

[जो काय से किसी की कोई चीज हरण न करे, वाणी से झूठ न बोले तथा ऐश्वर्य्य मिलने पर प्रमादी न हो, वही कक्कारु के योग्य है।]

इसलिये जो इन गुणों से युक्त हो, मांगे, दे देंगे।

यह सुन पुरोहित ने सोचा, यद्यपि मुझमें इन गुणों में से एक भी गुण नहीं है, तो भी झूठ बोलकर ये फूल ले पहनूँ। इससे जनता मुझे इन गुणों से युक्त समझेगी। 'मैं इन गुणों से युक्त हूं' कह उसने वे पुष्प मँगवा कर पहने। तब उसने दूसरे देवपुत्र से याचना की—

धम्मेन वित्तमेसेय्य न निकत्या धनं हरे,
भोगे लद्धा न मज्जेय्य स वे कक्कारुमरहति॥

[जो धर्म से धन खोजे, ठगी से धन पैदा न करे और भोग्य-वस्तुओं के मिलने पर प्रमादी न बने, वही कक्कारु पाने के योग्य है।]

पुरोहित ने 'मैं इन गुणों से युक्त हूँ' कह मँगवा, पहन कर, तीसरे देव-पुत्र से याचना की। वह तीसरी गाथा बोला—

यस्स चित्तं अहालिद्दं सद्धा च अविरागिनी,
एको सादुं न भुञ्जेय्य सवे कक्कारुमरहति॥

[जिस का चित्त हल्दी की तरह नहीं अर्थात् स्थिर प्रेम वाला है और जिसकी श्रद्धा दृढ़ है और जो किसी स्वादिष्ट वस्तु को अकेला नहीं खाता वही कक्कारु के योग्य है।]

पुरोहित ने "मैं इन गुणों से युक्त हूँ' कह उन फूलों को मंगवा, पहन कर, चौथे देव-पुत्र से याचना की। उसने चौथी गाथा कही—

सम्मुखा वा तिरोक्खा वा यो सन्ते न परिभासति,
यथावादी तथाकारी सवे कक्कारुमरहति॥

[जो न सामने और न अनुपस्थिति में ही सन्त-जनों की हंसी उड़ाता है, जो जैसा कहता है वैसा ही करता है वह कक्कारु के योग्य है।]

पुरोहित ने 'मैं इन गुणों से युक्त हूँ' कह उन्हें भी मंगवा कर पहना।

चारों देव-पुत्र चारों गजरे पुरोहित को ही देकर देव-लोक गये। उनके चले जाने पर पुरोहित के सिर में बड़ा दर्द हुआ। ऐसा लगता था जैसे तेज धार से काटा जाता हो वा लोहे के पट्टे से रगड़ा जाता हो। वह दुःख से पीड़ित हो इधर-उधर लोटता हुआ जोर से चिल्लाया। क्या बात है? पूछने पर बोला :—

"मैंने अपने में जो गुण नहीं है उनके बारे में झूठ ही हैं कह कर उन देव-पुत्रों से ये पुष्प मांगे। इन्हें मेरे सिर पर से ले जाओ।"

उन्हें निकालने का प्रयत्न करने पर न निकाल सके। लोहे के पट्टे से जकड़े जैसे हो गये।

उसे उठाकर घर ले गये। उसके वहाँ चिल्लाते हुये सात दिन बीत गये। राजा ने अमात्यों को बुलाकर पूछा—दुश्चरित्र ब्राह्मण मर जायगा, क्या करें?

"देव! फिर उत्सव करायें। देव-पुत्र फिर आयेंगे।"

राजा ने फिर उत्सव कराया। देव-पुत्र फिर आये और सारे नगर को फूलों की सुगन्ध से महकाकर उसी तरह राजाङ्गण में स्थित हुए।

जनता ने इकट्ठे हो उस दुष्ट ब्राह्मण को ला देवताओं के सामने सीधा पीठ के बल लिटा दिया। उसने देव-पुत्रों से याचना की—स्वामी मुझे जीवन दान दें।

वे देव-पुत्र बोले—ये फूल तुझ दुष्ट, दुश्शील पाजी के योग्य नहीं हैं। तू ने सोचा इन्हें ठगूंगा। तुझे अपने झूठ बोलने का फल मिला। इस प्रकार देव-पुत्र जनता के बीच में उसकी निन्दाकर; सिर से फूलों का गजरा उतार, जनता को उपदेश दे, अपने स्थान पर चले गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया, उस समय ब्राह्मण देव-दत्त था। उन देव-पुत्रों में एक काश्यप, एक महामौद्गल्यायन, एक सारिपुत्र। ज्येष्ठ देव-पुत्र तो मैं ही था।

३२७. काकाती जातक

"वाति चायं ततो गन्धो..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—भिक्षु क्या तू सचमुच उद्विग्न-चित्त है?

"भन्ते ! सचमुच ।"

"किस लिये उद्विग्न-चित्त है ?"

"भन्ते ! राग के कारण ?"

"भिक्षु ! स्त्रियों की रक्षा नहीं की जा सकती । वे अरक्षणीय होती हैं । पुराने-पण्डितों ने स्त्रियों को समुद्र के बीच में, सेमर वृक्ष पर बसाकर उनको सुरक्षित रखना चाहा । वे नहीं रख सके ।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुये । बड़े होने पर पिता की मृत्यु के अनन्तर राज्य करने लगे । काकाती नामक उसकी पटरानी थी, सुन्दर देवाप्सरा सदृश । यह यहाँ संक्षिप्त कथा है । विस्तृत अतीत-कथा कुणाल जातक[1] में आयगी ।

उस समय एक गरुड़-राज मनुष्य-भेस में आया । वह राजा के साथ जुआ खेलता हुआ पटरानी पर अनुरक्त हो उसे गरुड़-भवन ले गया । वहाँ उसने उसके साथ रमण किया । राजा को जब देवी नहीं दिखाई दी तो उसने नटकुवेर नामक गंधर्व को उसे खोजने के लिये कहा । उसने पता लगाया कि वह गरुड़-राज के पास है और वह एक सरोवर में एरक-वन में लेटा है । जिस समय गरुड़-राज वहाँ से जाने लगता वह उसके पंखों में से एक में छिप रहता । इस प्रकार गरुड़-भवन पहुँच, वहाँ पंख में से निकल उसके साथ रमण करता । फिर उसके पंख में ही छिप, आकर, जिस समय गरुड़-राज राजा के साथ जुआ खेलता तो वह अपनी वीणा ले, जुआ खेलने के स्थान पर राजा के पास खड़ा हो पहली गाथा गाता :—

> वाति चायं ततो गन्धो यत्थ मे वसति पिया,
> दूरे इतो हि काकाती यत्थ मे निरतो मनो ॥

---

[1] कुणाल जातक (५३६)

[यह सुगन्धि जहाँ मेरी प्रिया रहती है वहीं से आती है। इस स्थान से दूर जहाँ मेरा मन रत है, वहीं काकाती रहती है।]

इसे सुन गरुड़-राज ने दूसरी गाथा कही—

कथं समुद्दमतरि कथं अतरि केबुकं,
कथं सत्त समुद्दानि कथं सिम्बलिमारुहि ॥

[कैसे तो समुद्र पार किया और कैसे केबुक नदी, कैसे सात समुद्र लांघे और कैसे सेमर वृक्ष पर चढ़ा ?]

इसे सुन नट कुवेर ने तीसरी गाथा कही—

तया समुद्दमतरिं तया अतरि केबुकं,
तया सत्तसमुद्दानि तया सिम्बिलिमारुहिं ॥

[तेरे (साहाय्य) से ही समुद्र लांघा, तेरे (साहाय्य) से ही केबुक नदी पार की और तेरे से ही सात समुद्र लांघे। तेरे (साहाय्य) से ही सेमर वृक्ष पर चढ़ा।]

तब गरुड़-राज ने चौथी गाथा कही—

धिरत्थु मं महाकायं धिरत्थु मं अचेतनं,
यत्थ जायायहं जारं आवहामि वहामि च ॥

[मेरे महान् शरीर को धिक्कार है, मेरी जड़ता को धिक्कार है जो मैं अपनी पत्नी के जार को उठाकर लाता हूँ और ले जाता हूँ।]

उसने उसे लाकर राजा को दे दिया और फिर नगर में नहीं गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बिठाया। सत्यों की समाप्ति पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय नट-कुवेर उद्विग्न-चित्त भिक्षु था। राजा तो मैं ही था।

३२८. अननुसोचिय जातक

"बहूनं विज्जति भोति..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक गृहस्थ के बारे में, जिसकी भार्य्या मर गई थी, कही।

क. वर्तमान कथा

वह भार्य्या के मरने से न नहाता था, न खाता था, न कुछ काम करता था, केवल श्मशान भूमि में आकर रोता पीटता घूमता था। लेकिन घड़े में प्रदीप की तरह इसके भीतर स्रोतापत्ति-मार्ग का आधार प्रज्वलित था।

शास्ता ने प्रातःकाल लोक पर दृष्टि डाली तो उसे देख सोचा—मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है जो इसका शोक दूर कर उसे स्रोतापत्ति मार्ग दे सके। मैं इसका आधार होऊँगा। वह भिक्षाटन से लौट, भोजनानन्तर सेवक-श्रमण को साथ ले उसके घर गये। गृहस्थ ने जब आना सुना तो उसने स्वागत-सत्कार करके बिठाया और स्वयं आकर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा:—

"उपासक! क्या चिन्तित है?"

"भन्ते! हाँ मेरी भार्य्या मर गई है। उसकी सोच करता हुआ चिन्तित हूँ।"

"उपासक! जिसका धर्म टूटना है वह टूटता ही है। उसके टूटने पर चिन्तित होना अनुचित है। पूर्व काल में पण्डित लोगों ने भार्य्या के मरने पर 'जिसका धर्म टूटना है वह टूट गया' सोच चिन्ता नहीं की।"

शास्ता ने उसके प्रार्थना करने पर अतीत-कथा कही। अतीत-कथा दसवें परिच्छेद में चुल्लबोधि जातक[1] में आयगी। यह तो यहाँ संक्षेप है:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में सब शिल्प सीख

---

[1] चुल्लबोधि जातक (४४३)

माता पिता के पास लौटे। इस जातक में बोधिसत्व कुमार-ब्रह्मचारी थे। माता पिता ने उसे सूचना दी कि हम तेरे लिये भार्य्या खोजते हैं। बोधिसत्व ने उत्तर दिया—मुझे गृहस्थी से काम नहीं। तुम्हारे बाद प्रव्रजित होऊँगा। उनके बार बार आग्रह करने पर एक स्वर्ण कुमारी बनवाकर कहा—ऐसी मिलेगी तो ग्रहण करूंगा।

उसके माता पिता ने उस स्वर्ण-प्रतिमा को ढकी गाड़ी में रखा और अनेक अनुयाइयों के साथ आदमियों को भेजा कि जाओ और जम्बुद्वीप भर में घूमते हुये जहाँ इस तरह की ब्राह्मण-कुमारी दिखाई दे वहाँ यह प्रतिमा देकर उसे ले आओ। उस समय एक पुण्यवान् प्राणी ब्रह्म लोक से च्युत होकर काशी राष्ट्र में ही एक निगम-ग्राम में अस्सी करोड़ धन वाले ब्राह्मण के घर में लड़की होकर पैदा हुआ। उसका नाम रक्खा गया सम्मिल-हासिनी।

वह सोलह वर्ष की होने पर सुन्दरी थी, मनोरम, देवाप्सरा सदृश और सभी अङ्गों से सम्पूर्ण। उसके मन में भी कभी राग उत्पन्न नहीं हुआ था, अत्यन्त ब्रह्मचारिणी थी। स्वर्ण-मूर्ति लिए घूमने वाले उस गाँव पहुँचे। मनुष्यों ने उस मूर्ति को देखा तो बोल उठे—अमुक ब्राह्मण की लड़की सम्मिल-हासिनी यहाँ किस लिये खड़ी है ?

उन मनुष्यों ने यह बात सुनी तो ब्राह्मण के घर जा सम्मिल-हासिनी को वरा। उसने माता पिता के पास सन्देश भेजा—मुझे गृहस्थी से काम नहीं। मैं तुम्हारे मरने पर प्रव्रजित होऊंगी। "लड़की ! क्या कहती है ?" कह उन्होंने वह स्वर्ण-प्रतिमा ले उसे बड़ी शान-बान के साथ विदा किया। बोधिसत्व और सम्मिल-भासिनी दोनों की इच्छा न रहते भी विवाह कर दिया गया। उन्होंने एक घर में रहते हुए एक शैय्या पर सोते हुए भी एक दूसरे को रागदृष्टि से नहीं देखा। वे दो भिक्षुओं, दो ब्राह्मणों की तरह एक जगह रहे।

आगे चलकर बोधिसत्व के माता-पिता काल कर गये। उसने उनका शरीर-कृत्य समाप्त कर सम्मिल्ल-हासिनी को बुलाकर कहा—भद्रे ! मेरे कुल का अस्सी करोड़ और अपने कुल का अस्सी करोड़ लेकर इस परिवार को पाल। मैं प्रव्रजित ही होऊँगा।"

"आर्य पुत्र ! तुम्हारे प्रव्रजित होने पर मैं भी प्रव्रजित होऊँगी। मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती।"

ये दोनों सारा धन दान कर, सम्पत्ति को थूक की तरह छोड़ हिमालय चले गये। वहाँ दोनों ने तपस्वी-प्रव्रज्या ली। चिरकाल तक जंगल के फलमूल खाते रहकर वे निमक-खटाई खाने के लिए हिमालय से उतर क्रमशः वाराणसी पहुँच राजोद्यान में रहने लगे।

उनके वहाँ रहते समय सुकुमारी परिव्राजिका को रूखा-सूखा, मिला-जुला भोजन खाने से रक्त-विकार रोग हो गया। उचित औषधि न मिलने से दुर्बल हो गई। बोधिसत्व भिक्षाटन के समय उसे नगर-द्वार तक ले जाते और वहाँ एक शाला में पटड़े पर लिटा स्वयं भिक्षा के लिए (नगर में) प्रवेश करते। वह उसकी अनुपस्थिति में ही मर गई। जनता परिव्राजिका का सौन्दर्य्य देख उसे घेर रोने-पीटने लगी। बोधिसत्व भिक्षा से लौटे तो उसे मरा देखा। उन्होंने यह सोच कि जिसका स्वभाव टूटना है वह टूटता है, सभी संस्कार अनित्य हैं और यही इनकी गति है, जिस फट्टे पर वह पड़ी थी उसी पर बैठ मिला-जुला भोजन खा मुँह धोया। घेर कर खड़े लोगों ने पूछा—

"भन्ते! यह परिव्राजिका तुम्हारी कौन होती थी?"

"गृहस्थ रहते यह मेरी चरण-सेविका थी।"

"भन्ते! हम सहन नहीं कर सकते, रोते हैं, पीटते हैं—तुम क्यों नहीं रोते?"

"जीती थी तो यह मेरी कुछ लगती थी, अब परलोक-वासिनी होने से मेरी कुछ नहीं लगती। जो दूसरों के वश में चली गई है, उसके लिए मैं क्यों रोऊँ?"

बोधिसत्व ने जनता को धर्मोपदेश देते हुए ये गाथाएँ कहीं:—

> बहूनं विज्जति भोती तेहि मे किं भविस्सति,
> तस्मा एतं न सोचामि पियं सम्मिल्लहासिनिं ॥१॥
> तं तञ्चे अनुसोचेय्य यं यं तस्स न विज्जति,
> अत्तानमनुसोचेय्य सदा मच्चुवसं पत्तं ॥२॥
> नहेव ठितं नासीनं न सयानं न पद्धगुं,
> याव पाति निम्मिस्सति तत्रापि सरती वयो ॥३॥
> तत्थत्तनि वतप्पद्धे विनाभावे असंसये,
> भूतं सेसं दयितब्बं वीतं अननुसोचियं ॥४॥

[वे आप बहुतों के बीच में हैं, उनके बीच में रहती हुई अब मेरी क्या लगती है ? इसी लिये मैं इस प्रिय सम्मिल्ल-हासिनि के बारे में शोक नहीं करता हूँ ॥१॥ उसी की सोच करे जो मनुष्य के अपने पास न हो। (यदि मृत्यु के लिये शोक करे) तो सदैव मृत्यु के वश में अपने आप के ही बारे में शोक करे ॥२॥ खड़े रहने, बैठने, लेटने तथा चलने के समय की तो बात ही क्या आँख खोलने और बन्द करने के समय भी आयु का क्षय होता ही रहता है ॥३॥ जब अपनी आधी आयु पूर्ण होने पर अपना मरण भी संशय-रहित है, तो सभी प्राणियों पर दया करनी चाहिये और जो बीत जाये उनके बारे में शोक नहीं करना चाहिये ॥४॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने चार गाथाओं द्वारा अनित्यता को प्रकाशित करते हुये धर्मोपदेश दिया। जनता ने परिव्राजिका का शरीर-कृत्य किया। बोधिसत्व हिमालय में प्रवेश कर, ध्यान तथा अभिज्ञा प्राप्त कर ब्रह्मलोक गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में गृहस्थ स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय सम्मिल्ल-हासिनि राहुल-माता थी। तपस्वी तो मैं ही था।

३२९. कालबाहु जातक

"यं अन्नपानस्स..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहरते समय देवदत्त के बारे में, जिसका लाभ-सत्कार नष्ट हो गया था कही।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त ने तथागत के प्रति अकारण ही मन में वैर-भाव रख उन्हें मारने के लिये धनुषधारियों को नियुक्त किया और नालागिरि हाथी भेजा तो उसका द्वेष प्रकट हो गया। जो उसे नियमित बँधा भोजन पहुँचाते थे, वह

उन मनुष्यों ने बंद कर दिया। राजा ने भी उसके पास आना बन्द कर दिया। जब उसका लाभ-सत्कार नष्ट हो गया तो वह गृहस्थों से माँग-माँग कर खाता हुआ घूमने लगा। भिक्षुओं ने धर्म सभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! देवदत्त ने लाभ-सत्कार पैदा करने का प्रयत्न किया, लेकिन वह जो प्राप्त था उसे भी स्थिर न रख सका।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? "अमुक बात चीत।" "न केवल अभी, भिक्षुओ, यह पहले भी नष्ट-लाभ-सत्कार ही रहा है," कह शास्ता ने पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में धनञ्जय के राज्य करने के समय बोधिसत्व राध नामक तोता हुए। बड़ा परिवार, पूर्ण शरीर। छोटे भाई का नाम था पोट्ठपाद।

एक शिकारी ने उन दोनों जनों को बाँध ले जाकर वाराणसी-राजा को दिया। राजा उन्हें सोने के पिंजरे में बन्द रख, सोने की थाली में मीठे खील और शरबत पिला कर पालता था। बड़ा सत्कार होता था। लाभ और यश दोनों सबसे अधिक थे।

एक वनचर ने काळबाहु नाम का एक बड़ा काला बन्दर लाकर राजा को दिया। वह पीछे आया होने से उसका अधिक लाभ-सत्कार होने लगा। तोतों का लाभ-सत्कार कम हुआ। बोधिसत्व में चित्त की स्थिरता थी, वह कुछ नहीं बोला। छोटे में चित्त की स्थिरता नहीं थी। वह बोला—भाई! इस राजकुल में हमें ही स्वादिष्ट सरस भोजन मिलते थे। अब हमें नहीं मिलते, काळबाहु बन्दर को ही मिलते हैं। जब हमें यहाँ धनञ्जय राजा के पास लाभ-सत्कार नहीं मिलता तो यहाँ क्या करेंगे? आ, जङ्गल में ही चलकर रहें। उसने भाई के साथ बातचीत करते हुए पहली गाथा कही—

> **यं अन्नपाणस्स पुरे लभाम**
> **तन्दानि साखामिगमेव गच्छति,**
> **गच्छामदानि वनमेव राध**
> **असक्कताचस्म धनञ्जयाय ॥**

[इस राजा से हमें जो अन्न-पान मिलता था वह अब बन्दर को ही प्राप्त होता है। हे राध ! हम वन को जायें। हम धनञ्जय के द्वारा असत्कृत हैं।]

इसे सुन राध ने दूसरी गाथा कही—

लाभो अलाभो अयसो यसोच
निन्दा पसंसा च सुखञ्च दुक्खं,
एते अनिच्चा मनुजेसु धम्मा
मा सोची किं सोचसि पोट्ठपाद ॥

[हे पोट्ठपाद ! लाभ, हानि, यश, अपयश, निंदा, प्रशंसा, सुख तथा दुःख यह मनुष्यलोक के अनित्य-धर्म हैं। क्या चिन्ता करता है ? चिन्ता मत कर।]

इसे सुन बन्दर के प्रति ईर्ष्या दूर करने में असमर्थ पोट्ठपाद ने तीसरी गाथा कही—

अद्धा तुवं पण्डितकोसि राध
जानासि अत्थानि अनागतानि,
कथं नु साखामिगं दक्खिसाम
निधापितं राजकुलतोव जम्मं ॥

[माना। तू हे राध ! निश्चय से पण्डित है। भावी बातों को जानता है। यह बता कि इस नीच बन्दर को राज-कुल से निकाला जाता कैसे देखेंगे ?]

यह सुन राध ने चौथी गाथा कही—

चालेति कण्णं भकुटिं करोति
मुहुँ मुहुँ भाययते कुमारे,
सयमेव तं काहति काळबाहु
येनारका ठस्सति अन्नपाणा ॥

[कानों को हिलाता है और मुँह चिढ़ाता है, इस प्रकार बार बार (राज-) कुमारों को डराता है। यह काळबाहु स्वयं ही ऐसा करेगा जिससे अन्न-पान से दूर हो जाये।]

काळबाहु ने भी कुछ ही दिन में राजकुमारों के सामने कान हिलाना आदि करके उन्हें डरा दिया। वे डरकर चिल्लाये। राजा ने पूछा—क्या बात है? कारण मालूम होने पर 'इसे निकालो' कह उसे निकलवा दिया। तोतों का लाभ-सत्कार फिर पूर्ववत् हो गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय काळबाहु देवदत्त था। पोट्ठपाद आनन्द था। राध तो मैं ही था।

३३०. सीलवीमंस जातक

"सीलं किरेव कल्याणं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय सदाचार की परीक्षा करने वाले ब्राह्मण के बारे में कही।

ख. अतीत कथा

दो कथायें पहले कही जा चुकी हैं।[1] इस (अतीत) कथा में बोधिसत्व वाराणसी राजा के पुरोहित हुए। उसने अपने सदाचार की परीक्षा लेने के लिये तीन दिन सोने के तख्ते पर से कार्षापण उठाये। उसे 'चोर' मान कर राजा के सामने पेश किया। वह राजा के पास खड़े हो, इस पहली गाथा से शील की महिमा का वर्णन कर, राजा से प्रव्रजित होने की आज्ञा माँग प्रव्रज्या लेने गया:—

> **सीलं किरेव कल्याणं सीलं लोके अनुत्तरं,**
> **पस्स घोरविसो नागो सीलवाति न हञ्ञति ॥**

[संसार में सदाचार ही कल्याणकारी है, सदाचार ही श्रेष्ठ है। देखो, घोर विषैला सर्प भी 'सदाचारी' समझे जाने के कारण मारा नहीं जाता।]

---

[1] सीलवीमंस जातक (८६)

इस प्रथम गाथा से शील की प्रशंसा कर, राजा से प्रव्रज्या की आज्ञा ले, प्रव्रजित होने के लिये गया। एक कसाई की दुकान से एक बाज़ ने मांस का टुकड़ा लिया और आकाश में उड़ गया। दूसरे पक्षियों ने उसे घेर घेर, नाखून तथा चोंच से मारना शुरू किया। उसने वह दुःख न सह सकने के कारण माँस का टुकड़ा छोड़ दिया। तब दूसरे ने ले लिया। जो कोई उसे लेता पक्षी उसी का पीछा करते। जो जो छोड़ देता वह सुखी हो जाता। बोधिसत्व ने यह देख सोचा कि यह काम-भोग इस मांस के टुकड़े ही की तरह हैं, जो ग्रहण करता है वही दुखी होता है, जो छोड़ता है वह सुखी होता है। उसने दूसरी गाथा कही :—

यावदेवस्सहू किञ्चि तावदेव अखादिसुं,
सङ्गम्म कुळला लोके न हिंसन्ति अकिञ्चनं ॥

[जब तक इस चील के पास कुछ था, तभी तक पक्षी इकट्ठे होकर इसे खाते रहे। लोक में जिसके पास कुछ नहीं, उसकी हिंसा नहीं करते।]

वह नगर से निकल रास्ते में एक गाँव में शाम के समय किसी के घर सोया। वहाँ पिङ्गला नाम की दासी ने किसी पुरुष के साथ इशारा किया कि इस समय आना। उसने मालिकों के पाँव धो, उनके सो जाने पर दालान में बैठ 'अब आता होगा, अब आता होगा' प्रतीक्षा करते हुए प्रथम-याम और फिर मध्यम-याम रात्रि भी बिता दी। प्रत्यूष समय में 'अब नहीं आएगा' निराश हो लेट कर सो गई। बोधिसत्व ने देखा कि यह दासी उस पुरुष के आगमन की प्रतीक्षा में इतनी देर आशा लगाये बैठी रही, अब आने की संभावना न रहने पर निराश हो सुख से सोती है। उसने सोचा—काम-भोगों के प्रति आशा रखना ही दुःख है। निराश रहना ही सुख है। यह तीसरी गाथा कही—

सुखं निरासा सुपति आसा फलवती सुखा,
आसं निरासं कत्वान सुखं सुपति पिङ्गला ॥

[आशारहित सुख से सोता है, आशा फलती है तो 'सुख' होता है। आशा से निराश होकर पिङ्गला सुख से सोती है।]

अगले दिन उस गाँव से जंगल में जाते समय जंगल में एक तपस्वी को ध्यानारूढ़ बैठे देख सोचा, इस लोक और परलोक में ध्यान-सुख से बढ़कर सुख नहीं। यह चौथी गाथा कही—

न समाधिपरो अत्थि अस्मिं लोके परम्हि च,
न परं नापि अत्तानं विहिंसति समाहितो ॥

[इस लोक तथा परलोक में समाधि से बढ़ कर सुख नहीं है। एकाग्र-चित्त न अपने को दुख देता है, न दूसरे को।]

उसने जंगल में प्रविष्ट हो, ऋषि-प्रव्रज्या ले, ध्यान तथा अभिञ्ञा उत्पन्न की और ब्रह्मलोक-गामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय तपस्वी मैं ही था।

चौथा परिच्छेद

४. कोकिल वर्ग

३३१. कोकालिक जातक

"यो वे काले असम्पत्ते..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोकालिक के बारे में कही। (वर्तमान-) कथा तक्कारिय जातक[1] में विस्तार से आई है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके मन्त्री-रत्न हुए। राजा बड़ा वाचाल था। बोधिसत्व उसकी वाचालता रोकने के लिये एक उपमा खोजते घूमते थे।

एक दिन राजा उद्यान में पहुँच मङ्गल-शिला पर बैठा। उसके ऊपर आम का वृक्ष था। उस पर एक कौवे के घोंसले में काली कोयल अपना अण्डा रख गई। कौवी उस कोयल के अण्डे को पोसती रही। आगे चलकर उसमें से कोयल का बच्चा निकला। कौवी उसे अपना पुत्र समझ चोंच से चोगा ला उसे पालती थी। उसने असमय ही, जब उसके पर भी नहीं निकले थे कोयल की आवाज की। कौवी ने सोचा, यह अभी और तरह की आवाज करता है, बड़ा होने पर क्या करेगा? उसने चोंच से ठोंगे मार मार कर उसकी हत्या कर दी और घोंसले से नीचे गिरा दिया। वह राजा के पैरों में गिरा। राजा ने बोधिसत्व से पूछा—मित्र! यह क्या है? बोधिसत्व ने सोचा, मैं राजा को (अधिक बोलने से) रोकने के लिये एक उपमा खोजता रहा, अब मुझे वह मिल गई। उसने कहा—महाराज! अति वाचाल, बहुत बोलने वालों की यह गति होती है। महाराज! यह कोयल का बच्चा कौवी द्वारा पोसा

---

[1] तक्कारिय जातक (४८१)

गया। इसने असमय ही, जब इसके पर नहीं उगे थे, कोयल की आवाज लगाई। उस कौवी को जब यह मालूम हुआ कि यह मेरा पुत्र नहीं है तो उसने चोंच से ठोंगे मार-मार कर इसकी हत्या कर दी और घोंसले से गिरा दिया। 'चाहे मनुष्य हों चाहे पशु-पक्षी असमय अधिक बोलने से इस तरह का दुःख भोगते हैं' कह ये गाथायें कहीं—

> यो वे काले असम्पत्ते अतिवेलं पभासति,
> एवं सो निहतो सेति कोकिलायिव अत्रजो ॥१॥
> न हि सत्थं सुनिसितं विसं हलाहलम्मिव,
> एवं निकट्ठे पातेति वाचा दुब्भासिता यथा ॥२॥
> तस्मा काले अकाले च वाचं रक्खेय्य पण्डितो,
> नातिवेलं पभासेय्य अपि अत्तसमम्हि वा ॥३॥
> यो च कालेमितं भासे मतिपुब्बो विचक्खणो,
> सब्बे अमित्ते आदेति सुपण्णो उरगम्मिव ॥४॥

[जो समय से पूर्व दीर्घकाल तक बोलता है, वह इसी प्रकार मरकर पड़ा रहता है जैसे यह कोयल का बच्चा ॥१॥ जिस प्रकार हलाहल विष के समान दुर्भाषित वाणी उसी क्षण गिरा देती है, उस प्रकार अच्छी तरह से तेज किया हुआ शस्त्र भी नहीं ॥२॥ इसलिये पण्डित आदमी को चाहिये कि वह समय असमय वाणी की रक्षा करे, अपने ही समान हो तो भी किसी के साथ बहुत अधिक बातचीत न करे ॥३॥ जो बुद्धिमान् समय पर विचार-पूर्वक थोड़ा बोलता है वह सब शत्रुओं को उसी प्रकार अपने अधिकार में ले लेता है जैसे गरुड़ सर्प को ॥४॥]

राजा बोधिसत्व का धर्मोपदेश सुनने के बाद से मितभाषी हो गया। उसने बोधिसत्व को बहुत सम्पत्ति दी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय कोयल-बच्चा कोकालिक था। पण्डित-अमात्य तो मैं ही था।

३२२. रथलट्ठि जातक

"अपि हन्त्वा हतो ब्रूति..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल-राज के पुरोहित के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह रथ से अपनी जमींदारी के गांव की ओर जा रहा था। अड़चन की जगह पर रथ हांकते हुए उसने गाड़ियों के क़ाफले को आते देख कहा—अपनी गाड़ियों को हटाओ, हटाओ। गाड़ियों के न हटाये जाने पर क्रोधित हो, उसने चाबुक की लकड़ी से पहली गाड़ी के गाड़ीवान की गाड़ी के रथ की धुरि पर प्रहार किया। वह लकड़ी रथ की धुरी से उचट कर उसी के माथे में लगी। उसी समय माथे पर गोला पड़ गया। उसने रुककर राजा से कहा—मुझे गाड़ीवानों ने मारा। गाड़ीवानों को बुलाकर फैसला करने वालों को उसी का दोष दिखाई दिया।

एक दिन (भिक्षुओं ने) धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! राजा के पुरोहित ने मुकद्दमा किया कि गाड़ीवानों ने उसे मारा, किन्तु स्वयं पराजित हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? "अमुक बातचीत।" "न केवल अभी, भिक्षुओ, पहले भी इसने ऐसा ही किया है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसी के न्याय-मन्त्री थे। राजा का पुरोहित अपनी जमींदारी के गाँव में जाता हुआ......(सब ऊपरोक्त की तरह ही)। लेकिन इस कथा में राजा के कहने पर, उसने स्वयं न्याय करना आरम्भ कर, बिना मुकद्दमा किये ही गाड़ीवानों को बुलाकर कहा कि तुमने मेरे पुरोहित को पीटकर उसके सिर में गोला उठा दिया; और उनके सर्वस्व हरण की आज्ञा दी। बोधिसत्व ने निवेदन किया—महाराज! तुमने बिना मुकद्दमा किये ही इनका सर्वस्व हरण कराया। कोई

कोई स्वयं अपने को चोट लगाकर भी 'दूसरे ने मारा' कहते हैं। इसलिये बिना न्याय किये कुछ करना उचित नहीं। राज्य करने वाले को सुनकर ही फैसला करना चाहिये।

इतना कह ये गाथायें कहीः—

> अपि हन्त्वा हतो ब्रूति जेत्वा जितोति भासति,
> पुब्बमक्खायिनो राज एकदत्थु न सद्दहे ॥१॥
> तस्मा पण्डितजातियो सुणेय्य इतरस्सपि,
> उभिन्नं वचनं सुत्वा यथाधम्मो तथा करे ॥२॥
> अलसो गिही कामभोगी न साधु
> असञ्ञतो पब्बजितो न साधु,
> राजा न साधु अनिसम्मकारी
> यो पण्डितो कोधनो तं न साधु ॥३॥
> निसम्म खत्तियो कयिरा नानिसम्म दिसम्पति,
> निसम्मकारिनो रञ्ञो यसो कित्ति च वड्ढति ॥४॥

[कोई कोई स्वयं पीटकर 'पीटा गया' तथा स्वयं जीतकर 'जीता गया' भी कहते हैं। इसलिये राजन्! जो पहले आकर कहे उसी की बात एकदम नहीं मान लेनी चाहिये। पण्डित को चाहिये कि दूसरे की बात भी सुने और दोनों का कथन सुनकर जो न्याय हो सो करे ॥१-२॥ आलसी गृहस्थ काम-भोगी अच्छा नहीं। असंयमी साधु अच्छा नहीं। बिना विचारे करने वाला राजा अच्छा नहीं। जो पण्डित होकर क्रोध करे वह भी अच्छा नहीं ॥३॥ क्षत्रिय को विचार कर करना चाहिये, राजा को बिना विचारे नहीं करना चाहिये। विचार-पूर्वक (काम) करने वाले राजा का यश और कीर्ति बढ़ती है ॥४॥]

राजा ने बोधिसत्व की बात सुन धर्मानुसार न्याय किया। धर्म से फैसला करने पर ब्राह्मण का ही दोष निकला।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का ब्राह्मण अब का ब्राह्मण ही था। पण्डित-अमात्य तो मैं ही था।

२३३. पक्कगोध जातक

"तदेव मे त्वं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक गृहस्थ के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

(वर्तमान) कथा पहले विस्तार से आ ही गई है[1]। इस उनके उधार वसूली करके आते समय रस्ते में उन्हें एक शिकारी ने पकी गोह दी कि दोनों जने खायें। उस आदमी ने भार्य्या को पानी के लिये भेजा और स्वयं सब गोह खा गया। जब वह लौटकर आई तो बोला भद्रे! गोह भाग गई। वह बोली—अच्छा स्वामी! जब पकी गोह भाग जाती है तब क्या किया जा सकता है?

जेतवन में पानी पीकर जब वह शास्ता के पास बैठी थी, तो शास्ता ने पूछा—उपासिका! क्या यह (पति) तेरा हित-चितंक है, स्नेही है, उपकारी है?

"भन्ते। मैं तो इसकी हित-चिन्तक हूँ, स्नेही हूँ, उपकारिणी हूँ, लेकिन यह मेरे प्रति स्नेह-रहित है।"

"रहने दे, अभी यह ऐसा करता है, लेकिन जब तेरे गुणों का स्मरण करता है तो तुझे सब ऐश्वर्य्य दे देता है।"

उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही

ख. अतीत कथा

अतीत-कथा भी पूर्वोक्त सदृश ही है। इस कथा में उनके लौटते समय रास्ते में शिकारी ने उन्हें थका देख एक पकी गोह दी कि दोनों जने

---

[1]सुच्चज जातक (३२०)

खायें। राज-कन्या उसे लता से बांध लेकर चली। वे एक तालाब देख रस्ते से हट एक पीपल के नीचे बैठे। राज-पुत्र बोला—भद्रे! जा तालाब से कंवल-पत्र में पानी ले आ, मांस खायें। वह गोह को शाखा पर टांग पानी के लिये गई। दूसरे ने सारी गोह खाली और पूँछ का सिरा हाथ में ले दूसरी ओर मुँह करके बैठ रहा। जब वह पानी लेकर आई तो बोला—भद्रे! गोह शाखा से उतर बिल में घुस गई। मैं ने दौड़ कर पूँछ के सिरे से पकड़ा। जो हाथ में था उतना हिस्सा हाथ में ही छोड़ तुड़ा कर घुस गई।

"हो देव! पकी गोह जब भाग जाय तब क्या करें? चलें।"

वे पानी पी वाराणसी पहुँचे। राज-पुत्र ने राज्य प्राप्त होने पर उसे केवल पटरानी बना दिया। सत्कार-सम्मान उसका कुछ नहीं।

बोधिसत्व ने उसका सत्कार-सम्मान कराने की इच्छा से राजा के पास खड़े हो कहा—आर्ये! हमें तुम से कुछ नहीं मिलता न? क्या हमारी ओर नहीं देखती?

"तात! मुझे ही राजा से कुछ नहीं मिलता, तुम्हें क्या दूँ? और राजा भी अब मुझे क्या देगा, जो जंगल से आने के समय पकी गोह को अकेला ही खा गया।"

"आर्ये! ऐसा मत कहें। देव ऐसा नहीं करेंगे।"

"तात! उसका तुम्हें पता नहीं। राजा को और मुझे ही पता है।"

यह कह उसने पहली गाथा कही—

तदेव मे त्वं विदितो वनमज्झे रथेसभ,
यस्स ते खग्गबन्धस्स सन्नद्धस्स तिरीटिनो,
अस्सत्थदुमसाखाय पक्का गोधा पलायथ ॥१॥

[हे राजन! मैंने तुम्हें उसी समय जान लिया था, जब तुम्हारे वल्कल-धारी, जर्रा-बक्तर पहने और तलवार बांधे हुये रहते पीपल के पेड़ से बंधी गोह भाग गई।]

इस प्रकार राजा के दोष को लोगों के सामने प्रकट करके कहा।

यह सुन बोधिसत्व ने 'आर्ये! जब से देव तुम्हें प्यार नहीं करता तब से दोनों के लिये कष्टकर होकर यहाँ क्यों रहती हो?' कह ये दो गाथायें कहीः—

नमे नमन्तस्स भजे भजन्तं
किच्चानुकुब्बस्स करेय्य किच्चं,
नानत्थकामस्स करेय्य अत्थं
असम्भजन्तम्पि न सम्भजेय्य ॥२॥
चजे चजन्तं वनथं न कयिरा
अपेतचित्तेन न सम्भजेय्य,
दिजो दुमं खीणफलं व ञत्वा
अञ्ञं समेक्खेय्य महा हि लोको ॥३॥

[जो अपने प्रति नम्र हों, उसके प्रति नम्र होवे, जो अपने साथ रहना चाहे, उसके साथ रहे; जो अपना काम करे उसका काम करे, जो अपना अनर्थ चाहता हो उसका अर्थ न करे और जो अपने साथ न रहना चाहता हो उसके साथ न रहे ॥२॥ जो अपने को छोड़े उसे छोड़ दे, तृष्णा-स्नेह न करे; विरक्त-मन वाले की संगति न करे। जिस प्रकार वृक्ष को फलरहित जान यती अन्यत्र चला जाता है, उसी प्रकार (अपने लिये) दूसरा स्थान खोजे। संसार बड़ा है ॥३॥]

राजा ने बोधिसत्व के कहते ही कहते उसके गुणों को याद कर कहा —भद्रे, इतने समय तक मैंने तेरे गुणों की कदर नहीं की। पण्डित की बात से ही जाने। तुम मेरे अपराधों को सहन करती रही। तुम्हें ही मैं यह सारा राज्य देता हूँ। यह कह चौथी गाथा कही—

सो ते करिस्सामि यथानुभावं
कतञ्ञुतं खत्तिये पेक्खमानो,
सब्बञ्च ते इस्सरियं ददामि
यस्सिच्छसि तस्स तुवं ददामि ॥

[हे क्षत्रिये! तेरा कृतज्ञ होने के कारण यथासामर्थ्य तेरे लिये सब करूँगा। तुझे सारा ऐश्वर्य्य दूँगा। जिसकी तू इच्छा करे, वही तुझे दूँगा ॥४॥]

यह कह राजा ने देवी को सब ऐश्वर्य्य दिया। 'इसने मुझे इसका गुण याद कराया' सोच पण्डित को भी बहुत ऐश्वर्य्य दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर दोनों पति-पत्नी स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए। उस समय के पति-पत्नी इस समय के पति पत्नी ही थे। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

३३४. राजोवाद जातक

"गवञ्चे तरमानानं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय राजोपदेश के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

(वर्तमान) कथा सकुँण जातक[1] में आयेगी। इस कथा में शास्ता ने 'महाराज ! पुराने राजागण भी पण्डितों की बात सुन धर्मानुसार राज्य कर स्वर्ग पधारे' कह राजा के प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर सब शिल्प सीखे। फिर ऋषि-प्रव्रज्या ले अभिज्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर रमणीय हिमालय प्रदेश में फल-मूल का आहार करते हुए रहने लगे।

उस समय राजा अपने दोष ढूँढ़ने वाला हो, किसी ऐसे आदमी को खोजता था जो उसके दोष कहे। उसने अन्दर के आदमियों, बाहर के आदमियों, नगर के आदमियों तथा नगर के बाहर के आदमियों में से किसी को भी अपने दोष कहने वाला न पाया। उसने सोचा 'जनपद' में कहेंगे।

---

[1] सकुण जातक (?)

इसलिये भेस बदल जनपद में घूमा। जब वहाँ भी कोई दोष कहने वाला न मिला, गुण ही सुनने को मिले तो यह सोच कि हिमालय प्रदेश में कहेंगे, वह जंगल में घूमता-घूमता बोधिसत्व के आश्रम पर पहुँचा और प्रणाम किया। बोधिसत्व ने कुशल क्षेम पूछा। वह एक ओर बैठा।

तब बोधिसत्व जंगल से पके गोदे लाकर खाते थे। वे मीठे थे, शक्ति-वर्धक थे और शक्कर समान थे। उसने राजा को भी सम्बोधित कर कहा—"महापुण्य! यह गोदे खाकर पानी पियो।" राजा ने गोदे खा, पानी पी, बोधिसत्व से पूछा—भन्ते! क्या बात है यह गोदे बहुत ही मीठे हैं?

"महापुण्य! राजा निश्चय से धर्मानुसार न्याय से राज्य करता है। उसी से यह मीठे हैं।"

"भन्ते! राजा के अधार्मिक होने पर अमधुर हो जाता है?"

"हाँ महापुण्य! राजाओं के अधार्मिक होने पर तेल, मधु, शक्कर आदि तथा जंगल के फल-मूल भी अमधुर हो जाते हैं, ओज-रहित हो जाते हैं। केवल ये ही नहीं, सारा राष्ट्र ही ओज-रहित हो जाता है, खराब हो जाता है। उनके धार्मिक होने पर वे मधुर होते हैं, शक्ति-वर्धक होते हैं और सारा राष्ट्र शक्तिशाली होता है।"

राजा 'भन्ते! ऐसा होगा' कह और अपना राजा होना बिना प्रकट किये बोधिसत्व को प्रणाम कर वाराणसी चला आया। उसने सोचा तपस्वी के कथन की परीक्षा करूँगा। 'अधर्म से राज्य कर, अब देखूँगा' सोच, कुछ समय बिता, वह फिर वहाँ पहुँचा। प्रणाम करके एक ओर बैठा।

बोधिसत्व ने भी उसे वैठो ही कह पके गोदे दिये। वह उसे कड़ुए लगे। राजा ने अस्वादिष्ट जान थूक सहित फेंक कहा—भन्ते! कड़ुआ है।

"महापुण्य! राजा निश्चय से अधार्मिक होगा। राजाओं के अधार्मिक होने पर जंगल के फल-मूल से लेकर सभी नीरस हो जाता है, ओज-रहित हो जाता है।"

यह कह ये गाथायें कहीं—

गवं चे तरमानानं जिह्मं गच्छति पुङ्गवो,
सब्बा गावी जिह्मं यन्ति नेते जिह्मं गते सति ॥१॥

एवमेव मनुस्सेसु यो होति सेट्ठसम्मतो,
सो चे अधम्मं चरति पगेव इतरा पजा,
सब्बं रट्ठं दुक्खं सेति राजा चे होति अधम्मिको ॥२॥
गावं चे तरमानानं उजुं गच्छति पुङ्गवो,
सब्बा गावी उजुं यन्ति नेत्ते उजुगते सति ॥३॥
एवमेव मनुस्सेसु यो होति सेट्ठसम्मतो,
सो चेपि धम्मं चरति पगेव इतरा पजा,
सब्बं रट्ठं सुखं सेति राजा चे होति धम्मिको ॥४॥

[गौवों के (नदी) तैरने के समय यदि बैल टेढ़ा जाता है तो नेता के टेढ़े जाने के कारण सभी गौवें टेढ़ी जाती हैं ॥१॥ इस प्रकार मनुष्यों में जो श्रेष्ठ माना जाता है यदि वह अधर्म करता है तो शेष प्रजा पहले ही अधर्म करती है। राजा के अधार्मिक होने पर सारा राज्य दुःख को प्राप्त होता है ॥२॥ गौओं के (नदी) तरने के समय यदि बैल सीधा जाता है तो नेता के सीधा जाने के कारण सभी गौवें सीधी जाती हैं ॥३॥ इसी प्रकार मनुष्यों में जो श्रेष्ठ माना जाता है यदि वह धर्म करता है तो शेष प्रजा पहले ही धर्म करती है। राजा के धार्मिक होने पर सारा राष्ट्र सुख प्राप्त करता है ॥४॥]

राजा ने बोधिसत्व से धर्म सुन, अपना राजा होना प्रकट किया—भन्ते! मैंने ही पहले गोदों को मीठा कर फिर कडुआ किया। अब फिर मीठा करूँगा। उसने बोधिसत्व को प्रणाम कर नगर में जा धर्मानुसार राज्य कर सब कुछ प्राकृतिक अवस्था में कर दिया।

शास्ता ने वह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। तपस्वी तो मैं ही था।

३३५. जम्बुक जातक

"ब्रहा पवट्टकायो सो..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के तथागत की नकल करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कथा पहले आ ही चुकी है। यहाँ पर संक्षिप्त है। शास्ता ने पूछा—सारिपुत्र ! देवदत्त ने तुम्हें देखकर क्या किया ? स्थविर बोले—भन्ते ! वह आपकी नकल करता हुआ मेरे हाथ में पंखा देकर लेट रहा। तब कोकालिक ने उसकी छाती में घुटने की चोट मारी। इस प्रकार आप की नकल करने जाकर उसने दुःख भोगा।

यह सुन शास्ता ने 'सारिपुत्र! न केवल अभी देवदत्त ने मेरी नकल करने जाकर दुःख भोगा है, पहले भी भोगा ही है' कह स्थविर के प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व सिंह-योनि में पैदा हुए। वह हिमालय में एक गुफा में रहता था। एक दिन भैंसे को मार, मांस खा, पानी पी गुफा को लौटते समय एक शृगाल ने जब उसे देखा तो भाग न सकने के कारण छाती के बल लेट रहा। सिंह ने पूछा—जम्बुक ! क्या है ? "भद्र ! मैं आपकी सेवा करूँगा।" "तो आ" कह सिंह उसे अपने वास-स्थान पर ले गया और रोज रोज मांस लाकर पोसने लगा। सिंह का मारा हुआ शिकार खा खा कर मोटे हुए जम्बुक के दिल में एक दिन अभिमान पैदा हो गया। वह सिंह के पास आकर बोला—"स्वामी! मेरे कारण आप को नित्य असुविधा होती है। आप नित्य मांस लाकर मुझे पोसते हैं। आज आप यहीं रहें। मैं एक हाथी को मार, मांस खा, आप के लिये भी लाऊँगा।"

"जम्बुक ! अच्छा हो, यदि तू ऐसी इच्छा न करे। तू हाथी मार कर माँस खाने वाली योनि में पैदा नहीं हुआ। मैं तुझे हाथी मार कर दूँगा। हाथी बड़े डील-डौल वाले होते हैं। उलटी बात मत कर। मेरा कहना मान।"

सिंह ने यह कह पहली गाथा कही:—

---

[1] लक्खण जातक (११)

ब्रहा पवड्ढकायो सो दीघदाठो च जम्बुक,
न त्वं तम्हि कुले जातो यत्थ गण्हन्ति कुञ्जरं ॥

[हे जम्बुक ! वह मोटा, बड़े शरीर वाला तथा लंबे दान्तों वाला होता है। तू उस कुल में पैदा नहीं हुआ है जिसमें पैदा होकर हाथियों को पकड़ते हैं।]

श्रृगाल सिंह के मना करने पर भी गुफा से निकल, तीन बार 'हुक्का हुक्का' गीदड़ की आवाज लगा, पर्वत के शिखर पर चढ़ गया। वहाँ पर्वत के नीचे उसने एक काले हाथी को जाते देखा, तो सोचा उछल कर इसके माथे पर जा बैठूंगा; वह उसके पाँव में आकर गिरा। हाथी ने अगला पाँव उठा उसके मस्तक पर रख दिया। सिर फूट कर चूर्ण-विचूर्ण हो गया और वह चिल्लाता हुआ वहीं ढेर हो गया। हाथी क्रौंच-नाद करता हुआ चला गया। बोधिसत्व ने जा, पर्वत के शिखर पर खड़े हो, उसे नाश को प्राप्त हुआ देख, 'अपने अभिमान के कारण यह श्रृगाल विनाश को प्राप्त हुआ' कहा और ये तीन गाथायें कहीं:—

असीहो सीहमानेन यो अत्तानं विकुब्बति,
कोत्थु'व गजमासज्ज सेति भुम्या अनुत्थुनं ॥२॥

यसस्सिनो उत्तमपुग्गलस्स
सञ्जातखन्धस्स महब्बलस्स,
असमेक्खिय थामबलूपपत्तिं
ससेति नागेन हतोव जम्बुको ॥

यो चीध कम्मं कुरुते पमाय
थामबलं अत्तनि संविदित्वा,
जप्पेन मन्तेन सुभासितेन
परिक्खवासो विपुलं जिनाति ॥

[जो सिंह न होकर सिंह का अभिमान करता है, वह हाथी पर आक्रमण करने वाले श्रृगाल की तरह चिल्लाता हुआ भूमि पर ढेर हो जाता है ॥२॥ यशस्वी, उत्तम व्यक्ति, अच्छे सुदृढ़ शरीर वाले तथा महाबलवान की शक्ति, बल और योनि को न देख कर (जो उसकी बराबरी करता है) वह हाथी द्वारा मारे गये जम्बुक की तरह ढेर हो जाता है ॥३॥ जो अपनी

शक्ति और बल को जान कर शक्ति के भीतर काम करता है, वह विचार पूर्वक काम करने वाला अध्ययन, मन्त्रणा और निर्दोष वाणी से बड़े अर्थ को प्राप्त कर लेता है ॥४॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने इन तीन गाथाओं द्वारा इस लोक में जो कर्तव्य है, सो बताया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शृगाल देवदत्त था। सिंह तो मैं ही था।

२३६. ब्रह्मछत्त जातक

"तिणं तिणन्ति लपसि..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय ढोंगी भिक्षु के बारे में कही। वर्तमान कथा आ ही चुकी है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके अर्थ-धर्मानुशासक अमात्य हुये। वाराणसी-नरेश ने बड़ी सेना से कोशल-राज पर चढ़ाई कर, श्रावस्ती जा, युद्ध करके नगर में दाखिल हो राजा को पकड़ लिया। कोशलराज का छत्र नामक पुत्र था। सो भेस बदल कर निकल तक्षशिला गया। वहाँ तीनों वेद और अट्ठारह विद्यायें सीख तक्ष-शिला से निकल (रास्ते में) सब तरह के शिल्प सीखता हुआ एक प्रत्यन्त-ग्राम में पहुँचा। उसके आश्रय से पाँच सौ तपस्वी जंगल में कुटी बना कर रहते थे। कुमार ने उनके पास जा सोचा कि उनसे भी कुछ सीखूँ और प्रव्रजित हो जो वे जानते थे वह सब सीख लिया। वह आगे चलकर गण का शास्ता हो गया।

एक दिन ऋषि-गण को सम्बोधित कर उसने पूछा—

"मित्रो! मध्यम-देश क्यों नहीं जाते?"

"मित्रो ! मध्यम-देश के लोग पण्डित होते हैं । वह प्रश्न पूछते हैं । (पुण्य-) अनुमोदन कराते हैं । मङ्गल (-सूत्र) का पाठ कराते हैं । असमर्थ होने पर निन्दा करते हैं । हम इसी डर से नहीं जाते हैं।"

"तुम मत डरो । मैं यह सब करूँगा ।"

"तो चलें।"

सभी अपनी तरह तरह की चीज़ें ले क्रमशः वाराणसी पहुँचे। वाराणसी-राजा ने कोशल नरेश को अपने आधीन कर, वहाँ राज्याधिकारी नियुक्त किये और वहाँ जो धन था उसे वाराणसी ले आया। उस धन से उसने लोहे की गागरें भरवा उन्हें उद्यान में गड़वा दिया। स्वयं वह वाराणसी में ही रहने लगा।

वे ऋषि-गण रात भर राजा के उद्यान में रह, अगले दिन भिक्षार्थ नगर में जा राज-द्वार पर पहुँचे। राजा ने उनकी चर्य्या से प्रसन्न हो उन्हें बुलवाया और महान् तल्ले पर बिठा यवागु और खज्जक खिलाया। फिर भोजन के समय तक अनेक प्रश्न पूछता रहा। छत्त ने राजा के चित्त को प्रसन्न करते हुये सभी प्रश्नों का उत्तर दे भोजनोपरान्त विचित्र दानानुमोदन किया।

राजा ने बहुत प्रसन्न हो, वचन ले, उन सभी को उद्यान में टिकाया। छत्त खजाना निकालने का मन्त्र जानता था। उसने वहाँ रहते हुए मन्त्र-बल से पता लगाया कि इसने मेरे पिता का धन कहाँ छिपा रखा है ? उसे पता लग गया कि राजोद्यान में है। 'यह धन लेकर मैं अपना राज्य वापिस लूँगा' सोच उसने तपस्वियों को सम्बोधित कर कहा—मित्रो ! मैं कोशल-राज का पुत्र हूँ। वाराणसी के राजा ने हमारा राज्य छीन लिया है। भेस बदल कर इतने दिन अपने जीवन की रक्षा की। अब अपने कुल का धन मिल गया है। मैं इसे ले जाकर अपना राज्य लूँगा। तुम क्या करोगे ?

"हम तेरे साथ ही चलेंगे।"

उसने 'अच्छा' कह चमड़े के बड़े-बड़े थैले बनवाये और रात को भूमि खनवा कर धन की गागरें निकलवायीं। (फिर) थैलों में धन को डाल गागरों में तिनके भरवा दिये। पाँच सौ ऋषियों और अन्य मनुष्यों से धन लिवा भाग कर श्रावस्ती पहुँचा। वहाँ राज्याधिकारियों को पकड़वा, (अपना) राज्य वापिस लिया। फिर चार-दीवारी तथा अटारी आदि की मरम्मत करा

उसे ऐसा बनवा दिया कि फिर भी वह राजा उसे न ले सके। स्वयं नगर में रहने लगा।

वाराणसी-राजा को भी खबर दी गई कि तपस्वी उद्यान से धन लेकर भाग गये। उसने उद्यान जा, गागरों को निकलवाया तो उनमें तृण-मात्र दिखाई दिया। धन (चला जाने) के कारण उसको शोक हुआ। वह नगर में जा 'तृण, तृण' पुकारता घूमने लगा। कोई उसके शोक का शमन नहीं कर सकता था। बोधिसत्व ने सोचा—राजा को शोक बहुत है। विलाप करता घूमता है। मुझे छोड़ कोई दूसरा इसके शोक का शमन नहीं कर सकता। मैं इसके शोक को दूर करूँगा। उसने एक दिन उसके साथ सुख से बैठे हुए उसके विलाप करने के समय पहली गाथा कही:—

तिणं तिणन्ति लपसि कोनु ते तिणमाहरि,
किन्नु ते तिण किच्चत्थि तिणमेव पभाससि ॥१॥

[तृण तृण ही प्रलाप करता है, कौन है जो तेरे तृण ले गया ? तुझे तृण की क्यों आवश्यकता है ? तू केवल तृण ही तृण कहता है।]

राजा ने यह सुन दूसरी गाथा कही—

इधागमा ब्रह्मचारी ब्रहा छत्तो बहुस्सुतो,
सो मे सब्बं समादाय तिणं निक्खिप्प गच्छति ॥२॥

[यहाँ छत्त नाम का एक बड़ा और बहुश्रुत ब्रह्मचारी आया। वह मेरा सब लेकर और तृण डालकर चला गया।]

यह सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही:—

एवेतं होति कत्तब्बं अप्पेन बहुमिच्छता,
सब्बं सकस्स आदानं अनादानं तिणस्स च,
तिणस्स चाटिसु गतो तत्थ का परिदेवना ॥३॥

[जो थोड़े से बहुत की इच्छा करता है उसे ऐसा ही करना होता है; अपने सारे धन का लेना और तृण का न लेना। तृण के घड़ों में जाने पर रोना-पीटना क्या ?]

यह सुन राजा ने चौथी गाथा कही:—

सीलवन्तो न कुब्बन्ति बालो सीलानि कुब्बति,
अनिच्चसीलं दुस्सील्यं किं पण्डिच्चं करिस्सति ॥४॥

[सदाचारी (ऐसा) नहीं करते, मूर्ख ही (ऐसा) सदाचार करता है। जिसका शील स्थिर नहीं, जो दुश्शील है उसका पाण्डित्य किस काम का ?]

इस प्रकार उसकी निन्दा कर बोधिसत्व की उन गाथाओं से निश्शोक हो राजा ने धर्मानुसार राज्य किया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय बड़ा छुच ढोंगी भिक्षु था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

२३७. पीठ जातक

"न ते पीठमदायिम्ह..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह जनपद से जेतवन पहुँचा। पात्र चीवर संभाल, रख, शास्ता को प्रणाम कर उसने तरुण श्रमणेरों से पूछा - आयुष्मानो ! अतिथि भिक्षुओं का उपकार कौन करते हैं ?

"आयुष्मान् ! अनाथपिण्डिक नाम का महासेठ और विसाखा नाम की महा-उपासिका, दोनों माता पिता के समान उपकार करते हैं।"

वह 'अच्छा' कह अगले दिन जब एक भी भिक्षु ने नगर में प्रवेश नहीं किया था, अनाथ-पिण्डिक के गृह-द्वार पर पहुँचा। असमय गया होने से किसी ने ध्यान नहीं दिया। वहाँ कुछ न पाकर वह विसाखा के गृह-द्वार पर पहुँचा। वहाँ भी बहुत सवेरे पहुँचने के कारण कुछ न मिला। फिर जहाँ तहाँ घूम कर यवागु समाप्त होने पर पहुँचा। और फिर जहाँ तहाँ घूम कर भात के समाप्त होने पर पहुँचा[1]। वह विहार पहुँचकर दोनों परिवारों की

[1] इस प्रकार न उसे प्रातःकाल की भिक्षा मिली और न मध्याह्न का भोजन।

निन्दा करता हुआ घूमने लगा—ये भिक्षु कहते हैं कि ये कुल श्रद्धावान् हैं, भक्ति रखते हैं, किन्तु ये परिवार तो अश्रद्धावान् हैं, भक्त नहीं हैं।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक जानपदिक भिक्षु अति-प्रातःकाल गृहस्थों के घर भिक्षार्थ पहुँचा और अन्न न मिलने से उनकी निन्दा करता हुआ घूम रहा है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत'। शास्ता ने उस भिक्षु को बुलवा कर पूछा, 'क्या सचमुच?' और उसके 'भन्ते सचमुच' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षु! तू क्रोध क्यों करता है? पूर्व समय में जब बुद्ध उत्पन्न नहीं हुए थे, उस समय तपस्वी भी गृहस्थों के घर जाकर भिक्षा न मिलने पर शान्त रहे। यह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला के सब शिल्प सीखे। आगे चल कर तपस्वी-परिव्रज्या ले हिमालय में रहने लगा। वहाँ चिरकाल तक रहकर आगे चल कर नगर में भिक्षार्थ प्रवेश किया। उस समय वाराणसी सेठ श्रद्धावान् तथा भक्त था। बोधिसत्व ने 'कौनसा परिवार श्रद्धावान् है?' पूछा। उत्तर मिला—सेठ का घर। वह सेठ के घर पहुँचा। उस समय सेठ राज-दरबार में गया था। दूसरे आदमियों ने भी उसे नहीं देखा। वह लौटा जा रहा था। राज-दरबार से निकलते समय उस सेठ ने उसे देख लिया। वह प्रणाम कर, भिक्षा-पात्र ले, घर ले गया और वहाँ बिठा, पैर धुला, माख, यवागु-खाद्य आदि परोसा। फिर भोजन करते समय कुछ न कह, भोजन की समाप्ति पर प्रणाम कर निवेदन किया—

"भन्ते! हमारे गृह-द्वार पर कोई भिख-मंगा वा धार्मिक श्रमण-ब्राह्मण आकर खाली हाथ लौट गया हो ऐसा आज तक नहीं हुआ। आज हमारे बच्चों ने आप को नहीं देखा। इसलिये आज आप को न आसन मिला, न पानी मिला, न पैर धुलाये गये और न यवागु-भात ही मिला। आप यूँ ही लौटे जा रहे थे। यह हमारा अपराध है। हमें क्षमा करना चाहिये।"

उसने यह पहली गाथा कही:—

न ते पीठमदायिम्ह न पाणं नपि भोजनं,
ब्रह्मचारि खमस्सु मे एतं पस्साम अच्चयं ॥१॥

[न तुझे पीढ़ा दिया, न पानी और न भोजन । हे ब्रह्मचारी ! हमें क्षमा करें, हम अपने इस अपराध को स्वीकार करते हैं ।]

यह सुन बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही:—

नेवाभिसज्जामि न चापि कुप्पे
न चापि मे अप्पियमासि किञ्चि,
अथोपि मे आसि मनो वितक्को
एतादिसो नून कुलस्स धम्मो ॥२॥

[न आसक्त होता हूँ, न क्रोध करता हूँ और मुझे कुछ अप्रिय भी नहीं लगा । मेरे मन में यही वितर्क पैदा हुआ कि इस परिवार का निश्चय से यही धर्म होगा ।]

यह सुन सेठ ने दो गाथायें कही:—

एसम्हाकं कुले धम्मो पितुपितामहो सदा,
आसनं उदकं पज्जं सब्बेतं निपदामसे ॥३॥
एसम्हाकंकुले धम्मो पितुपितामहो सदा,
सक्कच्चं उपतिट्ठाम उत्तमं विय ञातकं ॥४॥

[यह हमारे पिता-पितामह से हमारे कुल का धर्म है कि हम आसन, पानी और पैर में मालने के लिये तेल—यह सब देते हैं । यह हमारे पिता, पिता-मह से हमारा कुल-धर्म है कि हम उत्तम जनों की सेवा वैसी ही अच्छी तरह करते हैं जैसे अपने सम्बन्धियों की ॥३-४॥]

बोधिसत्व कुछ दिन वाराणसी-सेठ को धर्मोपदेश देते हुए वहीं रहे । फिर हिमालय जा अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कीं ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों के अन्त में वह भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय वाराणसी-सेठ आनन्द था । तपस्वी तो मैं ही था ।

३३८. थुस जातक

"विदितं थुसं......" यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय अजात-शत्रु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसके माता की कोख में रहने पर उसकी माँ कोशलराज-पुत्री के मन में राजा बिम्बिसार की जांघ का खून पीने का दोहद पैदा हुआ और वह दृढ़ हो गया। सेविकाओं के पूछने पर उसने उन्हें वह बात कही। राजा ने भी सुना तो लक्षणज्ञों को बुलाकर पूछा—इस का क्या अर्थ है? लक्षणज्ञों ने कहा कि देवी की कोख में जो प्राणी है वह तुम्हें मारकर राज्य लेगा। राजा बोला—यदि मेरा पुत्र मुझे मारकर राज्य लेगा तो इस में क्या हर्ज है? उसने दाहिनी जाँघ को शस्त्र से फाड़, सोने के कटोरे में खून ले, भेजकर, देवी को पिलवाया। उसने सोचा—यदि मेरी कोख से उत्पन्न हुआ पुत्र पिता को मारेगा तो मुझे ऐसे पुत्र से क्या? गर्भ गिराने के लिये उसने कोख मलवाई। राजा को मालूम हुआ तो देवी को बुलवाकर उसने कहा—"भद्रे! मेरा पुत्र मुझे मारकर राज्य लेगा। मैं अजरअमर तो हूँ नहीं। मुझे पुत्र-मुख देखने दे। अब से इस तरह का काम न करना।" तब वह उद्यान में जाकर वहाँ कोख मलवाने लगी। राजा को मालूम हुआ तो उसने उद्यान जाना रोक दिया। उसने गर्भ पूरा होने पर पुत्र को जन्म दिया। नाम-करण के दिन, अजात होने पर भी पिता के प्रति शत्रुता रखने के कारण उसका नाम अजात-शत्रु ही रखा गया। वह पाला पोसा जाकर बड़ा हो रहा था। एक दिन शास्ता पाँच सौ भिक्षुओं के साथ राजा के घर जाकर बैठे। राजा बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघ को श्रेष्ठ खाद्य भोज्य परोस शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठ कर धर्म सुनने लगा। उसी समय कुमार को अलंकृत कर राजा को दिया। राजा ने स्नेह की अधिकता से पुत्र को ले, गोद में बिठा लिया। वह पुत्र-प्रेम

के कारण पुत्र से ही लाड़ प्यार करता था—धर्म नहीं सुनता था। शास्ता ने राजा का प्रमाद देखा तो कहा—महाराज ! पहले के राजा पुत्र पर आशङ्का कर उसे किसी जगह छिपा देते थे और आज्ञा देते थे कि मेरे मरने के बाद इसे निकाल कर राज्य पर बिठाना।

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व तक्षशिला में सर्वत्र प्रसिद्ध आचार्य्य हो बहुत से राजकुमारों तथा ब्राह्मण कुमारों को विद्या पढ़ाते थे। वाराणसी के राज-पुत्र ने सोलह वर्ष की आयु होने पर उसके पास जा तीनों वेद और सब शिल्प सीख आचार्य्य से विदा मांगी। आचार्य्य ने अङ्ग-विद्या से जाना कि इसे पुत्र से खतरा है। उसने सोचा कि मैं अपने प्रताप से इसका खतरा दूर करूँगा। उसने चार गाथायें बना कुमार को दीं और नियम किया—तात ! पहली गाथा राज-गद्दी पर बैठ, जब तेरा पुत्र सोलह वर्ष का हो, तेरे साथ बैठा भोजन करता हो उस समय कहना, दूसरी बड़े दरबार के समय, तीसरी महल पर चढ़ने के समय सीढ़ियों के शिखर पर खड़े हो और चौथी शयनागार में प्रवेश करते समय बरामदे में खड़े होकर। वह 'अच्छा' कह, स्वीकार कर आचार्य्य को प्रणाम कर गया और उपराज बन पिता के मरने पर राजा बना। उसके पुत्र ने सोलह वर्ष का होने पर उद्यान-क्रीड़ा आदि के लिये बाहर निकले राजा का ऐश्वर्य्य देखकर उसे मार राज्य पाने की इच्छा की। उसने अपने सेवकों से कहा। वे बोले—देव ! बुढ़ापे में ऐश्वर्य्य मिला तो किस काम का ? जिस किसी उपाय से राजा को मार कर राज्य ग्रहण करना चाहिये। कुमार ने सोचा—विष खिला कर मारूँगा। वह पिता के साथ शाम को भोजन करते समय विष पास लेकर बैठा। राजा ने थाली में भात डालते ही पहली गाथा कही:—

विदितं थुसं उन्दुरानं विदितं पन तण्डुलं,
थुसं थूलं विवज्जित्वा तण्डुलं पन खादरे ॥१॥

[चूहों को तुष का भी पता है और तण्डुल का भी पता है। वे स्थूल तुष को छोड़ तण्डुल खाते हैं।]

कुमार ने समझा, मेरा पता लग गया। वह भय के मारे थाली में विष नहीं डाल सका और राजा को प्रणाम करके चला गया। उसने यह बात अपने सेवकों को सुना कर पूछा—आज तो मेरा पता लग गया। अब कैसे मारूँ? उन्होंने उद्यान जाते समय छिपकर सलाह की और सोचा—एक उपाय है। उन्होंने व्यवस्था दी—तलवार को तैयार रख, राज-दरबार में जाने के समय, अमात्यों के बीच में खड़े हो, राजा को असावधान देख, तलवार का प्रहार कर मारना चाहिये। कुमार ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और दरबार के समय तलवारबंद होकर वहाँ जा इधर उधर राजा पर प्रहार करने का अवसर खोजने लगा। उस समय राजा ने दूसरी गाथा कही :—

या मन्तना अरञ्ञस्मिं या च गामे निकण्णिका,
यञ्चेतं इतिचिति च एतम्पि विदितं मया ॥२॥

[जो जंगल में मन्त्रणा हुई और जो गाँव में काना-फूसी हुई तथा यह जो इधर उधर अवसर ढूँढ़ता है - यह भी मुझे मालूम हो गया।]

कुमार समझ गया कि पिता मेरे वैरी-भाव को जानता है। उसने भाग कर सेवकों से कहा। उन्होंने सात आठ दिन बीतने पर कहा—पिता तुम्हारे वैरी होने को नहीं जानता। तुम अन्दाजे से ही ऐसा समझते हो। उसे मारो। वह एक दिन तलवार ले सीढ़ियों के ऊपर कमरे के द्वार पर खड़ा हुआ। राजा ने सीढ़ियों के शिखर पर खड़े हो तीसरी गाथा कही :—

धम्मेन किर जातस्स पिता पुत्तस्स मक्कटो,
दहरस्सेव सन्तस्स दन्तेहि फलमच्छिदा ॥३॥

[बन्दर-पिता ने धर्म से पैदा हुए अपने पुत्र से यह आशङ्का होने के कारण कि वह यूथ-पति हो जायगा, बाल काल में ही दाँतों से बधिया कर दिया।]

कुमार ने समझा पिता मुझे पकड़वाना चाहता है। वह डरके मारे भागा और सेवकों से जाकर कहा कि पिता ने मुझे धमकाया है। उन्होंने आधा-महीना बीत जाने के बाद कहा—कुमार! यदि राजा तुझे जान जाता तो इतने दिन सहन न करता। उसने अन्दाजे से ही कहा है। उसे मार। वह एक दिन तलवार ले ऊपर महल में शयनागार के अन्दर घुस पलंग के नीचे लेट रहा कि आते ही उस पर प्रहार करूँगा। राजा ने शाम का

भोजन कर 'लेटूँगा' कह सेवक-जन को विदा किया और शयनागार में प्रवेश कर बरामदे में ही खड़े हो चौथी गाथा कही :—

यमेतं परिसप्पसि अजकाणोव आसये,
योपायंहेट्ठतो सेसि एतम्पि विदितं मया ॥४॥

[यह जो सरसों के खेत में कानी बकरी की तरह भय से इधर से उधर सरकता है और यह जो नीचे लेटा है—यह भी मुझे ज्ञात है।]

कुमार ने सोचा, पिता को मेरा पता लग गया है, अब मुझे नष्ट करवायेगा। उसने भयभीत हो, पलंग के नीचे से निकल, राजा के पैरों में तलवार रख दी और चरणों में साष्टांग लेट गया—देव ! क्षमा करें। राजा ने उसे धमकाया—तू समझता है कि मेरी करतूत को कोई नहीं जानता। उसने उसे जंजीर से बंधवा, कैदखाने में डलवा दिया और उस पर पहरा बिठवा दिया। तब राजा ने बोधिसत्व का गुण समझा। राजा आगे चलकर मर गया। उसका शरीर-कृत्य करने के बाद कुमार को कैदखाने से निकाल राज्य पर बिठाया गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला 'महाराज ! इस प्रकार पुराने पण्डित लोग सशंकित विषय में आशङ्का करते थे' कह यह बात समझाई। ऐसा कहने पर भी राजा ने ध्यान नहीं दिया। शास्ता ने जातक का मेल बिठाया। उस समय तक्षशिला में प्रसिद्ध आचार्य्य मैं ही था।

३३९. बावेरु जातक

"अदस्सनेन मोरस्स......" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय नष्ट लाभ-सत्कार तैर्थिकों के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

बुद्ध के उत्पन्न होने से पहले तैर्थिकों को लाभ और यश की प्राप्ति थी, बुद्ध के उत्पन्न होने पर उनका लाभ और यश जाता रहा; उनकी दशा

ऐसी ही हो गई जैसी सूर्य्य के उदय होने पर जुगनुओं की। उनके इस समाचार के बारे में धर्मसभा में बात चीत चली। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे? 'अमुक बातचीत।' "न केवल अभी भिक्षुओ, पहले भी जब तक गुणवान् पैदा नहीं हुए, तभी तक गुण-हीनों को श्रेष्ठ लाभ और श्रेष्ठ यश मिलता रहा। गुणवानों के पैदा होने पर गुण-हीनों का लाभ सत्कार जाता रहा।"

इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व मोर की योनि में पैदा हो, बड़े होने पर विशेष सुन्दर हो जङ्गल में विचरने लगे। उस समय कुछ बनिये दिशा-कौआ[1] ले कर जहाज से बावेरु[2] राष्ट्र गये। उस समय बावेरु राष्ट्र में पक्षी नहीं होते थे। उस राष्ट्र के जो जो निवासी आते उस कौवे को पिंजरे में पड़ा देख कहते—इसकी चमड़ी के वर्ण को देखो। गले तक चोंच है। मणि की गोलियों जैसी आँखें हैं। इस प्रकार कौवे की प्रशंसा करते हुए उन्होंने उन व्यापारियों से कहा—आर्यो! यह पक्षी हमें दे दो। हमें भी इसकी जरूरत है। तुम्हें अपने राष्ट्र में दूसरा मिल जायगा।

"तो कीमत देकर ले लो।"

"पाँच कार्षापण लेकर दे दें।"

"न देंगे।"

इस प्रकार क्रमशः बढ़ाने पर सौ कार्षापण तक पहुँचे। 'हमारे लिये यह बहुत काम का है, लेकिन खैर तुम्हारी मैत्री का ख्याल है' कह सौ कार्षापन लेकर दे दिया।

उन्होंने उसे सोने के पिंजरे में रख नाना प्रकार के मछली-मांस तथा फलाफल से पाला। दूसरे पक्षियों के न होने के कारन यह दुर्गुणों से युक्त कौवा भी श्रेष्ठ लाभी हुआ। अगली बार वे बनिये एक मोर को जो चुटकी बजाने पर आवाज लगाता और ताली बजाने पर नाचता, सिखा-पढ़ा कर

---

[1] (स्थल की) दिशा जानने के लिये जहाज पर जो कौआ रखा जाता था।

साथ ले गये। वह जनता के इकट्ठा हो जाने पर, नौका की धुर पर खड़ा हो, परों को झाड़, मधुर-स्वर से आवाज लगाता हुआ नाचा। मनुष्यों ने प्रसन्न हो कहा—आर्यो! यह सुन्दर सुशिक्षित पक्षी-राज हमें दो।

"पहले हम कौवा लेकर आये, वह ले लिया। अब एक मोर-राज लेकर आये वह भी लेना चाहते हो। तुम्हारे राष्ट्र में पक्षी लेकर आना ही कठिन है।"

"आर्यो! जो भी हो। अपने राष्ट्र में दूसरा मिल जायगा। यह हमें दें।" उन्होंने कीमत बढ़ाकर उसे हजार में लिया।

उसे सात रत्नों के सुन्दर पिंजरे में रख, मछली-मांस, फलादि तथा मधु-खील और शर्बत से पाला। मोर-राज को श्रेष्ठ लाभ और यश मिला। जब से वह पहुँचा तब से कौवे का लाभ-सत्कार घट गया। कोई उसकी ओर देखना भी नहीं चाहता था। कौवे को जो खाना-भोजन नहीं मिला, तब वह 'का, का' चिल्लाता हुआ जाकर कूड़ा-कर्कट गिराने की जगह पर उतरा। शास्ता ने दो कथायें मिला, अभि-सम्बुद्ध होने पर ये दो गाथायें कहीं :—

अदस्सनेन मोरस्स सिखिनो मञ्जुभाणिनो,
काकं तत्थ अपूजेसुं मंसेन च फलेन च ॥१॥
यदा च सरसम्पन्नो मोरो बावेरुमागमा,
अथ लाभो च सक्कारो वायसस्स अहायथ ॥२॥
याव नुप्पज्जति बुद्धो धम्मराजा पभङ्करो,
ताव अञ्ञे अपूजेसुं पुथु समणब्राह्मणे ॥३॥
यदा च सरसम्पन्नो बुद्धो धम्मं अदेसयि,
अथ लाभो च सक्कारो तित्थियानं अहायथ ॥४॥

[जब तक मधुर-भाषी, शिखी मोर नहीं देखा तब तक वहाँ माँस और फल से कौवे की पूजा हुई ॥१॥ जब स्वर-युक्त मोर बावेरु राष्ट्र पहुँचा, तो कौवे का लाभ-सत्कार घट गया ॥२॥ इसी तरह जब तक प्रभङ्कर धर्म-राज पैदा नहीं हुए तब तक अनेक दूसरे श्रमण-ब्राह्मणों की पूजा हुई, लेकिन जब स्वर-युक्त बुद्ध ने धर्मोपदेश दिया तो तैर्थिकों का लाभ-सत्कार नष्ट हो गया।]

यह चार गाथायें कह जातक का मेल बैठाया। उस समय कौवा निगण्ठ-नाथ पुत्र (निर्ग्रन्थ ज्ञाति-पुत्र) था। मोर राजा तो मैं ही था।

३४०. विसय्ह जातक

"अदासि दानानि..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय अनाथ पिण्डिक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कथा पूर्वोक्त खदिरङ्गार जातक[1] में आ ही गई है। इस कथा में शास्ता ने अनाथ-पिण्डिक को सम्बोधन कर "हे गृहपति! पुराने पण्डितों ने शक्र के आकाश में खड़े हो कर 'दान मत दो' कहने को अस्वीकार करके भी दान दिया" कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही;—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व अस्सी करोड़ धन के मालिक विसय्ह नाम के सेठ हुए। वह पाँच शीलों से युक्त था और स्वभाव का दानी। वह चारों नगर-द्वारों पर, नगर के मध्य में तथा अपने दरवाजे पर छः जगहों पर दानशालायें बनवा दान देता। प्रति दिन छः लाख खर्च करता। उसके सारे जम्बुद्वीप को उद्वेलित कर दान देने से, दान के प्रताप से, शक्र का भवन काँप उठा। देवेन्द्र का पाण्डु (-वर्ण) कम्बल-शिलासन गर्म हो उठा।

शक्र सोचने लगा—कौन है जो मुझे मेरे स्थान से च्युत करना चाहता है? उसने देखा कि यह विसय्ह नाम का महासेठ ही है जो अत्यधिक पैर फैलाकर सारे जम्बू-द्वीप में हलचल मचाता हुआ दान देता है। सम्भव है इस दान के प्रताप से मुझे च्युत कर स्वयं शक्र हो जाय। उसने सोचा—मैं

---

[1] खदिरङ्गार जातक (४०)।

इसके धन का नाश कर इसे दरिद्र बनाऊँगा जिसमें यह दान न दे सके। तब, उसने उसका सारा धन-धान्य, तेल, मधु, शक्कर, और तो और दास, नौकर-चाकर आदि भी अन्तर्धान कर दिये। दान-प्रबन्धकों ने आकर कहा—स्वामी, दान-शालाएँ खाली हो गईं, जहाँ जो रखा था कहीं कुछ नहीं दिखाई देता।

दान-उच्छेद मत होने दो, खर्चा यहाँ से ले जाओ, कह उसने भार्य्या को बुलाकर कहा—भद्रे, दान चालू कराओ।

उसने सारा घर खोजा। जब उसे आधे मासे भर भी कहीं कुछ न दिखाई दिया, तो बोली—आर्य्य, जो वस्त्र हम पहने हैं उन्हें छोड़ कहीं कुछ नहीं दिखाई देता। सारा घर खाली है। सात रत्नों से भरे कोठों के द्वार खुलवाने पर भी कुछ न दिखाई दिया। सेठ और उसकी भार्य्या को छोड़ दूसरे दास, नौकर-चाकर भी नहीं दिखाई दिये।

महासत्व ने फिर भार्य्या को सम्बोधित किया—भद्रे! दान नहीं बन्द किया जा सकता। सारे घर में खोजकर कुछ अवश्य निकालो।

उसी समय एक घसियारा दराँती, बहँगी और घास बाँधने की रस्सी दरवाजे के अन्दर फेंककर भाग गया। सेठ की भार्य्या ने वही लाकर दी—स्वामी! इन्हें छोड़ घर में और कुछ नहीं दिखाई देता। महासत्व ने कहा—भद्रे! इससे पहले मैंने कभी घास नहीं काटी है। लेकिन आज घास छील कर, लाकर, बेचकर, यथायोग्य दान दूँगा। वह दान देना बन्द न हो, इस डर से दराँती, बहँगी और रस्सी ले नगर से निकल घास की जगह पर गया। वहाँ घास छील, दो ढेरियां बाँध, बहँगी पर रखकर यह सोच नगर में बेचने के लिये लाया कि एक हिस्से का दाम हमारे लिये होगा और दूसरे हिस्से के दाम से दान देंगे। नगर द्वार पर घास बेचने से उसे जो मासक मिले उनका एक हिस्सा उसने याचकों को दे दिया। याचक बहुत थे। उनके 'मुझे भी दें' चिल्लाने पर दूसरा हिस्सा भी देकर भार्य्या सहित वह उस दिन निराहार ही रहा।

इस प्रकार छः दिन बीत गये। सातवें दिन जब वह घास ला रहा था, निराहार रहने तथा अति सुकुमार होने के कारण माथे पर सूर्य्यातप के लगते ही उसकी आँखें चकरा गईं। वह होश न सँभाले रख सका और घास को

बिखेर, गिर पड़ा। शक्र उसकी करनी को देखता हुआ विचरता था। उसी क्षण उसने आकाश में खड़े हो पहली गाथा कही :—

अदासि दानानि पुरे विसय्ह,
ददतो च ते खयंधम्मो अहोसि।
इतो परञ्चे न ददेय्य दानं,
तिटेठय्युं ते संयमन्तस्स भोगा॥

[विसय्ह ! तूने पूर्व समय से दान दिये हैं। दान देते-देते तेरे धन का क्षय हो गया है। यदि भविष्य में दान देना छोड़ दे तो (दान देने से) संयत रहने पर तेरा सब धन तुझे प्राप्त हो जाय।]

महासत्व ने उसकी बात सुनकर पूछा—तू कौन है ?

"मैं शक्र हूँ।"

"शक्र तो स्वयं दान देकर, शील का पालनकर, उपोसथ-कर्म कर, सात व्रतों की पूर्तिकर, शक्रत्व को प्राप्त हुआ। लेकिन तू तो अपने ऐश्वर्य्य के कारण दान को रोक रहा है। यह अनार्य-कृत्य है।"

इतना कह तीन गाथायें कहीं :—

अनरियमरियेन सहस्सनेत्त,
सुदुग्गतेनापि अकिच्चमाहु।
मा वो धनं तं अहु देवराज,
यं भोगहेतु विजहेमु सद्धं॥१॥
येन एको रथो याति याति तेन परो रथो,
पोराणं निहितं वट्टं वत्ततञ्ञेव वासव॥२॥
यदि हेस्सति दस्साम असन्ते किं ददामसे,
एवं भूतापि दस्साम मा दानं पमदाम्हसे॥३॥

[हे सहस्रनेत्र ! दरिद्रता को प्राप्त हुए आर्य के लिये भी यह उचित नहीं कि वह अनार्य-कर्म करे। हे देवराज ! जिस धन को भोगने के लिये (दान) श्रद्धा का त्याग करना पड़े, वह धन ही न रहे ॥१॥ जिस (मार्ग) से एक रथ जाता है, उसीसे दूसरा रथ जाता है। हे वासव ! यह पुराना (दान का) रास्ता चलता ही रहे ॥२॥ जब तक पास होगा देंगे, न होने पर क्या देंगे ? ऐसी अवस्था होने पर भी देंगे। दान में प्रमादी न बनाइये।]

शक्र जब उसे रोक न सका, तो पूछा—दान किस लिये देता है ?

"न शक्रत्व की इच्छा है, न ब्रह्मत्व की, मैं तो सर्वज्ञता की प्रार्थना करता हुआ दान देता हूँ।"

शक्र ने उसकी बात सुन प्रसन्न हो उसकी पीठ पर हाथ फेरा। बोधि-सत्व का शरीर उसी क्षण भोजन खाये हुए के शरीर की भाँति भर गया। शक्र के प्रताप से उसका सारा धन भी पूर्ववत् हो गया। तब शक्र उसे अपरिमित धन दे और दान देने के लिये प्रेरितकर अपने निवासस्थान को गया। वह कहता गया—महासेठ ! अब से तू प्रति दिन बारह बारह हजार का दान दे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय सेठ की भार्य्या राहुल-माता थी। विसय्ह तो मैं ही था।

चौथा परिच्छेद

५. चूलकुणाल वर्ग

३४१. किन्नरी जातक

"नरानमारामकरासु..." इस जातक की विस्तृत कथा कुणाल जातक[1] में आयेगी।

३४२. वानर जातक

"असक्खिं वत अत्तानं..." यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के बध करने के प्रयत्न के बारे में कही। कथा पूर्व में आ ही चुकी है[2]।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में बन्दर की योनि में पैदा हो, बड़े होने पर गङ्गा-तट पर रहने लगा।

तब गङ्गा में रहने वाली एक मगरमच्छनी ने बोधिसत्व का हृदय-मांस खाने का दोहद उत्पन्न कर मगरमच्छ से कहा। उसने उस बन्दर को पानी में डुबा, मार, हृदय-मांस मगरमच्छनी को देने का विचार कर बोधिसत्व से कहा—मित्र, आ द्वीप में आम खाने चलें।

---

१. कुणाल जातक (५३६)। २. सुंसुमार जातक (२०८), वानरेन्द्र जातक (५७)।

"मैं कैसे जा सकूँगा ?"

"तुझे अपनी पीठ पर बिठा कर ले जाऊँगा ।"

वह उसके मन की बात न जानने के कारण उछलकर पीठ पर जा बैठा । मगरमच्छ ने थोड़ी दूर जा डुबकी लगाना आरम्भ किया ।

बन्दर ने उसे पूछा—भो ! क्यों मुझे पानी में डुबाते हो ?

"मैं तुझे मार कर तेरा हृदय-मांस अपनी भार्य्या को दूँगा ।"

"तू भी मूर्ख है जो समझता है कि मेरा हृदय-मांस मेरी छाती में है ।"

"तो तूने कहाँ रखा है !"

"उस गूलर के पेड़ पर लटकता हुआ नहीं दिखाई देता ?"

"देखता हूँ, लेकिन तू मुझे देगा ।"

"हाँ, दूँगा ।"

मगरमच्छ जड़-बुद्धि होने के कारण उसे ले नदी-तट पर गूलर के वृक्ष के नीचे पहुँचा । बोधिसत्व ने उसकी पीठ पर से छलांग मार गूलर के पेड़ पर बैठ ये गाथायें कहीं :—

> **असक्खि वत अत्तानं उद्धातुं उदका थलं,**
> **नदानाहं पुन तुय्हं वसं गच्छामि वारिज ॥१॥**
> **अलमेतेहि अम्बेहि जम्बूहि पणसेहि च,**
> **यानि पारं समुद्दस्स वरं मय्हं उदुम्बरो ॥२॥**
> **यो च उप्पतितं अत्थं न खिप्पमनुबुज्झति,**
> **अमित्तवसमन्वेति पच्छा च अनुतप्पति ॥३॥**
> **यो च उप्पतितं अत्थं खिप्पमेव निबोधति,**
> **मुच्चते सत्तुसम्बाधा न च पच्छानुतप्पति ॥४॥**

[हे मगरमच्छ ! मैं अपने आप को पानी से स्थल पर लाकर बचा सका हूँ अब मैं फिर तेरे वश में नहीं आऊँगा ॥१॥ जो आम, जामुन तथा पणस समुद्र (गङ्गा) पार हैं उनकी मुझे अपेक्षा नहीं । मेरे लिये गूलर ही अच्छा है ॥२॥ जो किसी बात के पैदा होने पर उसे शीघ्र ही नहीं समझ लेता है, वह शत्रु के वशी-भूत हो पीछे अनुताप को प्राप्त होता है ॥३॥ जो किसी बात के पैदा होने पर उसे शीघ्र ही समझ लेता है, वह शत्रु के हाथ से बच निकलता है और उसे पीछे पछताना नहीं होता ॥४॥]

इस प्रकार इन चार गाथाओं द्वारा उसने लौकिक-कृत्यों की सफलता का कारण कहा और फिर वन-खण्ड को ही चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मगरमच्छ देवदत्त था। बन्दर तो मैं ही था।

२४३. कुन्तिनी जातक

"अवसिह्या यवागारे..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल नरेश के घर में रहने वाले एक क्रौञ्च-पक्षी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह राजा की दूतिनी थी। दो उसके बच्चे भी थे। राजा ने उसे सन्देसा देकर एक राजा के पास भेजा। उसके चले जाने पर राज-कुल के बच्चों ने उन बच्चों को हाथों से मसलकर मार डाला। उसने आकर उन्हें मरा देख, पूछा—मेरे बच्चों को किसने मार डाला?

"अमुक ने, और अमुक ने।"

उस समय राजकुल में एक पोसा हुआ व्याघ्र था, कठोर, परुष, बंधा हुआ ही रहता। वे बच्चे उसे देखने गये। वह भी उनके साथ साथ गई और यह सोच कि जैसे इन्होंने मेरे बच्चे मार डाले, मैं भी वैसा ही करूँगी; उसने उन बच्चों को व्याघ्र के सामने फेंक दिया। व्याघ्र ने तोड़ मरोड़ खा डाला। वह अब मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया, सोच, उड़कर हिमालय को चली गई। इस बात को सुन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात-चीत चलाई—आयुष्मानो! राजकुल में क्रौञ्च-पक्षी, जिन्होंने उसके बच्चे मारे उन बच्चों को व्याघ्र के पैरों में फेंक हिमालय गई। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, केवल अभी नहीं। पहले भी यह अपने बच्चों को मारने वाले लड़कों को व्याघ्र के सामने फेंक हिमालय ही चली गई थी।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में बोधिसत्व धर्मानुसार न्याय से राज्य करते थे। उसके घर में एक क्रौञ्च-पक्षी सन्देश ले जाने वाली थी। (सभी पूर्व सदृश हाँ, यह विशेष बात है) उसने बच्चों को मरवा डालने के बाद सोचा—अब मैं यहाँ नहीं रह सकती हूँ। जाऊँगी। राजा को बिना सूचित किये ही जाऊंगी। लेकिन उसने (फिर) सोचा राजा को कहकर ही जाऊँगी। वह राजा के पास जा, एक ओर खड़ी होकर बोली:—

"स्वामी! तुम्हारी ला-परवाही से लड़कों ने मेरे बच्चे मार दिये। मैंने भी क्रोध के वशीभूत हो उन बच्चों को मरवा डाला। अब मैं यहाँ नहीं रह सकती।"

उसने पहली गाथा कही—

अवसिम्हा तवागारे निच्चं सक्कतपूजिता,
त्वमेवदानिमकरि हन्द राज वजाम्हं ॥१॥

[तेरे घर में नित्य सत्कृत तथा पूजित होकर रही। अब तू ही मेरे जाने का कारण हुआ। हन्त! राजन! अब मैं जाती हूँ।]

राजा ने दूसरी गाथा कही:—

यो वे कते पटिकते किब्बिसे पटिकिब्बिसे,
एवन्तं सम्मति वेरं वस कुन्तिनी मा गम ॥२॥

[जो समझता है कि बुरे कर्म के बदले में बुरा कर्म किया गया है, उसका वैर शान्त हो जाता है। हे क्रौञ्च-पक्षी रह। मत जा।]

यह सुन क्रौञ्च-पक्षी ने तीसरी गाथा कही—

न कतस्स च कत्ता च मेत्ति सन्धीयते पुन,
हदयं नानुजानाति गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥३॥

[दोषी तथा जिसके प्रति दोष किया गया है, उनकी फिर मैत्री नहीं होती। राजन्! अब मेरा दिल रहने की आज्ञा नहीं देता। मैं जाती ही हूँ।]

यह सुन राजा ने चौथी गाथा कहीः—

कतस्स चेव कत्ता च मेत्ति सन्धीयते पुन,
धीरानं नो च बालानं वस कुन्तिनी मा गम ॥४॥

[दोषी तथा जिसके प्रति दोष किया गया है, उनकी फिर भी मैत्री हो जाती है—किन्तु धीर पुरुषों की, मूर्खों की नहीं। हे क्रौञ्च-पक्षी ! रह। मत जा।]

ऐसा होने पर भी 'स्वामी ! मैं यहाँ नहीं रह सकती' कह राजा को प्रणाम कर वह उड़कर हिमालय को ही चली गई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय जो क्रौञ्च पक्षी, वही इस समय क्रौञ्च-पक्षी। वाराणसी, राजा तो मैं ही था।

३४४. अम्ब जातक

"यो नीलियं मण्डयति···" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक आम-रक्षक स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह वृद्धावस्था होने पर प्रव्रजित हो जेतवन की सीमा पर आम्रवन में पर्णकुटी बनाकर आमों की रखवाली करता हुआ रहता था। गिरे हुए पके आमों को खाता और अपने परिचित मनुष्यों को भी देता। उसके भिक्षाटन के समय आम-चोर आमों को गिरा खाते और ले जाते। उस समय चार सेठ लड़कियाँ अचिरवती में स्नान कर घूमती घामती उसके आम्रवन में चली आईं। बूढ़े ने आकर उन्हें देख कहा—तुम मेरे आम खा गईं।

"भन्ते ! हम अभी आई हैं। हम ने तुम्हारे आम नहीं खाये।"

"तो कसम खाओ।"

"भन्ते ! कसम खाती हैं।"

वृद्ध ने उनसे कसम खिलवा, लज्जित कर विदा किया। उसकी यह करतूत सुन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात-चीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक वृद्ध ने अपने निवासस्थान आम्रवन में आई सेठ लड़कियों को कसम खिलवा, लज्जित कर विदा किया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

"अमुक बातचीत।"

"न केवल अभी भिक्षुओ ! इसने पहले भी आम्र-रक्षक हो, सेठ की लड़कियों से कसम खिलवा, उन्हें लज्जित कर विदा किया है।"

यह कह पूर्व-जन्म की कथा कहीः—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व शक्रत्व को प्राप्त हुये थे। उस समय एक दुष्ट जटाधारी वाराणसी के पास नदी के किनारे आम्रवन में पर्णकुटी बना कर आमों की रखवाली करता हुआ रहता था। वह गिरे पक्के आमों को खाता, सम्बन्धी मनुष्यों को देता, तथा नाना प्रकार की मिथ्या-जीविकाओं से जीविका चलाता था। उस समय देवराज शक्र लोक में यह देख रहा था कि कौन हैं जो माता-पिता की सेवा करते हैं, कौन हैं जो बड़ों का आदर करते हैं, कौन हैं जो दान देते हैं, कौन हैं जो शील की रक्षा करते हैं, कौन हैं जो उपोसथ-व्रत करते हैं, कौन हैं जो प्रव्रजित हो श्रमण-धर्म का ठीक-ठीक पालन करते हैं, तथा कौन हैं जो दुराचारी हैं ? इस प्रकार देखते हुए उसने इस आमों की रखवाली करने वाले दुराचारी, जटाधारी को देखा। और सोचा कि यह दुष्ट जटिल योगाभ्यास आदि अपने श्रमण-धर्म को छोड़ आम्र-वन की रखवाली करता रहता है। इसे धमकाऊँगा। उसने जिस समय वह भिक्षार्थ गाँव में गया था अपने प्रताप से आमों को गिराकर ऐसा कर दिया मानों चोर लूट ले गये हों।

उस समय वाराणसी से चार सेठ की लड़कियाँ उस आम्र-वन में घुसीं। दुष्ट तपस्वी ने उन्हें देख रोका—तुमने मेरे आम खाये हैं ?

"भन्ते, हम अभी आई हैं। तुम्हारे आम नहीं खाए।"

"तो कसम खाओ।"

"कसम खाने से जा सकेंगी ?"

"हाँ जा सकोगी।"

"अच्छा भन्ते" कह उनमें से ज्येष्ठ ने कसम खाते हुए पहली गाथा कही—

यो नीलियं मण्डयति सण्डासेन-विहञ्ञति,
तस्स सा वसमन्वेतु या ते अम्बे अवाहरि ॥१॥

[जो (सफेद बालों को) काले करता है और जो (सफेद बालों को) चिमटी से (उखाड़ता हुआ) कष्ट पाता है; जिसने तुम्हारे आम लिए हों उसे वैसा पति मिले।]

तपस्वी ने 'तू एक ओर खड़ी रह' दूसरी सेठ की लड़की से कसम खिलवाई। उसने कसम खाते हुए दूसरी गाथा कही:—

वीसं वा पञ्चवीसं वा ऊनतिंसंव जातिया,
तादिसा पतिमालद्धा या ते अम्बे अवाहरि ॥२॥

[बीस, पच्चीस या उनत्तीस वर्ष की ही होने पर उसे पति मिले जिसने तेरे आम लिए हों।]

उसके भी कसम खाकर एक ओर खड़ी होने पर तीसरी ने तीसरी गाथा कही:—

दीघं गच्छतु अद्धानं एकिका अभिसारिका,
सङ्केते पतिमाद्दस या ते अम्बे अवाहरि ॥३॥

[वह अभिसारिका बड़ी दूरी तक अकेली जाये और जिस जगह संकेत किया हो वहाँ उसे पति न मिले जिसने तेरे आम लिए हों।]

उसके भी कसम खाकर एक ओर खड़ी होने पर चौथी ने चौथी गाथा कही:—

अलङ्कता सुवसना मालिनी चन्दनुस्सदा,
एकिका सयने सेतु या ते अम्बे अवाहरि ॥४॥

[अलंकृत हो, अच्छे वस्त्र पहन, माला धारण कर तथा चन्दन का लेप कर वह अकेली शय्या पर सोये जिसने तेरे आम लिए हों।]

तपस्वी ने उन्हें छोड़ दिया—तुमने बहुत भारी भारी कसमें खाई हैं। आम दूसरों ने खाये होंगे अब जाओ। शक्र ने भैरव-रूप दिखा दुष्ट तपस्वी को वहाँ से भगाया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय दुष्ट तपस्वी यह आम की रखवाली करने वाला बूढ़ा था। चारों सेठ की लड़कियाँ यही थीं। देवराज शक्र तो मैं ही था।

३४५. गजकुम्भ जातक

"वनं यदग्गि दहति..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक आलसी भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्तीवासी कुलपुत्र (बुद्ध-) शासन में हृदय से प्रव्रजित होकर भी आलसी था। (बुद्धवचन का) पाठ करने में, जिज्ञासा में, उचित रूप से सोचने में, तथा कर्त्तव्य पालन में (सीमा से) बाहर था। वह नीवरणों (चित्त-मलों) से अभिभूत था और बैठने उठने आदि में जहाँ का तहाँ रहता था। उसके उस आलसीपन के बारे में धर्मसभा में बातचीत चली—आयुष्मानो, अमुक भिक्षु इस प्रकार के कल्याणकारी (बुद्ध) शासन में प्रव्रजित होकर भी आलसी बन, नीवरणों से युक्त हो विचरता है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

"अमुक बातचीत।"

"न केवल अभी भिक्षुओ, यह पहले भी आलसी ही था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसका मन्त्री-रत्न था। वाराणसी राजा आलसी था। बोधिसत्व उसको शिक्षा देने के उद्देश्य से एक उपमा की खोज में थे।

एक दिन राजा अमात्यों सहित उद्यान में विहार कर रहा था। उस समय उसने एक गजकुम्भ नामक आलसी (जन्तु) देखा। उस प्रकार के आलसी (जन्तु) सारा दिन चलते रहने पर भी एक दो अङ्गुल मात्र जाते हैं। राजा ने उसे देख बोधिसत्व से पूछा—मित्र! यह कौन जन्तु है?

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—महाराज! यह गजकुम्भ नाम का आलसी (जन्तु) है। इस तरह का आलसी (जन्तु) सारे दिन चलते रहने पर भी एक दो अङ्गुल मात्र जाता है।

फिर बोधिसत्व ने उस गजकुम्भ से बात करते हुए पूछा—भो गज-कुम्भ! तुम्हारी चाल इतनी सुस्त है, इस जंगल में दावानल उठने पर क्या करोगे? और पहली गाथा कही:—

वनं यदग्गि दहति पावको कण्हवत्तनी,
कथं करोसि पचलक एवं दन्धपरक्कमो ॥१॥

[हे पचलक! तू इस प्रकार मन्द पराक्रमी है। वन को जो आग = पावक = कृष्णवर्तनी जला देती है, उसके लगने पर तू कैसे करेगा?]

यह सुन गजकुम्भ ने दूसरी गाथा कही—

बहूनि रुक्खछिद्दानि पठव्या विवरानि च,
तानि च नाभिसम्भोम होति नो कालपरियायो ॥२॥

[बहुत से वृक्ष-छिद्र हैं तथा पृथ्वी में विवर हैं। यदि उन तक न पहुँचें, तो मरण हो।]

इसे सुन बोधिसत्व ने शेष दो गाथायें कहीं:—

यो दन्धकाले तरति तरणीये च दन्धति,
सुक्खपण्णंव अक्कम्म अत्थं भञ्जति अत्तनो ॥३॥
यो दन्धकाले दन्धेति तरणीये च तारयि,
ससीव रत्तिं विभजं तस्सत्थो परिपूरति ॥४॥

[जो शनैः शनैः काम करने के समय पर जल्दबाजी करता है, और शीघ्रता करने के समय पर आलस्य करता है, वह अपने अर्थ को उसी प्रकार चूर्ण-विचूर्ण कर नष्ट कर देता है जैसे कोई सूखे पत्तों को पैर के नीचे दबाकर (चूर्ण-विचूर्ण कर देता है)। जो शनैः शनैः करने के समय शनैः शनैः करता है और शीघ्रता करने के समय शीघ्रता करता है, उसका अर्थ उसी प्रकार पूर्णता को प्राप्त होता है जैसे (शुक्ल-पक्ष की) रात को (कृष्णपक्ष की रात से) पृथक करता हुआ चन्द्रमा पूर्णता को प्राप्त होता है।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गजकुम्भ आलसी भिक्षु था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

३४६. केसव जातक

"मनुस्सिन्दं जहित्वान..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय विश्वस्त-भोजन के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथ पिण्डिक के घर पाँच सौ भिक्षुओं का नित्य का भोजन बंधा था। उसका घर क्या था भिक्षुओं की इच्छा-पूर्ति का स्रोत था, नित्य काषाय वस्त्र से प्रज्वलित रहता और ऋषियों की हवा बहती रहती।

एक दिन राजा ने नगर की प्रदक्षिणा करते समय सेठ के घर भिक्षु-संघ को देखकर सोचा—मैं भी आर्यसंघ को नित्य भोजन कराऊँगा। उसने विहार जा, शास्ता को प्रणाम कर पाँच सौ भिक्षुओं को नित्य भोजन दिया जाना निश्चित किया। उस समय से राजा के महल में नित्य भिक्षा दी जाने लगी। तीन वर्ष के पुराने सुगन्धित शाली धान का भात होता, किन्तु विश्वास से, स्नेह से अपने हाथ से परोसने वाले न थे। राजा के अफसर दिलाते थे। भिक्षु बैठकर खाना न चाहते थे। नाना प्रकार का श्रेष्ठ भोजन ले, अपने

अपने सेवकों के घर पहुँच, वह उन्हें दे और उनका दिया हुआ रूखा वा सूखा जैसा मिलता वैसा भोजन करते। एक दिन राजा के लिये बहुत से फलाफल लाये गये। राजा ने कहा—भिक्षुसंघ को दो। भिक्षुओं ने दानशाला में पहुँच एक भिक्षु को भी नहीं देखा। उन्होंने राजा से कहा—एक भिक्षु भी नहीं है।

"अभी तो समय है न?"

"हाँ समय है। लेकिन भिक्षु तुम्हारे घर से भोजन ले जाकर अपने विश्वस्त सेवकों के घरों पर जा, वह भोजन उन्हें दे और उनका दिया हुआ रुखा-सूखा वा श्रेष्ठ जैसा मिला वैसा भोजन ग्रहण करते हैं।"

राजा ने सोचा—हमारा भोजन बढ़िया होता है। किस कारण से उसे न ग्रहण कर दूसरा ग्रहण करते हैं? शास्ता से पूछूँगा। उसने विहार जा शास्ता को प्रणाम करके पूछा।

शास्ता ने उत्तर दिया—महाराज, भोजन में विश्वास ही बड़ी चीज है। तुम्हारे घर विश्वास उत्पन्न कर, स्नेह पूर्वक भिक्षा देने वालों के न होने से भिक्षु भोजन ले जाकर अपनी अपनी विश्वस्त-जगह पर खाते हैं। महाराज, विश्वास के समान दूसरा रस नहीं है। अविश्वासी का दिया हुआ चार प्रकार का मधुर-रस विश्वासी के दिये हुए तक्र की भी बराबरी नहीं करता। पुराने पण्डितों ने रोग उत्पन्न होने पर राजा द्वारा पाँच वैद्यकुलों की औषधि कराने पर भी स्वस्थ न हो, विश्वस्त जनों के पास जा, बिना नमक का सामाक-नीवार तथा यवागु और बिना नमक के ही पानी में उबाले पत्ते खाकर स्वास्थ्य लाभ किया है।

फिर उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशीराष्ट्र में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। उसका नाम रक्खा गया कल्प कुमार। वह बड़ा होने पर तक्षशिला जा सब विद्यायें सीख आगे चलकर ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुआ। उस समय केशव नामक तपस्वी पाँच सौ तपस्वियों का शास्ता बन हिमालय में रहता था। बोधिसत्व उसके पास जाकर

पाँच सौ शिष्यों में प्रधान शिष्य हो रहने लगा। केशव तपस्वी का आशय मैत्री तथा स्नेह-पूर्ण था। वे परस्पर अति विश्वासी हो गये।

आगे चलकर उन तपस्वियों सहित केशव तपस्वी नमक-खटाई खाने के लिए बस्ती आया। वह वाराणसी पहुँच, राजोद्यान में रह अगले दिन भिक्षार्थ नगर में प्रविष्ट हो राज-द्वार पर पहुँचा। राजा ने ऋषि-गण को देख, बुला, महल के अन्दर भोजन करा, वचन ले, उद्यान में बसाया। वर्षा ऋतु की समाप्ति पर केशव तपस्वीने राजा से विदा चाही। राजा बोला—भन्ते आप वृद्ध हैं, अभी हमारे पास रहें। तरुण तपस्वियों को हिमालय भेज दें।

उसने अच्छा कह स्वीकार किया और प्रधान-शिष्य के साथ उन तपस्वियों को हिमालय भेज स्वयं अकेला रह गया। कल्प भी हिमालय जा तपस्वियों के साथ रहने लगा। केशव बिना कल्प के रहता हुआ उद्विग्न रहने लगा। उसे देखने की इच्छा से उसे नींद न आती। नींद न आने से भोजन ठीक-ठीक न पचता। खून के जुलाब लग गये। तीव्र वेदना होने लगी।

राजा ने पाँच वैद्य परिवारों को ले तपस्वी की सेवा की।

रोग शान्त नहीं होता था। केशव ने राजा से पूछा—

"क्या चाहते हो मैं मर जाऊँ अथवा स्वस्थ हो जाऊँ ?"

"भन्ते ! स्वस्थ होना।"

"तो मुझे हिमालय भेजें।"

"भन्ते, अच्छा' कह राजा ने नारद नाम के अमात्य को बुलाकर कहा—"नारद ! हमारे भदन्त को ले वनचरों के साथ हिमालय जाओ।"

नारद उसे वहाँ पहुँचाकर लौट आया। केशव ने भी ज्यों ही कल्प को देखा, उसका चैतसिक-रोग शान्त हो गया और उद्विग्नता जाती रही। कल्प ने उसे बिना नमक के, बिना छौंके, केवल पानी में उबले पत्तों के साथ सामाक-नीवार-यवागु दिया। उसी क्षण उसके खून के जुलाब बन्द हो गये। राजा ने फिर नारद को भेजा—जा केशव तपस्वी का समाचार ला। उसने जा उसे स्वस्थ देख पूछा—भन्ते ! वाराणसी नरेश पाँच वैद्य-परिवारों को लेकर आप की सेवा-सूश्रूषा करता हुआ भी आपको स्वस्थ न कर सका। कल्प ने आपकी सेवा-सूश्रूषा कैसे की ?

यह पूछते हुए उसने पहली गाथा कही—

मनुस्सिन्दं जहित्वान सब्बकामसमिद्धिनं,
कथं नु भगवा केसी कप्पस्स रमति अस्समे ॥१॥

[सब कामनाओं के पूरा करने में समर्थ राजा को छोड़कर भगवान् केशव कल्प के आश्रम में कैसे रमण करते हैं ?]

इस प्रकार दूसरे से बातचीत करते हुए की तरह केशव के मन लगने का कारण पूछा। केशव ने दूसरी गाथा कही :—

साधूनि रमणीयानि सन्ति रुक्खा मनोरमा,
सुभासितानि कप्पस्स नारद रमयन्तिमं ॥२॥

[सुन्दर, रमणीय तथा मनोहर वृक्ष हैं। और हे नारद ! कल्प के सुभाषित (वचन) मेरे मन को लगाये हैं।]

इतना कहकर यह भी कहा कि कल्प ने मुझे बिना नमकके बिना छौंके, केवल पानी में उबले पत्तों के साथ सामाक-नीवार यवागु पिलाया। उसी से मेरा रोग शान्त हुआ और मैं निरोग हो गया। इसे सुन नारद ने तीसरी गाथा कही :—

सालीनं ओदनं भुञ्जे सुचिमंसूपसेचनं,
कथं सामाकनीवारं अलोणं छादयन्ति तं ॥३॥

[तुम शुद्ध मांस के साथ शाली का भात खाते थे। तुम्हें बिना नमक का सामाक-नीवार कैसे अच्छा लगा ?]

इसे सुन के सब ने चौथी गाथा कही—

सादुं वा यदि वासादुं अप्पं वा यदि वा बहुं,
विस्सट्ठो यत्थ भुञ्जेय्य विस्सासपरमा रसा ॥४॥

[स्वादु हो अथवा अस्वादु, थोड़ा हो या बहुत, विश्वस्त होकर जहां खाया जाता है (वही अच्छा लगता है)। रसों में विश्वास ही प्रधान है।]

नारद ने उसकी बात सुन राजा के पास जाकर कहा कि केशव ऐसा कहता है।

शास्ता ने धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया ! उस समय राजा आनन्द था। नारद सारिपुत्र। केशव बक-महाब्रह्मा। कल्प तो मैं ही था।

३४७. अयकूट जातक

"सब्बायसं कूटं......" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय लोकोपकार के बारे में कही। (वर्तमान) कथा महाकण्ह जातक[1] में आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में गर्भ धारण किया। बड़े होने पर शिल्प सीख, पिता के मरने पर, राजा हो, धर्म से तथा न्याय से राज्य करने लगे।

उस समय मनुष्य देव-पूजक होने के कारण अनेक भेड़ बकरियों को मार देवताओं को बलि चढ़ाते थे। बोधिसत्व ने मुनादी कराई कि प्राणियों की हत्या न की जाय। यक्षों को बलि न मिली तो वह बोधिसत्व पर बिगड़े। उन्होंने हिमालय में सभा कर एक यक्ष को बोधिसत्व की हत्या करने के लिये भेजा। वह बल्ली जितना बड़ा जलता हुआ लोहे का टुकड़ा ले, आकर आधीरात के बाद बोधिसत्व की शैय्या के सिर पर खड़ा हो गया कि इसके प्रहार से मारूंगा। उस समय शक्र का आसन गर्म हुआ। उसने विचार करने पर वह बात मालूम की और इन्द्रवज्र ले आकर यक्ष के ऊपर खड़ा हो गया। बोधिसत्व ने यक्ष को देख, यह जानने के लिये कि यह मेरी रक्षा करने के लिये खड़ा है, अथवा मुझे मारने के लिये, उससे बात करते हुए पहली गाथा कही —

> **सब्बायसं कूटमतिप्पमाणं**
> **पग्गय्ह यो तिट्ठसि अन्तलिक्खे,**
> **रक्खाय मं त्वं विहितोनुअज्ज**
> **उदाहु मे वायमसे वधाय ॥१॥**

---

[1] महाकण्ह जातक (४६९)

[बड़े अयस-कूट को लेकर जो तू अन्तरिक्ष में खड़ा है सो तू आज मेरी रक्षा के लिये तैयार है अथवा मुझे मारने के लिये ?]

बोधिसत्व यक्ष को ही देखते थे, शक्र को नहीं। लेकिन यक्ष शक्र के भय से बोधिसत्व पर प्रहार नहीं कर सकता था। उसने बोधिसत्व की बात सुन उत्तर दिया—महाराज ! मैं तुम्हारी रक्षा के लिये नहीं हूँ किन्तु इस ज्वलित अयस-कूट के प्रहार से तुम्हें मारने के लिये आया हूँ। शक्र के भय से तुम्हें नहीं मार सकता हूँ। यही बात प्रकट करते हुए उसने दूसरी गाथा कही—

दूतो अहं राजिध रक्खसानं
वधाय तुय्हं पहितोहमस्मि,
इन्दो च तं रक्खति देवराजा
तेनुत्तमङ्गं न ते फालयामि ॥२॥

[हे राजन् ! मैं राक्षसों का दूत हूँ और तुम्हारे बध के लिये भेजा गया हूँ। लेकिन देवराज इन्द्र तुम्हारी रक्षा कर रहा है। इसी से मैं तुम्हारा सिर नहीं फाड़ डाल रहा हूँ।]

यह सुन बोधिसत्व ने शेष दो गाथायें कही

सचे च मं रक्खति देवराजा
देवानमिन्दो मघवा सुजम्पति,
कामं पिसाचा विनदन्तु सब्बे
न सन्तसे रक्खसिया पजाय ॥३॥
कामं कन्दन्तु कुम्भण्डा सब्बे पंसुपिसाचका,
नालं पिसाचा युद्धाय महती सा विभिंसिका ॥४॥

[यदि देवराज, देवेन्द्र, मघवा, सुजम्पति मेरी रक्षा करता है तो फिर चाहे सभी पिशाच निनाद करें, राक्षसी प्रजा से मुझे डर नहीं ॥३॥ चाहे सारे कुम्भण्ड (राक्षस) तथा पशु-पिशाच क्रन्दन करें उनकी विभीषिका बड़ी होने पर भी वे युद्ध के लिये समर्थ नहीं हैं।]

शक्र ने यक्ष को भगाकर महासत्व को उपदेश दिया—महाराज डरें नहीं। अब से आपकी रक्षा का भार मुझ पर है। यह कह वह अपने स्थान को गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शक्र अनुरुद्ध था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

३४८. अरञ्ञ जातक

"अरञ्ञा गाममागम्म..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय प्रौढ़ कुमारी के साथ आसक्ति के बारे में कही। (वर्तमान) कथा चुल्ल-नारद कस्सप जातक[1] में आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने ब्राह्मण-कुल में जन्म लिया। बड़े होने पर तक्षशिला में शिल्प सीख, भार्य्या के मरने पर पुत्र सहित ऋषि-प्रव्रज्या ली। वह हिमालय में रहते समय पुत्र को आश्रम में छोड़ फल-मूल के लिये जाता।

उस समय चोरों ने सीमा पर के गांवों को लूटा था और वे बन्दियों को लिये जा रहे थे। एक कुमारी भाग कर उस आश्रम में पहुँची। उसने तपस्वी-कुमार को आकर्षित कर उसका शील नष्ट कर कहा—आ चलें।

"मेरा पिता आ जाये, उससे आज्ञा लेकर जाऊँगा।"

"तो आज्ञा लेकर आ" कह वह निकल कर रास्ते में बैठी। तपस्वी-कुमार ने पिता के आने पर पहली गाथा कही—

अरञ्ञा गाममागम्म किं सीलं किं वतं अहं,
पुरिसं तात सेवेय्यं तं मे अक्खाहि पुच्छितो ॥१॥

[तात ! अरण्य से बस्ती में जाने पर मैं किस शील, किस व्रत वाले पुरुष की संगति करूँ ? मैं पूछता हूँ, कहें।]

---

[1] चुल्ल-नारद कस्सप जातक (४७७)

उसके पिता ने उपदेश देते हुए तीन गाथायें कहीं—

यो तं विस्सासये तात विस्सासञ्च खमेय्यते,
सुस्सूसीच तितिक्खी च तं भजेहि इतोगतो ॥२॥
यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कटं,
ओरसीव पतिट्ठाय तं भजे हि इतो गतो ॥३॥
हलिद्दरागं कपिचित्तं पुरिसं रागविरागिनं,
तादिसं तात मा सेवि निम्मनुस्सम्पिचेसिया ॥४॥

[जो तेरा विश्वास करे और जिसका तू विश्वास कर सके, जो तेरी बात सुनना चाहे और तेरे दोष को सहन कर सके, यहाँ से जाने पर ऐसे पुरुष की संगत करना ॥२॥ जो काय, वाणी तथा मन से दुष्कर्म न करता हो, जो औरस-पुत्र की तरह प्रतिष्ठित हो, यहाँ से जाने पर ऐसे पुरुष की संगत करना ॥३॥ हे तात ! चाहे कोई मनुष्य न भी मिले तो भी जो हल्दी के रंग की तरह अस्थिर हो, जिसका चित्त बन्दर के चित्त की तरह चञ्चल हो, जो थोड़ी देर में रागी और थोड़ी ही देर में विरागी होता हो, ऐसे पुरुष की संगति मत करना ॥४॥]

यह सुन तपस्वी-कुमार रुक गया, बोला—तात ! इन गुणों से युक्त पुरुष मुझे कहाँ मिलेगा। मैं नहीं जाऊँगा। तुम्हारे ही पास रहूँगा। उसके पिता ने उसे योग-विधि कही। दोनों ध्यान-प्राप्त हो ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पुत्र और कुमारी ये ही थे। तपस्वी तो मैं ही था।

३४९. सन्धिभेद जातक

"नेव इत्थीसु सामञ्ञं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय चुगल-खोरी न करने की शिक्षा के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय शास्ता ने जब यह सुना कि षड्_वर्गीय भिक्षु चुगली खाते फिरते हैं तो उन्हें बुलवाकर पूछा—

"भिक्षुओ, क्या तुम सचमुच झगड़ते हुए, कलह करते हुए, विवाद करते हुए, भिक्षुओं की चुगली खाते फिरते हो? उससे नये अनुत्पन्न झगड़े पैदा हो जाते हैं, पैदा हुए झगड़े अधिक बढ़ जाते हैं?"

"हाँ सचमुच।"

भगवान् ने उनकी निन्दा करते हुए कहा—भिक्षुओ, चुगल-खोरी तीक्ष्ण शस्त्र-प्रहार जैसी होती है, उससे दृढ़ विश्वास भी शीघ्र टूट जाता है, और उसे लेकर आदमी वैसे ही अपनी मैत्री नष्ट कर देता है जैसे सिंह और बैलों की कथा में।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसका पुत्र होकर जन्मे। बड़े होने पर तक्षशिला में शिल्प ग्रहण कर पिता के मरने पर धर्मानुसार राज्य करने लगे।

उस समय एक ग्वाला जंगल में गौवें चराकर वापिस लौटते समय एक गाभिन गौ को भूल, उसे जंगल में छोड़ लौट आया। उसकी एक सिंहनी के साथ दोस्ती हो गई। वे दोनों पक्की दोस्त हो एक जगह चरती थीं। आगे चलकर गौ ने बछड़े को तथा सिंहनी ने शेर के बच्चे को जन्म दिया। वे दोनों कुलागत मैत्री के कारण पक्के दोस्त हो इकट्ठे रहते थे।

एक जंगली आदमी ने जंगल में दाखिल हो उनकी मैत्री देखी। जब उसने जंगल में पैदा हुआ सामान ले जाकर वाराणसी-राजा को दिया तो उसने पूछा—मित्र! तू ने जंगल में कोई आश्चर्य्य की बात देखी?

"देव! और तो कुछ नहीं देखा एक सिंह और एक बैल को परस्पर मित्र हो साथ चरते देखा है।"

"इन में तीसरा आ मिलने पर विपत्ति आएगी। जब इनमें किसी तीसरे को देखे तो मुझे कहना।"

"देव ! अच्छा।"

जंगली आदमी के वाराणसी जाने पर एक गीदड़ सिंह और बैल की सेवा में रहने लगा। जंगली आदमी ने जंगल में जा उन्हें देख सोचा कि मैं अब तीसरे के आ मिलने की बात राजा से कहूँगा। वह नगर को गया। गीदड़ ने सोचा—सिंह और बैल के मांस को छोड़ कर दूसरा कोई ऐसा मांस नहीं है जो मैंने न खाया हो। इनमें फूट डाल कर इनका माँस खाऊँगा। उसने 'यह तुझे ऐसा कहता है, और यह तुझे ऐसा कहता है' कह दोनों में परस्पर फूट डाल उन्हें ऐसा कर दिया कि शीघ्र ही लड़कर मर जायें।

जंगली आदमी ने आकर राजा को सूचना दी—देव ! उनमें तीसरा आ मिला है।

"वह कौन है ?"

"देव ! गीदड़ है"

'वह दोनों में फूट डाल उन्हें मार डालेगा। हम उनके मरने के समय पहुँचेंगे' कह राजा रथ पर चढ़ जंगली आदमी के बताए मार्ग से चलकर वहाँ उस समय पहुँचा जब वे परस्पर लड़कर मर चुके थे। गीदड़ प्रसन्न-चित्त हो एक बार सिंह का माँस खाता, एक बार बैल का माँस। राजा ने उन दोनों को मरे देख, रथ पर बैठे ही बैठे सारथी से बात-चीत करते हुए यह गाथाएँ कहीं—

नेव इत्थीसु सामञ्ञं नपि भक्खेसु सारथि,
अथस्स सन्धिभेदस्स पस्स याव सुचिन्तितं ॥१॥
असि तिक्खोव मंसम्हि पेसुञ्ञं परिवत्तति,
यत्थूसभञ्च सीहञ्च भक्खयन्ति मिगाधमा ॥२॥
इमं सो सयनं सेति ययिमं पस्ससि सारथि,
यो वाचं सन्धिभेदस्स पिसुणस्स निबोधति ॥३॥
ते जना सुखमेधन्ति नरा सग्गगतारिव,
ये वाचं सन्धिभेदस्स नावबोधन्ति सारथि ॥४॥

[न इनमें स्त्रियों की समानता है न भोजन की (इस प्रकार कलह का कोई भी कारण उपस्थित नहीं); इसलिये इस फूट डालने वाले की चतुराई देख। चुगल खोरी तेज तलवार की तरह मांस में घुसती है; इसीलिये अधम-पशु सिंह और वृषभ को खाते हैं। सारथी! जो आदमी चुगल-खोर फूट डालने वाले के वचन को सुनता है, वह यह जो तू देखता है इसी अवस्था को प्राप्त होता है। और हे सारथी! जो फूट डालने वाले चुगल खोर की वाणी की ओर ध्यान नहीं देते वह स्वर्ग-गामी आदमियों की तरह सुख से सोते हैं।]

राजा गाथायें कह सिंह के केसर, चर्म, नख, दाढ़ आदि लिवा नगर को गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा मैं ही था।

३५०. देवतापञ्ह जातक

"हन्ति हत्थेहि पादेहि......" यह देवता-प्रश्नावलि उम्मग्ग जातक[1] में आयेगी।

---

[1] उम्मग्ग जातक (५४६)।

पाँचवाँ परिच्छेद

१. मणिकुण्डल वर्ग

३५१. मणिकुण्डल जातक

"जीनो रथस्स मणिकुण्डले च......" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल-राज के अन्तःपुर के सर्वार्थसाधक दुष्ट अमात्य के बारे में कही। (वर्तमान) कथा पहले कह ही दी गई है।

लेकिन इस कथा में बोधिसत्व वाराणसी राजा था। दुष्ट अमात्य ने कोशल राज को ला काशी राष्ट्र को जितवा, वाराणसी नरेश को कैद करा कारागार में डलवाया। राजा ध्यानावस्थित हो आकाश में पालथी मार बैठा। चोर-राजा का शरीर जलने लगा। उसने वाराणसी नरेश के पास आ पहली गाथा कही—

> जीनो रथस्समणिकुण्डले च
> पुत्ते च दारेच तथेव जीनो,
> सब्बेसु भोगेसु असेसितेसु
> कस्मा न सन्तप्पसि सोककाले ॥१॥

[हे राजन ! तेरे रथ, अश्व, तथा मणि-कुण्डल जाते रहे और तू पुत्र-दारा से भी रहित हो गया। सभी अशेष भोगों के (जाते रहने पर भी) तू शोक के समय क्यों दुखी नहीं होता ?]

यह सुन बोधिसत्व ने ये दो गाथायें कहीं:—

> पुब्बेवमच्चं विजहन्ति भोगा।
> मच्चो वा ते पुब्बतरं जहाति,
> असस्सता भोगिनो कामकामि
> तस्मा न सोचामहं सोककाले ॥२॥
> उदेति आपूरति वेति चन्दो
> अत्थं तपेत्वान पलेति सूरियो,

विदिता मया सत्तुक लोकधम्मा
तस्मा न सोचामहं सोककाले ॥३॥

[हे कामकामि ! भोग ही आदमी को पहले ही त्याग देते हैं, अथवा आदमी ही उन्हें पहले ही छोड़ देता है। भोग भोगने वाले अनित्य हैं। इसलिये मैं (औरों के) शोक करने के समय भी शोक नहीं करता हूँ ॥२॥ हे शत्रुक ! चन्द्रमा उदय होता है, बढ़ता है (फिर क्षय को प्राप्त होता है) वा सूर्य्य भी संसार को तपाकर अस्त होता है, उसी तरह सभी लोकधर्मों को मैं ने (उदयास्त-स्वाभाव वाले) जाना है। इसलिये मैं शोक के समय शोक नहीं करता हूँ ॥३॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने चोर-राजा को धर्मोपदेश दे, फिर उसी की निन्दा करते हुए ये गाथायें कहीं:—

अलसो गिही कामभोगी न साधु
असञ्ञतो पब्बजितो न साधु,
राजा न साधु अनिसम्मकारी
यो पण्डितो कोधनो तं न साधु ॥४॥
निसम्म खत्तियो कयिरा नानिसम्म दिसम्पति,
निसम्मकारिनो रञ्ञो यसो कित्तिञ्च वड्ढति[1] ॥५॥

[आलसी गृहस्थ कामभोगी अच्छा नहीं। असंयमी साधु अच्छा नहीं। बिना विचारे करने वाला राजा अच्छा नहीं। जो पण्डित होकर क्रोध करे, वह भी अच्छा नहीं ॥४॥ क्षत्रिय को विचार कर करना चाहिये, राजा को विना विचारे नहीं करना चाहिये। विचार पूर्वक (काम) करने वाले राजा का यश और कीर्ति बढ़ती है ॥५॥]

चोर राजा बोधिसत्व से क्षमा माँग, (उसे) राज्य सौंप, स्वयं जनपद ही चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बिटाया। उस समय कोशल राजा आनन्द था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

---

[1] ये दोनों गाथायें पूर्वोक्त रथलट्ठि जातक (३३२) में आ चुकी हैं।

३५२. सुजात जातक

"किन्नुसन्तरमानोव..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक गृहस्थ के बारे में कही, जिसका पिता मर गया था।

क. वर्तमान कथा

वह पिता के मरने पर रोता पीटता फिरता था। शोक को रोक नहीं सकता था। शास्ता ने उसके स्रोतापत्ति-फल-प्राप्त होने की सम्भावना को देखा तो श्रावस्ती में भिक्षार्थ घूमते हुए एक श्रमण को साथ लिये उसके घर पहुँचे। वहाँ बिछे आसन पर बैठ, उस उपासक के प्रणाम कर बैठने पर पूछा—उपासक ! क्या सोच करता है ? "भन्ते ! हाँ" कहने पर "उपासक पुराने पण्डितों ने पण्डितों की बात सुन पिता के मरने पर चिन्ता नहीं की" कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व (एक) गृहस्थ के घर में पैदा हुए। उसका नाम रखा गया सुजात कुमार। उसके बड़े होने पर उसका पितामह मर गया। उसका पिता (अपने) पिता के मरने के बाद से शोकाकुल हो गया। उसने श्मशान जा, वहाँ से हड्डियाँ ला, अपने उद्यान में मिट्टी का स्तूप बनाया। उन हड्डियों को उस स्तूप में रखा। फिर समय असमय स्तूप की पुष्पों से पूजा करता, चैत्य के चारों ओर चक्कर काटता हुआ रोता-पीटता, न स्नान करता, न (चन्दनादि का) लेप करता, न खाता और न (खेती का) काम देखता।

यह देख बोधिसत्व ने सोचा कि अय्या के मरने के बाद से पिता शोकातुर है। मुझे छोड़ और कोई इसे नहीं समझा सकता। एक उपाय

से इसका शोक दूर करूँगा। उसने गाँव के बाहर एक मरा बैल देखा और घास-पानी ले उसके सामने कर 'खा खा, पी पी' कहने लगा। जो कोई आता उसे देख कहता—सुजात! क्या पगले हो? मरे हुए बैल को घास-पानी देते हो? वह कुछ उत्तर न देता। उन्होंने उसके पिता से जाकर कहा—तेरा पुत्र पगला गया है। मरे बैल को घास पानी देता है। यह सुन गृहस्थ का पितृ-शोक जाता रहा, उसकी जगह पुत्र-शोक उत्पन्न हो गया। उसने जल्दी जल्दी आकर पूछा—"तात सुजात! क्या तू पण्डित नहीं है? मरे बैल को घास पानी क्यों देता है?"

यह कह उसने दो गाथायें कहीं—

> किन्नु सन्तरमानोव लायित्वा हरितं तिणं,
> खाद खादाति विलपि गतसत्तं जरग्गवं ॥१॥
> नहि अन्नेन पानेन मतो गोणो समुट्ठहे,
> त्वञ्च तुच्छं विलपसि यथा तं दुम्मती तथा ॥२॥

[यह क्या जल्दबाज़ की तरह हरे-घास को लेकर निष्प्राण बूढ़े बैल के सामने 'खा खा' कह कर विलाप करता है? ॥१॥ अन्न से और पानी से मरा बैल नहीं जी उठता। तू मूर्ख की तरह बेकार विलाप करता है ॥२॥]

तब बोधिसत्व ने दो गाथायें कहीं—

> तथेव तिट्ठति सीसं हत्थपादा च वाळधि,
> सोता तथेव तिट्ठन्ति मञ्ञे गोणो समुट्ठहे ॥३॥
> नेवय्यकस्स सीसं वा हत्थपादा न दिस्सरे,
> रुदं मत्तिकथूपस्मिं ननु त्वञ्ञेव दुम्मती ॥४॥

[उसका सिर वैसे ही है, उसके हाथ-पाँव और पूँछ वैसी ही है तथा उसके कान भी वैसे ही है; इसलिये मैं सोचता हूँ कि (शायद) बैल (जी) उठे ॥३॥ लेकिन, अय्या का तो न सिर दिखाई देता है, न हाथ-पैर दिखाई देते हैं। क्या तू ही दुमर्ती नहीं है, जो उसे मिट्टी का स्तूप बना कर रोता है? ॥४॥]

यह सुन बोधिसत्व के पिता ने सोचा, मेरा पुत्र पण्डित है, इहलोक-कृत्य तथा परलोक-कृत्य दोनों जानता है। मुझे समझाने के लिये ही उसने यह कर्म किया है। वह बोला—तात सुजात पण्डित! मैं समझ गया कि

सभी संस्कार अनित्य हैं। पिता का शोक हरण करने वाले पुत्र को ऐसा ही होना चाहिये। यह कह पुत्र की प्रशंसा करते हुए कहा—

आदित्तं वत मं सन्तं घतसित्तंव पावकं,
वारिना विय ओसिञ्चं सब्बं निब्बापये दरं ॥
अब्बूळहं वत मे सल्लं सोकं हदयनिस्सितं,
यो मे सोकपरेतस्स पितुसोकं अपानुदि ॥
सोहं अब्बूळहसल्लोस्मि वीतसोको अनाविलो
न सोचामि न रोदामि तव सुत्वान माणव ॥
एवं करोन्ति सप्पञ्ञा ये होन्ति अनुकम्पका,
विनिवत्तयन्ति सोकम्हा सुजातो पितरं यथा ॥

[घी पड़ी हुई आग की तरह जलते हुए मेरे (हृदय के) दुःख को पानी से अग्नि शान्त कर देने की तरह शान्त कर दे। मेरे हृदय में लगे हुए शोक-शल्य को निकाल दिया, जो यह मुझ शोकातुर का पितृ-शोक दूर कर दिया। हे माणव! तेरी बात सुनकर मैं शोक-रहित हो गया हूँ, चञ्चलता-रहित हो गया हूँ, शल्य-रहित हो गया हूँ। अब मैं न चिन्ता करता हूँ, न रोता हूँ। इस प्रकार जिन प्रज्ञावानों के हृदय में अनुकम्पा होती है, वे (दूसरों को) शोक से उसी प्रकार मुक्त कर देते हैं जैसे सुजात ने पिता को।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में गृहस्थी स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय सुजात मैं ही था।

३५३. धोनसाख जातक

"नीयदं निच्चं भवितब्बं..." यह शास्ता ने भग्ग (जनपद) में सुंसुमार-गिरि के पास भेसकलावन में विहार करते समय बोधि-राजकुमार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय उदयन का बोधि-राजकुमार नाम का पुत्र सुंसुमार-गिरि में रहता था। उसने एक चतुर बढ़ई को बुलवा, कोकनद नाम का एक ऐसा प्रासाद बनवाया जैसा और किसी राजा का न हो। प्रासाद बनवा चुकने पर उसने ईर्ष्या के कारण उस बढ़ई की आँखें निकलवा दीं, जिसमें कहीं वह किसी दूसरे राजा का भी वैसा ही प्रासाद न बना दे। उसकी आँख निकलवा देने की बात भिक्षु संघ में प्रकट हो गई। भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात चीत चलाई—आयुष्मानो! बोधि-राजकुमार ने वैसे बढ़ई की आँखें निकलवा दीं। ओह! वह कितना कठोर है, परुष है, दुस्साहसिक है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बात चीत कर रहे हो? 'अमुक बात चीत' कहने पर 'भिक्षुओ, न केवल अभी यह कठोर, परुष तथा दुस्साहसिक है, न केवल अभी किन्तु पहले भी हजार क्षत्रियों की आँखें निकलवा कर उनके मांस की बलि दिलवाई' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व तक्षशिला में प्रसिद्ध आचार्य्य हुए। जम्बुद्वीप भर के क्षत्रिय-विद्यार्थी तथा ब्राह्मण-विद्यार्थी उसी के पास विद्या सीखते थे। वाराणसी-राज के पुत्र ब्रह्मदत्त कुमार ने भी उसके पास तीनों वेद पढ़े। वह स्वभाव से कठोर, परुष, तथा दुस्साहसी था। बोधिसत्व ने उसके शरीर-लक्षणों से ही उसका कठोर, परुष तथा दुस्साहसिक स्वभाव पहचान उसे उपदेश दिया—तात! तू कठोर, परुष तथा दुस्साहसी है। इस प्रकार के आदमी द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य्य स्थायी नहीं होता। ऐश्वर्य्य नष्ट होने पर उसे वैसे ही आश्रय नहीं मिलता जैसे समुद्र में नौका के नष्ट होने पर। इसलिये ऐसा मत हो। उसने दो गाथायें कहीं :—

> **नयिदं निच्चं भवितब्बं ब्रह्मदत्त,**
> **खेमं सुभिक्खं सुखताच काये,**

अत्थच्चये मा अहु, सम्पमूळ्हो,
भिन्नप्लवो सागरस्सेव मज्झे ॥१॥
यानि करोति पुरिसो तानि अत्तनि पस्सति,
कल्याणकारी कल्याणं पापकारीच पापकं,
यादिसं वपते बीजं तादिसं हरते फलं ॥२॥

[हे ब्रह्मदत्त ! कल्याण, अच्छी पैदावार, तथा शरीर का सुख—ये सब सदैव (एकसा) नहीं रहता। इसलिये जिस प्रकार सागर के मध्य में नौका टूट जाने पर (आदमी) दिशा-मूढ़ हो जाता है, उसी प्रकार अर्थ का क्षय होने पर तू भी मूढ़ न होना ॥१॥ मनुष्य जो-जो कर्म करता है, उन्हें अपने भोगता है—शुभ-कर्म करने वाला शुभ-फल भोगता है, अशुभ-कर्म करनेवाला अशुभ-फल। जो जैसा बीज बोता है, वह वैसा फल पाता है ॥२॥]

वह आचार्य्य को प्रणाम कर, वाराणसी जा, पिता को शिल्प दिखा, युवराज-पद पर प्रतिष्ठित हो, पिता के मरने पर राजा बना। उसका पिङ्गिय नाम का पुरोहित था कठोर, पुरुष। उसने ऐश्वर्य्य के लोभ से सोचा कि, मैं इस राजा द्वारा सकल जम्बुद्वीप के सारे राजा पकड़वाऊँ। ऐसा होने पर यह एक-छत्र राजा होगा और मैं एक ही पुरोहित। उसने उस राजा को अपनी बात समझाई।

राजा ने बड़ी भारी सेना के साथ निकल एक राजा के नगर को घेर उसे पकड़ लिया। इसी प्रकार सारे जम्बुद्वीप के राज्य ले, हजार राजाओं के साथ तक्षशिला का राज्य लेने के लिये वहाँ पहुँचा। बोधिसत्व ने नगर की मरम्मत करा उसे ऐसा बना दिया कि दूसरे उसका ध्वंस न कर सकें।

वाराणसी-राज भी गङ्गा नदी के तट पर, बड़े वटवृक्ष के नीचे, कनात घिरवा और उस पर चन्दवा तनवा, उसके नीचे शैय्या बिछवाकर रहने लगा। उसने जम्बुद्वीप के हजार राजाओं को जीतकर तक्षशिला को न जीत सकने पर पुरोहित से पूछा—आचार्य्य ! हम इतने राजाओं के साथ आकर भी तक्षशिला नहीं ले सकते। क्या करना चाहिये ?

"महाराज ! हजार नरेशों की आँखें निकाल, (उन्हें) मार, कोख चीर, पाँच प्रकार का मधुर-मांस ले इस वट वृक्ष पर रहने वाले देवता की

बलि दें, आन्तों की बत्ती से वृक्ष को घेर, लहु के पञ्चङ्गुली-चिह्न लगायें। इस प्रकार शीघ्र ही हमारी जय होगी।"

राजा ने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर कनात के अन्दर महायोधा मल्लों को रखा। फिर एक एक राजा को बुलवा, दबवा कर बेहोश करवा, आँखें निकलवा (उन्हें) मरवा डाला। मांस लेकर लाशें गङ्गा में बहा दी गईं। फिर जैसे कहा गया है वैसे ही बलि चढ़ा, बलि-भेरी बजवा युद्ध के लिये निकला। तब अञ्जिसक्कत नाम का एक यक्ष आया और राजा की दाहिनी आँख निकाल कर ले गया। बड़ी वेदना हुई। वह पीड़ा से बेहोश हो आकर वट-वृक्ष के नीचे बिछे आसन पर चित पड़ रहा।

उस समय एक गीध ने एक तीक्ष्ण सिरे वाली हड्डी ले, वृक्ष की शाखा पर बैठ, मांस खा गिरा दी। हड्डी की नोक आकर राजा की बाईं आंख में लोहे के कांटे की तरह लगी और उसकी आंख फोड़दी। उस समय उसे बोधिसत्व का वचन याद आया। उसने कहा—मालूम होता है हमारे आचार्य्य ने यह देखकर ही कहा था कि जिस प्रकार बीज के अनुरूप फल होता है, उसी प्रकार कर्मानुरूप विपाक अनुभव करते हैं। उसने विलाप करते हुए दो गाथायें कहीं :—

इदं तदाचरियवचो पारासरियो तदब्रवि,
मास्सु त्वं अकरा पापं यं तं पच्छा कतं तपे ॥३॥
अयमेव सो पिङ्गिय वेनसाखो,
यम्हि घातयिं खत्तियानं सहस्से,
अलङ्कते चन्दनसारलित्ते,
तमेव दुक्खं पच्चागतं ममं ॥४॥

[यही वह आचार्य्य का वचन है, पाराशर्य (आचार्य्य) ने जो कहा था कि तू पाप न करे जो तुझे पीछे कष्ट दे ॥३॥ हे पिङ्गिय ! यही वह विस्तृत शाखाओं वाला वट-वृक्ष है, जहां अलंकृत तथा चन्दनसार लगाये हुए हजार क्षत्रियों को मार डाला। अब वही दुःख मेरे पास लौट आया है ॥४॥]

इस प्रकार रोते-पीटते उसने पटरानी को याद किया—

सामापि खो चन्दन लित्तगत्ता,
सिङ्गूव सोभञ्जनकस्स उग्गता,

अदिस्वाव कालं करिस्सामि उब्बरिं,
तं मे इतो दुक्खतरं भविस्सति ॥५॥

[चन्दन लिप्त गातवाली, सिङ्गु (?) वृत्त की लता के समान ऊपर उठी हुई शोभायमान (मेरी) श्यामा भार्य्या है। अब मैं उस उब्बरि को बिना देखे ही मर जाऊँगा यह मेरे लिये इससे भी अधिक दुख दायक होगा।]

वह इस प्रकार विलाप करता हुआ ही मरकर नरक में पैदा हुआ। न वह ऐश्वर्य्य-लोभी पुरोहित ही उसकी रक्षा कर सका, न उसका अपना ऐश्वर्य्य। उसके मरते ही भारी सेनायें तितर-बितर हो भाग गईं।

शास्ता ने वह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा बोधिसत्व-राजकुमार था। पिङ्गिय देवदत्त था। प्रसिद्ध आचार्य्य मैं ही था।

३५४. उरग जातक

"उरगोव तचं जिरणं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ऐसे गृहस्थ के बारे में कही, जिसका पुत्र मर गया था।

क. वर्तमान कथा

कथा उसकी (कथा) सी ही जिसकी भार्य्या और पिता मर गया था। इस (कथा) में भी शास्ता वैसे ही उसके घर गये। वह आकर प्रणाम करके बैठा। शास्ता ने पूछा—आयुष्मान! क्यों क्या चिन्ता करता है?"

"हाँ भन्ते! जब से पुत्र मरा है तब से मैं सोच में पड़ा हूँ।"

"आयुष्मान! जिसका टूटने का स्वभाव है वह टूट जाता है; जिसका नष्ट होने का स्वभाव है, वह नष्ट हो जाता है। वह न एक ही को होता है, न एक ही गाँव में। अनन्त चक्रवालों तथा तीनों-भवों में एक भी ऐसा नहीं जिसका मरण न हो। उसी अवस्था में ठहरने वाला एक भी शाश्वत संस्कार

नहीं है। सभी प्राणी मरणशील हैं, संस्कार अनित्य हैं (टूटने वाले) हैं। पुराने पण्डितों ने भी पुत्रों के मरने पर 'नष्ट होने वाले नष्ट हो गये' सोच चिन्ता नहीं की।"

यह कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वाराणसी के द्वार पर के गाँव में ब्राह्मण कुल में पैदा हो कृषी-कर्म से जीविका चलाते थे। उसका पुत्र और पुत्री, दो बच्चे थे। आयु होने पर वह पुत्र के लिये समान-कुल की लड़की ले आया।

दासी के सहित वे छः जने हो गये—बोधिसत्व, भार्य्या, पुत्र,लड़की, पुत्र-बधु और दासी। वे आपस में बड़े मेल से, प्रसन्न-चित्त, प्रेम-पूर्वक रहते थे। बोधिसत्व शेष पाँचों को इस प्रकार उपदेश देते—तुम जो मिले उसमें से दान दो, शील की रक्षा करो, उपोसथ-व्रत रखो, मरण-स्मृति की भावना करो, अपने मरण का ख्याल करो, इन प्राणियों का मरना निश्चित है, जीना अनिश्चित है, सभी संस्कार अनित्य हैं, क्षय-व्यय स्वभाव वाले हैं। रात दिन अप्रमादी होकर विचरो।

वे 'अच्छा' कह, उपदेश ग्रहण कर, अप्रमादी हो, मरण-स्मृति की भावना करते थे।

एक दिन बोधिसत्व पुत्र के साथ खेत पर जा, हल चला रहे थे। पुत्र कूड़ा निकाल जला रहा था। उसके पास एक बिल में विषैला साँप था। धुआँ उसकी आँखों में लगा। उसने क्रोधित हो, निकल, यह सोच कि इसी से मुझे भय है, चारों दान्त गड़ा कर उसे डस लिया। वह मरकर ही गिर पड़ा। बोधिसत्व ने लौट उसे गिरा देखा तो बैलों को रोक, जाकर उसे मरा पाया, उठा लाकर एक वृक्ष के नीचे लिटा दिया और कपड़े से ढक दिया। वह न रोया, न चिल्लाया। इस प्रकार अनित्यता का विचार कर कि टूटने के स्वभाव वाला टूट गया, मरण-स्वभाव वाला मर गया, सभी संस्कार अनित्य हैं, मरण-शील हैं, वह हल चलाने लगा।

उसने खेत के पास से जाने वाले एक विश्वस्त आदमी को देख कर पूछा—तात ! घर जाते हो ?

"हाँ ।"

"तो हमारे घर जाकर ब्राह्मणी को कहना कि आज पूर्व की तरह दो जनों का भोजन न ला एक ही जने का भोजन लाये। पहले अकेली दासी ही भोजन लाती थी, आज चारों-जने शुद्ध वस्त्र पहन, हाथ में सुगन्धि-फूल लिये आयें।"

उसने 'अच्छा' कह ब्राह्मणी से वैसे ही जा कहा।

"तात ! यह सन्देस तुझे किसने दिया ?"

"आर्ये ! ब्राह्मण ने।"

वह जान गई कि मेरा पुत्र मर गया है, किन्तु उसे कम्पन मात्र भी नहीं हुआ। इसी प्रकार सुसंयत-चित्त वाली वह स्वच्छ वस्त्र पहन हाथ में सुगन्धि-फूल ले, आहार लिवा बाकियों के साथ खेत पर पहुँची। एक भी न रोई, न चिल्लाई। बोधिसत्व ने जहाँ पुत्र पड़ा था, वहीं छाया में बैठकर खाया। भोजनानन्तर सब ने लकड़ियाँ ले, चिता पर रख, गन्ध-पुष्पों से पूजा कर आग लगाई। किसी की आँख से एक बूँद भी आँसू नहीं गिरा। सभी ने मरणानुस्मृति का अभ्यास किया था। उनके शील के तेज से शक्र का भवन गर्म हो गया।

उसने विचार किया—कौन है जो मुझे मेरे स्थान से च्युत करना चाहता है ? उसे पता लगा कि उनके गुण-तेज से ही उसका महल गर्म हुआ है। वह प्रसन्न हुआ और उसने सोचा कि मुझे इनके पास जा इनसे सिंह-घोषणा करा, सिंह-घोषणा कर चुकने पर इनके घर को सात रत्नों से भर देना चाहिये। वह शीघ्रता से वहाँ पहुँचा और दाह-क्रिया के स्थान पर एक ओर खड़ा होकर बोला—"तात ! क्या करते हो ?"

"स्वामी ! एक मनुष्य को जला रहे हैं।"

"मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम मनुष्य को नहीं जला रहे हो, किन्तु एक मृग को मार कर पका रहे हो।"

"नहीं, स्वामी ! मनुष्य को ही जला रहे हैं।"

"तो किसी वैरी मनुष्य को जला रहे होगे ?"

"स्वामी ! वैरी-पुरुष नहीं है, औरस-पुत्र है ।"

"तो अप्रिय-पुत्र होगा ।"

"स्वामी ! मेरा अति-प्रिय पुत्र है ।"

"तो क्यों नहीं रोते हो ?"

उसने न रोने का कारण कहते हुए पहली गाथा कही—

> उरगोव तचं जिण्णं हित्वा गच्छति संतनुं
> एवं सरीरे निब्भोगे पेते कालकते सति ।
> डय्हमानो न जानाति ञातीनं परिदेवितं,
> तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥१॥

[जिस प्रकार सर्प अपनी केंचुली को छोड़कर चला जाता है, उसी प्रकार (प्राणी) अपने शरीर को छोड़कर चला जाता है। इस प्रकार भोगहीन शरीर के काल कर जाने पर जब उसे जलाया जाता है तो वह रिश्तेदारों के रोने को नहीं जानता है। इसलिए मैं इसकी सोच नहीं करता हूँ। वह जो उसकी गति होगी, वहाँ गया ॥१॥]

शक्र ने बोधिसत्व की बात सुन ब्राह्मणी से पूछा—"माँ ! तेरा वह क्या होता था ?"

"स्वामी ! दस महीने कोख में लेकर, स्तन पान करा, हाथ पाँव ठीक कर पाला पोसा हुआ पुत्र ।"

"माँ ! पिता चाहे पुरुष होने के कारण न रोये, किन्तु माता का हृदय कोमल होता है, तू क्यों नहीं रोती ?"

उसने न रोने का कारण कहते हुये ये दो गाथायें कहीं—

> अनब्भितो ततो आग अननुञ्ञातो इतो गतो,
> यथागतो तथागतो तत्थ का परिदेवना ॥१॥
> डय्हमानो न जानाति ञातीनं परिदेवितं,
> तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥२॥

[बिन बुलाये वहाँ से आया, बिना आज्ञा लिये यहाँ से गया। जैसे आया, वैसे चला गया, उसमें अब रोना पीटना क्या ? ॥ जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारों के रोने-पीटने को नहीं जानता। इसलिये मैं उसकी सोच नहीं करती हूँ। वह जो उसकी गति होगी, वहाँ गया ॥]

तब शक्र ने ब्राह्मणी की बात सुन बहन से पूछा—

"अम्म ! तेरा वह क्या होता था ?"

"स्वामी ! मेरा भाई होता था।"

"अम्म ! बहनों का भाई से प्रेम होता है। तू क्यों नहीं रोती ?"

उसने भी न रोने के कारण कहते हुए ये दो गाथायें कहीं:—

सचे रोदे किसा अस्सं तस्सा मे किं फलं सिया,
ञातिमित्तासुहज्जानं भीय्यो नो अरती सिया ॥१॥

उटहमानो न जानाति ञातीनं परिदेवितं,
तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥२॥

[यदि रोऊँ तो कृष हो जाऊँगी, उससे मुझे क्या लाभ होगा ? हमारे ञाती-मित्र तथा सुहृदों को और भी अरुचि होगी ॥ जलाया जाता हुआ वह रिश्तादारों के रोने-पीटने को नहीं जानता। इसलिये मैं उसकी सोच नहीं करती हूँ। वह जो उसकी गति होगी, वहाँ गया ॥]

शक्र ने बहन की बात सुन उसकी भार्य्या से पूछा—

"अम्म ! तेरा वह क्या था ?

"स्वामी ! मेरा पति था।"

"पति के मरने पर स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं, अनाथ। तू क्यों नहीं रोती ?"

उसने भी उसे (अपना) न रोने का कारण बताते हुए ये दो गाथायें कहीं—

यथापि दारकोचन्दं गच्छन्तं अनुरोदति,
एवं सम्पदमेवेतं योपेतमनुसोचति ॥१॥

उय्हमानो न जानाति ञातीनं परिदेवितं,
तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥२॥

[जैसे बालक जाते हुए चन्द्रमा को देख (उसे लेने के लिये) रोता है, वैसा ही उसका आचरण है जो किसी मरे हुए को रोता है ॥ जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारों के रोने पीटने को नहीं जानता। इसीलिये मैं उसकी सोच करती हूँ। वह जो उसकी गति होगी, वहाँ गया।]

शक्र ने भार्य्या की बात सुन दासी से पूछा—

"अम्म ! तेरा वह क्या होता था ?"

"स्वामी ! मेरा आर्य ।"

"निश्चय से उसने तुझे पीड़ित कर पीटकर काम लिया होगा, इसी से तू सोचती है कि अच्छा हुआ यह मर गया, और रोती नहीं है ।"

"स्वामी ! ऐसा न कहें । यह इनके योग्य नहीं है । क्षमा, मैत्री तथा दया से युक्त मेरा आर्य-पुत्र हृदय से पाले पुत्र के समान था ।"

"अम्म ! तो तू क्यों नहीं रोती है ?"

उसने भी अपना न रोने का कारण कहते हुए दो गाथायें कहीं—

यथापि उदककुम्भो भिन्नो अप्पटिसन्धियो,
एवं सम्पदमेवेतं यो पेतमनुसोचति ॥
डय्हमानो न जानाति ञातीनं परिदेवितं
तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥

[जैसे टूटा हुआ पानी का घड़ा फिर जुड़ नहीं सकता (और उसके लिये रोना वेकार होता है) वैसा ही उसका आचरण है जो मरे के लिये रोता है। जलाया जाता हुआ०]

शक्र ने सब की धर्म-कथा सुन प्रसन्न होकर कहा "तुमने अप्रमादी हो मरणानुस्मृति का अभ्यास किया है। अब से तुम अपने हाथ से काम न करो। मैं शक्रदेवराज हूँ। मैं घर में अनन्त सात-रत्न कर दूँगा। तुम दान दो, शील रखो, उपोसथ व्रत करो और अप्रमादी रहो।" उन्हें उपदेश दे और उनके घर को असीम धन से भर शक्र चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन होने पर गृहस्थ स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय दासी खज्जुत्तरा थी। लड़की उत्पल-वर्णा थी। पुत्र राहुल था। माता खेमा थी। ब्राह्मण तो मैं ही था।

३५५. घत जातक

"अञ्ञे सोचन्ति रोदन्ति..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल राज के एक अमात्य के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कथा उक्त कथाके समान ही है। इस (कथा) में राजा ने अपने उपकारी अमात्य को बहुत सा ऐश्वर्य्य दे, (फिर) फूट डालने वालों की बात पर विश्वास कर उसे बँधवा कारागार में डलवा दिया। उसने वहाँ बैठे बैठे स्रोतापत्ति-मार्ग प्राप्त कर लिया। राजा ने उसके गुणों को याद कर उसे छुड़वाया। वह सुगन्धि-माला ले, शास्ता के पास जाकर प्रणाम करके बैठा। शास्ता ने उसे पूछा—

"तेरे साथ अनर्थ हुआ?"

"हाँ भन्ते! लेकिन अनर्थ में से मुझे अर्थ प्राप्त हो गया। स्रोतापत्ति-मार्ग का लाभ हुआ।"

"उपासक! तूने ही अनर्थ से अर्थ की प्राप्ति नहीं की है, पुराने पण्डितों ने भी अनर्थ से अर्थ की प्राप्ति की है।"

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में गर्भ धारण किया। उसका नाम रखा गया घृत कुमार। वह आगे चलकर तक्षशिला जा, शिल्प सीख धर्मानुसार राज्य करने लगा। उसके अन्तःपुर में एक अमात्य ने दुराचार किया। उसने उसका दोष प्रत्यक्ष देख उसे देश से निकाल दिया।

उस समय श्रावस्ती में धङ्कराजा राज्य करता था। उसने उसके पास जा उस की सेवा में रह, अपनी बात मना, वाराणसी राज्य जितवा दिया। उसने राज्य ले बोधिसत्व को जंजीर से बन्धवा, कारागार में डलवा दिया। बोधिसत्व

ध्यानारूढ़ हो आकाश में पालथी मार बैठे। धङ्क का शरीर जल उठा। उसने जाकर बोधिसत्व के मुँह को देखा। वह सोने के दर्पण की तरह, खिले कमल की तरह शोभा-युक्त था। उसने बोधिसत्व को पूछते हुए यह पहली गाथा कही:—

अञ्ञे सोचन्ति रोदन्ति अञ्ञे अस्सुमुखा जना,
पसन्नमुखवण्णोसि कस्मा घत न सोचसि ॥

[हे घृत ! तुझे छोड़ कर अन्य लोग रोते हैं, अन्यों के मुँह पर आँसू हैं। तेरा मुख-वर्ण प्रसन्न है। तू क्यों नहीं रोता है ?]

बोधिसत्व ने उसे अपने न सोचने का कारण कहते हुए शेष गाथायें कहीं—

नाब्भतीतहरो सोको नानागतसुखावहो,
तस्मा धङ्क न सोचामि नत्थि सोके दुतीयता ॥
सोचं पण्डु किसो होति भत्तञ्चस्स न रुच्चति,
अमित्ता सुमना होन्ति सल्लविद्धस्स रुप्पतो ॥
गामे वा यदि वा रञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले,
ठितं मं नागमिस्सन्ति एवं दिट्ठपदो अहं ॥
यस्सत्ता नालमेकोव सब्बकामरसाहरो.
सब्बापि पठवी तस्स न सुखं आवहिस्सति ॥

[न तो बीते सुख को ला सकता है, न भविष्यत् के सुख को। शोक किसी प्रकार सहायक (-द्वितीय) नहीं होता। इसलिये धङ्क मैं चिन्ता नहीं करता। चिन्ता करने से पाण्डु-वर्ण हो जाता है, कृषगात्र हो जाता है। चिन्ता करने वाले को भात भी अच्छा नहीं लगता। शोक-शल्य से दुःख पाने वाले के शत्रु प्रसन्न होते हैं॥ हे धङ्क ! मैंने अब वह पद प्राप्त कर लिया है कि चाहे मैं गांव में रहूं, चाहे आरण्य में रहूं, चाहे निम्न स्थान में रहूँ, चाहे स्थल पर रहूँ—कहीं रहूँ—मेरे पास पाण्डु-वर्ण होना आदि दुःख नहीं आयेंगे॥ जिसका अकेला अपना आप ही उसे सब काम-रस (सुख) नहीं दे सकता, उसे सारी पृथ्वी भी सुखी नहीं कर सकती॥]

धङ्क यह चारों गाथायें सुन, बोधिसत्व से क्षमा मांग, राज्य सौंप, चला गया। बोधिसत्व भी अमात्यों को राज्य सौंप, हिमालय को जा, ऋषि-प्रव्रज्या ले, ध्यानावस्थित हो, ब्रह्मलोकगामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय धङ्क राजा आनन्द था। घृत-राजा तो मैं ही था।

२५६. कारण्डिय जातक

"एको अरञ्ञे......"यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय धर्म-सेनापति के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

स्थविर जो जो दुराचारी आते—शिकारी, मछुवे आदि—जिसे जिसे देखते सभी को 'शील लो, शील लो' कह शील देते। वह स्थविर के प्रति आदर का भाव होने से और उनकी आज्ञा का उल्लंघन न कर सकने के कारण शील ले लेते, किन्तु शील ग्रहण कर उसकी रक्षा न करते। (शिकार करना, मछली पकड़ना आदि) अपना काम ही करते। स्थविर ने अपने साथियों को बुलाकर कहा—आयुष्मानो, इन मनुष्यों ने मुझसे शील ग्रहण किये। लेकिन ग्रहण करके उनकी रक्षा नहीं की।

"भन्ते! आप उनकी अरुचि से उन्हें शील देते हैं। यह आप की आज्ञा का उलंघन न कर सकने के कारण ग्रहण करते हैं। आप अब से ऐसों को शील न दें।"

स्थविर असन्तुष्ट हो गये। यह समाचार सुन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, आयुष्मान सारिपुत्र जिसे देखते हैं उसे शील देते हैं। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो? "अमुक बात चीत।" "न केवल अभी भिक्षुओ, यह पहले भी जिसे देखते उसे बिना माँगे ही शील देते थे" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण कर, बड़े होने पर तक्षशिला के प्रसिद्ध शिष्य हुए। नाम था कारण्डिय।

उस समय वह आचार्य्य जिसे जिसे देखते—मछुओं आदि को—बिना मांगे ही 'शील लो, शील लो' कह शील देते। वे ग्रहण करके भी नहीं रखते थे। आचार्य ने वह बात अपने शिष्यों से कही। शिष्यों ने उत्तर दिया—भन्ते! आप इनकी अरुचि से ही शील देते हैं। इसीलिये शील भङ्ग करते हैं। अब से माँगने वालों को ही शील दें, बिना मांगे नहीं। वह असन्तुष्ट हुए। किन्तु, ऐसा होने पर भी जिसे जिसे देखते शील दे ही देते।

एक दिन एक गाँव से लोग आये और उन्होंने आचार्य्य को पाठ करने के लिये[1] निमिन्त्रत किया। उसने कारण्डिय माणव को बुलाकर भेजा—तात! मैं नहीं जाता हूँ। तू इन पाँच सौ ब्रह्मचारियों को ले, वहाँ जा, पाठ समाप्त कर हमारा हिस्सा ले आ।

उसने जा लौटते समय रास्ते में एक कन्दरा को देख कर सोचा—हमारा आचार्य्य जिसे देखता है, बिना मांगे ही शील दे देता है। अब से ऐसा करूँगा कि वह शील की मांग करने वालों को ही शील दे। जिस समय वह ब्रह्मचारी सुख से बैठे थे, उसने उठकर एक बड़ी शिला उठा कर कन्दरा में फैंकी। फिर (एक और भी) फैंकी। फिर भी फ़ैंकी।

उन ब्रह्मचारियों ने उठकर पूछा—आचार्य्य! क्या करते हो? वह कुछ नहीं बोला। उन्होंने जल्दी से आकर आचार्य्य से कहा। आचार्य्य ने आकर उसके साथ बात चीत करते हुए पहली गाथा कहीः—

> एको अरञ्ञे गिरिकन्दरायं,
> पग्गय्ह पग्गय्ह सिलं पवेज्झसि,
> पुनप्पुनं सन्तरमानरूपो,
> कारण्डिय को नु तवयिधत्थो ॥१॥

---

[1] ब्राह्मण वाचन-कथा।

[कारण्डिय ! तू अकेला जंगल में पर्वत-कन्दरा पर चढ़-चढ़कर बार-बार बहुत जल्द-बाज की तरह शिला फेंक रहा है, इससे तुझे क्या लाभ है ?]

उसने उसकी बात सुन आचार्य्य को दोषी ठहराने के लिये दूसरी गाथा कही—

अहं इमं सागरसेवितन्तं,
समं करिस्सामि यथापि पाणिं,
विकिरिय सानूनि च पब्बतानि च,
तस्मा सिलं दरिया पक्खिपामि ॥२॥

[मैं इस सागर से घिरी पृथ्वी को बालू-पर्वत तथा शिलापर्वतों को बिखेर कर हाथ की हथेली के समान बराबर कर दूँगा। इसी लिये कन्दरा में शिलाओं को फेंक रहा हूँ।]

इसे सुन ब्राह्मण ने तीसरी गाथा कही—

नयिमं महिं अरहति पाणिकप्पं,
समं मनुस्सो करणायमेको,
मञ्ञामि मञ्ञेव दरिं जिगिंसं,
कारण्डिय हाहसि जीवलोकं ॥३॥

[कारण्डिय ! अकेला मनुष्य इस पृथ्वी को हाथ की हथेली के समान करने में असमर्थ है। मैं मानता हूँ कि इसी एक कन्दरा को भरने का प्रयत्न करते हुये (तू) जीव-लोक को छोड़ जायेगा।]

यह सुन ब्रह्मचारी ने चौथी गाथा कही—

सचे अयं भूतधरं न सक्को,
समं मनुस्सो करणायमेको,
एवमेव त्वं ब्रह्मे इमे मनुस्से,
नानादिट्ठिके नानयिस्ससि ते ॥४॥

[यदि एक मनुष्य इस पृथ्वी को समान नहीं कर सकता, तो हे ब्रह्म ! तू भी इन नाना दृष्टि के लोगों को (अपने मत में) न ला सकेगा।]

इसे सुन आचार्य्य ने सोचा, कारण्डिय ठीक कहता है। अब से ऐसा न करूँगा। उसने 'अपने से विरुद्ध होना' जान पांचवीं गाथा कही—

सङ्खित्तरूपेन भवं ममत्थं,
अक्खासि कारण्डिय एवमेतं,
यथा न सक्का पठवीसमायं,
कातुं मनुस्सेन तथा मनुस्सा।

[कारण्डिय ! आपने मुझे संक्षेप से यह बात समझाई कि जिस प्रकार (एक) मनुष्य इस पृथ्वी को समान नहीं कर सकता, उसी प्रकार कोई (सारे) मनुष्यों को भी।]

इस प्रकार आचार्य्य ने ब्रह्मचारी की प्रशंसा की। वह भी उसे समझा कर घर ले गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ब्राह्मण सारिपुत्र था, कारण्डिय-पंडित तो मैं ही था।

३५७. लट्ठुकिक जातक

"वन्दामि तं कुञ्जर सट्ठिहायनं..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, देवदत्त कठोर है, पुरुष है, दुस्साहसी है। प्राणियों के प्रति उसमें करुणा भी नहीं है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने 'न केवल अभी, भिक्षुओ यह पहले भी करुणा-रहित ही था' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हाथी की योनि में पैदा हुए। बड़े होने पर सुन्दर, महान् शरीर वाले हो, अस्सी हजार हाथियों के नेता बन, हिमालय प्रदेश में रहने लगे।

उस समय एक लटुकिका चिड़ी ने हाथियों के विचरने की जगह पर अण्डे दिये। अण्डे सेये जाकर उनमें से चोंगे बाहर आये। अभी जब उनके पर नहीं निकले थे, जब वह उड़ नहीं सकते थे, उसी समय हजार हाथियों के साथ बोधिसत्व चरते-चरते वहां आ पहुँचे। उसे देख लटुकिका ने सोचा—यह हस्ति-राज मेरे बच्चों को कुचल कर मार देगा। हन्त! मैं इन बच्चों की रक्षा के लिये इससे धार्मिक-याचना करूँ। उसने दोनों पङ्ख जोड़ उसके आगे खड़ी हो पहली गाथा कही—

> **वन्दामि तं कुञ्जरसट्ठिहायनं,**
> **आरञ्ञकं यूथपतिं यसस्सिं,**
> **पक्खे हि तं पञ्जलिकं करोमि,**
> **मा मे वधी पुत्तके दुब्बलाय ॥१॥**

[हे आरण्यक ! हे यूथपति ! हे यशस्वी ! हे साठे हाथी ! मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ। मैं पङ्खों से तुम्हारे सामने हाथ जोड़ती हूँ—मुझ दुर्बल के पुत्रों का बध मत करो ॥१॥]

बोधिसत्व ने कहा—लटुकिके! मैं तेरे पुत्रों की रक्षा करूँगा। तू चिन्ता न कर। वह उन बच्चों के ऊपर खड़े हो गये। फिर अस्सी हजार हाथियों के चले जाने पर लटुकिका को सम्बोधितकर कहा—हमारे पीछे एक अकेला हाथी आती है। वह हमारा कहना नहीं मानता। उसके आने पर उससे भी प्रार्थना कर पुत्रों की रक्षा करना। यह कह चला गया।

उसने उसका स्वागत कर दो पङ्खों से हाथ जोड़ दूसरी गाथा कही—

> **वन्दामि तं कुञ्जरएकचारिं**
> **आरञ्ञकं पब्बतसानुगोचरं,**
> **पक्खेहि तं पञ्जलिकं करोमि**
> **मा मे वधी पुत्तके दुब्बलाय ॥२॥**

[हे आरण्यक ! हे पर्वत-वासी ! हे एकचारी कुञ्जर ! मैं तुझे नमस्कार करती हूँ। मैं पङ्खों से तुम्हारे सामने हाथ जोड़ती हूँ—मुझ दुर्बल के पुत्रों का बध मत करें।]

उसने उसकी बात सुन तीसरी गाथा कही:—

वधिस्सामि ते लट्टुकिके पुत्तकानि
किं मे तुवं काहसि दुब्बलासि,
सतंसहस्सानिपि तादिसीनं
वामेन पादेन पपोथयेय्यं ॥

[लट्टुकिके ! तू दुर्बल है, मेरा क्या करेगी? मैं तेरे बच्चों को मारूँगा। तेरे जैसी लाखों को भी मैं बायें पाँव से कुचल दूँगा।]

यह कह वह उसके बच्चों को पाँव से चूर्ण-विचूर्ण कर उन्हें अपने मूत्र से बहा चिंघाड़ता हुआ चला गया। लट्टुकिका ने वृक्ष की शाखा पर बैठ—हाथी! अब तो तू चिंघाड़ता हुआ जाता है। कुछ दिन में मेरी क्रिया देखेगा। तू नहीं जानता है कि शरीर-बल से ज्ञान-बल बढ़ कर है। अच्छा तुझे जनाऊँगी। उसे धमकाते हुए चौथी गाथा कही:—

न हेव सब्बत्थ बलेन किच्चं
बलं हि बालस्स वधाय होति,
करिस्सामि ते नागराजा अनत्थं
यो मे वधी पुत्तके दुब्बलाय ॥

[बल ही सर्वत्र काम नहीं देता। बल मूर्ख के बध का कारण होता है। हे नागराज तूने मुझ दुर्बल के बच्चों को मारा है, मैं भी तेरा अनर्थ करूँगी।]

यह कह उसने कुछ दिन एक कौवे की सेवा की। कौवे ने प्रसन्न होकर पूछा—तेरे लिये क्या करूँ?

"स्वामी! मैं और कुछ नहीं कराना चाहती, केवल यही आशा करती हूँ कि आप अपनी चोंच से इस अकेले घूमने वाले हाथी की आँख फोड़ दें।"

उसके 'अच्छा' कह स्वीकार कर लेने पर उसने एक मक्खी की सेवा की। उसके भी 'तेरे लिये क्या करूँ?' पूछने पर 'इस कौवे द्वारा इस अकेले

घूमने वाले हाथी की आँख फोड़ दिये जाने पर, मैं तुमसे चाहती हूँ कि तुम उस जगह पर अण्डा दे देना।' उसने भी 'अच्छा' कह स्वीकार किया। तब उसने एक मेंडक की सेवा की। उसने पूछा—"क्या करूँ?"

"जब अकेला घूमने वाला हाथी अन्धा हो पानी की खोज करे, तब तुम पर्वत के ऊपर खड़े हो आवाज करना और उसके पर्वत पर चढ़ जाने पर, तुम उतर कर (नीचे) प्रपात में आवाज लगाना। मैं इतना ही तुमसे चाहती हूँ।"

उसने उसकी बात सुन 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

एक दिन कौवे ने हाथी की दोनों आंखें चोंच से फोड़ दीं। मक्खी ने आकर अण्डे दे दिये। वह कीड़ों से खाया जाता हुआ, वेदना से व्याकुल हो, पानी खोजता हुआ घूमता था। उसी समय मेंडक ने पर्वत के ऊपर खड़े हो आवाज दी। हाथी 'यहाँ पानी होगा' समझ पर्वत पर चढ़ा। मेंडक ने उतर प्रपात में खड़े हो आवाज लगाई। हाथी 'पानी होगा' समझ प्रपात की ओर जाता हुआ फिसल कर पर्वत के नीचे गिरा और मर गया।

लटुकिका ने उसे मरा जाना, तो प्रसन्न हुई कि शत्रु की पीठ देख ली। वह उसके शरीर पर चल फिर कर यथा-कर्म (परलोक) गई।

"भिक्षुओ! किसी के साथ वैर नहीं करना चाहिये। इस प्रकार के बलवान हाथी को भी इन चार जनों ने मिलकर मार डाला" कह शास्ता ने निम्नलिखित अभिसम्बुद्ध गाथा कही और जातक का मेल बैठायाः--

काकञ्च पस्स लटुकिकं मण्डूकंनीलमक्खिकं,
एते नागं अघातेसुं पस्स वेरस्स वेरिनं,
तस्मा वेरं न कयिराथ अप्पियेनपि केनचि॥

[वैरियों के वैर की (दुर्गति) देखो—कौवे, लटुकिका, मेंढक और मक्खी ने (मिलकर) हाथी को मार डाला। इसलिये किसी अप्रिय से भी वैर न करे।]

तब अकेला विचरने वाला हाथी देवदत्त था। हाथियों के समूह का नेता तो मैं ही था।

३५८. चुल्लधम्मपाल जातक

"अहमेव दूसिया भूनहता......" यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बध करने के प्रयत्न के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

दूसरी जातक कथाओं में देवदत्त बोधिसत्व को त्रास भी नहीं पहुँचा सका। लेकिन इस चुल्लधम्मपाल जातक[1] में तो सात महीने की अवस्था में बोधिसत्व के हाथ, पैर, सिर कटवा कर असिमालक बनाया। दद्दर जातक[2] में गर्दन मरोड़ कर मार डाला और चूल्हे पर माँस पका कर खाया। खन्ति-वादि जातक[3] में दो चाबुकों से हजार चाबुक मार, हाथ, पांव तथा कान, नाक, काट जटाओं से पकड़ कर खींचा और चित लिटाकर छाती में पैर की ठोकर लगा भाग गया। बोधिसत्व ने उसीदिन प्राण त्याग किया। चुल्ल नन्दिय जातक[4] तथा महाकपि जातक[5] में भी मार ही डाला। इस प्रकार दीर्घकाल तक बध के लिए प्रयत्न करते रह बुद्ध (होने के) समय भी प्रयत्न किया। एक दिन भिक्षुओं ने धर्म सभा में बात चलाई—आयुष्मान देवदत्त बुद्धों के मारने का उपाय करता है। सम्यक सम्बुद्ध को मारने के लिये उसने धनुर्धारियों को नियुक्त किया, शिला गिराई, नालागिरी (हाथी) भेजा। शास्ता ने पूछा— भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बात चीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'न केवल अभी किन्तु भिक्षुओ, पहले भी मेरे बध के लिये प्रयत्न

---

[1] चुल्लधम्मपाल जातक (३५८)
[2] दद्दर जातक (१७२)
[3] खन्ति-वादि जातक (३१३)
[4] चुल्लनन्दिय जातक (२२२)
[5] महाकपि जातक (४०७)

किया है, अब तो ग्रास मात्रभी नहीं दे सका है, किन्तु पहले धर्मपाल-कुमार के समय अपने पुत्र समान मुझे मरवा कर असिमालक बनवाई' कह पूर्व जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में महाप्रताप राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व उसकी चन्दा देवी नामक पटरानी की कोख से पैदा हुए। नाम धर्मपाल रक्खा गया। सात महीने की अवस्था में माता उसे सुगन्धित जल से नहला, सजा, बैठी खिला रही थी। राजा उसके निवास-स्थान पर गया। वह पुत्र से खेल रही थी। इसलिये स्नेह के वशीभूत हो वह राजा को देख कर भी नहीं उठी। राजा ने सोचा—यह अभी पुत्र के कारण मान करती है, मुझे कुछ भी नहीं समझती। पुत्र के बढ़ने पर मुझे मनुष्य भी नहीं समझेगी। अभी मरवाता हूँ।

उसने लौट, जाकर, राज्यासन पर बैठ घातक को आज्ञा भिजवाई—अपनी तैय्यारी के साथ आये। वह काषाय-वस्त्र पहने, लाल माला धारण किये, कन्धे पर फरसा लिये, अपने सिर के नीचे रखने के बर्तन तथा हाँथ पाँव जकड़ने के दण्डों के साथ आ पहुँचा और राजा को प्रणाम कर बोला—देव! क्या करूँ?

"देवी के शयनागार में जा धर्मपाल को ले आ।" देवी भी राजा के क्रुद्ध होकर लौटने की बात समझ बोधिसत्व को छाती से लगाए बैठी रो रही थी।

घातक ने जाकर उसकी पीठ पर मुक्का मार हाथ से कुमार को छीन लिया और राजा के सामने लाकर बोला—देव क्या करूँ? राजा ने आज्ञा दी—एक पटड़ा मंगवा कर, सामने बिछवा। इसे उस पर लिटा। उसने वैसा ही किया। चन्दा-देवी पुत्र के पीछे रोती हुई आई। घातक ने फिर पूछा—देव! क्या करूँ?

धर्मपाल के हाथ काट। चन्दादेवी—महाराज। मेरा पुत्र सात महीने का बच्चा है। कुछ नहीं जानता। इसका कुछ दोष नहीं है। दोष बड़ा होने पर भी मेरा ही होगा, इसलिए मेरे हाथ कटवायें।

यही बात प्रगट करते हुए उसने पहली गाथा कही:—

अहमेव दूसिया भूनहता रञ्ञो महापतापस्स,
एतं मुञ्चतु धम्मपालं हत्थे मे देव छेदेहि ॥

[मैं भ्रूण हत्यारी ही राजा महाप्रताप की दोषी हूँ। देव ! इस धर्मपाल को छोड़ दें, मेरे हाथ काट दें।]

राजा ने घातक की ओर देखा। देव क्या करूँ ? देर न करके हाथ काट डाल ! उसी क्षण घातक ने तेज फरसा ले कुमार के नये बाँस के पोरे के समान दोनों हाथ काट डाले। हाथ कटते समय न वह रोया न चिल्लाया। शान्ति तथा मैत्री को आगे करके (दुःख) सह लिया।

चन्दादेवी कटे हाथों को गोद में ले, लहू से तर-बतर हो, रोती पीटती घूमने लगी। घातक ने फिर पूछा—देव क्या करूँ ? "दोनों पाँव काट।" यह सुन चन्दा देवी ने दूसरी गाथा कही:—

अहमेवदूसिया भूनहता रञ्ञो महापतापस्स,
एतं मुञ्चतु धम्मपालं पादे मे देव छेदेहि ॥

[अर्थ पूर्वोक्तानुसार ही है] राजा ने भी फिर घातक को आज्ञादी। उसने दोनों पांव काट डाले। चन्दा देवी ने कटे पैरों को गोद में ले लहू से तर-बतर हो रोते-चिल्लाते हुए कहा—स्वामिन ! महाप्रताप क्या तुम्हारे द्वारा कटे हाथ पैर वाले बच्चों का पालन पोषण माताओं द्वारा नहीं कराया जाना चाहिए ? मैं मजदूरी करके इसे पोस लूंगी। मुझे इसे दें। घातक ने पूछा—देव, राजाज्ञा का पालन हुआ, क्या मेरा काम समाप्त है ?

"नहीं अभी समाप्त नहीं"

"तो क्या करूँ"

"इसका सिर काट डाल।"

चन्दा देवी ने तीसरी गाथा कही:—

अहमेव दूसिया भूनहता रञ्ञो महापतापस्स,
एतं मुञ्चतु धम्मपालं सीसं मे देव छेदेहि ॥

'यह कह' उसने अपना सिर आगे कर दिया। घातक ने फिर पूछा—देव क्या करूँ ?

"इसका सिर काट डाल।"

उसने सिर काट कर पूछा — देव ! राजाज्ञा का पालन हो गया ?

"नहीं अभी नहीं।"

"देव क्या करूँ ?"

तलवार की नोंक पर इसे ले 'असिमाला' बनाओ।

उसने उसकी लाश को आकाश में फेंक तलवार की नोंक पर ले 'असिमाला' बना महान तल्ले पर बिखेर दिया। चन्दादेवी बोधिसत्व के माँस को गोद में ले महान तल्ले पर रोती पीटती ये गाथायें बोली:—

> नहनूनिमस्स रञ्ञो मित्ता मच्चाव विज्जरे सुहदा,
> ये न वदन्ति राजानं मा घातयि ओरसं पुत्तं ॥
> नहनूनिमस्स रञ्ञो मित्ता ञातीव विज्जरे सुहदा,
> ये न वदन्ति राजानं मा घातयि अत्रजं पुत्तं ॥

[निश्चय से इस राजा के कोई मित्र, अमात्य या सुहृद (ऐसे) नहीं हैं जो राजा को कहें कि अपने औरस-पुत्र की हत्या मत करो।]

ये दो गाथायें कह चन्दा देवी ने दोनों हाथों से हृदय-मांस को सँभालते हुए तीसरी गाथा कही:—

> चन्दनसारानुलित्ता बाहा छिज्जन्ति धम्मपालस्स,
> दायादस्स पठब्या पाणा मे देव रुज्झन्ति ॥

[पृथ्वी (राज्य) के उत्तराधिकारी धम्मपाल की चन्दन सार से लिप्त बाहें छीज रहीं हैं (पैर छीज रहें हैं, सिर छीज रहा है); और (यह देख) हे देव ! मेरे प्राण अवरुद्ध होते हैं।]

उसके इस प्रकार रोते हुए, जलते वेणुवन में वेणु के फटने के समान उसका हृदय फट गया। उसका वहीं शरीरांत हो गया। राजा सिंहासन पर न बैठा रह सका। महान तल्ले पर गिरा। दरार फट गई। वह वहाँ से पृथ्वी पर आ पड़ा। दो लाख चुरानवे योजन घनी मोटी पृथ्वी भी उसका दगुंण न सह सकने के कारण फट पड़ी और उसने रास्ता दिया। अवीची (नरक) से ज्वाला उठी और उसने कुल-प्रदत्त कम्बल में लपेट लेने की तरह उसे लपेट अवीची नरक में फेंका। आमात्यों ने चन्दा और बोधिसत्व का शरीर-कृत्य किया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा देवदत्त था। चन्दा देवी महा प्रजापती गौतमी। धम्मपाल कुमार तो मैं ही था।

३५९. सुवण्णमिग जातक

"विक्कम रे महामिग..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय श्रावस्ती की एक कुल-कन्या के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती में दोनों प्रधान-श्रावकों के सेवक-परिवार की लड़की थी—श्रद्धालु,बुद्ध, धर्म तथा संघ को प्यार करने वाली, सदाचारिणी, पण्डिता और दान आदि पुण्य-कर्मों में रत। उसे श्रावस्ती में ही दूसरे समान जाति के कुल में, जो मिथ्या-मत मानने वाला था, व्याह दिया गया। उसके माता पिताने कहा—हमारी लड़की श्रद्धालु है, तीनों रत्नों को प्यार करती है, और दानादि पुण्य क्रियाओं में रत है। तुम मिथ्या-दृष्टि वाले होने से इसे भी यथा-रुचि दान देना, धर्म सुनना, विहार जाना, शील पालन करना अथवा उपोसथ-व्रत धारण करना न करने दोगे। इसलिये हम इसे तुम्हें नहीं देंगे। अपने जैसे मिथ्या-दृष्टि कुल से ही कुमारी ले आओ।" वे बोले—"तुम्हारी लड़की हमारे घर जाकर यथारुचि यह सब करे। हम उसे नहीं रोकेंगे। हमें दें।"

"तो ले जाओ।"

वह शुभ नक्षत्र में (विवाह-) मङ्गल कर उसे अपने घर ले आये।

वह लड़की कर्तव्य-परायण सदाचारिणी थी, पति को देवता तुल्य समझती थी और सास-श्वसुर तथा पति (की सेवा आदि) के कर्तव्य किये ही रहती थी। एक दिन उसने अपने पति से कहा—

"आर्यपुत्र ! मैं अपने कुल-विश्वस्त स्थविरों को दान देना चाहती हूँ।"

"भद्रे ! अच्छा यथा-रुचि दे।"

उसने स्थविरों को निमन्त्रण भिजवा बड़ा सत्कार कर, प्रणीत भोजन करा, एक ओर बैठ कर प्रार्थना की—भन्ते ! यह मिथ्या-दृष्टि कुल है, अश्रद्धावान् तीनों रत्नों के गुणों से अपरिचित। अच्छा हो, आर्य ! जब तक इस कुल के लोग तीन-रत्नों के गुणों से परिचित हों, तब तक यहीं भिक्षा ग्रहण करें।

स्थविरों ने स्वीकार किया और प्रति दिन उसी घर में भोजन करने लगे।

उसने फिर अपने पति से कहा—आर्य पुत्र ! स्थविर यहाँ प्रतिदिन आते हैं। तुम क्यों उनके दर्शन नहीं करते ?

"अच्छा, करूँगा।"

उसने अगले दिन फिर स्थविरों के भोजन कर चुकने पर उसे कहा। वह जाकर स्थविरों से कुशल-क्षेम पूछ एक ओर बैठा। धर्म-सेनापति ने उसे धर्मोपदेश दिया। वह स्थविर के धर्मोपदेश तथा उनकी चर्या पर प्रसन्न हुआ और तब से स्थविरों के लिए आसन बिछाता, पानी छानता और भोजनान्तर धर्मोपदेश सुनता। आगे चलकर उसकी मिथ्या-दृष्टि जाती रही। एक दिन स्थविर ने उन दोनों को धर्मोपदेश देते हुए (आर्य) सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों के अन्त में दोनों श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए। उसके बाद उनके माता पिता से आरंभकर दास तथा नौकरों चाकरों तक सभी मिथ्यादृष्टि छोड़ बुद्ध, धर्म तथा संघ के भक्त हो गये। एक दिन उस लड़की ने पति से निवेदन किया—आर्य पुत्र ! मुझे गृहस्थी से क्या ? मैं प्रव्रजित होना चाहती हूँ। वह बोला—भद्रे, अच्छा मैं भी प्रव्रजित होऊँगा और अनेक लोगों के साथ उसे भिक्षुणी-उपाश्रय ले जाकर प्रव्रजित कराया और स्वयं भी शास्ता के पास जा प्रव्रज्या की याचना की। शास्ता ने उसे प्रव्रज्या तथा उपसंपदा दी। उन दोनों ने विदर्शना-भावना का अभ्यास कर अचिर काल में ही अर्हत्व प्राप्त किया। एक दिन धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक नाम की तरुण भिक्षुणी अपनी सहायक हुई। अपने स्वामी की।

वह स्वयं भी प्रव्रजित हो अर्हत्व को प्राप्त हुई और उसे भी अर्हत्व की प्राप्ति कराई। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ! न केवल अभी इसने स्वामी को राग-पाश से मुक्त किया है, किन्तु इसने पहले भी पुराने पंडितों को मरण-पाश से मुक्त किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व मृगयोनि में पैदा हुए। बड़े होने पर सुन्दर हुआ, मनोरम हुआ, दर्शनीय हुआ। वह स्वर्णवर्ण का था, उसके हाथ पाँव ऐसे थे मानो लाखरस से चित्रित हों, सींग ऐसे थे मानो चाँदी की माला हों, आँखें ऐसी थीं मानो मणियां हों, मुँह ऐसा था मानो लाल-कम्बल की गेंद हो। उसकी भार्या भी तरुण मृगी सुन्दर थी, मनोरम थी। वे मेल से रहते थे। अस्सी हज़ार सुन्दर मृग बोधिसत्व की सेवा में थे। उस समय शिकारी मृगों का बध करते थे, जाल लगाते थे।

एक दिन बोधिसत्व मृगों के आगे-आगे जा रहा था। उसका पाँव जाल में फँस गया। जाल को तोड़-डालूँगा, सोच उसने पाँव खींचा। चमड़ा छिल गया। और खींचा, तो मांस कट गया, नस कट गई और जाल हड्डी पर जाकर ठहरा। जब वह जाल को न छेद सका तो उसने मरण-भय से भयभीत हो बन्धन-शब्द किया। उसे सुन भयभीत मृग-समूह भाग गया। लेकिन उसकी भार्या ने भागते समय, जब उसे मृगों में नहीं देखा तो सोचा, यह ख़तरा मेरे प्रिय स्वामी को पैदा हुआ होगा। वह शीघ्रता से उसके पास पहुँची और आंखों में आंसू भर उसे उत्साहित करती हुई बोली—स्वामी, तू महा बलवान है। क्या इस जाल को नहीं सहन कर सकता? झटका देकर तोड़ डाल।

उसने पहली गाथा कही :—

विक्कम रे महामिग विक्कम रे हरिपद,
छिन्द वारत्तिकं पासं नाहं एका वने रमे ॥

[हे महामृग! विक्रम कर, हे स्वर्णपाद! विक्रम कर, यह चर्म-जाल तोड़ दे। मैं अकेली वन में नहीं रह सकती।]

यह सुन मृग ने दूसरी गाथा कही :—

विक्कमामि न पारेमि भूमिं सुम्भामि वेगसा,
दळ्हो वारत्तिको पासो पादं मे परिकन्तति ॥

[भद्रे, पराक्रम करता हूँ, जमीन को जोर से झटका देता हूँ किन्तु (जाल को तोड़) नहीं सकता हूँ। चमड़े का जाल मजबूत है। यह मेरे पांव काटता है।]

तब मृगी बोली—स्वामी डरें नहीं। मैं अपने बल से शिकारी से याचना कर तुम्हारी रक्षा करूँगी। यदि याचना करके सफल न होऊँगी तो अपने प्राण देकर भी तुम्हारे प्राणों की रक्षा करूँगी। इस प्रकार बोधिसत्व को आश्वासन दे लहू से लथपथ बोधिसत्व को ले खड़ी हुई। शिकारी भी तलवार और शक्ति ले कल्पान्त-अग्नि की तरह आया। वह उसे आता देख बोली—स्वामी, शिकारी आता है। मैं अपना प्रयत्न करूँगी। आप मत डरें। उसे आश्वासन दे वह शिकारी के रास्ते में जा लौट कर एक ओर खड़ी हुई और उसे नमस्कार कर बोली—स्वामी, मेरा पति स्वर्ण-वर्ण का है, सदाचारी है, अस्सी हजार मृगों का राजा है। इस प्रकार बोधिसत्व की प्रशंसा कर मृगराज के खड़े रहते ही उसने अपने वध की याचना करते हुए तीसरी गाथा कही :—

अत्थरस्सु पलासानि असिं निब्बाह लुद्दक,
पठमं मं वधित्वान हन पच्छा महामिगं ॥

[शिकारी ! (माँस रखने के लिए) पत्तों को फैला और तलवार निकाल कर पहले मेरा बध कर, पीछे महामृग का।]

यह सुन शिकारी ने सोचा—मनुष्य होकर भी (लोग) स्वामी के लिए अपने प्राण नहीं देते, यह पशु होकर भी अपना प्राण परित्याग कर रही है, और मनुष्य-भाषा में मधुर-स्वर से बोल रही है। आज इसे और इसके पति को जीवन दूँगा। उसने प्रसन्न-चित्त हो चौथी गाथा कही:—

न मे सुतं वा दिट्ठं वा भासन्तिं मानुसिं मिगिं,
त्वञ्च भद्दे ! सुखी होहि एसो चापि महामिगो ॥

[मैंने मानुषी भाषा बोलने वाली मृगी न देखी, न सुनी। भद्रे ! तू सुखी हो, और यह महामृग भी सुखी होवे।]

[इस प्रकार दोनों जनों को आश्वासन दे शिकारी ने बोधिसत्व के पास जा छुरी-कुल्हाड़ी से चमड़े का बन्धन काट दिया और पाँव से लगा हुआ फन्दा धीरे से हटा, नसों को नसों से, माँस को माँस से तथा चमड़ी को चमड़ी से ढक पाँव पर हाथ फेरा। उसी क्षण बोधिसत्व द्वारा पूरी की गई पारमिताओं के प्रताप से, शिकारी के मैत्री-चित्त के प्रताप से और मृगी के मैत्रीधर्म के प्रताप से माँस चर्म और नसें पूर्ववत् हो गईं। बोधिसत्व भी सुखी दुख-रहित हो खड़ा हुआ।]

मृगी ने बोधिसत्व को सुखी देख प्रसन्न-चित्त हो शिकारी का अनुमोदन करते हुए पाँचवीं गाथा कही:—

एवं लुद्दक नन्दस्सु सह सब्बेहि ञातिहिं
यथाहमज्ज नन्दामि मुत्तं दिस्वा महामिगं ॥

[शिकारी, सभी ज्ञातियों के साथ उसी तरह आनन्दित होओ जैसे मैं महामृग को मुक्त देखकर आज प्रसन्न हूँ।]

बोधिसत्व ने 'यह शिकारी मेरा उपकारी हुआ, मुझे भी इसका उपकारी होना चाहिए' सोच चरने की जगह पर एक मणि-ढेरी देख, उसे देकर कहा—सौम्य, अब से प्राणी-हिंसा मत करना। इससे कुटुंब का पालन करते हुए, बच्चों का पोषण करते हुए, दान शीलादि पुण्य कर्म करना। इस प्रकार इसे उपदेश दे बोधिसत्व जंगल को गये।

शास्ता ने धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शिकारी छन्न था। मृगी तरुण भिक्षुणी। मृगराज तो मैं ही था।

३६०. सुसन्धि जातक

"वातिगन्धो तिमिरानं......" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच उद्विग्न-चित्त है ? 'हाँ सचमुच' कहने पर पूछा—क्या देखकर उद्विग्न-चित्त हुआ ? वह बोला—अलंकृत स्त्री को देख कर। तब शास्ता ने कहा—यह जो स्त्री है, इसको सुरक्षित रखा नहीं जा सकता; पुराने पण्डित गरुड़-भवन में ले जाकर सुरक्षित रखने का प्रयत्न करने पर भी असमर्थ रहे।

इतना कह उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में तम्ब-राजा नामक राजा राज्य करता था। उसकी सुसन्धि नामक भार्य्या थी, उत्तम रूप वाली। उस समय बोधित्सव गरुड़-योनि में पैदा हुए थे, और उस समय नाग-द्वीप का नाम सेरुम द्वीप था। बोधिसत्व इस द्वीप में गरुड़-भवन में रहते थे। वह गरुड़-भवन से निकल वाराणसी जा तम्ब-राजा के साथ युवक के वेष में जुआ खेलते थे। उसका रूप-सौन्दर्य्य देख परिचारिकाओं ने सुसन्धि से कहा—हमारे राजा के साथ इस प्रकार का युवक जुआ खेलता है। यह सुन वह एक दिन उसे देखने की इच्छा से सज सजाकर जुआ खेलने के स्थान पर आई और परिचारिकाओं में खड़ी होकर उसने उसे देखा। उसने भी देवी को देखा। दोनों परस्पर आकर्षित हो गये। गरुड़-राज ने अपने प्रताप से नगर में आन्धी उठा दी। घरों के गिरने के डर से राज-महल के निवासी बाहर निकल पड़े।

तब उसने अपने प्रताप से अन्धेरा कर दिया और देवी को आकाश मार्ग से ले जा नाग-द्वीप में अपने भवन में प्रविष्ट हुआ। कोई नहीं जानता था कि सुसन्धि कहाँ गई। वह उसके साथ रमण कर जाकर राजा के साथ जुआ खेलता। राजा का अग्र नामक गन्धर्व था। राजा को जब देवी के जाने की जगह का पता नहीं लगा तो उसने उस गन्धर्व को बुला कर प्रेरित किया—तात ! सब स्थल-पथों तथा जल-पथों में घूमकर पता लगाओ कि देवी कहाँ गई ?

वह खर्चा ले द्वार-गाम से ही खोज करता करता भरुकच्छ[1] पहुँचा। उस समय भरुकच्छ के व्यापारी नौका से स्वर्ण-भूमि जाते थे। वह उनके पास जाकर बोला—

मैं गन्धर्व हूँ। नौका का किराया न देकर उसकी बजाय तुम्हारे लिये गाना बजाना करूँगा। मुझे भी नौका में ले चलें।

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और नौका छोड़ दी। सुख से चली जा रही नौका में उन्होंने उसे बुलाकर कहा—

"हमारे लिये गाना-बजाना करो।"

"यदि मैं गाऊँ बजाऊँगा, तो मेरे गाने बजाने पर मछलियाँ चञ्चल हो जायेंगी। तुम्हारी नौका टूट जायगी।"

"मनुष्य-मात्र के गाना-बजाना करने से मछलियां चञ्चल नहीं होतीं। (गाना-बजाना) करो।"

"तो मुझ पर क्रोधित न होना।"

उसने वीणा खोली, तार के स्वर से गीत का स्वर और गीत के स्वर से तार का स्वर मिला कर गाना-बजाना किया। उसके स्वर से मस्त होकर मच्छ चञ्चल हो गये।

एक मगर-मच्छ उछल कर नाव में आ पड़ा। नौका तोड़ दी। वह अग्र लकड़ी के तख्ते से चिपटा हुआ, वायु के अनुसार बहता बहता नाग-द्वीप में गरुड़-भवन के पास निग्रोध-वृक्ष के समीप पहुँचा। सुसन्धि देवी भी गरुड़-राज के जुआ खेलने जाने पर विमान से उतर समुद्र-तट पर विचरती थी। उसने उस अग्र गन्धर्व को देख, पहचान कर पूछा—

"कैसे आया?" उसने सब कहा। 'तो डर मत' कह उसे बाहों से पकड़, विमान पर ले जा शैय्या पर लिटाया। विश्राम कर चुकने पर दिव्य भोजन दे, दिव्य गन्धोदक से नहला, दिव्य वस्त्र पहना, दिव्य सुगन्धित पुष्पों से सजा उसे फिर दिव्य शैय्या पर लिटाया।

इस प्रकार उसकी सेवा करती हुई वह गरुड़-राज के आने के समय उसे छिपाकर रखती, चले जाने पर उसके साथ रमण करती। तब महीने

---

[1] वर्तमान भड़ौच (गुजरात)

डेढ़ महीने के बाद वाराणसी-निवासी व्यापारी लकड़ी-पानी लेने के लिये उस द्वीप के निग्रोध-वृक्ष के पास पहुँचे। वह उनके साथ नौका पर चढ़ वाराणसी पहुँचा। वहाँ राजा को देखते ही, उसके जुआ खेलते समय, वीणा ले, राजा के सम्मुख गाना-बजाना करते हुए उसने पहली गाथा कही—

वाति गन्धो तिमिरानं कुसमुद्दो च घोसवा,
दूरे इतो हि सुसन्धि तम्ब कामा तुदन्ति मं ॥

[(जहाँ) तिमिर (-वृक्षों) की गन्ध बहती है, समुद्र घोषणा करता है, (वहां) यहाँ से दूर सुसन्धि है, हे तम्ब ! काम मुझे बींधते हैं ।]

यह सुन गरुड़-राज ने दूसरी गाथा कही—

कथं समुद्दमतरि कथं अद्दक्खि सेरुमं,
कथं तस्स च तुय्हञ्च अहु अग्ग समागमो ॥

[कैसे समुद्र पार किया ? कैसे सेरुम देखा ? हे अग्ग ! उसका और तुम्हारा समागम कैसे हुआ ?]

तब अग्ग ने तीन गाथायें कहीं—

भरुकच्छा पयातानं वाणिजानं धनेसिनं,
मकरेहऽभिदा नावा फलकेनाहमप्लविं ॥
सा मं सण्हेन मुदुना निच्चं चन्दनगन्धिनी,
अङ्गेन उद्धरी भद्दा माता पुत्तंव ओरसं ॥
सा मं अन्नेन पानेन वत्थेन सयनेन च,
अत्तनापि च मद्दक्खी एवं तम्ब विजानहि ॥

[भरुकच्छ से चले धनेच्छुक व्यापारियों की नौका मगर-मच्छों ने तोड़ दी । मैं उसी नाव के तख्ते से तट पर लगा । उस भद्रा ने—जो नित्य चन्दन की सुगन्धी देती है—प्रिय तथा मृदु-वाणी के साथ (मेरा) अङ्ग पकड़ कर मेरा उद्धार किया, वैसे ही जैसे माता औरस-पुत्र का । उस मस्त-आँख वाली ने, हे तम्ब ! तू यह जान ले कि अन्न-पान, वस्त्र, शयन तथा अपने-आप से (मेरी सेवा की) ।]

गरुड़-राज को गन्धर्व के कहने के ही समय पश्चाताप हुआ । उसने सोचा—मैं गरुड़-भवन में रहता हुआ भी इसको सुरक्षित नहीं रख सका,

मुझे इस दुश्शीला से क्या ! वह उसे लाया और राजा को लौटा कर चला गया। फिर उसके बाद नहीं आया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों की समाप्ति पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय राजा आनन्द था। गरुड़-राज तो मैं ही था।

पाँचवाँ परिच्छेद

२. वरणारोह वर्ग

३६१. वरणारोह जातक

"वरणारोहेन..." यह शास्ता ने श्रावस्ती के पास जेतवन में विहार करते समय दोनों प्रधान-श्रावकों के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक बार दोनों महास्थविर 'इस वर्षा-काल में आरण्य-वास करेंगे' सोच, शास्ता से आज्ञा ले, मण्डली छोड़, अपना अपना पात्र-चीवर स्वयं अपने ही उठा, जेतवन से निकल, एक प्रत्यन्त-गाँव के पास के जङ्गल में रहने लगे। एक उच्छिष्ट खाने वाला आदमी भी स्थविरों की सेवा करता हुआ वहीं एक ओर रहने लगा। उसने स्थविरों को मेल-मिलाप से रहते देख सोचा—यह अत्यन्त प्रेम से रहते हैं। क्या मैं इनमें परस्पर फूट डाल सकता हूँ ? वह सारि-पुत्र स्थविर के पास गया और पूछने लगा—भन्ते क्या आर्य महामौदगल्यायन स्थविर के साथ आपका किसी प्रकार का वैर है ?

"क्यों, आयुष्मान !"

"भन्ते, यह मेरे आने पर आपकी यही कह कर निन्दा करते हैं कि सारिपुत्र जाति, गोत्र, कुल अथवा सुत्तन्त अथवा ज्ञान अथवा ऋद्धि में मेरा क्या मुकाबला कर सकता है ?"

स्थविर ने मुस्कराकर कहा—आयुष्मान तू जा। दूसरे दिन वह महामौदगल्यायन स्थविर के पास जाकर भी यही बोला। उसने भी मुस्कराकर कहा—आयुष्मान तू जा। महामौदगल्यायन स्थविर ने सारिपुत्र स्थविर के पास जाकर पूछा—आयुष्मान यह उच्छिष्ट-भोजी तुम्हारे पास आकर कुछ कहता था ?

"आयुष्मान, यह मुझसे भी कहता था इसे निकाल देना चाहिए।"

"अच्छा आयुष्मान, निकाल" कहने पर स्थविर ने "यहाँ मत रह" कह चुटकी बजाकर उसे निकाल दिया। वे दोनों मेल मिलाप से रहे। फिर शास्ता के पास जा प्रणाम कर बैठे। शास्ता के कुशल क्षेम पूछने के बाद प्रश्न किया—भन्ते! एक उच्छिष्ट भोजी ने हममें फूट डालने का प्रयत्न किया। वह असफल रहा और भाग गया।

"न केवल अभी सारिपुत्र, इससे पहले भी तुममें फूट डालने का प्रयत्न किया, परन्तु असमर्थ रहा और भाग गया।"

शास्ता ने उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व जंगल में वृक्ष-देवता हुए। उस समय एक सिंह और व्याघ्र जंगल में पर्वत गुफा में रहते थे। एक गीदड़ उनकी सेवा में रह कर उच्छिष्ट खाकर मोटा हो गया और एक दिन सोचने लगा—मैंने सिंह और व्याघ्र का मांस कभी नहीं खाया। मुझे इन दोनों जनों में फूट डालनी चाहिए। जब ये झगड़ा कर मरेंगे तब इनका मांस खाऊँगा। उसने सिंह के पास जाकर पूछा—"स्वामी! क्या आपका व्याघ्र के साथ कुछ वैर है?"

"सौम्य, क्या बात है?"

"भन्ते, यह मेरे आने के समय तुम्हारी यह कह कर निन्दा ही करता है कि सिंह न शरीर-वर्ण में, न शरीर की गठन में, न जाति में, न बल में और न वीर्य में ही मेरा एक हिस्सा भी है।"

सिंह ने उत्तर दिया—तू जा। यह ऐसा नहीं कहेगा। उसने व्याघ्र के पास भी जाकर इसी प्रकार कहा। व्याघ्र यह सुन सिंह के पास पहुँचा। उसने 'मित्र क्या तूने यह यह कहा?' पूछते हुए पहली गाथा कही—

वण्णारोहेन जातिया बलनिक्खमणेन च,
सुबाहु न मया सेय्यो सुदाठ इति भाससि ॥

[हे मृगराज! क्या तूने यह कहा है कि सुबाहु न वर्ण में, न शरीर-गठन में, न जाति में, न काय-बल में और न पराक्रम में ही मुझसे बढ़कर है?]

यह सुन सुदाठ ने शेष चार गाथायें कहीं—

वण्णारोहेन जातिया बलनिक्खमणेन च,
सुदाठो न मया सेय्यो सुबाहु इति भाससि ॥
एवञ्चे मं विहरन्तं सुबाहु सम्म दुब्भसि,
तदानाहं तया सद्धिं संवासं अभिरोचये ॥
यो परेसं वचनानि सद्दहेय यथातथं,
खिप्पं भिज्जेथ मित्तस्मिं वेरञ्च पसवे बहुं ॥
न सो मित्तो यो सदा अप्पमत्तो
भेदासङ्की रन्धमेवानुपस्सी,
यस्मिञ्च सेति उरसीव पुत्तो
सवे मित्तो यो अभेज्जो परेहि ॥

[हे मित्र सुबाहु ! जब से उसने मुझे यह कह कर कि सुबाहु मुझे ऐसा कहता है कि सुदाठ न वर्ण में, न शरीर-गठन में, न जाति में, न काय-बल में और न पराक्रम में ही मुझ से बढ़कर है, मेरे मन में द्वेष पैदा करना चाहा है, तब से मुझे इसके साथ रहना पसन्द नहीं। जो दूसरों के जैसे तैसे वचनों का विश्वास कर लेता है वह जल्दी ही मित्रों से फूट पड़ता है और उसके मन में बहुत वैर पैदा हो जाता है। जो सदा फूट की आशंका से अप्रमादी हो मित्र के छिद्र ही ढूढ़ंता रहता है, वह मित्र नहीं है। मित्र तो वही है, जिसे दूसरे फोड़ नहीं सकते और जिसकी गोद में ऐसे सिर रख कर सोया जा सकता है जैसे पुत्र (माता की गोद में।]

इनचार गाथाओं द्वारा सिंह ने जब मित्र के गुणों का वर्णन किया तो व्याघ्र ने अपने को दोषी समझ सिंह से क्षमा मांगी। वे उसी प्रकार मेल मिलाप से रहे। लेकिन श्रृगाल भागकर अन्यत्र चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मृग उच्छिष्ट-भोजी था। सिंह सारिपुत्र। व्याघ्र मौदगल्यायन। उस बात को प्रत्यक्ष देखने वाला तथा उस बन में रहने वाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

३६२. सीलवीमंस जातक

"सीलं सेय्यो..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक सदाचार की परीक्षा करने वाले ब्राह्मण के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

राजा उसे अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा विशेष मानता था, (क्योंकि) वह सदाचारी था। उसने सोचा—क्या राजा सदाचारी होने के कारण मेरा सम्मान करता है अथवा (बहु-) श्रुत होने के कारण? मैं परीक्षा करूँगा कि सदाचार अधिक महत्व का होता है वा (बहु-) श्रुत होना? उसने एक दिन सराफ के तख्ते पर से कार्षापण उठा लिया। सराफ गौरव का ख्याल कर कुछ न बोला। दूसरी बार भी उसने कुछ न कहा। लेकिन तीसरी बार तो उसे पकड़ ले जाकर राजा को दिखाया—यह डाकू-चोर है। राजा ने पूछा—इसने क्या किया?

"कुटुम्ब (की सम्पत्ति) लूटता है।"

"ब्राह्मण! क्या सचमुच?"

"महाराज! कुटुम्ब (की सम्पत्ति) नहीं लूटता हूँ। मेरे मन में सन्देह उत्पन्न हुआ था कि सदाचार अधिक महत्व की चीज है वा (बहु-) श्रुत होना। इसलिये इन दोनों में कौन अधिक महत्व का है, परीक्षा करने के लिये मैंने तीन बार कार्षापण उठाये। यह मुझे बाँध कर तुम्हारे पास ले आया है। अब मैं समझ गया हूँ कि (बहु-) श्रुत होने की अपेक्षा सदाचारी होना बढ़कर है। मुझे गृहस्थी नहीं चाहिये। मैं प्रव्रजित होऊँगा।"

उसने प्रव्रज्या की स्वीकृति ले, बिना घर द्वार की ओर देखे जेतवन जा शास्ता से प्रव्रज्या की याचना की। शास्ता ने उसे प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा दिलवाई। वह उपसम्पदा के थोड़े ही समय बाद विपश्यना-भावना का अभ्यास कर अग्र-फल[1] में प्रतिष्ठित हुआ। भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात-

---

[1] अग्र-फल = अर्हत्व।

चीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक ब्राह्मण अपने शील की परीक्षा कर, प्रव्रजित हो अर्हत्व को प्राप्त हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पहले भी पण्डितों ने अपने शील की परीक्षा कर, प्रव्रजित हो, अपने आपको प्रतिष्ठित किया है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर उसने तक्षशिला जा, सब विद्यायें सीख, वाराणसी लौट राजा से भेंट की। राजा ने उसे अपना पुरोहित बनाया। वह पञ्चशीलों की रक्षा करता था। राजा भी उसे सदाचारी जान उसका आदर करता था। उसने सोचा क्या राजा मेरा आदर सदाचारी होने के कारण करता है अथवा (बहु-) श्रुत होने के कारण......सारी कथा 'वर्तमान-कथा' के समान है। लेकिन इस कथा में उस ब्राह्मण ने 'अब मैंने (बहु-) श्रुत होने की अपेक्षा सदाचारी होने को बड़ा समझ लिया' कह ये पाँच गाथायें कहीं:—

सीलं सेय्यो सुतं सेय्यो इति मे संसयो अहु,
सीलमेव सुता सेय्यो इति मे नत्थि संसयो ॥
मोघा जाति च वण्णो च सीलमेव किरुत्तमं,
सीलेन अनुपेतस्स सुतेन अत्थो न विज्जति ॥
खत्तियो च अधम्मट्ठो वेस्सो चाधम्मनिस्सितो,
ते परिच्चज्जुभो लोके उपपज्जन्ति दुग्गतिं ॥
खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा चण्डाल पुक्कुसा,
इध धम्मं चरित्वान भवन्ति तिदिवे समा ॥
न वेदा सम्परायाय न जाति न पि बन्धवा,
सकञ्च सीलं संसुद्धं सम्पराय सुखावहं ॥

[सदाचारी होना श्रेष्ठ है, अथवा (बहु-) श्रुत होना श्रेष्ठ है, इस बारे में मुझे संशय था। लेकिन अब मुझे संशय नहीं है, सदाचार ही (बहु-) श्रुतता से श्रेष्ठ है ॥१॥ जाति और वर्ण व्यर्थ है, शील ही श्रेष्ठ है। जो

शील से युक्त है, उसे (बहु-) श्रुत होने से काम नहीं ॥२॥ अधार्मिक क्षत्रिय हो, चाहे अधार्मिक वैश्य हो, वे (देव-लोक तथा मनुष्य-लोक) दोनों लोकों को छोड़ दुर्गति को प्राप्त होते हैं ॥३॥ क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल तथा पुक्कुस[1]—सभी इस लोक में धर्माचरण करने से देवताओं के समान होते हैं ॥४॥ न वेद, न जाति और न बन्धु ही परलोक में सुख दे सकते हैं, अपना शुद्ध शील ही परलोक में सुख का दायक होता है ॥५॥]

इस प्रकार बोधिसत्व शील की प्रशंसा कर, राजा से प्रव्रज्या की स्वीकृति ले, उसी दिन हिमालय चला गया और वहाँ ऋषि-प्रव्रज्या ले, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्म-लोक-गामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शील की परीक्षा कर ऋषि-प्रव्रज्या लेने वाला मैं ही था।

३६३. हिरि जातक

"हिरिं तरन्तं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय अनाथ पिण्डिक के मित्र प्रत्यन्त-निवासी सेठ के बारे में कही।

(क) वर्तमान कथा (ख) अतीत कथा

दोनों कथायें प्रथम परिच्छेद के नौवें वर्ग के अन्तिम जातक में विस्तार से आ ही गई हैं। लेकिन उस कथा में जब प्रत्यन्त (देश) निवासी सेठ के आदमियों ने वाराणसी सेठ से कहा कि हम सब सम्पत्ति छिन-जाने पर, अपने पास का माल कुछ भी पास न रहने पर भागे तो वाराणसी सेठ ने 'जो अपने

---

[1] शव छोड़ने वाले चण्डाल तथा फूल (=हड्डियाँ ?) छोड़ने वाले पुक्कुस।

पास आने वालों के प्रति अपना कर्तव्य पूरा नहीं करते, उन्हें भी कोई उपकार करने वाला नहीं मिलता' कह ये गाथायें कहीः—

हिरि तरन्तं विजिगुच्छमानं
तवाहमस्मि इति भासमानं,
सेय्यानि कम्मानि अनादियन्तं
ने सो ममन्ति इति नं विजञ्ञा ॥
यं हि कयिरा तं हि वदे यं न कयिरा न तं वदे,
अकरोन्तं भासमानं परिजानन्ति पण्डिता ॥
न सो मित्तो यो सदा अप्पमत्तो
भेदासङ्की रन्धमेवानुपस्सी,
यस्मिञ्च सेति उर-ीव पुत्तो
सवे मित्तो यो अभेज्जो परेहि
पामोज्जकरणं ठानं पसंसावहनं सुखं,
फलानिसंसो भावेति वहन्तो पोरिसं धुरं ॥
पविवेक रसं पीत्वा रसं उपसमस्स च,
निद्दरो होति निप्पापो धम्मपीतिरसं पिवं ॥

[लज्जा-रहित, घृणित, 'मैं तेरा हूँ' यूं ही बात बनाने वाला, उचित कर्मों का न करने वाला (जो आदमी हो) उसे जान ले कि यह मेरा नहीं है। जो करे वही कहे, जो न करे वह न कहे; विना किये (केवल) कहने वाले को पण्डित जान जाते हैं। जो सदा फूट की आशङ्का से अप्रमादी हो मित्र के छिद्र ही ढूँढ़ता रहता है, वह मित्र नहीं है, मित्र तो वही है, जिसे दूसरे फोड़ नहीं सकते ॥ प्रमोद देनेवाले, प्रशंसा देने वाले तथा सुख देने वाले मैत्री-भाव को पुरुष के कर्तव्य को करने वाले (प्रमोद प्रशंसा और सुख के) फल की आशा से बढ़ाते हैं ॥ एकान्त (-वास) तथा शान्ति के रस को पान कर आदमी निडर होता है और धर्म के प्रेम-रस को पान कर निष्पाप ॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने पाप-मित्र संसर्ग से उद्विग्न हो (एकान्त-) वास के रस से अमृत महानिर्वाण की प्राप्ति करा धर्म-देशना को ऊँचे से ऊँचे उठाया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का प्रत्यन्त वासी अबका प्रत्यन्त-वासी ही था। उस समय का वाराणसी सेठ मैं ही था।

३६४. खज्जोपनक जातक

"कोनु सन्तम्हि पज्जोते..." यह खज्जोपनक-पञ्हो महा-उम्मग्ग जातक[1] में विस्तार से आई है।

३६५. अहिगुण्डिक जातक

"धुत्तोम्हि..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक वृद्ध भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कथा पूर्वोक्त सालक-जातक[2] में आई है। इस कथा में भी वह वृद्ध ग्राम-बालक को साधु बना गाली देता और पीटता था। लड़का भाग गया और साधु नहीं रहा। दूसरी बार भी उसे साधु बना वैसा ही किया। दूसरी बार भी वह साधु नहीं रहा। और फिर कहने पर उधर देखना भी नहीं चाहता था। भिक्षुओं ने धर्म सभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, अमुक वृद्ध न

---

[1] महाउम्मग्ग जातक (५४६)

[2] सालक जातक (२४६)

अपने श्रामणेर के साथ रह सकता है न उसके बिना। लड़का उसका दोष देख फिर इधर देखना भी नहीं चाहता। कुमार का दिल अच्छा है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? "अमुक बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ न केवल अभी किन्तु पहले भी यह श्रामणेर सुहृदय ही रहा है और एक बार दोष देखकर फिर उधर देखना भी नहीं चाहा" कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व धान्य व्यापारी के कुल में पैदा हो बड़े होने पर धान्य बिक्री करके ही जीविका चलाते थे। एक सपेरा बन्दर ले, उसे सिखा, साँप का खेल करता था। वाराणसी में उत्सव की घोषणा होने पर वह उस बन्दर को धान्य व्यापारी के पास छोड़ तमाशा करता हुआ सात दिन विचरता रहा। उस व्यापारी ने बन्दर को खाद्य भोज्य दिया। सपेरे ने सातवें दिन लौट उत्सव-क्रीड़ा की मस्ती के कारण उस बन्दर को बांस की छपटी से तीन बार मारा। वह उसे लेकर उद्यान गया और वहां बांध कर सो गया। बन्दर बन्धन खोल आम के वृक्ष पर चढ़ गया और बैठ कर आम खाने लगा। सपेरे ने उठकर वृक्ष पर बन्दर को देखा और सोचा, मुझे इसे बहका कर पकड़ना चाहिये। उसने उससे बात करते हुए पहली गाथा कही :—

धुत्तोम्हि सम्म सुमुख जूते अक्ख पराजितो,
हरेहि अम्बपक्कानि विरियन्ते भक्खयामसे ॥

[मित्र सुमुख! मैं जुए में हारा हुआ जुआरी हूँ। पके आम लो। तुम्हारे वीर्य (से प्राप्त फल) को खायेंगे।]

यह सुन बन्दर ने शेष गाथायें कहीं :—

अलिकं वत मं सम्म अभूतेन पसंससि,
को ते सुतो वा दिट्ठो वा सुमुखो नाम मक्कटो ॥
अज्जापि मे तं मनसि यं मं त्वं अहितुण्डिक,
धञ्ञापणं पविसित्वा मत्तो छातं हनासि मं ॥

ताहं सरं दुखसेय्यं अपि रज्जम्पि कारये,
नेवाहं याचितो दज्जं तथा हि भयतज्जितो ॥
यञ्च जञ्ञा कुलेजातं गब्भे तित्तं अमच्छरिं,
तेन सखिञ्च मित्तञ्च धीरो संधातुमरहति ॥

[मित्र ! तू मेरी झूट-मूट की प्रशंसा करता है । बता, तूने किस बन्दर को सुमुख देखा या सुना है ? हे सपेरे आज भी वह मेरे मन में है जो तूने धान्य की दुकान में घुसकर मस्ती में मुझ भूखे को मारा था । उस दुख की याद करके मैं ऐसा भयभीत हूँ कि यदि तू राज्य भी कराये तो भी मैं मांगने पर भी (आम) नहीं दूँगा । धीर आदमी को उसे ही सखा बनाना चाहिये और उसीसे मैत्री करनी चाहिये जिसे जाने की वह (अच्छे) कुल में पैदा हुआ है, (माता के) गर्भ से ही संतोषी है और है मात्सर्य-रहित ।]

यह कह बन्दर तुरन्त जंगल में घुस गया । शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय सपेरा वृद्ध स्थविर था । बन्दर श्रामणेर । धान्य व्यापारी तो मैं ही था ।

३६६. गुम्बिय जातक

"मधुवण्णं मधुरसं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे पूछा—"भिक्षु ! क्या तू सचमुच उद्विग्न-चित्त है ?" "भन्ते ! सचमुच" कहने पर पूछा—क्या देखकर उद्विग्न-चित्त हुआ है ? उत्तर मिला—अलंकृत स्त्री को देखकर । शास्ता ने "भिक्षु ! यह पांच काम-भोग गुम्बिय यक्ष द्वारा हलाहल विष मिलाकर रास्ते में रखे मधु की तरह हैं" कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व बंजारों के नेता के कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर वाराणसी से पाँच सौ गाड़ियाँ सामान लेकर व्यापार के लिये जाते समय उसने महामार्ग में जंगल-द्वार पर पहुँच बंजारों को इकट्ठा किया और कहा—भो ! इस रास्ते में विषैले पत्ते, फूल फलादि हैं। तुम किसी ऐसी चीज को जिसे पहले न खाया हो, बिना मुझे पूछे मत खाना। अमनुष्य भी विष मिलाकर भात की पोटली, शहद के छत्ते तथा फलादि रास्ते पर रख देते हैं। वह भी बिना मुझे पूछे न खाना। यह उपदेश दे रास्ते पर चला।

गुम्बिय नाम का एक यक्ष जंगल के बीच में रास्ते पर पत्ते फैला, उन पर विष मिले मधु-पिण्ड रखकर स्वयं रास्ते के पास ही शहद एकत्र करता हुआ, वृक्षों को छीलता हुआ घूमता था। अजानकार समझते थे कि पुण्यार्थ रख होंगे। वे खाकर मर जाते थे। अमनुष्य आकर उन्हें खाते थे।

बोधिसत्व के सार्थ के आदमियों में से भी कुछ लोभी संयम न कर सकने के कारण उन्हें खा गये। बुद्धिमान लोग लिये खड़े रहे कि पूछ कर खायेंगे। बोधिसत्व ने देखते ही जो हाथ में लिये थे उनसे फिंकवा दिये। जिन्हों ने पहले ही खा लिये वे मर गये। जिन्हों ने आधे खाये थे, उन्हें वमन-विरेचन करा चतुर्मधु[1] दिये। उसके प्रताप से उन्हें जीवन मिला। बोधिसत्व सकुशल जहां जाना था वहां पहुँचे और सामान बेच अपने घर लौटे। यह बात सुनाकर शास्ता ने ये अभिसम्बुद्ध गाथायें कहीं :—

मधुवण्णं मधुरसं मधुगन्धं विसं अहु,
गुम्बियो घासमेसानो अरञ्ञे ओदही विसं ॥
मधु इति मञ्ञमाना ये तं विसमसायिसुं,
तेसं तं कटुकं आसि मरणं तेनुपागमुं ॥
ये च खो पटिसङ्खाय विसन्तं परिवज्जयुं,
ते आतुरेसु सुखिता दय्हमानेसु निब्बुता ॥

---

[1] शहद, मक्खन, घी तथा खाण्ड।

एवमेव मनुस्सेसु विसं कामा समोहिता,
आमिसं बन्धनञ्चेतं मच्चुवासो गुहासयो ॥
एवमेव इमे कामे आतुरा परिचारिके,
ये सदा परिवज्जेन्ति सङ्गं लोके उपच्चगुं ॥

[गुम्बिय ने (मृत मनुष्यों के) आहार की खोज करते हुये जङ्गल में मधु-वर्ण, मधु-रस तथा मधु-गन्ध का विष डाला ॥१॥ जिन्होंने उसे मधु समझ चखा, उन्हें वह बड़ा तीक्ष्ण लगा और उससे वे मर गये ॥२॥ जिन्होंने बुद्धि पूर्वक उस विष को ग्रहण नहीं किया, वे उन दुखियों में सुखी रहे और (विष से) दग्ध होते हुओं में शान्त ॥३॥ उसी प्रकार मनुष्य-लोक में जो यह काम भोग बिखरे पड़े हैं—वे विष हैं, लौकिक-बन्धन हैं, मृत्यु-पाश हैं और गुह्याशय हैं ॥४॥ इसी प्रकार क्लेश-परिचारकों वाले इन काम भोगों को जो (मरणासन्न) बुद्धिमान जानकर छोड़ देते हैं, वे सङ्ग से मुक्त हो जाते है ॥५॥]

शास्ता ने सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय सार्थ का नेता मैं ही था।

३६७. सालिय जातक

"य्वायं सालियछापो..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय 'आयुष्मान् देवदत्त त्रास-कारक भी नहीं हो सका' वचन के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने 'न केवल अभी भिक्षुओ, पहले भी यह मेरा त्रास-कारक भी नहीं हो सका' कह पूर्व जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गाँव में एक गृहस्थ के घर में पैदा हुए। तरुण होने पर (वह) लंगोटिया यारों के साथ ग्राम-द्वार पर ही गूलर के पेड़ पर खेलता था। एक दुर्बल वैद्य को जब गाँव में कुछ काम न मिला तो उसने वृक्ष के खोंडर में से सिर निकाल कर सोये एक सर्प को देखकर सोचा—मुझे गाँव में कुछ नहीं मिला। इन लड़कों को ठग कर, साँप से डसवा कर (फिर) चिकित्सा कर कुछ भी प्राप्त करूँगा। उसने बोधिसत्व से पूछा—यदि मैना का बच्चा मिले तो लोगे ?

"हाँ, लूँगा।"

"देख, यह खोंडर में सोया है।"

उसने बिना यह जाने कि वह साँप है वृक्ष पर चढ़ उसे गर्दन से पकड़ लिया। जब ज्ञात हुआ कि सर्प है तो उसे मुड़ने न देकर अच्छी तरह पकड़े रहकर जोर से फेंक दिया। वह जाकर वैद्य की गर्दन पर गिरा और उसकी गर्दन में लिपट 'कर कर' डस, उसे वहीं गिरा भाग गया। आदमियों ने घेर लिया। बोधिसत्व ने इकट्ठे हुए आदमियों को धर्मोपदेश देते हुए ये गाथायें कहीं:—

> स्वायं सालियछापोति कण्हसप्पं अगाहयि,
> तेन सप्पेनयं दट्ठो हतो पापानुसासको ॥
> अहन्तारमहन्तारं यो नरो हन्तुमिच्छति,
> एवं सो निहतोसेति यथायं पुरिसो हतो ॥
> अहनन्तमघातेन्तं यो नरो हन्तुमिच्छति,
> एवं सो निहतो सेति यथायं पुरिसो हतो ॥
> यथा पंसुमुट्ठिं पुरिसो पटिवातं पटिक्खिपे,
> तमेव सो रजो हन्ति तथायं पुरिसो हतो ॥
> यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति
> सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स,
> तमेव बालं पच्चेति पापं
> सुखुमो रजो पटिवातं व खित्तो ॥

[जिसने कृष्ण सर्प को 'मैना का बच्चा' कह कर पकड़वाया, वह बुराई करने वाला उसी सर्प से डसा जाकर मर गया ॥१॥ जो नर उसकी हत्या करना चाहता है, जो किसी की हत्या नहीं करता, वह इस पुरुष की ही तरह मर कर सोता है ॥२॥ जो नर उसका घात करना चाहता है, जो किसी का घात नहीं करता वह इस पुरुष की ही तरह मर कर सोता है ॥३॥ जैसे आदमी बालू की मुट्ठी को हवा के विरुद्ध फेंके; वह उसी आदमी को चोट पहुँचाती है; वैसे ही यह आदमी मारा गया ॥४॥ जो शुद्ध, निर्मल, दोष-रहित मनुष्य को दोषी ठहराता है, उस दोषी ठहराने वाले मूर्ख को ही पाप लगता है। जैसे हवा की दिशा के विरुद्ध फैंकी हुई सूक्ष्म धूलि फेंकने वाले पर ही पड़ती है ॥५॥]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय दुर्बल वैद्य देवदत्त था। बुद्धिमान लड़का तो मैं ही था।

३६८. तचसार जातक

"अमित्तहत्थगता..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय प्रज्ञा-पारमिता के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने 'न केवल अभी भिक्षुओ, किन्तु पहले भी तथागत प्रज्ञावान तथा उपाय-कुशल थे' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व गांव में एक गृहस्थ के कुल में पैदा हो......(सब कुछ पूर्व जातक की तरह कहना चाहिए)। इस कथा में वैद्य के मरने पर ग्रामवासियों ने उन लड़कों

को मनुष्य की हत्या करने वाला समझा और डण्डे से बांध राजा के सामने पेश करने के लिये वाराणसी ले गये। बोधिसत्व ने रास्ते में ही शेष सब लड़कों को उपदेश दिया—तुम डरना नहीं। राजा के सामने जाने पर भी सन्तुष्ट-चित्त तथा प्रसन्न-वदन ही रहना। राजा पहले हमसे बात करेगा। तब उसके बाद मैं जानूँगा (क्या करना चाहिये?)। उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और वैसा ही किया। राजा ने उन्हें निर्भीक, प्रसन्न-चित्त देख सोचा—"यह 'मनुष्य-हत्यारे' माने जाकर डण्डे से बांध कर लाये गये हैं, इस प्रकार के दुःख में पड़े हुए भी डरते नहीं हैं, प्रसन्न-वदन ही हैं। इनके चिन्ता न करने का क्या कारण है? पूछूँगा।"

उनसे प्रश्न करते हुए उसने पहली गाथा कही:—

अमित्तहत्थत्थगता तचसारसमप्पिता,
पसन्नमुखवण्णात्थ कस्मा तुम्हे न सोचथ ॥

[अमित्रों के हाथ में पड़े हुए, बांस के डण्डे से बँधे हुए भी तुम प्रसन्न-वदन ही हो? तुम्हें चिन्ता क्यों नहीं है?]

यह सुन बोधिसत्व ने शेष गाथायें कहीं—

न सोचनाय परिदेवनाय
अत्थो च लब्भा अपि कप्पकोपि,
सोचन्तमेनं दुखितं विदित्वा,
पच्चत्थिका अत्तमना भवन्ति ॥
यतो च खो पण्डितो आपदासु
न वेधती अत्थ विनिच्छयञ्ञू,
पच्चत्थिकास्स दुखिता भवन्ति
दिस्वा मुखं अविकारं पुराणं ॥
जप्पेन मन्तेन सुभासितेन
अनुप्पदानेन पवेणिया वा,
यथा यथा यत्थ लभेथ अत्थं
तथा तथा तत्थ परक्कमेय्य ॥
यतो च जानेय्य अलब्भनेय्यो
मया व अञ्ञेन वा एस अत्थो,

असोचमानो अधिवासपेय्य
कम्मं दळ्हं किन्ति करोमिदानि ॥

[न चिन्ता करने से, न रोने पीटने से ही थोड़ा भी लाभ होता है । इसे चिन्तित और दुःखी देखकर शत्रु प्रसन्न होते हैं॥१॥ जब भी अर्थ-विनिमय का ज्ञाता पण्डित आपत्ति में अस्थिर नहीं होता, तो इसके शत्रु इसके पूर्ववत् अविकारी मुँह को देखकर दुःख को प्राप्त होते हैं ॥२॥ जिस जिस उपाय से भी जहाँ अर्थ सिद्ध होवे, वह वह उपाय करे—चाहे (मन्त्र) जाप से, चाहे मन्त्रणा से, चाहे सुभाषण से, चाहे (रिश्वत आदि ?) देने से और चाहे कुलागत सम्बन्ध करने से ॥३॥ जब समझ ले कि मेरे अथवा अन्य के द्वारा इस अर्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती तो चिन्ता न करते हुए यह समझ कर कि (पूर्व) कर्म दृढ़ है, क्या करूँ ? सहन करे ॥४॥]

राजा ने बोधिसत्व की धार्मिक-कथा सुन, मुकद्दमे कर, लड़कों को निर्दोष जान दण्डे खुलवा दिये और बोधिसत्व का बहुत सत्कार कर उसे अपना अर्थधर्मानुशासक अमात्यरत्न बना लिया । शेष लड़कों का भी सत्कार कर उन्हें दूसरे दूसरे पद दिये ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया, उस समय वाराणसी राजा आनन्द था । लड़के स्थविरानुस्थविर । पण्डित लड़का तो मैं ही था ।

३६९. मित्तविन्दक जातक

"क्याहं देवानमकरं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बात न मानने वाले भिक्षु के बारे में कही ।

ख. अतीत कथा

कथा महामित्तविन्दक जातक[1] में आएगी। लेकिन यह मित्त-विन्दक समुद्र में फेंका जाने पर अति-लोभी हो, आगे जा नरक-गामी प्राणियों के (आग में) पकने के स्थान उस्सद-नरक को देख सोचने लगा कि यह एक नगर है। उसने उसमें प्रवेश कर खुर-चक्र का दुःख भोगा। उस समय बोधि-सत्व देव-पुत्र की योनि में उस्सद-नरक में घूमते थे। उसने उन्हें देख प्रश्न करते हुए पहली गाथा कही—

> क्याहं देवानमकरं किं पापं पकतं मया,
> यं मे सिरस्मिं ओहच्च चक्कं भमति मत्थके ॥

[स्वामी ! मैंने देवताओं का क्या (अपराध) किया ? मेरे द्वारा कौनसा पाप किया गया, जिसके फलस्वरूप मेरे सिर में लगकर मेरे मस्तक पर चक्र घूमता है ?]

यह सुन बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

> अतिक्कम्म रमणकंसदामत्तञ्च दूभकं,
> ब्रह्मत्तरञ्च पासादं केनट्ठेन इधागतो ॥

[तू रमणक, सदामत्त, दूभक तथा ब्रह्मत्तर प्रासाद छोड़ कर यहाँ क्यों आया ?]

तब मित्तविन्दक ने तीसरी गाथा कही—

> इतो बहुतरा भोगा अत्र मञ्ञे भविस्सरे,
> इति एताय सञ्ञाय पस्स मं ब्यसनं गतं ॥

[इन सब प्रासादों से अधिक भोग यहाँ होंगे। इस समझ के कारण देख मैं (किस) दुःख में आ पड़ा हूँ।]

तब बोधिसत्व ने शेष गाथायें कहीः—

> चतुब्भि अट्ठज्झगामा अट्ठका हि च सोळस,
> सोळसाहि च द्वत्तिंस अत्रिच्छं चक्कमासदो,
> इच्छाहतस्स पोसस्स चक्कं भमति मत्थके ॥

---

[1] महामित्तविन्दक जातक (४३९)

उपरि विसाला दुप्पूरा इच्छा विसटगामिणी,
येतं अनुगिज्झन्ति ते होन्ति चक्कधारिनो[1] ॥

[चार से आठ, आठ से सोलह, सोलह से बत्तिस की इच्छा करने के कारण यह सिर पर घूमने वाला चक्र प्राप्त हुआ। इच्छा (लोभ) से ताड़ित मनुष्य के सिर पर चक्र घूमता है।]

[यह तृष्णा ऊपर की ओर चढ़ती जाने वाली, पूरी न हो सकनेवाली, तथा फैलती जाने वाली है। जो इस तृष्णा में लुब्ध होते हैं, वे ही चक्रधारी होते हैं।]

मित्तविन्दक के बोलते रहते ही वह चक्र उसे मरोड़ कर स्वयं भी लुप्त हो गया। इससे वह फिर कुछ न कह सका। देवपुत्र अपने देवस्थान को चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मित्त-विन्दक बात न मानने वाला भिक्षु था। देवपुत्र तो मैं ही था।

३७०. पलास जातक

"हंसो पलासमवच..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कामुकता के निग्रह के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कथा पञ्जासजातक[2] में आएगी। उस कथा में शास्ता ने भिक्षुओं को बुलाकर 'भिक्षुओ, कामुकता से सशङ्कित ही रहना चाहिये। थोड़ी भी बट

---

[1] मित्तविन्द जातक (१०४)

[2] पञ्जा जातक भी पाठ है, किन्तु यह पञ्जा जातक कौनसी है, निश्चित रूप से कहना कठिन है।

के वृक्ष की तरह विनाश का कारण होती है। पुराने पण्डितों ने भी शङ्कनीय विषयों में शङ्का की ही है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व स्वर्ण (वर्ण) हंस की योनि में पैदा हुए। बड़े होने पर चित्र-कूट पर्वत पर स्वर्ण-गुफा में रह (वह) हिमालय-प्रदेश के जलाशय में अपने से उत्पन्न धान खाकर आता। उसके आने जाने के मार्ग में पलास का महान् वृक्ष था। वह जाता हुआ भी वहाँ विश्राम करके जाता और आता हुआ भी वहां विश्राम करके आता। उस वृक्ष पर रहने वाले देवता से उसकी मैत्री हो गई। आगे चल कर एक चिड़िया एक बट के पेड़ से पका गोदा खाकर आई और उस पलास वृक्ष पर बैठ, शाखाओं के बीच बीट कर दी। उसमें से बट का वृक्ष पैदा हो गया। वह जब चार अङ्गुल मात्र था, तब लाल लाल पत्ते होने से शोभा देता था। हंस राजा ने उसे देख वृक्ष-देवता को आमन्त्रितकर कहा—मित्र! बड़ (का पौधा) जिस वृक्ष पर पैदा होता है, बढ़ने पर उसे नष्ट कर देता है। इसे बढ़ने मत दे। तेरे विमान को नष्ट कर देगा। इसे तुरन्त ही उखाड़ डाल। जो सशङ्कित बात हो, वहां शङ्का करनी चाहिए। उसने पलास-देवता से मन्त्रणा करते हुए पहली गाथा कही—

हंसो पलासमवच[1] निग्रोधो सम्म जायति,
अङ्कस्मिं ते निसिन्नोव सो ते मम्मानि छेच्छति॥

[हंस ने पलास से कहा—मित्र, बट पैदा हो रहा है। वह तेरी गोद में बैठा हुआ ही तेरा प्राण ले लेगा।]

यह सुन उसका कहना अस्वीकार करते हुए वृक्ष-देवता ने कहा—

वड्ढतामेव निग्रोधो पतिट्ठस्स भवामहं,
यथा पिता च माता च एवमेस्स भविस्सति॥

[यह बट बढ़े। मैं इसका आधार होऊँगा। जैसे माता पिता होते हैं, (वैसा ही) इसका। (और मेरा) सम्बन्ध होगा।]

---

[1] इस गाथा का पहला पद शास्ता द्वारा कहा गया है।

तब हंस ने तीसरी गाथा कही—

यं त्वं अङ्कस्मिं वड्ढेसि खीरुक्खं भयानकं,
आमन्त खो तं गच्छामि वुड्ढिमस्स न रुच्चति ॥

[मैं तुझे यह जताकर जाता हूँ कि तू जिस भयानक दुग्ध-वृक्ष (वट) को गोद में पालता है, मुझे इसका बढ़ना अच्छा नहीं लगता ।]

यह कह हंस-राज पंख पसार कर चित्र-कूट पर्वत पर ही चला गया । इसके बाद फिर नहीं आया । आगे चलकर बट बढ़ा । उसपर एक वृक्ष देवता भी रहने लगा । उसने बढ़ते हुए पलास को तोड़ा । शाखाओं के साथ (पलास-) देवता का विमान भी गिर गया । उसने उस समय हंस-राजा के वचन को याद किया कि इसी भावी-भय को देख कर हंसराज कहता था । लेकिन मैंने उसका कहना नहीं माना । उसने रोते-पीटते चौथी गाथा कही—

इदानि खो मं भायति महानेरुनिदस्सनं,
हंसस्स अनभिञ्ञाय महा मे भयमागतं ॥

[अब यह मुझे डराता है । हंस की बात न समझने से मुझ पर यह महानेरु (पर्वत) के समान महान् आपत्ति आई ।]

वट ने बढ़ते हुए सारे पलास को तोड़ ठूँठ मात्र कर दिया । देवता का सारा विमान नष्ट हो गया ।

पाँचवीं गाथा अभिसम्बुद्ध-गाथा है—

न तस्स वुड्ढि कुसलप्पसत्था
यो वड्ढमानो घसते पतिट्ठं,
तस्सूपरोधं परिसङ्कमानो
पतारयी मूलवधाय धीरो ॥

[जो बढ़ता हुआ उसी को खाता है जिस पर वह प्रतिष्ठित है, उसकी बढ़ती कुसल लोगों द्वारा प्रशंसित नहीं है । उससे उत्पन्न हुए उपरोध की शङ्का कर धीर उसके मूल को ही नष्ट करने का प्रयत्न करे ।]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों के अन्त में पाँच सौ भिक्षुओं को अर्हत्व प्राप्त हुआ । उस समय स्वर्ण-हंस मैं ही था ।

पाँचवाँ परिच्छेद

३. अड्ढ वर्ग

३७१. दीधिति जातक

"एवं भूतस्स ते राजा..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोसम्बी के झगड़ालुओं के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उनके जेतवन आकर क्षमा-याचना करने के समय शास्ता ने उन्हें आमन्त्रित कर कहा—भिक्षुओ, तुम मेरे पुत्र हो, मुँह से उत्पन्न पुत्र हो। पुत्रों को चाहिये कि पिता के दिये गये उपदेश का उलंघन न करें। लेकिन तुम उपदेश के अनुसार नहीं चलते। पुराने पण्डितों ने अपने माता-पिता को मार, राज्य प्राप्त करने वाले चोरों को, जङ्गल में हाथ आ जाने पर भी केवल इसलिये नहीं मारा कि माता-पिता की आज्ञा का उलङ्घन नहीं करेंगे। यह कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

इस जातक की दोनों कथायें संघभेदक जातक[1] में विस्तार से आयेंगी। उस दीर्घायुकुमार ने जङ्गल में अपनी गोद में पड़े वाराणसी-राजा को बालों से पकड़ तलवार उठाई कि अब मैं अपने माता पिता की हत्या करने वाले के चौदह टुकड़े करूँगा, लेकिन उसी क्षण माता-पिता द्वारा दिये गये उपदेश को याद कर सोचा कि प्राण जाने पर भी उनकी आज्ञा का उलङ्घन नहीं करूँगा। इसे केवल धमका भर दूँगा। यह सोच उसने पहली गाथा कही—

---

[1] संघ-भेदक जातक अनिश्चित है।

एवं भूतस्स ते राज आगतस्स वसे मम,
अत्थि नु कोचि परियायो यो तं दुक्खा पमोचये ॥

[हे राजन् ! इस प्रकार मेरे वश में आ पड़ने पर क्या कोई ऐसी बात है, जो तुझे दुःख से छुड़ा सके ?]

राजा ने दूसरी गाथा कही—

एवं भूतस्स मे तात आगतस्स वसे तव,
नत्थि नो कोचि परियायो यो मं दुक्खा पमोचये ॥

[हे तात ! इस प्रकार तेरे वश आ पड़ने पर कोई ऐसी बात नहीं है, जो दुःख से छुड़ा सके ।]

तब बोधिसत्व ने शेष गाथायें कहीं :—

नाञ्ञं सुचरितं राज नाञ्ञं राज सुभासितं,
तायते मरणकाले एवमेवितरं धनं ॥
अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे,
ये तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥
अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे,
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥
न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं,
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥

[राजन ! सुचरित या सुभाषित को छोड़ और कुछ इस मरने के समय रक्षा नहीं कर सकता, इसी प्रकार इतर धन भी (निरर्थक) है ॥१॥ 'मुझे गाली दी', 'मुझे मारा', 'मुझे हराया', 'मुझे लूट लिया', जो ऐसी बातें सोचते रहते हैं उनका वैर कभी शान्त नहीं होता ॥२॥ 'मुझे गाली दी', 'मुझे मारा', 'मुझे हराया', मुझे लूट लिया', जो ऐसी बातें नहीं सोचते, उन्हीं का वैर शान्त होता है ॥३॥ वैर, वैर से कभी शान्त नहीं होता, अवैर से ही वैर शान्त होता है —यही संसार का सनातन नियम है ॥४॥]

यह कह बोधिसत्व ने उसके हाथ में तलवार देते हुए कहा—महाराज ! मैं तुम से द्वेष नहीं करता हूँ । तुम मुझे मार डालो । राजा ने भी शपथ की—मैं तुम से द्वेष नहीं करता हूँ । उसके साथ नगर जा उसने अमात्यों को दिखाकर कहा—भणे ! यह कोशल-नरेश का पुत्र दीर्घायुकुमार है ।

इसने मुझे जीवन दान दिया है। मैं इसका कुछ बदला नहीं दे सकता। उसने उसे अपनी लड़की दे, पिता के राज्य पर प्रतिष्ठित किया। तब से दोनों परस्पर मेल से राज्य करने लगे।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मातापिता महाराज-कुल थे। दीर्घायु कुमार तो मैं ही था।

३७२. मिगपोतक जातक

"अगारा पच्चुपेतस्स..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक वृद्ध के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

उसने एक लड़के को प्रव्रजित किया। श्रामणेर उसकी अच्छी तरह सेवा करते रह कर, रोगी हो मर गया। उसके मरने से वृद्ध शोकाभिभूत हो बड़े जोर से रोता-चिल्लाता फिरता था। भिक्षुओं ने समझाने में असमर्थ हो धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक वृद्ध श्रामणेर के मरण से रोता-पीटता फिरता है। वह मरणानुस्मृति-भावना से बाहर होगा। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

"अमुक बातचीत।"

"न केवल अभी, पहले भी यह इसके मरने पर रोता-पीटता फिरता था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने शक्रत्व (लाभ) किया। उसी समय काशी राष्ट्र निवासी किसी एक आदमी ने हिमालय में जा ऋषि-प्रव्रज्या ली। वह फल-मूल खाकर रहता था। एक

दिन उसने जंगल में एक मृगी का बच्चा देखा, जिसकी मां मर गई थी। वह उसे आश्रम में ले आया और चारा खिलाकर पालपोस लिया। मृगी का बच्चा बड़े होने पर बड़ा सुन्दर लगने लगा। तपस्वी उसे अपने पुत्र की तरह रखता था। एक दिन मृगी का बच्चा बहुत अधिक तृण खाकर अजीर्ण से मर गया। तपस्वी 'मेरा पुत्र मर गया' कहता हुआ रोता-पीटता फिरने लगा। तब देवराज शक्र ने लोक का विचार करते हुए उस तपस्वी को देखा। उसने उसके मन में संवेग पैदा करने के लिये आकर आकाश में खड़े हो पहली गाथा कही—

अगारा पच्चुपेतस्स अनागारस्स ते सतो,
समणस्स न तं साधु यं पेतमनुसोचसि ॥

[तू घर से बेघर हुआ है, अनगारिक है, श्रमण है, तेरे लिये यह अच्छा नहीं कि तू किसी के मरने पर चिन्तित हो।]

इसे सुन तपस्वी ने दूसरी गाथा कही—

संवासेन हवे सक्क मनुस्सस्स मिगस्स वा,
हदये जायते पेमं न तं सक्का असोचितुं ॥

[हे शक्र! साथ रहने से चाहे मनुष्य हो, चाहे पशु, हृदय में प्रेम पैदा हो जाता है। यह सम्भव नहीं कि मैं उसके लिये चिन्तित न होऊँ।]

तब शक्र ने दो गाथायें कहीं—

मतं मरिस्सं रोदन्ति ये रुदन्ति लपन्ति च,
तस्मा त्वं इसि मारोदि रोदितं मोघमाहु सन्तो ॥
रोदितेन हवे ब्रह्मे मतो पेतो समुट्ठहे,
सब्बे सङ्गम्म रोदाम अञ्ञमञ्ञस्स ञातके ॥

[वे मरों और मरने वालों को रोते हैं, जो रोते हैं और प्रलाप करते हैं। इसलिये हे ऋषि तू मत रो। सन्त पुरुष रोने को बेकार कहते हैं ॥१॥ हे ब्रह्म! यदि रोने से मरा प्रेत उठ जाये, तो हम सब एक दूसरे के रिशतेदार इकट्ठे होकर रोयें ॥२॥]

इस प्रकार शक्र के कहते-कहते तपस्वी ने यह समझ कि रोना बेकार है, शक्र की स्तुति करते हुए तीन गाथायें कहीं:—

आदित्तं वत संसन्तं घतसित्तं व पावकं,
वारिना विय ओसिञ्चं सब्बं निब्बापये दरं ॥१॥

अब्बूळहं वत मे सल्लं यमासि हदयनिस्सितं,
यो मे सोकपरेतस्स पुत्तसोकं अपानुदि ॥२॥
सोहं अब्बूळहसल्लोस्मि वीतसोको अनाविलो,
न सोचामि न रोदामि तव सुत्वान वासव ॥३॥

[घी पड़ी हुई आग की तरह जलते हुए मेरे (हृदय के) दुःख को पानी से अग्नि शान्त कर देने की तरह शान्त करदे ॥४॥ मेरे हृदय में लगे हुए शोक शल्य को निकाल दिया, जो यह मुझ शोकातुर का पुत्र-शोक दूर कर दिया ॥२॥ हे इन्द्र! तेरी बात सुन कर मैं शोक-रहित हो गया हूँ। चञ्चलता-रहित हो गया हूँ, शल्य-रहित हो गया हूँ। अब मैं न चिन्ता करता हूँ, न रोता हूं ॥३॥]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय तपस्वी बूढ़ा था। शक्र तो मैं ही था।

३७३. मूसिक जातक

"कुहिं गता कत्थ गता..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय अजात-शत्रु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कथा पूर्वोक्त थुस जातक[1] में विस्तार पूर्वक आ ही गई है। इस कथा में भी राजा को जरा देर पुत्र के साथ खेलते, फिर जरा देर धर्म सुनते देख और यह जान कि इसी पुत्र के कारण राजा पर आपत्ति आयगी शास्ता ने राजा को कहा—महाराज! पुराने राजाओं ने सन्देह करने की जगह

[1] थुस जातक (३३८)

पर सन्देह कर, हमारा पुत्र हमारे चितारोहण के बाद राज्य करे, सोच उसे एक ओर कर दिया है।

यह कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व तक्षशिला में ब्राह्मण-कुल में पैदा हो प्रसिद्ध आचार्य्य हुए। उसके पास वाराणसी राजा के यव नामके पुत्र ने सब विद्यायें सीखीं। अभ्यास कर चुकने पर, जाने की इच्छा से उसने आज्ञा मांगी। आचार्य्य ने अङ्ग विद्या से जाना कि इसे अपने पुत्र से खतरा होगा। सोचा—इसका खतरा दूर करूँगा। आचार्य्य एक उपमा सोचने लगे।

उस समय आचार्य्य के पास एक घोड़ा था। उसके पाँव में जखम होगया। उसके जखम की हिफाजत के लिए उसे घर में ही रखा था। वहीं पास में एक जलाशय भी था। एक चूहिया घर से निकल कर उसके पाँव के जखम को खाती। घोड़ा उसे हटा न सकता।

एक दिन जब वह वेदना नहीं सह सका तो जखम खाने के लिये आई चूहिया को उसने पाँव से मार जलाशय में गिरा दिया। घोड़े का साईस चूहिया को न देख, बोला—और-दिन चूहिया आकर जखम खाती थी, अब नहीं दिखाई देती। कहाँ गई?

बोधिसत्व ने उस बात को प्रत्यक्ष देख, सोचा—दूसरे नहीं जानते कि चूहिया कहाँ गई, इसीलिये पूछते हैं कि वह कहाँ गई? मैं ही जानता हूं कि चूहिया को मारकर जलाशय में फेंक दिया गया है। उसने इसी बारे में पहली गाथा बनाकर राजकुमार को दी।

एक दूसरी उपमा खोजते हुए उसने उसी घोड़े को देखा कि उसका जख्म अच्छा होगया है और वह निकल कर एक जौ के खेत में जौ खाने जाकर खेत की बाड़ में से मुँह डाल रहा है। उसने उसी उपमा को ले दूसरी गाथा बना, उसे दी।

तीसरी गाथा उसने अपनी ही सूझ से बनाई और वह भी उसे देकर कहा—तात! राज्य पर प्रतिष्ठित होकर शाम को स्नान-पुष्करिणी पर

जाते समय अन्तिम सीढ़ी तक पहली गाथा का पाठ करते हुए जाना, अपने रहने के महल में प्रविष्ट होते समय सीढ़ियों के नीचे तक दूसरी गाथा का पाठ करते हुए जाना और सीढ़ियों के सिरे तक तीसरी गाथा का पाठ करते हुए। यह कह विदा किया।

वह कुमार जाकर उपराज बना और पिता के मरने पर राज्य करने लगा। उसको एक पुत्र पैदा हुआ। उसने सोलह वर्ष की आयु होने पर राज्य-लोभ के वशी-भूत हो सोचा—पिता को मारूँगा। तब उसने अपने सेवकों को बुलाकर कहा—मेरा पिता तरुण है। मैं इसके चितारोहण समय की प्रतीक्षा करता हुआ बूढ़ा हो जाऊँगा। जराजीर्ण होने पर उस समय राज्य मिला भी तो उससे क्या प्रयोजन ?

वे बोले—देव ! प्रत्यन्त-जनपद में जाकर विद्रोह नहीं कर सकते। अपने पिता को किसी न किसी उपाय से मारकर राज्य लें।

उसने 'अच्छा' कहा और महल के अन्दर ही जहां राजा की शाम को स्नान करने की पुष्करिणी थी। वहाँ समीप ही जाकर तलवार लेकर खड़ा हो गया कि यहाँ मारूँगा। राजा ने शाम को मूसिका नाम की दासी को भेजा—जा पुष्करिणी की सफाई करके आ, नहाऊँगा। उसने जाकर पुष्करिणी की सफाई करते समय कुमार को देखा। कुमार को डर हुआ कि उसकी करतूत कहीं प्रकट न हो जाय। इसलिये उसने उसके दो टुकड़े कर उसे पुष्करिणी में गिरा दिया। राजा नहाने गया। आदमी कहने लगे—आज भी मूसिका दासी लौटी नहीं, कहाँ गई, किधर गई ? राजा पहली गाथा कहता हुआ पुष्करिणी के किनारे पहुँचा :—

कुहिं गता कत्थ गता इति लालपती जनो,
अहमेव एको जानामि उदपाने मूसिका हता ॥

[जनता प्रलाप करती है कि मूसिका कहाँ गई, किधर गई ? मैं ही अकेला जानता हूँ कि मूसिका मरकर जलाशय में पड़ी है।]

कुमार ने समझा कि मेरी करनी पिता पर प्रकट हो गई। वह डर कर भाग गया और यह बात सेवकों को कही। उन्होंने सात आठ दिन के बाद उसे फिर कहा—देव ! यदि राजा जान जाता, तो चुप न रहता। अन्दाज से ही उसने वैसा कह दिया होगा। उसे मारें। वह फिर एक दिन हाथ में

तलवार ले सीढ़ियों के नीचे खड़ा हुआ और राजा के आने के समय इधर-उधर प्रहार करने का अवसर देखने लगा। राजा दूसरी गाथा का पाठ करता हुआ आया—

यञ्चेतं इतिचितिव गद्रभोव निवत्तसि,
उदपाने मूसिकं हन्त्वा यवं भक्खितुमिच्छसि ॥

[यह जो तू गधे की तरह इधर उधर (देखता हुआ) खड़ा है। (इस से मालूम होता है) जलाशय में मूसिका को मार कर अब यव (जौ) को खाना चाहता है।]

कुमार ने समझा—मुझे पिता ने देख लिया है। वह डर के मारे भाग गया। फिर आधे महीना पर 'राजा को लाठी की मार से मारूँगा' सोच एक लम्बी लाठी ले उसके सहारे खड़ा हुआ। राजा तीसरी गाथा कहता हुआ सीढ़ियों पर चढ़ा—

दहरो चसि दुम्मेध पठमुप्पत्तितो सुसू,
दीघञ्चेतं समासज्ज न ते दस्सामि जीवितं ॥

[प्रथम उत्पत्ति के दिन से ही तू लड़का है, मूर्ख है और बाल है। लम्बी (लाठी) लेकर खड़ा है। अब मैं तुझे जीता नहीं छोडूँगा।]

उस दिन वह भाग न सका और जाकर राजा के पाँव पर गिर पड़ा—देव ! मुझे जीवन दान दें। राजा ने उसे धमका, जंजीर से बंधवा बन्धनागार में डलवा दिया। फिर श्वेत-छत्र के नीचे अलंकृत राजासन पर बैठ सोचा—हमारे आचार्य्य ने, चारों दिशाओं में प्रसिद्ध ब्राह्मण ने मेरे लिये यह खतरा देख कर ही ये गाथायें कही (होंगी)। उसने प्रसन्न हो प्रीति-वाक्य कहते हुये शेष गाथायें कहीं—

नान्तलिक्खभवनेन नाङ्गपुत्तसिरेनवा,
पुत्तेन हि पत्थयितो सिलोकेहि पमोचितो ॥
सब्बं सुतमधीयेथ हीनमुक्कुट्ठमज्झिमं,
सब्बस्स अत्थं जानेय्य न च सब्बं पयोजये,
होति तादिसको कालो यत्थ अत्थावहं सुतं ॥

[न तो मैं विमान (में बैठा होने) से बचा हूँ और न अङ्गसदृश पुत्र द्वारा ही बचाया गया हूँ। पुत्र द्वारा ही मुझ पर आक्रमण हुआ। श्लोकों द्वारा रक्षा हुई ॥१॥

हीन, मध्यम तथा उत्कृष्ठ सभी विद्याओं को सीखे, सभी के अर्थ को जाने, किन्तु सभी का प्रयोग न करे। ऐसा समय आता है जहाँ श्रुत (ज्ञान) से काम होता है ॥२॥]

आगे चलकर राजा के मरने पर कुमार राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य्य मैं ही था।

३७४. चुल्लधनुग्गह जातक

"सब्बं भण्डं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व-भार्य्या की आसक्ति के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस भिक्षु के यह कहने पर कि भन्ते पूर्व-भार्य्या उसे उद्विग्न करती है, शास्ता ने 'भिक्षु! यह स्त्री केवल अभी तेरी अनर्थ-कारिणी नहीं है, इसके कारण पहले भी तू तलवार से काटा गया है' कह भिक्षुओं के प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व शक्र हुये। उस समय एक ब्राह्मण-तरुण तक्षशिला में सभी शिल्प सीख धनुष-विद्या में पूर्णता प्राप्त कर चुल्ल-धनुग्गह-पण्डित कहलाया। उसके आचार्य्य ने यह देख कि यह मेरे जैसे ही शिल्प जान गया है, उसे अपनी लड़की दे

दी। वह उसे ले वाराणसी आने के लिये रास्ते पर निकला। मार्ग में एक प्रदेश था, जिसे एक हाथी ने (आदमियों से) शून्य कर दिया था। कोई भी वहाँ जाने का साहस न करता था। चुल्ल-धनुग्गह-पण्डित आदमियों के मना करते रहने पर भी भार्य्या को ले जंगल की ओर बढ़ा।

जंगल के बीच पहुँचने पर हाथी ने उस पर आक्रमण किया। उसने हाथी के सिर में तीर मारा। तीर उसे बींध कर पिछली ओर से निकल गया। हाथी वहीं गिर पड़ा। धनुग्गह-पण्डित उस स्थान को निष्कण्टक बना आगे दूसरे जंगल में घुसा। वहां भी पचास चोर बट-मारी करते थे। आदमियों ने रोका। तो भी वह उधर बढ़ा। चोर मृगों को मार, रास्ते पर बैठे उनका माँस पकाकर खा रहे थे। सजी सजाई स्त्री के साथ उसे आते देख चोरों ने सोचा—इसे पकड़ें। चोरों का सरदार पुरुष-लक्षण (विद्यामें) कुशल था। उसने उसे देख और यह जान कि यह उत्तम-पुरुष है किसी एक को भी उठने नहीं दिया। धनुग्गह-पण्डित ने अपनी भार्य्या को भेजा—जा, 'हमें भी एक कबाब दो' कह कर एक कबाब ले आ।

उसने जाकर कहा—एक माँस की सलाई दे दो। चोरों के सरदार ने 'यह बढ़िया आदमी है' सोच माँस सलाई दिलाई। चोरों ने 'पकी मांस-सलाई हम खा चुके' कह कच्ची माँस-सलाई दे दी। धनुग्गह के मन में मान पैदा हुआ। वह यह सोच कि मुझे कच्चा माँस देते हैं, चोरों पर क्रुद्ध हुआ। चोर भी उठ खड़े हुए—क्या यही एक पुरुष है, हम स्त्रियाँ हैं!

धनुग्गह ने उनचास तीरों से उनचास जनों को बींध कर गिरा दिया। चोरों के सरदार को बींधने को तीर नहीं रहा। उसके तरकश में पूरे पचास ही तीर थे। एक तीर से हाथी को बींधा। उनचास तीरों से चोरों को बींध, चोरों के सरदार को गिरा, उसकी छाती पर बैठ सोचा—इसका सिर काटूंगा। उसने भार्य्या से तलवार मंगाई। उसने उसी क्षण चोरों के सरदार के प्रति आसक्त हो स्वामी के हाथ में म्यान और चोर के हाथ में दस्ता दे दिया। चोर ने दस्ता पकड़, तलवार निकाल, धनुग्गह का सिर काट दिया।

उसने उसे मार, स्त्री को ले जाते समय उससे जाति-गोत्र पूछा। वह बोली—मैं तक्षशिला के प्रसिद्ध आचार्य्य की लड़की हूँ।

"इसे तू कैसे मिली?"

"मेरे पिता ने इस पर प्रसन्न हो कि इसने भी उसके सदृश शिल्प सीख लिया है, मुझे इसे दे दिया। और मैंने तुझ पर आसक्त हो अपने कुल-प्राप्त स्वामी को मरवा दिया।"

चोरों के सरदार ने सोचा—इसने अपने कुल-प्राप्त स्वामी को मरवा दिया। किसी दूसरे को देख मुझसे भी यही वर्ताव करेगी। इसे छोड़ना चाहिए। रास्ते में एक छोटी नदी देखी जिसका पाट चौड़ा था और जो उस समय पानी से लबालब थी। वह बोला—भद्रे। इस नदी के मगर-मच्छ भयानक हैं। क्या करें?

"स्वामी! तुम मेरी चादर में गहनों की गठरी बाँध दूसरी ओर ले जाओ। फिर दूसरी बार आकर मुझे ले जाना।"

उसने 'अच्छा' कहा और सारे गहनों की गठरी ले, नदी में उतर, तैर कर, पार कर, दूसरे किनारे पर पहुँच, उसे छोड़ चला गया। उसने देखा तो बोली "स्वामी! क्या मुझे छोड़ कर जा रहे हो? ऐसा क्यों करते हो। आओ मुझे भी लेकर जाओ।"

इस प्रकार उससे बात चीत करते हुए पहली गाथा कही—

> **सब्बं भण्डं समादाय पारं तिण्णोसि ब्राह्मण,**
> **पच्चागच्छ लहुं खिप्पं मम्पितारेहि दानितो ॥**

[ब्राह्मण! सब सामान लेकर अब तू पार होगया है। अब तू शीघ्र लौट कर मुझे भी जल्दी पार उतार।]

चोर ने यह सुन दूसरे किनारे पर खड़े ही खड़े दूसरी गाथा कही:—

> **असन्थुतं मं चिरसंथुतेन**
> **निमीसि भोति अधुवं धुवेन,**
> **मयापि भोति निमिनेय्य अञ्ञं**
> **इतो अहं दूरतरं गमिस्सं ॥**

[आपने चिरकाल से संसर्ग किये हुए, ध्रुव-स्वामी को छोड़कर मुझे जिसका पूर्व संसर्ग नहीं था, और जो अध्रुव था अपनाया। अब आप मुझ से भी किसी दूसरे को बदल सकतीं हैं। इस लिए मैं यहाँ से भी और दूर जाता हूँ।]

चोर 'तू ठहर, मैं यहाँ से भी और दूर जाता हूँ' कह उसके विलाप करते रहते ही गहनों की गठरी ले भाग गया। तब वह मूर्खा इच्छा-बाहुल्यता के कारण इस प्रकार की विपत्ति में पड़, अनाथ हो, पास ही एळगज (?) की झाड़ी में बैठ रोने लगी।

उस समय शक्र ने दुनियाँ की ओर देखते हुए उसकी ओर देखा, जो इच्छा-बाहुल्य होने के कारण दुःख-प्राप्त थी और जिसे उसके स्वामी तथा चोर ने छोड़ दिया था। शक्र ने उसे रोते देख सोचा—इसकी गर्हा कर तथा इसे लज्जित कर आता हूँ। उसने मातलि और पञ्चशिख को साथ लिया, और नदी किनारे खड़े हो मातलि को कहा—तू मच्छ बन, पञ्च-शिख को कहा—तू पक्षी बन। मैं गीदड़ होकर मुँह में माँस का टुकड़ा ले इसके सामने जाऊँगा। तू मेरे वहाँ पहुँचने पर पानी में से उछल मेरे सामने गिरना। मैं मुँह में लिए हुए माँस के टुकड़े को छोड़ मछली पकड़ने के लिए लपकूँगा। उस समय पञ्चशिख तू उस मांस के टुकड़े को ले आकाश में उड़ जाना। उसने मातलि को आज्ञा दी—तू पानी में उतर।

"देव! अच्छा।"

मातलि मच्छ हो गया। पञ्चशिख पक्षी हुआ।

शक्र गीदड़ बन, मांस का टुकड़ा मुँह में ले, उसके सामने आया। मच्छ पानी में से उछल गीदड़ के सामने गिरा। वह मुँह में के मांस के टुकड़े को छोड़ मच्छ के लिए लपका। मच्छ उछल कर पानी में गिरा। पक्षी मांस का टुकड़ा ले आकाश में उड़ गया। गीदड़ को दोनों में से एक भी नहीं मिला—वह एळगज (?) की झाड़ी की ओर देखते हुए दुःखित मन हो बैठा।

उसने उसे देख, 'यह इच्छा-बाहुल्य होने के कारण न मांस पा सका, न मछली' सोच घड़ा फूटने की तरह की महान् हँसी हँसी। उसे सुन गीदड़ ने तीसरी गाथा कही—

कायं एळगळागुम्बे करोति अट्टहासियं,
नयिध नच्चं वा गीतं वा ताळं वा सुसमाहितं,
अनम्हिकाले सुस्सोणि किन्नु जग्घसि सोभने ॥

[एळगज भाड़ी में बैठी हुई हँसने वाली यह कौन है ? न यहाँ नाचना है, न गाना है, न ताल देना है। हे सुन्दरी ! हे सुश्रोणी ! तू रोने के साथ किस लिये हँसी ?]

यह सुन उसने चौथी गाथा कही—

सिगाल बाल दुम्मेध अप्पपञ्ञोसि जम्बुक,
जिनो मच्छञ्च पेसिञ्च कपणो विय भायसि ॥

[हे शृगाल। हे जम्बुक ! तू मूर्ख है, दुर्बुद्धि है, प्रज्ञारहित है। मच्छ और मांस-पेशी दोनों से रहित होकर कृपण की तरह चिन्ता करता है।]

तब गीदड़ ने पांचवीं गाथा कही—

सुदस्सं वज्जं अञ्ञेसं अत्तनोपन दुद्दसं,
जिना पतिञ्च जारञ्च मम्पि त्वञ्ञेव भायसि ॥

[दूसरों का छिद्र देखना आसान है, अपना छिद्र देखना कठिन। तू भी अपने पति और अपने जार से विहीन होकर मेरी ही तरह चिन्तित होती है।]

उसने उसका कहना सुन गाथा कही—

एवमेतं मिगराज यथा भाससि जम्बुक,
सा नूनाहं इतो गन्त्वा भत्तु हेस्सं वसानुगा ॥

[हे मृगराज ! हे जम्बुक ! जैसा तू कहता है, वैसा ही है। अब मैं यहाँ से जाकर स्वामी की वशवर्तिनी बनूंगी।]

उस अनाचारिणी, दुराचारिणी का कहना सुन देव-राज शक्र ने अन्तिम गाथा कही—

यो हरे मत्तिकं थालं कंसथालम्पि सो हरे,
कतंयेव तया पापं पुनपेवं करिस्ससि ॥

[जो मिट्टी की थाली चुराता है, वह काँसे की थाली भी चुराता है। तूने पाप किया है, और फिर भी तू करेगी।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय धनुग्गह उद्विग्न-चित्त भिक्षु था। वह स्त्री पूर्व-भार्य्या। देव-राज शक्र तो मैं ही था।

३७५. कपोत जातक

"इदानि खोम्हि..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक लोभी भिक्षु के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

लोभी-कथा अनेक प्रकार से आ ही गई है। शास्ता ने उस भिक्षु को 'भिक्षु, क्या तू सचमुच लोभी है ?' पूछ, उसके 'भन्ते ! हाँ' कहने पर 'भिक्षु ! न केवल अभी तू लोभी है, पहले भी लोभी ही रहा है, और लोभ के ही कारण जान गँवाई है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कबूतर की योनि में पैदा हो, वाराणसी सेठ की रसोई में, पिंजरे में रहता था। मत्स्य-मांस लोभी एक कौवा उसके साथ मैत्री कर वहाँ ही रहने लगा।

एक दिन बहुत सा मत्स्य-मांस देख उसे खाने की इच्छा से वह बुड़-बुड़ाता हुआ पिंजरे में ही पड़ा रहा। जब कबूतर ने उसे बुलाया कि मित्र चल चुगने चलें, तो बोला तू जा मुझे अजीर्ण हुआ है। उसके चले जाने पर 'मेरा शत्रु-कण्टक चला गया है। अब मैं यथा-रुचि मत्स्य-मांस खाऊँगा' सोच पहली गाथा कही—

इदानि खोम्हि सुखितो अरोगो निक्कंटको निप्पतितो कपोतो,
काहामि दानि हृदयस्स तुट्ठिं तथा हिमं मंस साकं बलेति ॥

[अब मैं सुखी हूं, निरोग हूं, और निष्कंटक हूं, क्योंकि कबूतर चला गया है। अब मैं हृदय को सन्तुष्ट करूँगा, मेरे लिए मांस शाक का ऐसा ही आकर्षण है।]

जिस समय रसोइया मत्स्य मांस पका, रसोई-घर से निकल शरीर से पसीना बहा रहा था, वह पिंजरे से निकला और देगची पर बैठ 'किरी किरी' आवाज की। रसोइये ने जल्दी से आकर कौवे को पकड़ उसके सब पर नोच डाले। और कच्चे अदरक को सरसों के साथ पीस तथा उसमें लहसुन और सड़ा हुआ मठा मिला सारे शरीर में माख दिया। फिर एक लकड़ी के टुकड़े को रगड़ उसमें छेद कर सूत से उसकी गरदन में बाँधा। और पिंजरे में ही डाल कर चला गया।

कबूतर ने आकर उसे देख 'यह कौन बगुला है जो मेरे मित्र के पिंजरे में आकर लेटा है। वह तो बड़ा प्रचण्ड है। आकर इसे मार डाल भी सकता है' कह हँसी करते हुए दूसरी गाथा कही।

कायं बलाका सिखिनी चोरी लंघि पितामहा,
ओरं बलाके आगच्छ चण्डो मे वायसो सखा

[यह कौन बगुली है जिसके सिर पर शिखा है, जो चोर है, और जो बादल की पोती है। हे बगुली, इधर आ मेरा मित्र कौवा प्रचण्ड है।]

यह सुन कौवे ने तीसरी गाथा कही।

अलं हि ते जग्घिताय ममं दिस्वान येदिसं,
विलूनं सूदपुत्तेन पिट्ठमद्देन मक्खिमं।

[मुझे इस हालत में देख कर मज़ाक मत कर, मैं रसोइये द्वारा नोच डाळा गया हुआ हूं और पिसे हुए (अदरक आदि) से पोत डाला गया हूँ।]

उसने हँसी मज़ाक करते हुए चौथी गाथा कही।

सुन्हातो सुविलित्तोसि अन्नपाणेन तप्पितो,
कण्ठे च ते वेलुरियो अगमानुकजंगलं।

[अच्छी तरह नहाया हुआ है, अच्छी तरह (चन्दनादि का) लेप किया हुआ है, अन्न पान से सन्तुष्ट है, और तेरे गले में बिल्लौर है, क्या तू क-जंगल (वाराणसी को?) गया है।]

तब कौवे ने पाँचवीं गाथा कही—

मा ते मित्तो अमित्तो वा अगमाति कजंगलं,
पिञ्छानि तत्थ लायित्वा कण्ठे वन्धन्ति वट्टनं।

[तेरा मित्र या शत्रु कोई भी क-जंगल न जाय। वहाँ पर नोच कर गले में लकड़ी बाँध देते हैं।]

यह सुन कबूतर ने अन्तिम गाथा कही—

पुन पापज्जसि सम्मसीलं हि तव तादिसं,

नहि मानुसका भोगा सुभुंजा होन्ति पक्खिना।

[मित्र तू फिर भी ऐसा ही करेगा। तेरा स्वभाव ही ऐसा है, पक्षी के लिए मनुष्यों के भोजन सुभोज्य नहीं होते।]

इस प्रकार उसे उपदेश दे, वहाँ न रह, पंख फैला अन्यत्र ही चला गया। कौवा भी वहीं मर गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में लोभी भिक्षु अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय कौवा लोभी भिक्षु था। कबूतर तो मैं ही था।

छठा परिच्छेद

१. अवारिय वर्ग

३७६. अवारिय जातक

"मास्सु कुज्झि भूमिपति..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक घाटवाल के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह मूर्ख था अज्ञानी—न बुद्ध आदि के, न औरों के ही गुणों को पहचानता था, प्रचण्ड, कठोर, दुस्साहसी। एक जानपद भिक्षु ने बुद्ध-दर्शन करने की इच्छा से शाम को अचिर-वती के घाट पर पहुँच उसे कहा—उपासक ! मुझे नौका दे, पार जाऊँगा।

"भन्ते ! अब असमय है, यहीं किसी जगह रहें।"

"उपासक ! यहाँ कहाँ रहूँगा, मुझे लेकर चल।"

उसने क्रोधित हो कहा—आ रे, श्रमण ले चलूं; और स्थविर को नौका पर चढ़ा, सीधे न जा, नौका को नीचे की ओर ले जा, (नौका को) हिला-डुला, उसका पात्र चीवर भिगो दिया। (इस प्रकार) उसे कष्ट दे, किनारे पर पहुँचा, अन्धेरा होने पर उतारा। वह विहार पहुँचा। उस दिन बुद्ध की सेवा में जाने का अवसर न पा वह दूसरे दिन शास्ता के पास गया और प्रणाम करके एक ओर बैठा। शास्ता ने कुशल-समाचार के बाद पूछा—

"कब आया है ?"

"भन्ते ! कल।"

"तो बुद्ध की सेवा में आज कैसे आया है ?"

उसने वह हाल कहा। शास्ता ने सुन 'भिक्षु ! न केवल अभी वह प्रचण्ड तथा कठोर है, पहले भी ऐसा ही रहा है। इस समय उसने तुझे कष्ट

दिया है, पहले भी पण्डितों को कष्ट दिया है' कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हो, बड़े होने पर तक्षशिला में सब विद्यायें सीख, ऋषि-प्रव्रज्या ले, चिरकाल तक हिमालय में फल-मूल खाते रह कर, निमक-खटाई खाने के लिये वाराणसी आ, राजोद्यान में ठहर, अगले दिन भिक्षा के लिये निकला। उसे राजाङ्गन में आया देख, राजा ने उसकी चर्य्या पर प्रसन्न हो, अन्तःपुर में ला, भोजन कराया और वचन ले राजोद्यान में बसाया। राजा प्रतिदिन सेवा में जाता था। बोधिसत्व उसे 'महाराज! राजा को चार अगतियगामी-धर्मों में न पड़, अप्रमादी हो, क्षमा, मैत्री तथा दया के साथ धर्मानुसार राज्य करना चाहिये' कह प्रतिदिन उपदेश देते हुए दो गाथायें कहते थे—

> मास्सु कुज्झि भूमि-पति मास्सु कुज्झि रथेसभ,
> कुद्धं अप्पटिकुज्झन्तो राजा रट्ठस्स पूजितो ॥
> गामे वा यदि वा रञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले,
> सब्बत्थमनुसासामि मास्सु कुज्झि रथेसभ ॥

[हे भूमिपति क्रोध मत कर। हे रथेसभ! क्रोध मत कर। क्रुद्ध के प्रति भी क्रोधी न होने वाला राजा राष्ट्र में पूजित होता है ॥ मैं गाँव, जंगल, निम्न-स्थान वा (ऊँचे) स्थल पर जहाँ कहीं भी रहता हूँ, यही अनुशासना करता हूँ कि हे रथेसभ! क्रोध न करें ॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने जब-जब राजा आया उस-उस दिन ये गाथायें कहीं। राजा ने प्रसन्न हो बोधिसत्व को लाख की आमदनी का एक गाँव दिया। बोधिसत्व ने स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार बारह वर्ष तक वहाँ रहते हुए बोधिसत्व ने सोचा—दीर्घकाल तक (एक जगह) रहा। जन-पद में घूम कर आता हूँ। उसने राजा को सूचना न दे उद्यान-पाल को बुलाकर कहा—तात! मैं जनपद-चारिका के लिये उत्सुक हूँ। घूम कर आऊँगा। तू राजा को कहना। वह चलकर गङ्गा के घाट पर पहुँचा। वहाँ अवारिय-

पिता नाम का नाविक था। वह मूर्ख न गुणवानों के गुण पहचानता था और न ही अपनी आमदनी का उपाय जानता था। वह गङ्गा पार जाने की इच्छा करने वालों को पहले गङ्गा-पार उतार देता और तब उतराई माँगता। उतराई न देने वालों के साथ झगड़ते हुए उसे लाभ तो कम होता अधिक तो गाली और प्रहार ही मिलते। इस प्रकार के अन्धे-मूर्ख के बारे में शास्ता ने बुद्ध होकर तीसरी गाथा कही—

> अवारिय पिता नाम अहू गङ्गाय नाविको,
> पुब्बे जनं तारयित्वा पच्छा याचति वेतनं,
> तेनस्स भण्डं होति न च भोगेहि वड्ढति ॥

[गङ्गा पर अवारिय-पिता नाम का नाविक था, जो पहले लोगों को पार उतार कर पीछे उतराई माँगता था। उससे उसका झगड़ा ही होता था, भोगों में वृद्धि नहीं ॥]

बोधिसत्व ने उस नाविक के पास जाकर कहा—

"आयुष्मान ! मुझे पार ले चल।"

यह सुन वह बोला :—

"श्रमण ! क्या मुझे उतराई देगा ?"

"आयुष्मान ! मैं भोगों में वृद्धि, अर्थ की वृद्धि तथा धर्म की वृद्धि का उपाय कहूँगा।"

नाविक ने सोचा, यह मुझे निश्चय से कुछ देगा। पार पहुँचा कर बोला :—

"मुझे नौका की उतराई दो।"

'अच्छा, आयुष्मान' कह बोधिसत्व ने उसे भोगों में वृद्धि का उपाय कहते हुए पहली गाथा कही—

> अतिण्णञ्ञेव याचस्सु अपारं तात नाविक,
> अञ्ञो हि तिण्णस्स मनो अञ्ञो होति तरेसिनो ॥

[तात नाविक ! पार जाने से पहले इस पार ही उतराई मांगा कर। पार जाने की इच्छा वाले का मन दूसरा होता है, और जो पार पहुँच गया उसका मन दूसरा।]

यह सुन नाविक ने सोचा—यह तो उपदेश हुआ, अब यह मुझे कुछ देगा। बोधिसत्व ने 'आयुष्मान ! यह तो भोगों की वृद्धि का उपाय हुआ, अब अर्थ की वृद्धि तथा धर्म की वृद्धि का उपाय सुन' कह उसे उपदेश देते हुए यह गाथा कही—

गामे वा यदि वा रञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले,
सब्बत्थमनुसासामि मास्सु कुज्झित्थ नाविक ॥

[गाँव में, आरण्य में, निम्न-स्थान वा (ऊँचे) स्थल पर जहाँ कहीं भी रहता हूँ यही अनुशासन करता हूँ। नाविक ! क्रोध न कर।]

अर्थ-धर्म वृद्धि के लिये यह गाथा कह कर कहा—यह तेरी अर्थ-धर्म-वृद्धि के लिये हुई। उस दुष्ट-पुरुष ने इसे कुछ नहीं समझा। बोला—

"श्रमण ! तूने मुझे यही नौका की उतराई दी है ?"

"आयुष्मान् ! हाँ।"

"मुझे इससे प्रयोजन नहीं। और दे।"

आयुष्मान् ! मेरे पास यह छोड़ और कुछ नहीं।

"तब तू क्यों नौका पर चढ़ा ?" कह तपस्वी को गङ्गा के किनारे पर गिरा, छाती पर बैठ उसका मूँह पीट दिया।

शास्ता ने 'भिक्षुओ जो उपदेश देकर तपस्वी ने राजा से गांव पाया, वही उपदेश अन्धे मूर्ख नाविक को देकर मुँह पर चोट खाई। इसलिए उपदेश उसे देना चाहिए जिसे उचित हो, उसे नहीं जिसे उपदेश देना अनुचित हो' कह अभिसंबुद्ध होने पर यह बाद की गाथा कही—

यायेव अनुसासनिया राजा गामवरं अदा,
तायेव अनुसासनिया नाविको पहरी मुखं ॥

[जिस अनुशासना से राजा ने श्रेष्ठ गांव दिया, उसी उपदेश के देने पर नाविक ने मुँह पर प्रहार किया।]

उसके उसे मारते समय ही उसकी भार्या भात लेकर आ पहुँची। वह तपस्वी को देखकर बोली—स्वामी ! यह तपस्वी राजकुल सम्मानित है। इसे मत मार। उसने क्रोधित हो 'तू ही इस कुटिल तपस्वी को पीटने नहीं देती है' कह उठकर उसे पीट गिरा दिया। भात की हांड़ी गिरकर फूट गई। भारी, गर्भ वाली भार्या का गर्भ गिर पड़ा। मनुष्यों ने उसे पुरुष की हत्या करने वाला

चोर समझ पकड़ लिया और बांधकर राजा के पास ले गये। राजा ने मुकद्दमा कर उसे राजदण्ड दिया।

शास्ता ने अभिसंबुद्ध हो उस बात को प्रकट करते हुये अन्तिम-गाथा कही:—

भत्तं भिन्नं हता भरिया गब्भो च पतितो छमा,
मिगोव जातरूपेन न तेनत्थं अबंधिसु ॥

[भात की हांडी टूट गई, भार्या मर गई और पृथ्वी पर गर्भ गिर पड़ा। जिस प्रकार सोना (फैला रहने) से भी मृग की अभिवृद्धि नहीं होती वैसे ही उसे कुछ लाभ नहीं हुआ।]

शास्ता ने धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में भिक्षु स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय नाविक अब का नाविक हुआ। राजा आनन्द था। तपस्वी तो मैं ही था।

३७७. सेतकेतु जातक

"मा तात कुज्झि नहि साधु कोधो..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ढोंगी भिक्षु के बारे में कही। वर्तमान-कथा कुद्दाल जातक[1] में आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य्य हो पाँच सौ ब्रह्मचारियों को मन्त्र बँचवाते थे।

---

[1] सिंहल अक्षरों में मुद्रित मूल-प्रति में उद्दालक जातक (४८७) के स्थान पर कुद्दाल जातक छप गया है। कुद्दाल जातक (७०) तो प्रथम खण्ड में आ ही चुकी है।

उनमें से प्रधान-शिष्य का नाम था श्वेतकेतु। वह उदीच्य ब्राह्मण-कुल में पैदा हुआ था, और उसके मन में बड़ा ही जाति-अभिमान था। एक दिन वह दूसरे ब्रह्मचारियों के साथ नगर से बाहर जा रहा था। उसने नगर में प्रविष्ट होते हुए एक चाण्डाल को देख पूछा—

"तू कौन है ?"

"मैं चाण्डाल हूँ।"

उसे डर लगा कि उसके शरीर को छूकर आने वाली हवा कहीं उसको न लग जाय। वह उस चाण्डाल को 'मनहूस कहीं के, जिधर हवा जा रही है, उधर होकर चल' कह, भागकर जिधर से हवा आ रही थी, उधर हो गया। चाण्डाल भी शीघ्रता से जाकर उससे भी ऊपर की ओर हो गया।

तब उसने उसे 'वृषल, मनहूस' कहकर अच्छी तरह गालियाँ दीं। ये सुन चाण्डाल ने पूछाः—"तू कौन है ?"

"मैं ब्राह्मण-माणवक हूँ।"

"भले ही ब्राह्मण हो, मेरे प्रश्न का उत्तर दे सकेगा ?"

"हाँ, सकूँगा।"

"यदि नहीं दे सकेगा तो टांगों के बीच से निकलना होगा।"

उसने अपनी सामर्थ्य का अन्दाजा लगा कहा—पूछ। चाण्डाल-पुत्र ने उसकी बात का लोगों को साक्षी बना कर प्रश्न किया—दिशायें कितनी हैं ?

"पूर्व आदि चार दिशायें हैं।"

"मैं तुझसे इन दिशाओं के बारे में नहीं पूछता। तू इतनी बात भी नहीं समझता और मेरे शरीर से छुई हवा से घृणा करता है !"

उसने उसे कन्धे से पकड़, झुका अपनी टाँगों के बीच में से निकाला। ब्रह्मचारियों ने यह समाचार आचार्य्य से कहा।

यह सुन आचार्य्य ने पूछा—"तात श्वेतकेतु ! क्या सचमुच चाण्डाल ने तुझे अपनी टाँगों में से निकाला ?"

"हाँ आचार्य्य ! उस चाण्डाल दासी-पुत्र ने मुझे 'यह दिशा मात्र भी नहीं जानता है' कह अपनी टाँगों के बीच से निकाला। अब मिलने पर उसका जो करना है, करूँगा।"

इस प्रकार क्रुद्ध हो उसने चाण्डाल-पुत्र को गालियां दीं। आचार्य्य बोला—तात श्वेतकेतु। उस पर क्रोधित मत हो। चाण्डाल-पुत्र पण्डित है। वह तुझे यह दिशा नहीं पूछता है। दूसरी ही दिशा पूछता है। तूने जो देखा, सुना व जाना है, उसकी अपेक्षा न देखा, न सुना, न जाना ही अधिक है।

इस प्रकार उपदेश देते हुए ये दो गाथायें कहीं :—

मा तात कुज्झि नहि साधु कोधो
बहुम्पि ते अदिट्ठं अस्सुतञ्च,
माता पिता दिसता सेतकेतु
आचरियमाहु दिसतं पसत्था ॥
अगारिनो अन्नदपाणवत्थदा
अव्हायिका तम्पि दिसं वदन्ति,
एसा दिसा परमा सेतकेतु
यं पत्वा दुक्खी सुखिनो भवन्ति ॥

[तात ! क्रोध मत कर। क्रोध करना अच्छा नहीं। जो तूने देखा सुना नहीं, ऐसा बहुत है। हे श्वेतकेतु ! माता-पिता (पूर्व-) दिशा हैं और आचार्य्य श्रेष्ठ (दक्षिण-) दिशा कहलाते हैं॥ अन्न-वस्त्र देने वाले, बुला कर (देने वाले) गृहस्थ उस (श्रमण-ब्राह्मणों की दिशा) को भी एक दिशा कहते हैं। हे श्वेत-केतु वह दिशा परं-श्रेष्ठ है, जिसे प्राप्त कर दुखी-जन सुखी होते हैं॥]

कहा भी गया है :—

माता पिता दिसा पुब्बा आचरिया दक्खिणादिसा,
पुत्तदारा दिसा पच्छा मित्तामच्चा च उत्तरा ॥
दासकम्मकरा हेट्ठा उद्धं समण ब्राह्मणा,
एता दिसा नमस्सेय्य अप्पमत्तो कुले गिहि ॥

[मातापिता पूर्व-दिशा हैं। आचार्य्य दक्षिण-दिशा। पुत्र तथा दारा पश्चिम-दिशा। यार दोस्त उत्तर-दिशा। दास-कर्मचारीगण नीचे की दिशा और श्रमण-ब्राह्मण ऊपर की दिशा। गृहस्थ को चाहिये कि प्रमाद रहित हो इन-दिशाओं को नमस्कार करे।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने ब्रह्मचारी को दिशायें समझाईं। वह 'चाण्डाल ने मुझे टांगों में से गुजारा है' सोच वहाँ न रह तक्षशिला चला गया। वहाँ प्रसिद्ध आचार्य्य के पास सब शिल्प सीख, आचार्य्य से आज्ञा ले, तक्षशिला से निकल, सभी सम्प्रदायों की विद्यायें सीखता हुआ विचरने लगा। एक प्रत्यन्त-ग्राम में पहुँचने पर उसने उस के आश्रित रहने वाले पाँच सौ तपस्वियों को देखा। उनके पास प्रव्रजित हो उसने जो कुछ भी वह शिल्प या मन्त्र या चरण जानते थे सीखा और मण्डली का नेता बन वाराणसी आया। फिर एक दिन भिक्षाटन करता हुआ राजाङ्गण में पहुँचा।

राजा ने तपस्वियों की चर्य्या पर प्रसन्न हो, उन्हें महल में बिठा भोजन करा अपने उद्यान में ठहराया। राजा ने तपस्वियों को भोजन करा चुकने पर कहा—आज शाम को उद्यान में आकर आर्य्यों को प्रणाम करूँगा।

श्वेतकेतु ने उद्यान में लौटने पर तपस्वियों को एकत्र कर कहा—मित्रो! राजा ने कहा है कि वह आज आएगा। किसी राजा को एक बार प्रसन्न कर लेने से जीवन भर सुखपूर्वक रहा जा सकता है। आज कुछ लोग चिमगादड़-व्रत का आचरण करो, कुछ कांटों की शैय्या पर सोओ, कुछ पञ्चाग्नि-ताप करो, कुछ उकड़ू बैठने का परिश्रम करो, कुछ पानी पर चढ़ने (चलने) का कर्म करो, और कुछ मन्त्रों का पाठ करो। इस प्रकार उन्हें आदेश दे वह स्वयं पर्ण-कुटी के द्वार पर एक तकियेदार आसन पर, पाँच वर्णों के चमकते हुए वस्त्र में लिपटी पोथी को विचित्र-वर्ण की घोड़ी पर रख, चार पाँच सुशिक्षित विद्यार्थियों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए (की तरह) बैठा।

उसी समय राजा ने आकर उन्हें मिथ्या-तप करते देखा और प्रसन्न हो श्वेतकेतु के पास जाकर प्रणाम किया। फिर एक ओर बैठ पुरोहित के साथ बात-चीत करते हुए तीसरी गाथा कही:—

खराजिना जटिला पङ्कदन्ता
दुमुक्खरूपा ये मे जपन्ति मन्ते,
कच्चि नु ते मानुसके पयोगे
इदं विदू परिमुत्ता अपाया ॥

[जो ये रुद्ध अजिन-चर्म पहने, जटाधारण किये, मैले दान्तों वाले और भोण्डी शकल बनाये मन्त्रों का जप कर रहे हैं, क्या वे मानुषिक-कृत्यों में इस (सब) के जानकार होकर अपाय से मुक्त हो गये हैं ?]

यह सुन पुरोहित ने चौथी गाथा कही :—

पापानि कम्मानि करित्वान राज
बहुस्सुतो चे न चरेय्य धम्मं,
सहस्सवेदोपि न तं पटिच्च
दुक्खा पमुञ्चे चरणं अपत्वा ॥

[राजन ! यदि बहुश्रुत होकर पाप करे और धर्म का आचरण न करे, तो हजार वेद पढ़ा हुआ भी बिना आचरण किये दुःख से मुक्त नहीं होता ॥]

यह सुन तपस्वियों पर से राजा की श्रद्धा जाती रही। तब श्वेतकेतु सोचने लगा—

इस राजा की तपस्वियों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई थी, किन्तु इस पुरोहित ने वासी से प्रहार देने की तरह उसे टुकड़े टुकड़े कर दिया। मुझे अब उससे बात करनी चाहिये। उसने उससे बात चीत करते हुए पाँचवीं गाथा कही—

सहस्सवेदोपि न तं पटिच्च
दुक्खा पमुञ्चे चरणं अपत्वा,
मञ्ञामि वेदा अफला भवन्ति
ससंयमं चरणञ्ञेव सच्चं ॥

[यदि हजार वेद पढ़ा हुआ भी, उसके कारण बिना आचरण किये दुःख से मुक्त नहीं होता, तो क्या मैं मानूं कि वेद निष्फल हैं और संयम-सहित आचरण ही सत्य है ?]

यह सुन पुरोहित ने छठी गाथा कही:—

न हेव वेदा अफला भवन्ति
ससंयमं चरणञ्ञेव सच्चं;
कित्तिञ्च पप्पोति अधिच्च वेदे
सन्तं पुनेति चरणेन दन्तो ॥

[नहीं, वेद निष्फल नहीं होते। संयम-सहित आचरण ही सत्य है। वेद पढ़ने से कीर्ति की प्राप्ति होती है। संयत-आदमी आचरण से शान्त-पद को प्राप्त होता है।]

इस प्रकार पुरोहित ने श्वेतकेतु के सिद्धान्त का खण्डन कर उन सब को गृहस्थ बनवाया और उन्हें ढाल (तथा अन्य) आयुध दिला महन्त बनवा राजा के सेवक बना दिया। यही महंतकारकों के वंश (की उत्पत्ति) है।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय श्वेत्-केतु ढोंगी भिक्षु था। चाण्डाल-पुत्र सारिपुत्र था। पुरोहित तो मैं ही था।

३७८. दरीमुख जातक

"पङ्कोच कामा..."यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय महाभिनिष्क्रमण के बारे में कही। (वर्तमान-) कथा पहले आ ही गई है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में राजगृह में मगध-राज नामक राजा राज्य करता था। तब बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में गर्भ धारण किया। नाम रखा गया ब्रह्मदत्त कुमार। उसके पैदा होने के दिन ही पुरोहित को भी पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका मुँह बड़ा सुन्दर था इसलिये उसका नाम दरीमुख रखा गया। वे दोनों राज-कुल में ही पले, और परस्पर बड़े प्रेम से रहते थे। सोलह वर्ष की आयु होने पर तक्षशिला जा, सभी शिल्प सीख, सभी मतों की विद्यायें तथा देश-व्यवहार सीखने के लिये ग्राम-निगम आदि में घूमने लगे। इस प्रकार घूमते घूमते वाराणसी पहुँच देव-कुल (?) में रह

अगले दिन वाराणसी में भिक्षार्थ निकले। एक घर में खीर तैयार थी और आसन बिछे थे कि ब्राह्मणों को भोजन करा कर दक्षिणा[1] देंगे।

आदमियों ने उन दोनों को भिक्षा मांगते देख सोचा—ब्राह्मण आये हैं। वे उन्हें घर ले आये और बोधिसत्व के आसन पर श्वेत-वस्त्र तथा दरी-मुख के आसन पर लाल-कम्बल बिछाया। दरी-मुख ने यह लक्षण देख जाना कि आज मेरा मित्र वाराणसी का राजा होगा और मैं सेनापति। वे दोनों वहाँ भोजन कर, दक्षिणा ले, आशीर्वाद दे, जाकर राजोद्यान में रहे।

वहाँ बोधिसत्व मङ्गल-शिला पर लेटे; दरी-मुख उनके पैर दबाता हुआ बैठा था। उस समय वाराणसी-राज को मरे सातवां दिन था। पुरोहित ने राजा का शरीर-कृत्य कर पुत्र-रहित राज्य में सातवें दिन पुण्य-रथ चालू किया। पुण्यरथ-कृत्य का वर्णन महाजनक जातक[2] में आयगा। चतुरङ्गिनी सेना से घिरा-हुआ पुण्यरथ नगर से निकल सैकड़ों तुरियों के बजने के साथ उद्यान-द्वार पर पहुँचा।

दरी-मुख ने तुरिय शब्द सुन सोचा—मेरे साथी के लिये पुण्य-रथ आ रहा है। वह आज राजा होकर मुझे सेनापति-पद देगा। लेकिन, मुझे गृहस्थी से क्या? निकलकर प्रव्रजित होऊँगा। वह बिना बोधिसत्व को सूचित किये एक ओर जाकर छिप कर खड़ा हो गया। पुरोहित उद्यान-द्वार पर रथ खड़ा कर उद्यान में गया, तो वहाँ उसने बोधिसत्व को मङ्गल शिला पर लेटे देखा। उसके पाँव में (महापुरुष) लक्षण देख सोचा—यह पुण्यवान् प्राणी है। दो हजार द्वीपों सहित चारों महाद्वीपों का राज्य कर सकता है। इसमें धैर्य कितना है, देखने के लिये सब बाजे जोर से बजवाये।

बोधिसत्व ने जागकर मुँह पर से कपड़ा उठाया। जन-समूह को देख कर फिर कपड़ा मुँह पर ढक, थोड़ी देर लेटे रह, जब थकावट उतर गई तो उठ कर शिला पर पालथी मार कर बैठा। पुरोहित ने घुटने के बल बैठकर कहा—देव! आप राज्य के अधिकारी हैं।

---

[1] वाचनकं, शब्द अस्पष्ट है। कदाचित किसी प्रकार की पाठ कराई हो।

[2] महाजनक जातक (५३९)

"भंते ! क्या राज्य अपुत्रक है ?"

"देव ! हाँ ।"

तो 'अच्छा' कह स्वीकार किया । उन्होंने उद्यान में ही उसका राज्याभिषेक कर दिया ।

महान् वैभव प्राप्त होने से वह दरी-मुख को भूल गया । रथ पर चढ़ जनता के साथ उसने नगर में प्रवेश किया और राजद्वार पर रुक अमात्यों को उनके पद दे प्रासाद पर चढ़ा । तब दरी मुख 'अब उद्यान खाली है' सोच आकर शिला पर बैठा । उसी समय उसके सामने सूखा पीला पत्ता गिरा । उसने उस सूखे पीले पत्ते को ही लेकर क्षय-व्यय का विचार करते हुए त्रिलक्षणों[1] का मनन कर पृथ्वी को गुजाँते हुए प्रत्येक-बोधी को प्राप्त किया । उसी समय उसका गृहस्थ वेष अन्तर्धान हो गया । आकाश से ऋद्धि-मय पात्र चीवर उतर कर उसके शरीर पर धारण हो गया । उसी समय वह आठ परिष्कारधारी[2] सम्यक् चर्य्या-युक्त सौ वर्ष के स्थविर जैसा हो, ऋद्धि-बल से आकाश में उठ, हिमालय प्रदेश में नन्द-मूलक प्रपात पर पहुँचा ।

बोधिसत्व भी धर्मानुसार राज्य करते रहे । लेकिन वैभव की अधिकता में, वैभव में मस्त हो चालीस वर्ष तक दरीमुख को याद नहीं किया । लेकिन चालीसवाँ वर्ष बीतने पर उन्हें उसके देखने की इच्छा हुई—दरीमुख नामक मेरा मित्र कहाँ है ? तब से वे अन्तःपुर में भी तथा सभा में भी यही कहते—मेरा दरीमुख नामक मित्र कहां है ? जो मुझे उसका निवासस्थान बतायेगा उसे मैं बहुत यश दूँगा । इस प्रकार बार बार उसकी याद करते करते और दस वर्ष बीत गए ।

दरीमुख प्रत्येक-बुद्ध ने भी पचास वर्ष बीत जाने पर ध्यान-बल से देखा—उन्हें मित्र याद कर रहा है । यह जान 'अब वह बूढ़ा हो गया है, पुत्र-पुत्रियों से (परिवार) बढ़ गया है, जाकर धर्मोपदेश दे उस प्रव्रजित करूँगा' सोच वह ऋद्धि-बल से आकाश मार्ग से आ उद्यान में उतर स्वर्ण-प्रतिमा की तरह शिला पर बैठे ।

---

[1]अनित्य, दुःख, अनात्म

[2]भिक्षु की आठ व्यक्तिगत चीजें—तीन चीवर, पात्र, काय बंधन, उस्तरा, सूई, धागा तथा पानी छानने का वस्त्र ।

उद्यान पाल ने उन्हें देख, जाकर पूछा—"भन्ते ! कहाँ से आये ?"

"नन्दमूलक पर्वत से।"

"आपका नाम क्या है ?"

"आयुष्मान् ! मुझे दरीमुख प्रत्येक-बुद्ध कहते हैं।"

"भन्ते ! हमारे राजा को जानते हैं ?"

"हाँ, जानता हूँ, जब मैं गृहस्थ था तो वह मेरा मित्र था।"

"भन्ते ! राजा आप से मिलना चाहता है, मैं उसे आप के आगमन की सूचना देता हूँ।"

"जा, कह।"

उसने जल्दी जल्दी जा राजा को सूचना दी—वे शिला पर बैठे हैं।

राजा को जब यह पता लगा कि उसका साथी आया है तो वह उसे देखने के लिये रथ पर चढ़ अनेक अनुयायियों के साथ उद्यान गया और प्रत्येक-बुद्ध को प्रणाम कर, कुशल-क्षेम पूछ एक ओर बैठा।

प्रत्येक-बुद्ध ने उसे धर्मोपदेश दिया—ब्रह्मदत्त ! क्या करता है ? धर्मानुसार राज्य करता है ? अगति-गामी कर्म तो नहीं करता है ? तू धन के लिए लोगों को कष्ट तो नहीं देता, पुण्य करता है ? फिर कुशल-क्षेम पूछ 'ब्रह्मदत्त ! तू वृद्ध हो गया। अब काम भोगों को छोड़ प्रव्रजित होने का समय है' कह उसे धर्मोपदेश देते हुए पहली गाथा कही:—

पङ्को च कामा पलिपो च कामा
भयञ्च मेतं तिमूलं पवुत्तं,
रजो च धूमो च मया पकासिता
हित्वा तुवं पब्बज ब्रह्मदत्त ॥

[काम-भोग कीचड़ हैं, काम-भोग दलदल हैं, मैंने इस महान् खतरे को कहा है। मैंने इन्हें रज और धुआँ (भी) कहा है। ब्रह्मदत्त ! तू इन्हें छोड़ प्रव्रजित हो।]

यह सुन राजा ने काम-भोगों में अपने आप को जकड़ा हुआ प्रकट करते हुये दूसरी गाथा कही:—

गथितो च रत्तो अधिमुच्छितो च
कामेस्वाहं ब्राह्मण भिंसरूपं,
तं नुस्सहे जीविकत्थो पहातुं
काहामि पुञ्ञानि अनप्पकानि ॥

[हे ब्राह्मण ! मैं काम-भोगों में भयानक रूप से उलझा हुआ हूँ, अनुरक्त हूँ, मूर्छित हूँ। मैं उस जीविका की इच्छा करता हुआ भी, उन्हें नहीं छोड़ सकता। मैं अनेक पुण्य (-कर्म) करूँगा।]

बोधिसत्व ने उसके 'प्रव्रजित नहीं हो सकता' कहने पर भी कन्धा न गिरा-उसे और भी उपदेश देते हुए दो गाथायें कहीं—

यो अत्थकामस्स हितानुकम्पिनो
ओवज्जमानो न करोति सासनं,
इदमेव सेय्यो इति मञ्ञमानो
पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो ॥
सो घोररूपं निरयं उपेति
सुभासुभं मुत्तकरीसपूरं,
सत्ता सकाये न जहन्ति गिद्धा
ये होन्ति कामेसु अवीतरागा।

[जो भलाई चाहने वाले, हितेच्छु के उपदेश देने पर उसके अनुसार आचरण नहीं करता, और समझता है (कि जो मैं करता हूं) वही श्रेष्ठ है, ऐसा मूर्ख पुनः पुनः गर्भ में आकर पड़ता है।

वह भयानक नरक में जाता है, जिसे योगी-जन अशुभ समझते हैं, जो मल-मूत्र से भरा है, लेकिन जो काम-भोगों के प्रति रागी हैं, आसक्त हैं, चिमटे हुए हैं, वे माता की कोख को नहीं छोड़ते हैं।]

इस प्रकार दरीमुख प्रत्येक-बुद्ध ने गर्भ-प्रवेश, तथा गर्भ-निवास मूलक दुःख को कह कर गर्भ से बाहर आने के दुःख को प्रकट करते हुए डेढ़ गाथा कहीः—

मीळ्हेन लित्ता रुहिरेन मक्खिता
सेम्हेन लित्ता उपनिक्खमन्ति,

यं यं हि कायेन फुसन्ति तावदे
सब्बं असातं दुक्खमेव केवलं,
दिस्वा वदामि नहि अञ्ञतो सवं
पुब्बेनिवासं बहुकं सरामि ॥

[गूह में लिबड़े हुए, रुधिर में माखे हुए तथा श्लेष्म में लिपटे हुए (गर्भ से बाहर) निकलते हैं।

उस समय जिस जिस चीज़ को शरीर से स्पर्श करते हैं; वह सभी प्रतिकूल ही होता है, केवल दुःख ही होता है। मैं यह (स्वयं) देखकर कहता हूं, किसी से सुनी सुनाई बात नहीं। मैं बहुत से पूर्व-जन्मों को याद करता हूं।]

अब शास्ता ने अभिसम्बुद्ध होने पर 'इस प्रकार उस प्रत्येक-बुद्ध ने राजा को सुभाषित गाथाओं द्वारा उपदेश दिया' कह अन्त में आधी गाथा कही —

चित्राहि गाथाहि सुभासिताहि
दरीमुखो निज्झापयी सुमेधं ॥

[नाना अर्थ-पूर्ण सुभाषित गाथाओं द्वारा दरीमुख ने सुमेध राजा से अपनी बात स्वीकार कराई।]

इस प्रकार प्रत्येक-बुद्ध ने काम-भोगों में दोष दिखा, अपनी बात मनवा, राजा को कहा—महाराज ! अब चाहे आप प्रव्रजित हों, चाहे न हों। मैंने तुम्हें काम-भोगों के दुष्परिणाम और प्रव्रज्या का माहात्म्य कह दिया। तुम अप्रमादी रहो। इतना कह स्वर्ण राजहंस की तरह आकाश में उड़, बादलों को चीरते हुए नन्दमूलक पर्वत पर ही गया। बोधिसत्व ने दसों नखों के मेल से प्रकाशमान् अञ्जलि को मस्तक पर रख नमस्कार किया। फिर जब उसका दिखाई देना बन्द हो गया तो ज्येष्ठ पुत्र को बुला उसे राज्य सौंप, जनता के रोते पीटते रहने पर काम-भोगों को छोड़ हिमालय में प्रवेश किया। वहाँ पर्ण-कुटी बना, ऋषि-प्रव्रज्या ले, थोड़ी ही देर में अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, आयु के अन्त में ब्रह्मलोक-गामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में अनेक स्रोतापन्न-आदि हुए। उस समय राजा मैं ही था।

३७९. नेरु जातक

"काकोळा काकसङ्घा..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह शास्ता से कर्मस्थान (= योग-विधि) ग्रहण कर एक सीमा-पार के गांव में गया। मनुष्यों ने उसकी चर्य्या से प्रसन्न हो, उसे भोजन करा; वचन ले, जंगल में पर्ण-कुटी बनवा वहाँ बसाया। उसका बहुत सत्कार किया। तब तक दूसरे शास्वत-वादी आ गये। उन्होंने उनका सिद्धान्त सुना तो स्थविर के सिद्धान्त को त्याग शास्वत-वाद को स्वीकार कर उनका सत्कार किया। तब तक उच्छेद-वादी आ गये। उन्होंने शास्वत-वाद छोड़ उच्छेदवाद स्वीकृत कर लिया। तब तक दूसरे नग्नता-वादी आ गये। उन्होंने उच्छेद-वाद छोड़ नग्नता-वाद स्वीकार कर लिया। वह उन गुणावगुण न समझने वाले लोगों के पास दुःख से रहा। वर्षा-वास के बाद प्रवारणा कर शास्ता के पास पहुँचा।

शास्ता ने कुशल-क्षेम पूछने के बाद पूछा—

"वर्षा-वास कहाँ किया?"

"भन्ते! सीमा-पार के गाँव में।"

"सुख-पूर्वक रहा?"

"भन्ते! गुणावगुण न समझ सकने वालों के पास दुःख से रहा।"

"भिक्षु! पुराने पण्डित पशु-योनि में पैदा होने पर भी गुणावगुण न जान सकने वालों के साथ एक दिन भी नहीं रहे, तू ऐसी जगह पर जहाँ कोई तेरे गुणावगुण को नहीं समझता था क्यों रहा?"

इतना कह, उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व स्वर्ण हंस की योनि में पैदा हुए। उसका एक छोटा भाई भी था। वे चित्रकूट पर्वत पर रहते हुए हिमालय-प्रदेश में अपने से उत्पन्न होने वाला धान खाते थे। एक दिन वहाँ चुगकर चित्रकूट को लौटते समय रास्ते में नेरु नाम के कञ्चन-पर्वत को देख उस पर बैठे। उस पर्वत पर रहने वाले पक्षी, खरगोश तथा अन्य चौपाये उस गोचर-भूमि में नाना वर्ण के होते थे; लेकिन पर्वत पर आने के बाद उसके प्रकाश के प्रभाव से स्वर्ण-वर्ण हो जाते। यह देख बोधिसत्व के छोटे भाई ने यह बात न समझ, भाई से 'क्या कारण है?' पूछते हुए दो गाथायें कहीं—

काकोळा काकसङ्घा च मयञ्च पततं वरा,
सब्बेव सदिसा होम इमं आगम्म पब्बतं ॥
इध सीहा च ब्यग्घा च सिगाला च मिगाधमा,
सब्बेव सदिसा होन्ति अयं को नाम पब्बतो ॥

[जंगली कौवे, सामान्य कौवे तथा हम जो पक्षियों में श्रेष्ठ हैं इस पर्वत पर आकर सभी समान हो जाते हैं। यहाँ सिंह, व्याघ्र और नीच श्रृगाल सभी समान (वर्ण) हो जाते हैं, इस पर्वत का क्या नाम है?]

उसकी बात सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही:—

इमं नेरुन्ति जानन्ति मनुस्सा पब्बतुत्तमं,
इध वण्णेन सम्पन्ना वसन्ति सब्बपाणिनो ॥

[इस उत्तम-पर्वत को मनुष्य 'नेरु' कहते हैं। यहाँ सभी प्राणी (सु-) वर्ण युक्त हो बसते हैं।]

यह सुन छोटे भाई ने शेष गाथायें कहीं:—

अमानना यत्थसिया सन्तानं वा विमानना,
हीनसम्मानना वापि न तत्थ वसतिं वसे ॥
यत्थालसो च दक्खो च सूरो भीरु च पूजिया,
न तत्थसन्तो निवसन्ति अविसेसकरे नगे ॥

नायं नेरुविभजति हीनमुक्कट्ठमज्झिमे,
अविसेसकरो नेरु हन्द नेरुं जहामसे ॥

[जिस जगह शान्त-पुरुषों का मान न हो अथवा अपमान हो तथा हीन-पुरुषों का सम्मान हो वहाँ न बसे।

जिस पर्वत पर बिना किसी विशेषता के ख्याल के आलसी होशियार बहादुर तथा डरपोक समानरूप से पूजित होते हैं वहाँ पण्डित जन नहीं रहते।

यह नेरु हीन, मध्यम तथा उत्कृष्ठ का भेद नहीं करता। यह नेरु सभी को समान समझता है। हन्त ! हम नेरु को छोड़ दें।]

यह कह वे दोनों हंस उड़ कर चित्रकूट पर्वत को ही चले गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में वह भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय छोटा हँस आनन्द था। ज्येष्ठ-हँस तो मैं ही था।

३८०. आसङ्क जातक

"आसावती नाम लता..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व भार्य्या की आसक्ति के बारे में कही। (वर्तमान-) कथा **इन्द्रिय जातक**[1] में आएगी।

इस कथा में तो शास्ता ने पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित हुआ है ? उसके "भन्ते ! सचमुच" कहने पर शास्ता ने पूछा—किसने उत्कण्ठित किया है ? भिक्षु बोला—पूर्व-भार्य्या ने। शास्ता ने कहा—भिक्षु ! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है, पहले भी तू इसके कारण चतुरङ्गिनी सेना को छोड़ हिमालय-प्रदेश में महान् दुःख भोगता हुआ तीन वर्ष रहा।

---

[1] इन्द्रिय जातक (४२३)

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी के ग्राम में ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ। बड़े होने पर तक्षशिला जा, शिल्प सीख, ऋषि-प्रव्रज्या ले, जंगल के फल-मूल खाते हुए, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर हिमालय प्रदेश में रहने लगा।

उस समय एक पुण्यवान् प्राणी त्र्यस्त्रिंश-भवन से च्युत होकर उस जगह कमल-सरोवर में एक कमल में लड़की होकर पैदा हुआ। शेष कमलों के पुराने होकर गिर पड़ने पर भी वह फूल बड़ी-कोख वाला होकर लगा ही रहा।

तपस्वी जब नहाने के लिये कमल-सरोवर पर आया तो और कमलों के गिर जाने पर भी उस एक कमल को बड़ी-कोख वाला हो लगा देख उसने सोचा—क्या कारण है? उसने नहाने का वस्त्र पहना और उतर कर वहाँ पहुँचने पर कमल को खोला तो लड़की दिखाई दी। वह उसे पुत्री मान पर्ण-कुटी में ले आया और पालन-पोषन किया।

आगे चल कर सोलह वर्ष की होने पर वह सुन्दर हुई, उत्तम रूपवान्, मानुषी-रूप तथा देव-रूप के बीच की। उस समय शक्र बोधिसत्व की सेवा में आता था। उसने उसे देख पूछा—यह कहाँ से? जब उसे उसकी प्राप्ति का क्रम मालूम हो गया, तब उसने पूछा, इसके लिये क्या चाहिये?

"रहने के लिये स्फटिक का महल बना, दिव्य-शयन, दिव्य वस्त्रा-लङ्कार तथा (वैसा ही) भोजन प्रबन्ध (कर) मित्र!"

यह सुन उसने 'भन्ते! अच्छा' कह उसके निवास के लिये स्फटिक प्रासाद बना, दिव्य-शयन, दिव्य वस्त्रालङ्कार तथा दिव्य अन्न-पान तैयार किये।

वह प्रासाद उसके चढ़ने के समय जमीन पर उतर आता और उसके चढ़जाने पर उछल कर आकाश में जा ठहरता। वह बोधिसत्व की सेवा करती हुई महल में रहती। उसे एक जंगली-मनुष्य ने देखा तो पूछा—
"भन्ते! यह आप की कौन होती है?"

"मेरी लड़की है।"

उसने वाराणसी-राज को सूचना दी—देव ! मैंने एक तपस्वी की इस तरह की कन्या देखी है।

यह सुन राजा सुनना मिलने मात्र से आसक्त हो, जंगली-मनुष्य को मार्ग-दर्शक बना, चतुरङ्गिनी सेना को साथ ले वहाँ पहुँचा। उसने वहाँ पड़ाव डाल दिया और जंगली मनुष्य को साथ ले, अमात्यों सहित आश्रम पहुँच, बोधिसत्व को प्रणाम कर, एक ओर बैठ, कहा—

"भन्ते ! स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य्य के लिये मल (-स्वरूप) हैं, तुम्हारी लड़की का पालन पोषण मैं करूँगा।"

बोधिसत्व "इस कमल में क्या है ?" इस प्रकार की आशङ्का कर पानी में उतर कर लाये थे। इसलिये उन्होंने उसका नाम आशङ्का-कुमारी रखा था। इसलिये राजा को सीधे सीधे 'इस कुमारी को ले जायें' न कह बोधिसत्व ने कहा—"यदि कुमारी का नाम जानते हों, तो ले जायें।"

राजा बोला—"भन्ते। आप के बताने पर जान जायेंगे।"

"मैं नहीं बताऊँगा। तू अपने प्रज्ञा-बल से ही पता लगा कर इसे ले जा।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और तब से मन्त्रियों के साथ विचार करने लगा कि इसका क्या नाम है ? वह जो असाधारण नाम हैं, ऐसे नाम लेकर बोधिसत्व को कहता—"भन्ते ! अमुक नाम होगा, अमुक नाम होगा।" बोधिसत्व ने कहा—"नहीं, ये नाम नहीं हैं।"

इस प्रकार नाम का विचार करते करते ही राजा को एक वर्ष बीत गया। सिंह आदि बनैले-पशु हाथी, घोड़ों तथा आदमियों को मार डालते। साँपों का ख़तरा हो गया। (डंक मारने वाली) मक्खियों का खतरा हो गया। शीत से कष्ट पाकर बहुत मनुष्य मरने लगे। तब राजा को क्रोध आया—मुझे इस से क्या ? वह बोधिसत्व को कह कर चल दिया।

आशङ्का-कुमारी उस दिन स्फटिक-खिड़की खोल अपने को दिखाती हुई खड़ी थी। राजा ने उसे देख कर कहा "हम तेरा नाम नहीं जान सके। तू हिमालय में ही रह। हम जाते हैं।"

"महाराज कहाँ जाने से मेरे सदृश स्त्री मिलेगी। मेरी बात सुनें। त्र्यस्त्रिंश देवलोक में, चित्तलतावन में, आशावती नामक लता है। उसके फल

का दिव्य-पान होता है। उसे एक बार पीकर चार महीने तक दिव्य-शैय्या पर सोते रहते हैं। वह हजार वर्ष में एक बार फलती है। सुरा-प्रेमी देव-पुत्र 'यहाँ से फल मिलेगा' इस आशा से प्यास को सहते हुए हजार वर्ष तक लगातार जाकर देखते रहते हैं कि वह लता ठीक से तो है। तू एक ही वर्ष में उद्विग्न हो गया है। आशा फलीभूत होने पर सुख देती है। उद्विग्न मत हो।"

यह कह उसने तीन गाथायें कहीं :—

आसावती नाम लता जाता चित्तलतावने,
तस्सा वस्स सहस्सेन एकं निब्बत्तते फलं
तं देवा पयिरूपासन्ति ताव दूरफलंसतिं ॥

[चित्तलता वन में आशावती नाम की लता पैदा हुई। हज़ार वर्ष में वह एक फल देती है। उतना दूर फल होने पर भी देवता उसकी सेवा में रहते हैं।]

राजा ने उसकी बात में आ फिर अमात्यों को इकट्ठा कर दस-दस नामों की कल्पना कराई। इस प्रकार नाम की खोज करते हुए और भी एक वर्ष बीत गया। दस नामों में भी उसका नाम नहीं था। 'अमुक नाम की है' कहने पर बोधिसत्व ने अस्वीकार किया। राजा ने फिर सोचा कि मुझे इससे क्या, और घोड़े पर चढ़ चल दिया।

उसने भी फिर खिड़की में खड़े होकर अपने को दिखाया। राजा ने उसे देखा तो कहा—तू ठहर हम जाते हैं।

"महाराज क्यों जाते हैं?"

"तेरा नाम नहीं जान सकता हूँ।"

"महाराज! नाम क्यों नहीं जान सकोगे? आशा फलती ही है। मेरी बात सुनें। एक बगुला पर्वत शिखर पर खड़ा था। उसकी इच्छा पूरी हुई। तुम्हारी इच्छा क्यों नहीं पूरी होगी। महाराज सब्र करें। बगुला एक कमल-सरोवर से शिकार पकड़ उड़कर एक पर्वत पर जा बैठा। वह उस दिन वहीं रहा। अगले दिन सोचा—मैं इस पर्वत शिखर पर सुख से बैठा हूँ। यदि यहाँ से न उतर कर यहीं बैठे-बैठे शिकार ग्रहण कर, पानी पी, आज का दिन यहीं रहूँ तो मेरे लिए कितना अच्छा हो! उसी दिन देवेन्द्र शक्र ने असुरों पर विजय प्राप्त की थी। शक्र ने

त्रयोत्रिंश-भवन में देवैश्वर्य प्राप्त कर सोचा—मेरा मनोरथ पूरा हुआ। क्या कोई ऐसा है जिसका मनोरथ अपरिपूर्ण हो? उसने ध्यान लगाने पर उस बगुले को देख निश्चय किया कि इसका मनोरथ पूरा करूँगा। बगुले के बैठने की जगह के पास ही एक नदी थी। उस नदी में बाढ़ लाकर उसे पर्वत शिखर तक पहुँचा दिया। बगुले ने वहीं बैठे बैठे मछलियाँ खा, पानी पी, वह दिन वहीं बिता दिया। पानी उतर कर नीचे चला गया। इस प्रकार, महाराज, बगुले की भी आशा पूरी हुई आपकी क्यों न होगी?"

उसने ये गाथायें कहीं :—

आसिंसेथ तुवं राज आसा फलवती सुखा,
आसिंसथेव सो पक्खी आसिंसथेव सो दिजो॥
तस्सचासा समिज्झित्थ तावदूरगता सती,
आसिंसेथ तुवं राज आसा फलवती सुखा॥

[राजन्! तुम आशा न छोड़ो। आशा फलवती होने पर सुखदायक होती है। वह पक्षी भी आशा लगाये रहा, वह विहंग भी आशा लगाये रहा। उसकी इतनी दूर की भी आशा पूरी हुई। राजन् तुम आशा न छोड़ो। आशा फलवती होने पर सुखदायक होती है।]

राजा उसकी बात सुन, उसके रूप-पाश में बँध, उसकी बात में आ, न जा सका। तब उसने अमात्यों को बुला सौ नामों की कल्पना कराई। सौ-सौ करके नाम की खोज करते हुए भी एक और वर्ष बीत गया। उसने बोधिसत्व के पास जा सौ नामों में से 'अमुक नाम होगा। अमुक नाम होगा' पूछा।

"महाराज, नहीं जानते हो।"

वह 'हम जाते हैं' कह बोधिसत्व को प्रणाम कर चल दिया।

आशंका-कुमारी फिर स्फटिक-खिड़की पर खड़ी हुई। राजा उसे देख बोला—तू रह, हम जाते हैं।

"महाराज क्यों?"

"तू मुझे वचन-मात्र से ही सन्तुष्ट करती है, कामरति से नहीं। तेरी मधुर-वाणी के पाश में बँध मुझे यहाँ रहते तीन वर्ष बीत गये। अब जाऊँगा।"

उसने ये गाथायें कहीं :—

सम्पेसि खो मे वाचाय न च सम्पेसि कम्मुना,
माला सेरेय्यकस्सेव वण्णवन्ता अगन्धिका ॥
अफलं मधुरं वाचं यो मित्तेसु पकुब्बति,
अददं अविस्सजं भोगं सन्धि तेनस्स जीरति ॥
यं हि कयिरा तं हि वदे यं न कयिरा न तं वदे,
अकरोन्तं भासमानं परिजानन्ति पण्डिता ॥
बलं च वत मे खीणं पाथेय्यञ्च न विज्जति,
सङ्के पाणुपरोधाय हन्ददानि वजामहं ॥

[वाणी से ही मुझे सन्तुष्ट करना चाहती है, कर्म से नहीं। सेरेय्यक (?) की माला की तरह जिसका वर्ण होता है, किन्तु सुगन्धि नहीं ॥ जो मित्रों से निष्फल मधुर-वाणी बोलता है (देने को कहता है, किन्तु) न देता है, न त्याग करता है, उसकी मैत्री जाती रहती है ॥ जो करे उसे ही कहे जो न करे उसे न कहे। जो करता नहीं है, केवल कहता है, उसे पण्डित पहचान लेते हैं ॥ मेरी सेना क्षीण हो गई, और मेरे पास खर्च भी नहीं रहा। मुझे अपनी जान जाने की शङ्का होती है। हन्त ! मैं अब जाता हूँ।]

आशङ्का कुमारी ने राजा की बात सुनी तो बोली :—

"महाराज ! आप मेरा नाम जानते हैं। आप ने जो कहा, वही मेरा नाम है। यही नाम मेरे पिता को कह कर मुझे साथ लेकर जायें।" उसने राजा से बात चीत करते हुए कहा—

एतदेवहि मे नामं यं नामस्मि रथेसभ,
आगमेहि महाराज पितरं आमन्तयामहं ॥

[राजन ! जिस नाम वाली मैं हूं, वह यही मेरा नाम है। प्रतीक्षा करो। मैं पिता को बुलाती हूँ।]

यह सुन राजा बोधिसत्व के पास गया और प्रणाम करके बोला—आप की लड़की का नाम आशङ्का है। बोधिसत्व ने उत्तर दिया—जब से नाम जान लिया है, तभी से लेकर जा सकते हो। यह सुन बोधिसत्व को प्रणाम किया और स्फटिक विमान के द्वार पर पहुँच कर बोला—भद्रे ! आज तेरे पिता ने भी तुझे मुझ को दे दिया है। आ अब चलें। यह सुन वह 'राजा प्रतीक्षा करें। मैं पिता से मिललूं' कह प्रासाद से उतरी और पिता

को प्रणाम कर, रो, क्षमा याचना कर राजा के पास आई। राजा उसे ले वाराणसी आया और पुत्र-पुत्रियों के साथ वृद्धि को प्राप्त होता हुआ प्रेम-पूर्वक रहा। बोधिसत्व ध्यानारूढ़ रह ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में उद्विग्न-चित्त भिक्षु श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय आशङ्का कुमारी पूर्व-भार्य्या थी। राजा उद्विग्न-चित्त था। तपस्वी तो मैं ही था।

३८१. सिगालोप जातक

"न मेरुचि..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बात न सह सकने वाले भिक्षु के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु को बुलाकर पूछा—भिक्षु! क्या तू सचमुच बात न सह सकने वाला है? 'हाँ भन्ते!' कहने पर 'भिक्षु! न केवल अभी तू बात न सह सकने वाला है, तू पहले भी बात न सह सकने वाला ही रहा है। लेकिन बात न सह सकने की आदत के कारण पण्डितों का कहना न कर झंझावात में फँस दुःख को प्राप्त हुआ' कह पूर्व-जन्म की कथा कहीः—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गीध की योनि में पैदा हुआ। उसका नाम था अपरण्ण गीध। वह गीधों की मण्डली से घिरा गृध्र-कूट पर्वत पर रहता था। उसका मिगालोप नाम का पुत्र बड़ा शक्तिशाली था। वह दूसरे गीधों की सीमा लांघ, बहुत ऊँचे पर उड़ता। गीधों ने गृध्र-राज को कहा—तेरा पुत्र बहुत ऊँचे पर उड़ता है।

गृध्र-राज ने उनकी बात सुन उसे बुलाकर कहा—तात ! तू बहुत ऊँचे पर उड़ता है। बहुत ऊँचे पर उड़ने से जान गँवा बैठेगा।

यह कह तीन गाथायें कहीं:—

न मे रुच्चि मिगालोप यस्सते तादिसा गति,
अतुच्चं तात पतसि अभूमिं तात सेवसि ॥
चतुक्कण्णंव केदारं यदा ते पठवी सिया,
ततो तात निवत्तस्सु मास्सु एत्तो परंगमि ॥
सन्ति अञ्ञेपि सकुणा पत्तयाना विहङ्गमा,
अक्खित्ता वातवेगेन नट्ठा ते सस्सतीसमा ॥

[मिगालोप ! तेरी यह गति मुझे अच्छी नहीं लगी। तू बहुत ऊँचे पर उड़ता है, तू आकाश पर रहता है। तात ! जब यह पृथ्वी तुझे चतुष्कोण खेत जैसी प्रतीत होने लगे, तो वहाँ से तू लौट आ। उससे ऊपर मत जा। और भी पक्षी हैं, जो पङ्खों रूपी यान पर चढ़कर आकाश में उड़े हैं, जिन्हों ने अपने आप को पृथ्वी की तरह (दृढ़) माना; वे हवा के झोंके की चपेट में आकर नष्ट हो गये।]

उपदेश न मानने वाला होने के कारण मिगालोप ने पिता का कहना न माना। ऊपर जाते हुए पिता की बताई सीमा को देख, उसे पार कर काली-वायु के भी उस पार जा झंझावात में जा कूदा। उसे झंझावात की मार पड़ी। उसकी चोट से टुकड़े टुकड़े हो वह आकाश में ही अन्तर्धान हो गया।

ये तीन अभिसम्बुद्ध गाथायें हैं:—

अकत्वा अपरण्णस्स पितु बुद्धस्स सासनं,
कालवाते अतिक्कम्म वेरम्भानं वसं गतो ॥
तस्स पुत्ता च दारा च ये चञ्ञे अनुजीविनो,
सब्बे ब्यसनमापादुं अनोवादकरे दिजे ॥
एवम्पि इध वुद्धानं यो वाक्यं नावबुज्झति,
अतिसीमं चरो दित्तो गिज्झो वातीतसासनो,
सब्बे ब्यसनं पप्पोन्ति अकत्वा बुद्धसासनं ॥

[वृद्ध पिता अपरण्ण का कहना न मान काली-वायु को पार कर झंझावात के वशीभूत हुआ। उस पक्षी के कहना न मानने के फल स्वरूप उसके पुत्र भार्य्या तथा अन्य जितने भी आश्रित थे, सभी दुःख को प्राप्त हुए। इसी प्रकार जो यहाँ बड़ों के कहने पर ध्यान नहीं देते, वे सभी बड़ों का कहना न मान उसी प्रकार दुःख को प्राप्त होते हैं, जैसे कहना न मान सीमा के पार जाने वाला अभिमानी गीध।]

शास्ता ने यह धर्म देशना ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। उस समय गिग्गलोप बात न मानने वाला भिक्षु था। अपरण्ण तो मैं ही था।

३८२. सिरिकालकरिण जातक

"कानु काळेन वण्णेन..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय अनाथ पिण्डिक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित होने के बाद से अखण्ड पञ्चशीलों का पालन करता था। उसकी भार्य्या भी, बेटी-बेटा भी। दास भी तथा मजदूरी लेकर काम करने वाले मजदूर भी—सभी पालन करते थे। एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात चीत चलाई—आयुष्मानो! अनाथ पिण्डिक स्वयं पवित्र जीवन व्यतीत करता है। उसका परिवार भी पवित्र जीवन व्यतीत करता है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी पण्डित-जन स्वयं भी पवित्र हुए हैं और उनके परिवार भी' कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने सेठ (पैदा) हो दान दिया, शील की रक्षा की तथा उपोसथ-व्रत किये। उसकी भार्य्या भी पञ्च शीलों की रक्षा करती थी, बेटा बेटी तथा दास और नौकर चाकर भी। वह शुचि-परिवार सेठ ही कहलाने लगा। एक दिन उसने सोचा—यदि मुझसे भी अधिक पवित्रता का ख्याल रखने वाला कोई आ जायगा, उसे अपना बैठने का आसन या सोने की शैय्या देना ठीक न होगा, उसे जो उपयोग में न आया हो वही देना ठीक होगा। उसने अपनी उपस्थान शाला में ही एक ओर बिना उपभोग में आया हुआ आसन तथा शैय्या बिछवा दी।

उस समय चातुर्महाराजिक देव-लोक से विरूपक्ष महाराज की कालकण्णी नाम की लड़की तथा धृतराष्ट्र महाराज की सिरी नाम की लड़की—ये दोनों बहुत सुगन्धि तथा मालायें ले अनोतत्त-दह पर क्रीड़ा करने के लिये अनोतत्त-सरोवर पहुँची। उस अनोतत्त-सरोवर पर बहुत से घाट थे—उनमें बुद्धों के घाट पर बुद्ध ही स्नान करते थे, प्रत्येक-बुद्धों के घाटपर प्रत्येक-बुद्ध स्नान करते थे, भिक्षुओं के घाट पर भिक्षु स्नान करते थे, तपस्वियों के घाट पर तपस्वी स्नान करते थे, चातुर्महाराजिक आदि छः स्वर्गों के देवपुत्रों के घाट पर देव-कन्यायें ही स्नान करती थीं।

वहाँ ये दोनों पहुँच घाट के लिये झगड़ने लगीं—मैं पहले स्नान करूँगी, मैं पहले स्नान करूँगी। कालकण्णी बोली—मैं लोक का पालन करती हूँ, विचार करती हूँ, इसलिये मैं पहले स्नान करूँगी। सिरि बोली—मैं लोगों के ऐश्वर्य्य-दायक सम्यक-कर्मों में रहती हूँ, इसलिए मैं पहले स्नान करूँगी। उन्होंने निश्चय किया कि हममें से किसे पहले स्नान करना चाहिये, इसका निर्णय चार-महाराजा करेंगे और चारों महाराजों के पास पहुँच कर पूछा—हम में से किसे पहले अनोतत्त-सरोवर में स्नान करना चाहिये?

धृतराष्ट्र तथा विरुपक्ष ने विरूढक तथा वैश्रवण पर जिम्मेवारी डाल दी—हम निर्णय नहीं कर सकते। उन्होंने भी कहा—हम भी निर्णय नहीं कर

सकते, शक्र के चरणों में भेजेंगे और उन्हें शक्र के पास भेज दिया। शक्र ने उनकी बात सुन सोचा—ये दोनों ही मेरे आदमियों की कन्यायें हैं, मैं इसका निर्णय नहीं कर सकता। तब शक्र बोला—वाराणसी में शुचि-परिवार नाम का सेठ है। उसके घर उपभोग में न आया हुआ आसन तथा शैय्या है, जो वहां उस पर बैठ या सो सके, वही पहले स्नान करने के योग्य है। यह सुन कालकण्णी उसी क्षण नीले वस्त्र पहन, नीला लेप लगा, नीलमणि का गहना पहन, ढेलवाँस की तेजी से देवलोक से उतर, (रात्रि के) मध्यम-याम के बाद ही, सेठ के प्रासाद की उपस्थान-शाला के द्वार पर शैय्या के पास ही नीले रंग की किरणें छोड़ती हुई आकाश में खड़ी हुई। सेठ की नजर उस पर पड़ी। दिखाई देते ही वह सेठ को अच्छी नहीं लगी, अप्रिय लगी। उसने उससे बातचीत करते हुये पहली गाथा कही—

> **कानु काळेन वण्णेन न चापि पियदस्सना,**
> **का वा त्वं कस्सवाधीता कथं जानेमुतं मयं॥**

[काले रंग वाली तू कौन है ? तेरा दर्शन प्रिय नहीं है। तू कौन है ? अथवा किसकी लड़की है ? हम तुझे कैसे पहचानें ?]

यह सुन काल-कण्णि ने दूसरी गाथा कही—

> **महाराजस्सहं धीता विरूपक्खस्स चण्डिया,**
> **अहंकाळी अलक्खिका काळकण्णीति मंविदू,**
> **ओकासं याचितो देहि वसेमि तव सन्तिके॥**

[मैं विरुपक्ष महाराज की प्रचण्ड स्वभाव वाली, काले वर्ण की पुण्य-रहित लड़की हूँ। मुझे कालकण्णी कहते हैं। मैं प्रार्थना करती हूँ कि मुझे अपने पास रहने की आज्ञा दें।]

तब बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कहीः—

> **किं सीले किं समाचारे पुरिसे निवससे तुवं,**
> **पुट्ठा मे कालि अक्खाहि यथा जानेमु तं मयं॥**

[हे कालि ! हम पूछते हैं तू बता कि तू किस स्वभाव के और किस आचरण के आदमियों के साथ वास (पसन्द) करती है, जिससे हम तुझे पहचानें।]

तब उसने अपने गुण बताते हुए चौथी गाथा कही—

मक्खी पलासी सारम्भी इस्सुकी मच्छरी सठो,
सो मय्हं पुरिसोकन्तो लद्धं यस्स विनस्सति ॥

[मुझे ऐसा पुरुष प्रिय है जो अकृतज्ञ हो, बात न मानने वाला हो, झगड़ालू हो, ईर्ष्यालु हो, कंजूस हो, शठ हो तथा जो मिले उसे (व्यसनों में) नष्ट कर देता हो ।]

तब उसने स्वयं ही पाँचवीं छठी तथा सातवीं गाथा कही:—

कोधनो उपनाही च पिसुणो च विभेदको,
कण्टकवाचो फरुसो सोमे कन्ततरो ततो ॥
अज्ज सुवेति पुरिसो सदत्थं नावबुज्झति,
ओवज्जमानो कुप्पति सेय्यंसो अतिमञ्ञति ॥
दवप्पलुद्धो पुरिसो सब्बमित्तेहि धंसति,
सो मय्हं पुरिसो कन्तो तस्मिं होमि अनामया ॥

[क्रोधी, बद्ध-वैरी, चुगल-खोर, फूट डालने वाला, कटु-भाषी तथा कठोर (आदमी) मुझे पूर्वोक्त से भी अधिक प्रिय है । आज (करने योग्य है) या कल (करने योग्य है) को भी जो नहीं समझता है, नसीहत देने से क्रोध करता है, श्रेष्ठ पुरुषों से अपने को बहुत बड़ा समझता है, (रूप आदि में) बुरी तरह आसक्त है तथा सब मित्रों द्वारा परित्यक्त है—वही मेरा प्रिय-स्वामी है, उसे प्राप्त कर मैं सुखी होता हूँ ।]

उसकी निन्दा करते हुए बोधिसत्व ने आठवीं गाथा कही—

अपेहि एत्तो त्वं कालि नेतं अम्हेसु विज्जति,
अञ्ञं जनपदं गच्छ निगमे राजधानियो ॥

[कालि ! तू यहाँ से दूर हो । हमारे में ये गुण नहीं हैं । किसी दूसरे जनपद में जा, दूसरे निगम में, दूसरी राजधानियों में ।]

यह सुन कालकण्णि ने दबकर इसके बाद की गाथा कही—

अहम्पि चेतं जानामि नेतं तुम्हेसु विज्जति,
सन्ति लोके अलक्खिका सङ्घरन्ति बहुं धनं,
अहं देवो च मे माता उभो नं विधमामसे ॥

[मैं भी यह जानती हूँ कि ये बातें तुम में नहीं हैं। लोक में दूसरे अपुण्यवान् प्राणी हैं, जो बहुत धन इकट्ठा करते हैं। मैं और मेरा भाई देव-पुत्र दोनों उस धन को नष्ट करेंगे ।]

वह बोली—हमारे पास देव-लोक में बहुत दिव्य-परिभोग हैं, दिव्य शयनासन हैं, तू दे या न दे, हमें उनसे क्या प्रयोजन ? यह कह चली गई।

उसके चले जाने पर सिरि देव-कन्या स्वर्ण-वर्ण सुगन्धित लेपों से युक्त हो, स्वर्णालङ्कारों को पहन, उपस्थान शाला के द्वार पर पीली किरणें बिखेरती हुई, पृथ्वी पर पैरों को बराबर स्थिर कर, गौरव-युक्त हो खड़ी हुई। यह देख बोधिसत्व ने पहली गाथा कही—

> कानु दिब्बेन वण्णेन पठव्या सुप्पतिट्ठिता,
> का वा त्वं कस्स वा धीता कथं जानेमु तं मयं ॥

[पृथ्वी पर सुप्रतिष्ठित दिव्य-वर्ण वाली तू कौन है ? तू कौन है ? अथवा किसकी लड़की है ? हम तुझे कैसे पहचानें ?]

यह सुन सिरि ने दूसरी गाथा कही—

> महाराजस्सहं धीता धतरट्ठस्स सिरिमतो,
> अहं सिरी च लक्खी च भूरिपञ्ञा ति मं विदू,
> ओकासं याचितो देहि विसेमु तव सन्तिके ॥

[मैं श्रीमान् महाराज धृतराष्ट्र की कन्या हूँ। मेरा नाम सिरि है और लक्ष्मी है। मुझे अति-प्रज्ञावान् समझते हैं। मैं प्रार्थना करती हूँ कि मुझे अपने पास रहने दें ।]

तब बोधिसत्व ने कहा—

> किं सीले किं समाचारे पुरिसे निविससे तुवं,
> पुट्ठो मे लक्खि अक्खाहि यथा जानेमु तं मयं ॥

[हे लक्ष्मी ! हम पूछते हैं, तू बता कि तू किस स्वभाव के, किस आचरण के आदमियों के साथ वास (पसन्द) करती है, जिस से हम तुझे पहचानें ।]

वह बोली—

> यो वापि सीते अथवापि उण्हे
> वातातपे डंससिरिंसपे च,

खुदं पिपासं अभिभुय्य सब्बं
रत्तिन्दिवं यो सततं नियुत्तो,
कालागतञ्च न हापेति अत्थं
सो मे मनापो निवसे वतम्हि ॥

[जो शीत अथवा उष्णता; हवा, धूप तथा डाँस (मक्खि) और सर्प आदि; भूख-प्यास सब को जीत कर, रात दिन लगा रह कर, काल के आने पर भी अपने अर्थ को नहीं छोड़ता है, वैसा आदमी मुझे प्रिय है और वैसे के साथ रहना मैं (पसन्द) करती हूँ ।]

अक्कोधनो मित्तवा चागवा च
सीलूपपन्नो असठोजुभूतो,
सङ्गाहको सखिलो सण्हवाचो
महत्तपत्तोपि निवातवुत्ति
तस्माहं पोसे विपुला भवामि
उम्मी समुद्दस्स यथापि वण्णं ॥
यो चापि मित्ते अथवा अमित्ते
सेट्ठे सरिक्खे अथवापि हीने
अत्थं चरन्तं अथवा अनत्थं
आवीरहो सङ्गहमेव वत्ते,
वाचं न वज्जा फरुसं कदाचि
मतस्स जीवस्स च तस्स होमि ॥
एतेसं यो अञ्ञतरं लभित्वा
कन्ता सिरी मज्जति अप्पपञ्ञो,
तं दित्तरूपंविसमे चरन्तं
करीसवाचंव विवज्जयामि ॥
अत्तना कुरुते लक्खिं अलक्खिं कुरुतत्तना,
न हि लक्खिं अलक्खिं वा अञ्ञो अञ्ञस्स कारको ॥

[जो अक्रोधी है, जिसके मित्र हैं, जो त्यागी है, जो शीलवान् हैं, जो शठ नहीं है, जो ऋजु है, जो (मित्रादि का) संग्रह करने वाला है, जो मृदु-भाषी है, जिसकी वाणी विश्वसनीय है तथा जो ऊँचे (पद को) प्राप्त होकर

भी नम्र है ऐसे आदमी को प्राप्त होकर मैं उसी तरह फूल जाती हूँ जैसे समुद्र की लहर। जो मित्र, अमित्र, अथवा श्रेष्ठ, समान वा हीन के प्रति, अर्थ तथा अनर्थ कुछ भी करते हुए, अकेले में अथवा प्रकट रूप में, संग्रह ही करता है; जो कभी भी कठोर वाणी नहीं बोलता, मैं उस आदमी के मरने पर भी उसी की हूँ। इन गुणों में से किसी एक गुण के प्रति भी जो (प्रिय) कान्ता सिरि को प्राप्त करके प्रमाद करता है, उस अभिमानी, दुराचारी को मैं गूहं की तरह त्याग देती हूं। अपने से भाग्यवान् होता है, अपने से अभाग्यवान्; एक दूसरे को कोई भाग्यवान् अथवा अभाग्यवान् नहीं करता।]

बोधिसत्व ने सिरि देवी की इस प्रकार की बात सुन, उसका अभिनन्दन करते हुए कहा—यह उपभोग में न आया हुआ आसन और शैय्या तेरे ही योग्य है। तू आसन और पलंग पर बैठ तथा लेट। वह वहाँ रह, बहुत प्रातः ही निकल चातुर्महाराजिक देव-लोक पहुँची और अनोतत्त-सरोवर में पहले स्नान किया। वह शैय्या सिरि-देवता के उपभोग में आने से श्री-शैय्या कहलायी। श्री-शैय्या कहलाने की यही परम्परा है। इसी कारण से आज तक श्री-शैय्या कहते हैं।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय सिरि देवी उत्पल वर्णा थी। शुचि-परिवार सेठ तो मैं ही था।

२८३. कुक्कुट जातक

"सुचित्तपत्तच्छदन..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस भिक्षु को शास्ता ने पूछा--किसलिये उद्विग्न-चित्त है? 'भन्ते! एक अलङ्कार-युक्त स्त्री को देखकर आसक्ति के कारण।' शास्ता 'भिक्षु!

स्त्रियाँ ठगकर, बहका कर, अपने बश में होने पर नष्ट कर डालती हैं । लोभी बिल्ली की तरह होती हैं' कह चुप हो गये । तब उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व जङ्गल में मुर्गे की योनि में पैदा हो सैकड़ों मुर्गों के साथ रहने लगे । उसके पास ही एक बिल्ली भी रहती थी । उसने बोधिसत्व के अतिरिक्त शेष सभी मुर्गों को ढंग से खा डाला । बोधिसत्व उसके काबू न आते थे । उसने सोचा—मुर्गा बड़ा शठ है । हमारी शठता तथा चातुरी नहीं जानता है । इसे 'हम तेरी भार्य्या होंगी' कह बहका कर अपने वशीभूत होने पर खाना चाहिये । वह जिस वृक्ष की शाखा पर वह मुर्गा बैठा था वहाँ पहुँची और उसकी प्रशंसा पूर्वक याचना करती हुई बोली—

सुचित्तपत्तच्छदन तम्बचूळ विहङ्गम,
ओरोह दुमसाखाय मुधा भरिया भवामिते ॥

[सुचित्रित पङ्खों से आच्छादित, तम्र (-वर्ण) शिखा वाले पक्षी ! वृक्ष की शाखा से उतर । हम मुफ़्त में तेरी भार्य्या बनेंगी ।"

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा—यह मेरे सभी सम्बन्धियों को खा गई । अब मुझे लुभा कर खाना चाहती है । इसे विदा करूँगा । उसने दूसरी गाथा कही—

चतुप्पदी त्वं कल्याणि द्विपदाहं मनोरमे,
मिगी पक्खी असंयुत्ता अञ्ञं परियेस सामिकं ॥

[हे कल्याणि ! तू चतुष्पदी है । हे मनोरमे ! मैं द्विपद हूँ । पशु तथा पक्षी का मेल नहीं बैठता । तू दूसरा स्वामी खोज ।]

तब उसने सोचा, यह अत्यन्त शठ है । इसे किसी न किसी उपाय से ठगकर खाऊँगी ही । वह बोली—

कोमारिका ते हेस्सामि मञ्जुका पिय भाणिनी,
विन्द मं अरियेन वेदेन सावयामं यदिच्छसि ॥

[मैं सुन्दर प्रिय भाषिणी (अभी तक) कुमारी हूँ। मैं तेरी भार्य्या बनूँगी। मुझे श्रेष्ठ लाभ जान ग्रहण कर, और यदि मुझे चाहता है, तो (यह मेरी दासी है) इसे सब को सुना दे।]

तब बोधिसत्व ने सोचा—इसे धमका कर भगाना चाहिये। उसने चौथी गाथा कही—

कुणपादिनि लोहितपे चोरि कुक्कुट पोथिनि,
न त्वं अरियेन वेदेन ममं भत्तारमिच्छसि ॥

[मृतजीवों को खाने वाली! रक्त पायिनी! चोर! मुर्गों को मार डालने वाली! तू मुझे श्रेष्ठ लाभ जान स्वामी नहीं बनाना चाहती है।]

वह भाग गई। पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा। ये अभिसम्बुद्ध गाथायें हैं—

एवम्पि चतुरा नारी दिस्वान पवरं नरं,
नेन्ति सण्हाहि वाचाहि बिळारी विय कुक्कुटं ॥
यो च उप्पतितं अत्थं न खिप्पमनुबुज्झति,
अमित्तवसमन्वेति पच्छा च अनुतप्पति ॥
यो च उप्पतितं अत्थं खिप्पमेव निबोधति,
मुच्चते सत्तु सम्बाधा कुक्कुटोव बिळारिया ॥

[इस प्रकार भी चतुर नारियाँ श्रेष्ठवर को देख मृदु-वाणी से उसे अपने वश में करती हैं, जैसे बिल्ली ने मुर्गे को (वश में करने का प्रयत्न किया)। जो उत्पन्न परिस्थिति को शीघ्र ही नहीं बूझ लेता है, वह शत्रु के वशीभूत हो जाता है और पीछे अनुताप करता है। जो उत्पन्न परिस्थिति को शीघ्र ही समझ लेता है, वह शत्रु के फंदे से बच निकलता है, जैसे मुर्गा बिल्ली के फंदे से।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में उद्विग्न-भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय कुक्कुट राज मैं ही था।

३८४. धम्मद्धज जातक

"धम्मं चरथ ञातयो..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ढोंगी भिक्षु के बारे में कही।

उस समय शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी यह ढोंगी है, पहले भी ढोंगी रहा है' कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व पक्षी की योनि में उत्पन्न हो, बड़े होने पर पक्षियों के झुण्ड के साथ समुद्र में एक द्वीप पर रहते थे। कुछ काशी-राष्ट्र वासी व्यापारी दिशा-काक ले जहाज से समुद्र में उतरे। समुद्र में जहाज टूट गया। उस कौवे ने उस द्वीप में पहुंच सोचा—यह पक्षियों का महान् झुण्ड है, मुझे ढोंग करके इनके अण्डे तथा बच्चे समय समय पर खाने चाहिये।

वह पक्षियों के झुण्ड में उतर कर, चोंच खोल, पृथ्वी पर एक पाँव से खड़ा हुआ। पक्षियों ने पूछा—

"स्वामी! तुम्हारा क्या नाम है?"

"मेरा नाम धार्मिक है।"

"एक पाँव से क्यों खड़े हो?

"मेरे दूसरा पाँव रखने पर पृथ्वी (भार) सहन नहीं कर सकेगी।"

"और चोंच खोले क्यों खड़े हो?"

"मैं और कुछ नहीं खाता, केवल हवा खाता हूँ।"

इस प्रकार उत्तर दे, उसने उन पक्षियों को सम्बोधित कर "मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ, सुनो" कह उपदेश देते हुए पहली गाथा कही—

धम्मं चरथ ञातयो धम्मं चरथ भद्दं वो.
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च॥

[रिश्तेदारो ! धर्म करो । धर्म करो, भला होगा। धर्मचारी इस लोक तथा परलोक में सुख से सोता है ।]

पक्षियों ने यह नहीं समझा कि यह कौवा अण्डे खाने के लिये इस प्रकार बात बना रहा है। उन्होंने उस दुश्शील की प्रशंसा करते हुए दूसरी गाथा कही—

भद्दको वतयं पक्खी दिजो परमधम्मिको,
एकपादेन तिट्ठन्तो धम्ममेवानुसासति ॥

[यह पक्षी भद्र है। यह द्विज परम-धार्मिक है। एक पाँव से खड़ा होकर धर्म का ही उपदेश देता है।

पक्षियों ने उस दुराचारी में श्रद्धावान् हो कहा—स्वामी ! आप और कुछ शिकार नहीं ग्रहण करते, हवा ही खाते हैं। तो हमारे अण्डे और बच्चों की देख भाल करें। वे स्वयं चुगने चले जाते। वह पापी उनकी अनुपस्थिति में उनके अण्डे-बच्चे पेट भर खा उनके आने के समय शान्त-आकृति बना, चोंच खोल एक पाँव से खड़ा हो जाता। पक्षी आते और बच्चों को न देख बड़े जोर से चिल्लाते—(इन्हें) कौन खा जाता है ? उस कौवे को धार्मिक समझ उस पर तनिक शङ्का न करते।

एक दिन बोधिसत्व ने सोचा—यहाँ पहले कोई खतरा नहीं था। इसके आने के समय से ही पैदा हुआ। इसकी जाँच करनी चाहिये। वह पक्षियों के साथ चुगने जाने जैसा हो, लौटकर छिपे स्थान पर खड़ा रहा।

कौवे ने भी जब पक्षियों को गया समझा तो उठा और जाकर अण्डे बच्चे खा, लौटकर चोंच खोल एक पाँव से खड़ा हो गया। पक्षिराज ने पक्षियों के आने पर सभी को इकट्ठा कर कहा—मैंने बच्चों के खतरे की जाँच करते हुए इस पापी कौवे को उन्हें खाते देखा। आज इसे पकड़ें। उसने सभी पक्षियों को आज्ञा दी—यदि भागे तो धर दबाना। यह कह शेष गाथायें कहीं—

नास्स सीलं विजानाथ अनञ्ञाय पसंसथ,
भुत्वा अण्डञ्च छापे च धम्मो धम्मोति भासति ॥
अञ्ञं भणति वाचाय अञ्ञं कायेन कुब्बति,
वाचाय नो च कायेन न तं धम्मं अधिट्ठितो ॥

वाचाय सखिलो मनोविदुग्गो,
छन्नो कूपसयोव कण्हसप्पो,
धम्मधजो गामनिगमासु साधुसम्मतो,
दुज्जानो पुरिसेन बालिसेन ॥
इमं तुण्डेहि पक्खेहि पादाचिमं विहेठथ,
छवं हिमं विनासेथ नायं संवासनारहो ॥

[इसके स्वभाव को नहीं जानते हो। बिना जाने प्रशंसा करते हो। यह अण्डों तथा बच्चों को खाकर 'धर्म-धर्म' कहता है। वाणी से दूसरी बात कहता है, शरीर से दूसरी बात करता है। यह वाणी से ही धर्म में स्थित है, शरीर से नहीं। वाणी का कोमल, किन्तु मन दुःप्रवेश्य, वैसा ही छिपा हुआ जैसे बिल में सोया हुआ काला सर्प। ऐसा धर्मध्वजी, जो ग्राम-निगम आदि में 'धर्मात्मा' प्रसिद्ध होता है किसी मूर्ख पुरुष द्वारा नहीं पहचाना जाता। इसे चोंच से, पङ्खों से तथा पैरों से मारो। इस दुष्ट को नष्ट कर डालो। यह साथ रहने योग्य नहीं है।]

यह कह पक्षिराज ने स्वयं ही उछल कर उसके सिर पर ठोंग मारी। शेष पक्षियों ने चोंच, नख, पैर तथा पंखों से प्रहार किया। वह वहीं मर गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का ढोंगी कौवा इस समय का ढोंगी भिक्षु था। पक्षि-राज तो मैं ही था।

३८५. नन्दियमिगराज जातक

"सचे ब्राह्मण गच्छसि..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक माता का पालन-पोषण करने वाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसे शास्ता ने पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच गृहस्थों का पालन-पोषण करता है ? 'भन्ते ! सचमुच ।' 'वह तेरे क्या लगते हैं ?' 'भन्ते ! माता-पिता ।' भिक्षु ! साधु ! तू पुराने पण्डितों की परम्परा की रक्षा करता है । पुराने पण्डितों ने पशु योनि में पैदा होकर भी माता-पिता को जीवन दान दिया है, कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में कोशल राष्ट्र में साकेत (नगरी) में कोशल-राज के राज्य करने के समय बोधिसत्व मृग की योनि में पैदा हुआ । बड़े होने पर नन्दिय मृग नाम हुआ । वह सदाचारी हो माता-पिता का पालन-पोषण करने लगा । उस समय कोशल राजा मृगों के पीछे पड़ा रहता था । वह मनुष्यों को कृषि-कर्म आदि न करने देकर बहुत से आदमियों को साथ ले नित्य शिकार खेलने जाता ।

मनुष्यों ने इकट्ठे हो सोचा —आर्यो ! यह राजा हमारे काम का हर्जा करता है, गृहस्थी नष्ट होती है । क्यों न हम अञ्जनवन उद्यान को घेर कर, दरवाजा लगाकर, पुष्करिणी खोद, घास बोदें । फिर दण्ड मुद्गर आदि हाथ में ले, जंगल में घुस, झाड़ियों को पीटते हुए, मृगों को निकाल उन्हें घेर जैसे गौवें व्रज में दाखिल होती हैं, वैसे ही उन्हें उद्यान में दाखिल कर दरवाजा बन्द कर दें । फिर जाकर राजा को सूचना दे दें और अपना काम करें । सभी ने एक मत हो, इस उपाय को स्वीकार कर उद्यान बना, अरण्य में प्रविष्ट हो एक योजन भर जमीन घेर ली ।

उस समय नन्दिय एक छोटी सी झाड़ी में, माता-पिता को लिये जमीन पर पड़ा था । नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र हाथ में लिये मनुष्यों ने एक दूसरे की बाँह को पकड़े हुए उस झाड़ी को घेर लिया । कुछ आदमी मृगों को ढूँढते हुए उस झाड़ी की ओर बढ़े । नन्दिय ने उन्हें देख सोचा । आज अपना जीवन् देकर भी मुझे मातापिता की रक्षा करनी चाहिये । वह उठा और माता पिता को प्रणाम करके बोला—अम्मा ! तात ! ये मनुष्य

इस झाड़ी में दाखिल हो हम तीनों को देख लेंगे। तुम किसी न किसी उपाय से जीते रहना। जीवित रहना श्रेष्ठ है। मैं तुम्हें जीवन-दान दे, ज्योंहि मनुष्य झाड़ी के सिरे पर खड़े हों, झाड़ी को पीटेंगे, तुरन्त निकल भागूँगा। वे समझेंगे कि इस छोटी झाड़ी में एक ही मृग रहा होगा, और झाड़ी के अन्दर प्रवेश नहीं करेंगे। तुम हुशियार रहो। वह माता-पिता को प्रणाम कर चलने को तैय्यार हुआ। ज्योंहि मनुष्यों ने झाड़ी के एक सिरे पर खड़े हो, हल्ला करके झाड़ी को पीटा, वह वहाँ से निकल पड़ा। उन्होंने समझा यहाँ एक ही मृग होगा, और झाड़ी में अन्दर नहीं घुसे। नन्दिय जाकर दूसरे मृगों में शामिल हो गया। मनुष्यों ने उन्हें घेरा, सभी मृगों को उद्यान में दाखिल किया, फिर द्वार वन्द कर राजा को सूचना दी और अपने अपने निवासस्थान को चले गये।

तब से राजा स्वयं जाकर किसी एक मृग को बींध, किसी को भेजता—उसे ले आ। मृगों ने बारी बांध ली। जिसकी बारी आती वह मृग एक ओर खड़ा हो जाता। उसे बींधकर ले जाता। नन्दिय पुष्करिणी में पानी पीता था, घास चरता था किन्तु अभी उसकी बारी नहीं आई थी। तब बहुत से दिन गुजरने पर उसके माता-पिता के मन में उसे देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने सोचा—हमारा पुत्र नन्दिय मृग-राज हाथी के बल का है, शक्तिशाली है; यदि जीता होगा तो अवश्य दीवार लांघ कर भी हम से मिलने आयेगा। हम उसे सन्देसा भेजें। उन्होंने रास्ते पर खड़े हो, एक ब्राह्मण को जाता देख मानुषी वाणी में पूछा—आर्य! कहाँ जाते हो? वह बोला—साकेत। उन्होंने पुत्र को संदेसा भेजते हुए पहली गाथा कही :—

सचे ब्राह्मण गच्छसि साकेतं अञ्जनावनं,
वज्जासि नन्दियं नाम पुत्तं अम्हाक ओरसं,
माता पिता च ते वुड्ढा ते तं इच्छन्ति पस्सितुं॥

[ब्राह्मण! यदि तू साकेत (नगरी) के अञ्जन-वन को जाता है, तो वहाँ हमारे नन्दिय नामके ओरस-पुत्र को कहना कि तेरे माता पिता वृद्ध हैं, और तुझे देखना चाहते हैं।]

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और साकेत पहुँचने पर अगले दिन उद्यान में जाकर पूछा—नन्दिय मृग कौनसा है? मृग ने आकर उसके पास खड़े हो कहा—मैं हूं। ब्राह्मण ने वह सन्देसा कहा। नन्दिय ने उत्तर

दिया—ब्राह्मण ! मैं जाऊँ, दीवार फाँद कर भी मैं जाऊँ। लेकिन मैंने राजा के पास (उसका दिया) घास-पानी भोजन किया है। मैं उसका ऋणी हूँ। इन मृगों के बीच में चिरकाल से रहता हूँ। मेरे लिये यह उचित नहीं है कि मैं राजा का तथा इनका कल्याण किये विना और अपना बल दिखाये विना चल दूँ। अपनी बारी आने पर मैं इन्हें सकुशल कर आऊँगा। यह बात कहते हुए दो गाथायें कहीं :—

भुत्ता मया निवापानि राजिनो पाणभोजनं,
तं राज पिण्डं अवभोत्तुं नाहं ब्राह्मणमुस्सहे ॥
ओदहिस्सामहं पस्सं खुरप्पाणिस्स राजिनो,
तदाहं सुखितो मुत्तो अपि पस्सेय्य मातरं ॥

[मैंने राजा का दिया हुआ अन्न-जल ग्रहण किया है। हे ब्राह्मण ! मैं राज-पिण्ड के प्रति नमक हराम नहीं होना चाहता। मैं राजा के तीर के सामने अपने आप को कर दूँगा। फिर, सकुशल मुक्त हो कर माता के दर्शन करूँगा।]

यह सुन ब्राह्मण चला. गया। आगे चलकर जब उसकी बारी आई तो राजा अनेक अनुयाइयों के साथ उद्यान आया। बोधिसत्व एक ओर खड़ा था। राजा ने मृग को बींधने के लिये तीर खींचा। जिस प्रकार मृत्यु-भय से डरकर दूसरे मृग भागते थे, बोधिसत्व उस प्रकार भागे नहीं। वह निर्भीत हो, मैत्री-भावना करते हुए, अपना कोमल पहलू सामने कर निश्चल खड़े रहे। राजा उसकी मैत्री भावना के कारण तीर नहीं छोड़ सका।

बोधिसत्व ने पूछा—महाराज ! तीर क्यों नहीं छोड़ते ? छोड़ें।

"मृग-राज ! छोड़ नहीं सकता हूं।"

"महाराज ! तो गुणवानों का गुण पहचानें।"

तब राजा ने बोधिसत्व के प्रति श्रद्धावान् हो धनुष त्याग कहा—यह बेजान लकड़ी का टुकड़ा भी तेरे गुणों को पहचानता है, मैं मनुष्य होकर नहीं पहचानता हूँ। मुझे क्षमा कर। मैं तुझे अभय करता हूँ।

"महाराज ! मुझे तो अभय देते हैं, यह उद्यान के मृग-गण क्या करेंगे?"

"इन्हें भी अभय देता हूँ।"

इस प्रकार बोधिसत्व ने मृगराज-जातक में कहे गये अनुसार सभी जंगली मृगों, आकाशचारी पक्षियों तथा जलचारी मछलियों को अभय दिलवा राजा को पाँच-शीलों में स्थापित किया। फिर राजा को 'महाराज! चार-अगतियों[1] में न पड़, दस-राजधर्मों[2] के विरुद्ध न जा धर्म से, न्याय से राज्य करना चाहिये' कह, कुछ दिन राजा के पास रहा। उसने 'सभी प्राणियों को अभयदान मिल गया है' को प्रसिद्ध कराने के लिये सुनहरी मुनादी फिराई। तब वह 'महाराज! अप्रमादी रहें' कह माता पिता के दर्शनार्थ गया।

ये अभिसम्बुद्ध गाथायें हैं—

> मिगराज पुरे आसिं कोसलस्स निकेतवे,
> नन्दियो नाम नामेन अभिरूपो चतुप्पदो ॥
> तं मं वधितुमागञ्छि दायस्मिं अञ्जनावने,
> धनुं अदेज्झं कत्वान उसुं सन्धाय कोसलो ॥
> तस्साहं ओदहिं पस्सं खुरप्पाणिस्स राजिनो,
> तदाहं सुखितो मुत्तो मातरं दट्ठुमागतो ॥

[मैं पहले कोशल-राज के घर (के पास के जङ्गल) में नन्दिय नाम का सुन्दर चतुष्पाद मृग था। अञ्जन-वन के उद्यान में मुझे बध करने के लिये कोशल-राज आया और उसने धनुष को तान उस पर तीर चढ़ाया। मैंने उस राजा के सामने, जिसके हाथ में तीर था अपने आप को कर दिया। तब मैं सकुशल मुक्त हो, माता को देखने आया।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में माता का पोषण करने वाला भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। तब माता पिता महाराज-कुल थे। ब्राह्मण सारिपुत्र था। राजा आनन्द था। नन्दिय मृगराज तो मैं ही था।

---

[1] छन्दागति, दोसागति, मोहागति तथा भयागति।

[2] दान, शील, त्याग, ऋजु भाव, मृदुता, तप, अक्रोध, अविहिंसा, क्षमा तथा अविरोध॥

छठा परिच्छेद

२. सेनक वर्ग

३८६. खरपुत्त जातक

"सच्चं किरेवमाहंसु..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व-भार्य्या की आसक्ति के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच उद्विग्न है ?" "भन्ते ! हाँ" कहने पर पूछा—किसने उद्विग्न किया है ? "पूर्व भार्य्या ने।" "भिक्षु ! यह स्त्री अनर्थ-कारिणी है, पहले भी तू इसी के कारण आग में गिर कर मरता मरता पण्डितों के कारण जीता बचा" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में सेनक नाम के राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व शक्रत्व को प्राप्त हुआ। उस समय सेनक राजा की एक नागराजा के साथ मित्रता थी। वह नाग-राज नागभवन से निकल भूमि पर शिकार पकड़ता फिरता था। गाँव के लड़कों ने उसे देख 'यह सर्प है' ढेलों तथा डण्डों से पीटा। राजा ने क्रीड़ा के लिये उद्यान जाते समय देखकर पूछा—यह लड़के क्या कर रहे हैं ? जब सुना कि एक सर्प को मार रहे हैं तो 'मारने मत दो, इन्हें भगा दो' कह उन्हें भगवा दिया।

नाग-राज जीवित रह नाग-भवन गया। वहाँ से बहुत से रत्न ले आधी रात के समय राजा के शयनागार में घुस, वह रत्न दे, 'मेरी जान तुम्हारे ही कारण बची' कह राजा के साथ मैत्री स्थापित की। वह बार बार जाकर राजा से भेंट करता था। उसने अपनी नाग-कन्याओं में से एक काम-भोगों में

अतृप्तकन्या को राजा की सेवा में रहने के लिये नियुक्त किया, और राजा को एक मन्त्र दिया कि जब उसे न देखे, तब उस मन्त्र को जपे। एक दिन राजा ने उद्यान में पहुँच नाग-कन्या के साथ पुष्करिणी में जल-क्रीड़ा की। नाग-कन्या ने एक जल-सर्प देखा तो रूप बदल कर उसके साथ अनौचित्य का सेवन किया। राजा ने जब उसे नहीं देखा तो सोचा—कहाँ गई ? मन्त्र जपने पर वह उसे अनाचार करती हुई दिखाई दी। राजा ने उसे बाँस की चपटी से मारा।

वह क्रोधित हो वहाँ से नाग-भवन पहुँची। 'क्यों लौट आई ?' पूछने पर बोली—तुम्हारे मित्र ने जब देखा कि मैं उसका कहना नहीं करती हूँ, तो उसने मुझे पीठ पर मारा। उसने पीठ की चोट दिखाई। नागराज ने बिना सच्ची बात जाने ही चार नाग-तरुणों को बुलाकर भेजा—जाओ, सेनक के शयनागार में घुस फुङ्कार से ही उसे भूसे की तरह जला दो। वे राजा के सोने के समय उसके शयनागार में प्रविष्ट हुए। उनके प्रवेश करने के समय ही राजा देवी से बोला—भद्रे ! मालूम है नाग-कन्या कहाँ गई ?

"देव ! नहीं जानती हूँ।"

"आज जिस समय हम पुष्करिणी में जल-क्रीड़ा कर रहे थे उसने एक उदक-सर्प के साथ अनाचार किया। मैं ने उसे 'ऐसा न करे' शिक्षा देने के लिये बांस की छपटी से मारा। मुझे डर लगता है कि वह नाग-भवन जाकर मेरे मित्र को और कुछ कह कर हमारी मैत्री तोड़ेगी।"

यह सुन नाग-तरुण वहीं से लौट पड़े और नाग-भवन पहुँच उन्होंने राजा से वह समाचार कहा। उसके मन में संवेग उत्पन्न हुआ। वह उसी क्षण राजा के शयनागार में पहुँचा और वह बात कह क्षमा मांगी। फिर उसने राजा को 'सबकी बोली जानने का मन्त्र' दिया और कहा कि यह मेरा जुर्माना है, साथ ही यह भी कहा कि यह मन्त्र अति मूल्यवान् है, यदि किसी और को देगा तो आग में जल कर मरेगा। राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

तब से वह चींटियों की बात-चीत भी समझ सकता था। एक दिन वह महान् तल्ले पर बैठा हुआ मधु-खाण्ड के साथ भोजन कर रहा था। खाते खाते मधु की एक बून्द, खाण्ड की एक बून्द तथा पूए का एक टुकड़ा

भूमि पर गिर पड़ा। एक चींटी उसे देख चिल्लाती घूमती थी—राजा के महान् तल्ले पर शहद की मटकी फूट गई, खाण्ड की गाड़ी और पूओं की गाड़ी उलट पड़ी; शहद, खाण्ड तथा पूए खाओ। राजा उसकी आवाज सुनकर हंसा। राजा के पास खड़ी देवी ने सोचा—राजा क्या देखकर हंसा!

जब राजा खाकर, नहाकर पलंग पर बैठा था, तो एक मक्खी से उसके स्वामी ने कहा—भद्रे! आ रमण करें। वह बोली—स्वामी! थोड़ा सबर करें। अभी राजा के लिये सुगन्धियाँ लायेंगे। उसका लेप करते समय पैरों में सुगन्धित-चूर्ण गिरेगा। मैं उस में लोट-पोट कर सुगन्धित शरीर वाली हो जाऊँगी। तब राजा की पीठ पर लेट कर रमण करेंगे। राजा यह भी शब्द सुन कर हंसा। देवी भी फिर सोचने लगी—राजा क्या देख कर हंसा!

फिर शाम को जब राजा भोजन कर रहा था, भात का एक दाना जमीन पर गिर पड़ा। चींटियाँ चिल्लाईं—राज-कुल में भात की गाड़ी टूट (कर बिखर) गई। भात खाओ। यह सुन राजा फिर हंसा। देवी सोने की कड़छी लिये राजा को परोस रही थी। वह सोचने लगी कि मुझे देखकर राजा हँसता है। उसने राजा के साथ शैय्या पर लेटने के समय पूछा—देव क्यों हंसे? वह बोला—मेरे हंसने के कारण से तुझे क्या? लेकिन फिर जिद्द करने पर कह दिया।

तब वह बोली—आप जो मन्त्र जानते हैं, वह मुझे दें। "नहीं दे सकता हूँ" कह इनकार करने पर भी बार बार जिद करने लगी। राजा बोला—यदि मैं यह मन्त्र तुझे दूँगा। तो मैं मर जाऊँगा।

"देव! मर भी जायें तो भी मुझे दें।"

राजा ने स्त्री के वशीभूत हो 'अच्छा' कह स्वीकार कर लिया और सोचा इसे मन्त्र दे अग्नि में प्रविष्ट हो जाऊँगा। वह रथ पर चढ़ उद्यान गया।

उस समय शक्र ने संसार पर नजर डालते हुए यह बात देखी। उस ने सोचा—मूर्ख-राजा स्त्री के लिये आग में जल मरने जा रहा है। मैं इस की जान बचाऊँगा। उसने 'सुजा' नामकी असुर-कन्या को लिया और वाराणसी में प्रविष्ट हुआ। वह बकरी बनी और शक्र स्वयं बकरा। शक्र ने

ऐसा संकल्प किया कि जनता उन्हें न देखे और वे रथ के आगे हो लिये। उस बकरे को राजा और उसके रथ के घोड़े देखते थे, और कोई नहीं देखता था।

बकरे ने बात-चीत पैदा करने के लिये ऐसा आकार बनाया जैसे बकरी के साथ मैथुन करने जा रहा हो। रथ में जुते एक घोड़े ने उसे देखा तो बोला—मित्र बकरे ! हमने पहले सुना था कि बकरे मूर्ख होते हैं, निर्लज्ज होते हैं, लेकिन देखा नहीं था। तू छिपकर करने योग्य अनाचार को हमारी इतने जनों की नजर के सामने ही करता है। जो हमने पहले सुना था, उसका यह जो देखते हैं उससे मेल खाता है। उसने पहली गाथा कही:—

सच्चं किरेवमाहंसु भस्तं बालोति, पण्डिता
पस्स बालो रहो कम्मं आवीकुब्बं न बुज्झति ॥

[पण्डितों ने सच ही कहा है कि बकरा मूर्ख होता है। देखो ! यह मूर्ख छिपकर करने योग्य कर्म को प्रकट रूप से नहीं करना चाहिए, नहीं जानता।]

यह सुन बकरे ने दो गाथायें कहीं—

त्वं नुखो सम्म बालोसि खरपुत्त विजानहि,
रज्जुयाहि परिक्खित्तो वङ्कोट्ठो ओहितो मुखो ॥
अपरम्पि सम्म ते बाल्यं यो मुत्तो न पलायसि,
सो च बालतरो सम्म यं त्वं वहसि सेनकं ॥

[हे गर्दभ-पुत्र ! यह समझ कि तू भी मूर्ख है, जो रस्सियों से बंधा है, टेढ़े होंठ हैं और नीचे मुँह है तथा यह तेरी और भी मूर्खता है जो मुक्त होने पर भागता नहीं है। और तुझ से बढ़कर मूर्ख यह सेनक (राजा) है जिसे तू (रथ में) खींचता है।]

राजा उन दोनों की बात समझता था, इसलिये उसे सुनते हुए उसने धीरे धीरे रथ हांका। घोड़े ने भी उसकी बात सुन चौथी गाथा कही—

यन्नु सम्म अहं बालो अजराज विजानहि,
अथ केन सेनको बालो तं मे अक्खाहि पुच्छितो ॥

[हे अजराज ! जिस कारण से मैं मूर्ख हूँ, वह तू जान; लेकिन मैं पूछता हूँ—बता कि सेनक क्यों मूर्ख है ?]

यह कहते हुए बकरे ने पाँचवीं गाथा कही :—

उत्तमत्थं लभित्वान भरियाय यो पदस्सति,
तेन जहिस्सतत्तानं सा चेवस्स न हेस्सति ॥

[जो उत्तम-वस्तु को प्राप्त करके भार्य्या को दे देगा, जिस से उसकी अपनी मृत्यु होगी, और वह भी उसकी न रहेगी ।]

राजा ने उसकी बात सुन कर कहा—अजराज ! तू ही हमारा कल्याण करेगा । हमें बता कि हमें क्या करना चाहिये ?

"महाराज ! प्राणी के लिये अपने आप से बढ़कर प्रिय-तर कुछ नहीं है । एक प्रिय-वस्तु के लिये अपना विनाश करना वा प्राप्त यश को छोड़ना उचित नहीं ।"

उसने छठी गाथा कही :—

नवे पियम्मेति जनिन्द तादिसो
अत्तं निरंकत्वा पियानि सेवति,
अत्ताव सेय्यो परमाव सेय्या
लब्भा पिया ओचितत्थेन पच्छा ॥

[हे जनिन्द । तुम्हारे सदृश (आदमी) 'यह मुझे प्रिय है' ऐसा समझ (यदि उसके लिये) अपनी जान दे देता है, तो वह उस प्रिय-वस्तु का सेवन नहीं करता । अपना-आप ही श्रेष्ठ है, परं श्रेष्ठ है । उचित उपाय से प्रिय-वस्तुओं की प्राप्ति पीछे भी हो जाती है ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने राजा को उपदेश दिया । राजा ने प्रसन्न हो पूछा—अजराज ! कहाँ से आया ?

"महाराज ! मैं शक्र हूँ, तुम पर दया करके तुम्हें मृत्यु से मुक्त करने के लिये आया हूँ ।"

"देवराज ! मैंने इसे वचन दिया है कि तुझे मन्त्र दूँगा । अब क्या करूँ ?"

"महाराज ! तुम्हारे दोनों के नाश को प्राप्त होने की जरूरत नहीं ।"

'यह (मन्त्र-) शिल्प सीखने की तैयारी है' कह इसे कुछ थप्पड़ लगवाइये । तब यह नहीं ग्रहण करेगी ।

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया । बोधिसत्व राजा को उपदेश दे अपने स्थान ही को गया । राजा ने उद्यान पहुँच देवी को बुलाकर कहा—"भद्रे ! मन्त्र लेगी ?"

"देव ! हाँ।"

"तो तैय्यारी करता हूँ।"

"क्या तैय्यारी ?"

"पीठ पर सौ कोड़े पड़ने पर भी मुँह से आवाज़ नहीं निकालनी होगी।"

"उसने मन्त्र-लोभ से 'अच्छा' कह स्वीकार किया। राजा ने जल्लाद को बुलवा दोनों ओर चाबुक लगवाये। वह दो तीन चाबुक सहने के बाद बोली—

"मुझे मन्त्र नहीं चाहिये।"

तब राजा बोला—तू मुझे मार कर भी मन्त्र लेना चाहती थी ! उसने उसकी कमर की चमड़ी उधड़वा कर छोड़ी। उसके बाद फिर वह कुछ नहीं बोल सकी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के प्रकाशन के अन्त में उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय राजा उद्विग्न चित्त भिक्षु था। देवी पूर्व-भार्य्या थी। अश्व सारिपुत्र था। देवराज शक्र तो मैं ही था।

३८७. सूची जातक

"अकक्कसं......" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय प्रज्ञा-पारमिता के बारे में कही। (वर्तमान-) कथा उम्मग्ग जातक में आयेगी।

उस समय शास्ता ने 'भिक्षुओ! न केवल अभी तथागत प्रज्ञावान् तथा उपाय कुशल हैं' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी राष्ट्र में एक लोहार के घर पैदा हुए; बड़े होने पर अपने शिल्प में खूब

हुशियार । इसके मातापिता दरिद्र थे । उनके गांव से थोड़ी ही दूर एक दूसरा हजार घर का लोहारों का गांव था । वहाँ उन हजारों लोहारों में प्रधान लोहार राजा का बड़ा प्रिय तथा बहुत धनवाला था । उसकी एक लड़की थी — सुन्दर रूपवाली, देव-अप्सरा सदृश, तथा जनपद सुन्दरी के लक्षणों से युक्त । आस पास के गाँव के मनुष्य छुरी-कुल्हाड़ी, फरसा, फाल, आदि बनवाने के लिये उस गाँव में आते और प्रायःसभी उस कुमारी को देखते । वे अपने अपने गाँव लौटकर बैठकों आदि में उसके रूप की प्रशंसा करते । बोधिसत्व ने सुना तो श्रवण-मात्र से आसक्त हो सोचा कि उसे अपनी चरण-दासी बनाऊँगा । उसने उत्तम जाति का अयस[1] (-धातु) ले एक सूक्ष्म ठोस सूई तैयार कर, उसके एक ओर छेद कर पानी में डुबाया, और दूसरी उसकी वैसे ही फोकी बना उसे भी एक ओर से बींधा । इस तरह उसकी सात फोकियाँ बनाईं । यह नहीं पूछना चाहिए कि कैसे बनाईं ? बोधिसत्वों के ज्ञान की अधिकता से काम हो जाता है ।

उसने वह सूई नली में डाली और फेंट में लगा उस गाँव में पहुँचा । वहाँ प्रधान-लोहार के रहने की गली पूछ, उसके दरवाजे पर खड़ा हो, सूई की बड़ाई करता हुआ 'कौन है जो मुझसे यह सूई खरीदेगा ?' कहता हुआ, पहली गाथा बोलाः—

> अकक्कसं अफरुसं खरधोतं सुपासियं,
> सुखुमं तिखिणग्गञ्च को सूचिं केतुमिच्छति ॥

[कौन है जो यह सूई खरीदेगा—अकर्कश, गोल, अच्छे सुन्दर पत्थर से रगड़ी हुई, चिकनी तथा तीखी नोक वाली ।]

यह कह उसी की प्रशंसा करते हुए और भी एक गाथा कही—

> सुमज्जञ्च सुपासञ्च अनुपुब्बं सुविट्टतं,
> घनघातिमं पटित्थद्धं को सूचिं केतुमिच्छति

[कौन है जो यह सुई खरीदेगा—अच्छी तरह मंजी हुई, सुन्दर छेद वाली, क्रमशःगोल, (वस्त्र आदि में) प्रवेश कर जाने वाली तथा मजबूत ।]

उस समय वह कुमारी अपने पिता को जो भोजनोपरान्त सुस्ती

---

1 अयस का अनुवाद प्रायःलोहा कर दिया जाता है ।

मिटाने के लिये छोटी चारपाई पर लेटा था ताड़ के पंखे से पंखा झल रही थी। उसने बोधिसत्व का मधुर शब्द सुना तो उसे ऐसा लगा मानो उसके हृदय में गीला माँस-पिण्ड आकर लगा हो अथवा हजार घड़ों (से नहाने) से थकावट उतर गई हो। उसने सोचा—कौन है जो अत्यन्त मधुर स्वर से लोहारों के गाँव में सूई बेचता है ? मैं मालूम करूँगी, यह क्यों आया है ? उसने ताड़ का पङ्खा रख दिया और बरामदे में बाहर निकल कर उससे बात करने लगी। बोधिसत्वों के संकल्प पूरे होते हैं। वह उसी के लिये उस गाँव में आया था, और वह ही उसके साथ बात चीत कर रही थी—युवक ! सारे राष्ट्र वासी सूई आदि के लिये इस गाँव में आते हैं। तू मूर्खता के कारण लोहारों के गाँव में सूई बेचना चाहता है। यदि सारे दिन भी सूई की बड़ाई करता रहेगा, तो भी तेरे हाथ से कोई सूई नहीं लेगा। यदि कीमत चाहता है तो दूसरे गाँव जा। उसने दो गाथायें कहीं—

इतोदानि पतायन्ति सूचियो बलिसानि च,
कोयं कम्मारगामस्मिं सूची विक्केतुमिच्छति ॥
इतो सत्थानि गच्छन्ति कम्मन्ता विविधा पुथू
कोयं कम्मारगामस्मिं सूची विक्केतुमरहति ॥

[इसी गाँव से अब सूइयाँ तथा दूसरे लोहे के उपकरण बाहर जाते हैं। कौन है यह जो लोहारों के गाँव में सूई बेचना चाहता है ? इसी गाँव से शस्त्र तथा नानाप्रकार के कर्मान्त (बाहर) जाते हैं। कौन है यह जो लोहारों के गाँव में सूई बेचना उचित समझता है ?]

बोधिसत्व ने उसकी बात सुन 'भद्रे ! तू न जानने के कारण ही ऐसा कहती है' कह दो गाथायें कहीं:—

सूचिं कम्मारगामस्मिं विक्केतब्बा पजानता,
आचरियाव जानन्ति कम्मं सुकतदुक्कतं ॥
इमञ्च ते पिता भद्दे सूचिं जञ्ञा मया कतं,
तया च मं निमन्तेय्य यञ्चत्थञ्ञं घरे धनं ॥

[बुद्धिमान आदमी द्वारा सूई लोहार के गाँव में ही बेची जानी चाहिये। शिल्प के गुण-दोष को उसके आचार्य ही जान सकते हैं। भद्रे !

यदि तेरा पिता यह जान ले कि यह सूई मैंने बनाई है, तो वह तुझको मुझे दे दे और जो घर में धन है ।]

ज्येष्ठ लोहार ने उनकी सब बात सुन ली और पूछा—बेटी ! तू किस के साथ बात कर रही है ?"

"तात ! एक पुरुष सूई बेच रहा है, उसके साथ ।"

"उसे बुला ।"

उसने जाकर बुलाया । बोधिसत्व ने घर में प्रवेश किया और ज्येष्ठ लोहार को प्रणाम करके एक ओर खड़ा हो गया । उसने पूछा—किस गाँव में रहता है ?

"अमुक गाँव का वासी हूँ, तथा अमुक लोहार का पुत्र ।"

यहाँ किस लिये आया है ? ला, तेरी सूई देखें ।"

बोधिसत्व ने सबकी उपस्थिति में अपना गुण प्रकट करने की इच्छा से कहा—क्या अकेले देखने की अपेक्षा सब के साथ देखना अधिक अच्छा न होगा ?

उसने 'अच्छा' कह सभी लोहारों को इकट्ठा करवा, उनसे घिर जाने पर कहा—तात ! ला हम तेरी सूई देखें ।

"आचार्य्य ! एक (लोहे का घड़ा) और एक पानी भरी कांसे की थाली मंगवायें ।"

उसने मंगवाई । बोधिसत्व ने फेंट में से सूई की नली निकाल कर दी । ज्येष्ठ-लोहार ने, उसमें से सूई निकालकर पूछा—तात ! यह सूई है ?

"यह सूई नहीं है, यह सूई की फोफी है ।"

उसने इधर उधर बहुत देखा, उसे न आरम्भ का पता लगा न सिरे का ।

बोधिसत्व ने मँगवा, नख से फोफी हटा, जनता को 'यह सूई है, यह फोफी है' दिखा, सूई आचार्य्य के हाथ पर रख दी और फोफी उसके पैरों में डालदी । जब उसने फिर कहा 'तात ! यह सूई है ?' तो 'यह भी सूई नहीं है, सूई की फोफी है' कह उसने नख से हटा हटा कर सूई की छ फोफियाँ ज्येष्ठ-

लोहार के चरणों में डाल, सूई उसके हाथ पर रखी। हजारों लोहारों ने (आश्चर्य से) अंगुलियाँ चटखाईं और वस्त्र ऊपर उछाले।

तब ज्येष्ठ-लोहार ने पूछा—तात ! इस सूई की क्या ताकत है ?

"तात ! शक्तिशाली आदमी से घड़ा उठवाकर, घड़े के नीचे पानी की थाली रखवा कर, इस सूई को घड़े के बीच में मारें।"

उसने वैसा करके घड़े के बीच में सूई की नोक को मारा। वह घड़े को बींध पानी के ऊपर बाल-मात्र भी ऊपर-नीचे न हो सीधी खड़ी हो गई। सभी लोहार बोले—हमने इससे पहले कान से भी यह नहीं सुना कि लोहार ऐसे भी होते हैं। उन्होंने अंगुलियां चटखाईं और वस्त्र उछाले।

ज्येष्ठ लोहार ने बेटी को बुलवाया और उसी परिषद् के बीच में 'यह कुमारी तेरे ही योग्य है' कह पानी गिराकर उसे दे दिया। आगे चलकर वह ज्येष्ठ-लोहार के मरने पर उस गाँव में ज्येष्ठ लोहार हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। उस समय लोहार-लड़की राहुल-माता थी। पण्डित लोहार-पुत्र तो मैं ही था।

३८८. तुण्डिल जातक

"नवछन्दके..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक मृत्यु से भयभीत भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-वासी कुल पुत्र (बुद्ध-) शासन में प्रव्रजित हो मृत्यु से भयभीत था। जरा पत्ता हिलता, कोई टहनी टूटकर गिरती, किसी पशु पक्षी का वा वैसा अन्य किसी का कोई शब्द सुनाई देता तो वह मृत्यु-भय से ऐसे काँपता जैसे खरगोश पेट में तीर लगने पर। भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बातचीत

चलाई—आयुष्मानो ! अमुक भिक्षु मृत्यु से भयभीत है, थोड़ी सी भी आवाज सुनकर काँपता हुआ भागता है। क्या इसी बात को मन में रखना नहीं चाहिये कि इन प्राणियों का जीते रहना अनिश्चित है, मरना ही निश्चित है? शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर उस भिक्षु को बुलवाकर पूछा—भिक्षु! क्या तू सचमुच मृत्यु से भयभीत है? उसके स्वीकार करने पर शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पहले भी यह भिक्षु मृत्यु से भयभीत रहा है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने सूअरी के गर्भ में प्रवेश किया। गर्भ परिपक्व होने पर सूअरी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। वह एक दिन उन्हें लिये एक गड़े में पड़ी थी। वाराणसी द्वार-वासी एक वृद्धा कपास के खेत से टोकरी भर कपास लिये जमीन पर लाठी टेकती हुई आई। सूअरी उस आवाज को सुन मृत्यु-भय से डरकर बच्चों को छोड़ भागी। बुढ़िया ने सूअरी के बच्चों को देखा तो उसके मन में पुत्र-स्नेह जागा। वह उन्हें टोकरी में डाल, घर ले आयी और बड़े का नाम महातुण्डिल तथा छोटे का चुल्ल-तुण्डिल रख उन्हें पुत्र के समान पोसा।

वे बड़े होने पर बड़े मोटे हुये। बुढ़िया से यदि कोई कहता कि इन्हें बेच दें तो वह किसी को न देती। वह कहती—यह मेरे पुत्र हैं। एक उत्सव के अवसर पर जब कि धूर्त लोग शराब पी रहे थे, उनका मांस समाप्त हो गया। 'मांस कहाँ मिलेगा' सोचते हुये उन्हें पता लगा कि बुढ़िया के घर में सूअर हैं। वे शराब लेकर वहाँ पहुँचे और बुढ़िया से बोले—मां! कीमत ले लो और एक सूअर हमें दे दो। उसने 'क्या कोई मांस खाने के लिये खरीदने वालों को अपने पुत्र बेचता है?' कह अस्वीकार किया।

धूर्त बोले—मां! सूअर आदमियों के पुत्र नहीं होते। हमें दो। लेकिन जब बार-बार माँगने पर भी नहीं दिये तो उन्होंने बुढ़िया को सुरा पिलाई और कहा—मां! सूअरों का क्या करेगी? कीमत लेकर खर्चा चला। उन्होंने उसके हाथ पर कार्षापण रख दिये।

वह कार्षापण ले बोली--तात ! महातुण्डिल को नहीं दे सकती। चुल्लतुण्डिल को ले जाओ।

"वह कहाँ है ?"

" यहाँ इस झाड़ी में।"

"उसे आवाज दे।"

"कुछ खिलाने को नहीं दिखाई देता।"

धूर्त भात की एक थाली खरीद लाये। बुढ़िया ने वह ले दरवाजे पर रखी हुई सूअर की नाद भर दी और स्वयं नाद के पास खड़ी हुई। तीनों धूर्त भी हाथ में जाल ले वहीं खड़े हुए।

बुढ़िया ने आवाज दी—रे चुल्लतुण्डिल आ। यह सुन महातुण्डिल समझ गया—आज तक हमारी माता ने कभी चुल्लतुण्डिल को नहीं बुलाया, मुझे ही सदा पहले बुलाती रही है। आज हमारे लिये अवश्य ही कोई खतरा पैदा हो गया है।

उसने छोटे भाई को बुलाकर कहा—तात ! मां तुझे बुला रही है। जा, मालूम कर। वह झाड़ी से निकला तो भात की नाँद के पास उन्हें खड़े देख 'आज मुझे मरना होगा' सोच मृत्यु से भय-भीत हो लौटा और काँपता हुआ भाई के समीप पहुँच, सभँल न सकने के कारण काँपता हुआ लड़खड़ा कर गिर पड़ा। महातुण्डिल ने उसे देख पूछा—तात। तू आज काँपता है, लड़खड़ाता है, छिपने की जगह देखता है, यह क्या कर रहा है ? उसने जो देखा था कहते हुए पहली गाथा कही—

नव छन्दके दानि दिय्यति,
पुण्णायं दोणि सुवामिनी ठिता,
बहुके जने पासपाणिके,
नो च खो मे पटिभाति भुञ्जितुं ॥

[अब नया-आहार दिया जा रहा है, नाँद (भात से) भरी है; स्वामिनी पास खड़ी है तथा बहुत से दूसरे आदमी भी हाँथ में जाल लिये हैं। मुझे खाना अच्छा नहीं जँचता।]

यह सुन बोधिसत्व ने 'तात ! इसी उद्देश्य से सूअर पाले जाते हैं, और मेरी माता ने भी जिस मतलब के लिये पाला है, आज उस उद्देश्य की

पूर्ति का समय आ गया। तू चिन्ता मत कर' कह मधुर-स्वर से बुद्ध-लीला से धर्मोपदेश देते हुये दो गाथायें कहीं—

तससि भमसि लेणमिच्छसि,
अत्ताणोसि कुहिं गमिस्ससि,
अप्पोस्सुको भुञ्ज तुण्डिल,
मंसत्थाय हि पोसियामसे ॥
ओगह रहदं अकद्दमं,
सब्बं सेदमलं पवाहय,
गण्हाहि नवं विलेपनं,
यस्स गन्धो न कदाचि छिज्जति ॥

[त्रसित होता है, भटकता है, शरण-स्थान खोजता है। कोई त्राण दाता नहीं है। कहाँ जायगा? तुण्डिल! उत्सुकता छोड़ कर (भात) खा। माँस के लिये ही हमारा पोषण होता है। कर्दम-रहित तालाब में उतर। सारे पसीने-युक्त मल को धो। उस नये लेप को लगा, जिसकी सुगन्धि कभी समाप्त नहीं होती।]

दसों पारमिताओं का ध्यान कर मैत्री पारमिता पूर्वक उसके पहला पद कहते ही वह शब्द सारी बारह योजन की वाराणसी में फैल गया। जिस-जिसने जब सुना, वाराणसी-राज तथा उप-राज से लेकर सभी वाराणसी निवासी आ पहुँचे। जो नहीं आ सके उन्हें घर में बैठे ही बैठे सुनाई दिया। राज-पुरुषों ने झाड़ियाँ उखड़वा, जमीन बराबर करवा बालू बिछवा दिया। धूर्तों का शराब का नशा उतर गया। जाल छोड़ कर खड़े हो धर्म सुनने लगे। बुढ़िया का भी नशा उतरा। बोधिसत्व ने जनता के बीच में तुण्डिल को धर्मोपदेश देना आरंभ किया।

यह सुन चुल्लतुण्डिल ने सोचा—'मेरा भाई ऐसा कहता है। पुष्करिणी में उतर कर स्नान करना, सरीर से पसीना छुड़ाना तथा पुराना लेपा हटा नया लेप लगाना—यह सब कभी हमारी वंश-परम्परा में तो रहा नहीं। मेरे भाई के कहने का क्या मतलब है? उसने चौथी गाथा कही—

कतमो रहदो अकद्दमो,
किंसु सेदमलंति वुच्चति,

कतमञ्च नवं विलेपनं,
कस्स गन्धो न कदाचि छिज्जति

[कर्दम-रहित तालाब कौन सा है? पसीना रूपी मल किसे कहते हैं ? जिसकी सुगन्धि कभी समाप्त नहीं होती, ऐसा नया लेप कौन सा है ?]

यह सुन बोधिसत्व ने 'ध्यान देकर सुन' कह बुद्ध की तरह धर्मोपदेश देते हुए ये गाथायें कहीं :—

धम्मो रहदो अकद्दमो
पापं सेदमलं वुच्चति,
सीलञ्च नवं विलेपनं
तस्स गन्धो न कदाचि छिज्जति ॥
नन्दन्ति सरीरघातिनो
न च नन्दन्ति सरीरधारिनो,
पुण्णाय च पुण्णमासिया
रममाना व जहन्ति जीवितं ॥

[धर्म कर्दम-रहित तालाब है। पाप पसीना-रूपी मैल है। शील ही वह नया विलेपन है जिसकी सुगन्धि कभी समाप्त नहीं होती। प्राणी की हत्या करने वाले आनन्द मनाते हैं। शरीर-धारी (मृत्यु-भय होने से) प्रसन्न नहीं रह सकते हैं। (गुणों से) पूर्ण प्राणी पूर्णिमा की रात्रि में आनन्द लेते हुए की तरह प्राण त्याग देते हैं।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने मधुर स्वर से बुद्ध की तरह धर्मोपदेश दिया। जनता के लाखों आदमियों ने आश्चर्य से अंगुलियाँ चटखाईं। (आकाश में) वस्त्र फेंके। सारा आकाश 'साधु' 'साधु' की आवाज से गूंज उठा।

वाराणसी राजा ने बोधिसत्व को राज्य से पूजित कर, बुढ़िया को सम्पत्ति दे, उन दोनों को सुगन्धित जल से स्नान करवा, वस्त्र पहनवा गर्दन में मणि-रत्न कण्ठे डलवा, नगर में लाकर पुत्र का स्थान दिया। उसने बहुत से नौकरों चाकरों द्वारा उन की सेवा कराई।

बोधिसत्व ने राजा को पञ्चशील दिये। सभी वाराणसी निवासियों तथा काशी राष्ट्र वासियों ने शीलों की रक्षा की। बोधिसत्व ने उन्हें पूर्णिमा

तथा अमावस्या के दिन धर्मोपदेश दिया। न्यायाधीश बनकर न्याय किया। उसके न्यायाधीश रहते समय झूठा मुकद्दमा करने वाले नहीं थे।

आगे चलकर राजा मर गया। बोधिसत्व ने उसका शरीर-कृत्य करवा निर्णयों को पुस्तक में लिखवा कहा—इस पुस्तक को देखकर मुकद्दमों का फैसला करो। फिर जनता को धर्मोपदेश दे, अप्रमाद से रहने के लिये प्रेरित कर, सभी को रोता पीटता छोड़ चुल्ल-तुण्डिल के साथ जंगल में प्रवेश किया। बोधिसत्व का उपदेश साठ हजार वर्ष तक चला।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। वह मृत्यु से भय-भीत भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय राजा आनन्द था। चुल्ल-तुण्डिल मृत्यु से भय-भीत भिक्षु। परिषद बुद्ध परिषद थी। महा-तुण्डिल तो मैं ही था।

३८९. सुवण्णकक्कटक जातक

"सिङ्गी मिगो..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय आनन्द स्थविर के अपने लिये आत्मोत्सर्ग करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

अनुष्धारियों को नियुक्त करने तक की कथा खण्डहाल जातक[1] में आयेगी और धन-पाल (हाथी) का गर्जन चुल्लहंस जातक[2] में कहा गया है। उस समय धर्मसभा में बात चीत चली—आयुष्मानो! धर्म-खजानची आनन्द स्थविर ने शैक्षज्ञान प्राप्त कर धन-पालक (हाथी) को देख सम्यक् सम्बुद्ध के लिये आत्मोत्सर्ग किया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बात चीत कर रहे हो? 'अमुक बात चीत' कहने पर शास्ता ने 'न केवल अभी

---

[1] खण्डहाल जातक (५४२) २. चुल्लहंस जातक (५३३).

किन्तु पहले भी भिक्षुओ ! आनन्द ने मेरे लिये आत्मोत्सर्ग किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में राजगृह के पूर्व की ओर सालिन्दिय नाम का ब्राह्मण गाँव था। उस समय बोधिसत्व उस गाँव में एक कृषक-ब्राह्मण परिवार में पैदा हुये। बड़े होने पर कुटुम्ब वाला हो वह उस गाँव की पूर्वोत्तर दिशा में मगध (राज्य) के खेत में हजार करीष की खेती करने लगा। एक दिन वह आदमियों के साथ खेत पर गया और मजदूरों को 'हल चलाओ' कह मुँह धोने के लिये खेत के सिरे पर एक बड़े तालाब पर पहुँचा। उस तालाब में एक सुनहरी केकड़ा रहता था—सुन्दर, मनोज्ञ। बोधिसत्व दातुन करके उस तालाब में उतरे। उसके मुँह धोने के समय केकड़ा समीप आ गया।

उसने उसे उठाकर अपनी चादर में रख लिया और ले जाकर, खेत का काम कर चुकने पर वापिस घर जाते समय उसे वहीं तालाब में डाल दिया। तब से आते समय पहले उस तालाब पर जा केकड़े को अपनी चादर में लेने के बाद ही खेती को देखता। उनका एक दूसरे के प्रति दृढ़ विश्वास होगया।

बोधिसत्व नियमित रूप से खेत पर जाते। उसकी आँख में पाँच प्रसाद और तीन मण्डल साफ दिखाई देते। उसके खेत के सिरे पर एक ताड़ का वृक्ष था। उस कौवे के घोंसले में रहने वाली कौवी ने उसकी आँखे देखी तो उन्हें खाने की इच्छा हुई। वह कौवे से बोली—स्वामी मुझे दोहद उत्पन्न हुआ है।

"क्या दोहद ?"

"इस ब्राह्मण की आँखें खाना चाहती हूँ।"

"बड़ा कठिन दोहद उत्पन्न हुआ है। इन्हें कौन ला सकेगा।"

"यह मैं जानती हूँ कि तू नहीं ला सकता। इस ताड़ से थोड़ी ही दूर पर उस बांबी में में काला सांप रहता है उसकी सेवा कर। वह इसे डस-कर मार डालेगा। तब तू इसकी आंखें निकाल कर ला सकेगा।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और तब से काले सांप की सेवा करने लगा। बोधिसत्व की बोई हुई खेती में जब अंकुर-फूटा तब तक केकड़ा भी बड़ा हो गया।

एक दिन सर्प कौवे से बोला—मित्र तू नित्य मेरी सेवा में आता है। तेरे लिये मैं क्या करूँ ?

"स्वामी तुम्हारी दासी के मन में इस खेत के मालिक की आँखों का दोहद उत्पन्न हो गया है। मैं तुम्हारी सेवा में इसीलिये आता हूँ कि तुम्हारी कृपा से उसकी आँखें मिलें।"

सर्प ने उसे 'हो, यह कोई भारी चीज़ नहीं है। मिलेगी' कह उसे आश्वासन दिया। अगले दिन वह खेत के बांध पर घास में छिप, ब्राह्मण के आने के रस्ते में उसके आने की प्रतीक्षा करता हुआ लेट रहा।

बोधिसत्व आकर पहले तालाब पर गये, मुँह धोया और तब स्नेह के कारण सुनहरी केकड़े का आलिंगन कर उसे चादर में लिटा खेत की ओर बढ़े। सर्प ने उसे देखते ही जल्दी से कूद पिण्डली का मांस डसा। वह वहीं गिर पड़ा। सांप बाँबी की ओर भागा। बोधिसत्व का गिरना, सुनहरी केकड़े का चादर में से निकल पड़ना तथा कौवे का आकर बोधिसत्व की छाती पर बैठना ठीक एक दूसरे के बाद हुआ। कौवे ने बैठकर आँखों की ओर चोंच बढ़ाई। केकड़े ने सोचा—इसी कौवे के कारण मेरा मित्र खतरे में पड़ा। इसे पकड़ूंगा तो सर्प आयेगा। उसने संडासी से पकड़ने की तरह कौवे की गर्दन को जोर से पकड़ा और दबाकर थोड़ा ढीला कर दिया। कौवा चिल्लाया—मित्र मुझे क्यों छोड़े भागे जा रहे हो ? यह केकड़ा मुझे कष्ट दे रहा है। मेरे मरने से पहले पहले आओ। उसने सांप को बुलाते हुए पहली गाथा कहीः—

सिंगीमिगो आयतचक्खुनेत्तो
अट्ठित्तचो वारिसयो अलोमो,
तेनाभिभूतो कपणं रुदामि
हरे सखा किस्सनु मं जहासि ॥

[स्वर्ण वर्ण, बड़ी आँखों वाला, अस्थी त्वचा मात्र, पानी में रहने वाला तथा बालहीन (यह केकड़ा है) इससे अभिभूत हो मैं, दुःख है, रो रहा हूँ। अरे सखा ! मुझे क्यों छोड़ रहा है ?]

शास्ता ने इस बात को प्रकट करते हुए अभिसंबुद्ध होने पर दूसरी गाथा कही:—

सो पस्ससन्तो महता फणेन
भुजङ्गमो कक्कट मज्झपत्तो
सखा सखारं परितायमानो
भुजङ्गमं कक्कटको गहेसि ॥

[मित्र मित्र की सहायता करने के लिये वह सर्प बड़े फन से फुफकारता हुआ केकड़े के पास पहुँचा। केकड़े ने सर्प को पकड़ा।]

उसने उसे कष्ट दे थोड़ा ढीला किया। साँप ने सोचा केकड़े न कौवे का मांस खाते हैं न सर्प मांस। इसने हमें क्यों पकड़ा है? यह पूछते हुए उसने तीसरी गाथा कही:—

न वायसं नो पन सप्पराजं
घासत्थिको कक्कटको अदेय्य,
पुच्छामि तं आयतचक्खुनेत्त
अथ किस्स हेतुम्ह उभो गहीता ॥

[न कौवे को और न सर्प राज को ही केकड़ा खाने के लिये पकड़ता है। हे बड़ी आँखों वाले! मैं पूछता हूँ कि तूने हम दोनों को किस लिये पकड़ा है।

केकड़े ने पकड़ने का कारण कहते हुए दो गाथायें कहीं:—

अयं पुरिसो मम अत्थकामो
यो मं गहेत्वान दकाय नेति,
तस्मिं मते दुक्खमनप्प कम्मे
अहंच एसोच उभोन होम ॥
ममञ्च दिस्वान पवड्ढकायं
सब्बो जनो हिंसितुमेवमिच्छे,
सादुञ्च थुल्लञ्च मुदुञ्च मंसं
काकापि मं दिस्व विहेठयेय्युं

[यह पुरुष मेरा हितैषी था, मुझे लेकर तालाब ले जाता था। उसके मरने से मुझे बहुत दुःख होगा—यह और मैं दोनों नहीं रहेंगे। मेरे

बढ़े हुये शरीर को देखकर सभी मेरी हिंसा करना चाहेंगे, कौवे तक भी; यह देख कि इसका मांस स्वादु, मोटा तथा कोमल होगा, मुझे कष्ट देंगे ।]

यह सुन सर्प ने सोचा कि एक उपाय से इसे ठग कर कौवे को और अपने को छुड़ाऊँ । उसे ठगने के लिये छठी गाथा कही—

सचेतस्स हेतुम्ह उभो गहीता
उट्ठातु पोसो विसमाचमामि,
ममञ्च काकञ्च पमुञ्च खिप्पं
पुरे विसंगाळहमुपेति मच्चं ॥

[यदि इसके कारण दोनों को पकड़ा है तो यह पुरुष उठ खड़ा हो, मैं इसका विष चूसता हूँ । मुझे और कौवे को शीघ्र छोड़। आरम्भ में आदमी को विष जोर से चढ़ता है ।]

यह सुन केकड़े ने सोचा—यह ढंग बनाकर मुझसे दोनों को छुड़ा कर भाग जाना चाहता है । मेरी उपाय कुशलता को नहीं जानता है । मैं अब अपनी संदासी को ढीला करूँगा, जिसमें सांप हिल-डोल सके, कौवे को तो नहीं ही छोड़ूंगा । उसने सातवीं गाथा कही—

सप्पं पमोक्खामि न ताव काकं
पटिबद्धको होहिति ताव काको,
पुरिसञ्च दिस्वान सुखिं अरोगं
काकं पमोक्खामि यथेव सप्पं ॥

[सर्प को छोड़ता हूं, लेकिन कौवे को नहीं। कौवा तब तक प्रतिबन्धक रहे । पुरुष को सुखी तथा निरोग देखकर सर्प के समान कौवे को भी छोड़ दूँगा ।]

यह कह उसके सुविधा से हिल-डोल सकने के लिये 'संदासी' को ढीला कर दिया । सांप ने विष चूस कर बोधिसत्व के शरीर को विष रहित कर दिया। वह सुखी हो स्वाभाविक अवस्था में खड़ा हुआ । केकड़े ने सोचा यदि ये दोनों जीवित रहेंगे तो मेरे मित्र का कल्याण नहीं । इन दोनों को मार डालूँगा । उसने कैंची से कमल की नाल काटने की तरह अपनी 'संदासी' से दोनों के सिर काट, जान से मार डाला । कौवी भी उस जगह से भाग गयी । बोधिसत्व ने साँप का शरीर लकड़ी पर लपेट झाड़ी के पीछे फेंक

दिया। सुनहरी केकड़े को तालाब में छोड़, स्नान कर सालिन्दिय ग्राम को ही लौट गया। तब से केकड़े के साथ उसका विश्वास और भी अधिक बढ़ गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठा अन्तिम गाथा कही—

काको तदा देवदत्तो अहोसि
मारो पन कण्हसप्पो अहोसि,
आनन्दो भद्दो कक्कटको अहोसि
अहं तदा ब्राह्मणो होमि तत्थ॥

[कौआ उस समय देवदत्त था, मार काला-साँप था। आनन्द भद्र केकड़ा था और मैं तब वहाँ ब्राह्मण था।]

सत्य के अन्त में अनेक स्रोतापन्न आदि हुए। कौवी की बात गाथा में नहीं कही गई—वह चिञ्चामाणविका थी।

३६०. मय्हक जातक

"सकुणो मय्हको नाम..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय आगन्तुक-सेठ के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में आगन्तुक-सेठ नाम का एक धनवान रहता था। वह न स्वयं खाता-पीता था, न किसी को कुछ देता था। नाना प्रकार के स्वादिष्ट बढ़िया भोजन सामने लाने पर, उन्हें न खाती, कणाज तथा बिलङ्ग ही खाता। धूप दिये गये सुगन्धि वाले वस्त्र लाने पर उन्हें रखवाकर मोटे, घने बालों वाले वस्त्र पहनता। आजानीय घोड़े जुते, मणि तथा स्वर्ण से चित्रित रथ के लाये जाने पर उसे हटवा, पत्तों की छतवाले, लकड़ी के डण्डों के रथ पर चढ़ कर जाता।

उसने जन्म भर दानादि पुण्य कर्मों में से एक भी नहीं किया और मर कर रौरव नरक में पैदा हुआ। उस अपुत्र का धन राज-सेना द्वारा सात ही दिन-रात में राजकुल में पहुँचा दिया गया। उसके पहुँचा दिये जाने पर प्रातःकाल का भोजन कर चुकने के बाद राजा जेतवन गया और शास्ता को प्रणाम कर बैठा। शास्ता ने पूछा—क्यों महाराज! बुद्ध की सेवा में नहीं आते?

"भन्ते! श्रावस्ती में आगंतुक सेठ मर गया। उसके बिना मालिक के धन को हमारे घर ढोकर लाने में ही सात दिन लग गये। उसने इतना धन प्राप्त कर न स्वयं खाया पिया, न दूसरों को दिया। उसका धन राक्षस द्वारा सुरक्षित पुष्करिणी की तरह रहा। उसने एक दिन भी बढ़िया भोजन आदि का मजा नहीं लिया और मर गया। इस प्रकार के कंजूस अपुण्यवान् आदमी को इतना धन कैसे मिला? धन को भोगने की इसकी इच्छा क्यों नहीं हुई?"

"महाराज! धन की प्राप्ति तथा धन का न भोगना दोनों उसी के कर्मों का फल हैं।"

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वाराणसी-सेठ अश्रद्धावान् था, कंजूस, किसी को न कुछ देता था, न खिलाता-पिलाता था। उसने एक दिन राज-दरबार जाते समय नगर में प्रत्येक-बुद्ध को भिक्षाटन करते देखा, प्रणाम कर पूछा—भन्ते! भिक्षा मिली? "सेठ! भिक्षा माँग रहे हैं" कहने पर (अपने) आदमी को आज्ञा दी—जा, इन्हें हमारे घर ले जा, हमारे पलंग पर बिठा, हमारे लिये तैयार भोजन में से पात्र भरवा कर दिलवा।

वह प्रत्येक-बुद्ध को घर ले गया, बिठाया और सेठ की भार्य्या को कहा। उसने नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन से पात्र भर कर उसे दिया। वे भोजन ले, सेठ के घर से निकल, रास्ते पर आये।

सेठ ने राज दरबार से लौटते समय उसे देख, प्रणाम कर पूछा—"भन्ते ! भोजन मिला ?"

"महासेठ ! मिला।"

उसने पात्र देखा तो उसका मन प्रसन्न न रह सका। सोचने लगा—"इस भोजन को मेरे दास या मजदूर खाते तो कोई कठिन काम भी करते। ओह ! मेरी हानि !" वह तीसरी चेतना की पूर्ति नहीं कर सका। दान उसी को महाफल देता है, जो तीनों चेतनाओं की पूर्ति कर सके।

> **पुब्बेव दाना सुमना भवाम,**
> **ददम्पि चे अत्तमना भवाम,**
> **दत्वापि चे नानुतपाम पच्छा,**
> **तस्मा हि अम्हं दहरा न मीयरे ॥**
> **पुब्बेव दाना सुमनो ददं चित्तं पसादये,**
> **दत्वा अत्तमनो होति एसा यञ्ञस्स सम्पदा।**

[दान (देने) से पहले भी प्रसन्न-मन रहते हैं, दान देते समय भी प्रसन्न-मन रहते हैं, देकर भी पीछे अनुताप नहीं करते हैं; इसलिये हमारे (यहां पिता के रहते) पुत्र नहीं मरते।

दान देने से पूर्व प्रसन्न-मन रहे, देते समय चित्त प्रसन्न रखे, देकर प्रसन्न हो—यही (दान) यज्ञ की सम्पत्ति है।]

"इस प्रकार महाराज। आगन्तुक-सेठ ने तगरसिखी प्रत्येक-बुद्ध को दान देने के कारण बहुत धन प्राप्त किया; लेकिन चेतना को पूर्ण रूप से पवित्र न रख सकने के कारण धन का उपभोग नहीं कर सका।"

"भन्ते ! उसे पुत्र क्यों नहीं हुआ !"

"महाराज ! पुत्र न होने का कारण भी वह स्वयं ही है।"

उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही :—

ग. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व अस्सी करोड़ धन वाले सेठ-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर माता-पिता की मृत्यु के बाद छोटे भाई को खाने-पीने की सुविधाकर, परिवार का पालन-

पोषण करते हुये रहने लगा। उसने गृह-द्वार को दान-शाला बना दिया और महादान देता हुआ घर पर रहने लगा। उसको एक पुत्र हुआ।

जब बच्चा पैर से चलने लगा तो वह काम-भोगों में दोष तथा अभिनिष्क्रमण में कल्याण देख पुत्र-दारा सहित सारा वैभव छोटे भाई को सौंप, 'अप्रमादी होकर दान देते रहना' उपदेश दे, ऋषि-प्रव्रज्या के ढंग पर प्रव्रजित हुआ और समापत्तियां प्राप्त कर हिमालय में रहने लगा।

छोटे भाई को भी एक पुत्र हुआ। उसने उसे बड़े होते देख सोचा—मेरे भाई के पुत्र के जीते रहने से घर के दो हिस्से हो जायेंगे। भाई के पुत्र को मार डालूँ। एक दिन उसने उसे नदी में डुबा कर मार डाला। उसके नहाकर लौटने पर भाई की स्त्री ने पूछा—पुत्र कहां है? "पानी में जल-क्रीड़ा कर रहा था। ढूँढने पर नहीं मिला।" वह रोकर चुप हो गई।

बोधिसत्व ने यह समाचार सुन, सोचा—(इसकी) यह करनी प्रकट करूँगा। वह आकाश से आकर वाराणसी में उतरा और अच्छी प्रकार वस्त्रादि पहन उसके गृहद्वार पर जब उसने दान-शाला नहीं देखी तो समझ गया कि असत्पुरुष ने दान-शाला भी नष्ट कर दी होगी। छोटे भाई को जब उसके आने का समाचार मिला, तो उसने आकर बोधिसत्व को प्रणाम किया और महल पर ले जा अच्छी तरह भोजन कराया।

भोजन कर चुकने पर, सुखपूर्वक बातचीत करने के समय उसने पूछा—बच्चा नहीं दिखाई देता है। वह कहां है?

"भन्ते! मर गया।"

"कैसे!"

"उदक-क्रीड़ा के समय। नहीं कह सकता कैसे?"

"असत्पुरुष! क्या! क्या तू नहीं जानता? तेरी करतूत तुझे पता है। क्या तूने इस कारण से उसे नहीं मारा है? क्या तू राजादि से नष्ट हो सकने वाले धन की रक्षा कर सकता है? म्यहक पक्षी का और तुम्हारा क्या अन्तर है?"

बोधिसत्व ने बुद्ध-लीला से उपदेश देते हुये ये गाथायें कहीं—

सकुणो मय्हको नाम गिरिसानुदरी चरो,
पक्कं पिप्फलिमारुय्ह मय्ह-मय्हाति कन्दति ॥

तस्सेवं विलपन्तस्स दिज-सङ्घा समागता,
भुत्वान पिप्फलिं यन्ति विलपित्वेव सो दिजो ॥
एवमेव इधेकच्चो सङ्घरित्वा बहुं धनं,
नेवत्तनो न ञातीनं यथोधिं पटिपज्जति ॥
न सो अच्छादनं भत्तं न मालं न विलेपनं,
अनुभोति सकिं किञ्चि न सङ्गण्हाति ञातके ॥
तस्सेवं विलपन्तस्स मय्हमय्हाति रक्खतो,
राजानो अथवा चोरा दायदा येव अप्पिया,
धनमादाय गच्छन्ति विलपित्वेव सो नरो ॥
धीरो च भोगे अधिगम्म सङ्गण्हाति च ञातके
तेन सो कित्तिं पप्पोति पेच्च सग्गे च मोदति ॥

[पर्वत, जङ्गल तथा कन्दराओं में रहता हुआ 'म्यहक' पक्षी पके पिप्फलि वृक्ष पर चढ़ 'मेरा मेरा' पुकारता है। उसके इस प्रकार चिल्लाते रहते पक्षी गण आकर पिप्फलि-फल खा जाते हैं। वह पक्षी रोता ही रहता है। इसी प्रकार यहाँ कोई कोई आदमी बहुत धन इकट्ठा करके न स्वयं खाता है, न अपने रिश्तेदारों को यथोचित ढंग से देता दिलाता है—न पहनना, न खाना, न माला, न लेप किसी भोग को भी न वह स्वयं भोगता है, न रिश्तेदारों को खिलाता-पिलाता है। इस प्रकार उसके 'मेरा मेरा' करके सँभालते और रोते पीटते रहते हुए ही या तो धन राजा ले जाते हैं, या चोर ले जाते हैं, या अप्रिय-दायाद ले जाते हैं। वह नर रोता-धोता रह जाता है। धीर-पुरुष भोग्य-वस्तुओं को एकत्र कर रिश्तेदारों को खिलाता पिलाता है, इससे उसे कीर्ति की प्राप्ति होती है और मरने पर स्वर्ग जाता है।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने उसे धर्मोपदेश दे पूर्ववत दान चालू कराया और हिमालय जा ध्यानावस्थित हो ब्रह्म-लोक गामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला "महाराज! इस प्रकार आगन्तुक सेठ ने क्योंकि अपने भाई के पुत्र को मार दिया था, इसलिये उसे इतने समय तक न पुत्र हुआ, न पुत्री, कह जातक का मेल बैठाया। उस समय छोटा भाई आगन्तुक सेठ था। बड़ा तो मैं ही था।

३९१. धजविहेठ जातक

"दुब्बरणरूपं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय लोकोपकार के बारे में कही। (वर्तमान) कथा महा कण्ह जातक में आयेगी। उस समय शास्ता ने "भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पूर्व (-जन्म) में भी तथागत ने लोकोपकार किया है" कह पूर्वजन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व शक्र था। उस समय एक विद्याधर मन्त्र-बल से आधी रात के समय आकर वाराणसी राज की पटरानी के साथ अनाचार करता था। उसकी परिचारिकायें जान गईं। तब उसने स्वयं ही राजा के पास जाकर कहा—

"देव! एक आदमी आधी रात के समय शयनागर में प्रवेश कर मुझे दूषित करता है।"

"उसको कोई चिन्ह लगा सकेगी?"

"देव सकूँगी।"

उसने प्राकृतिक हल्दी की थाली मँगा, जिस समय वह आदमी रमण करके जाने लगा उसकी पीठ पर पंचागुलि चिन्ह बना राजा से कहा।

राजा ने आदमियों को आज्ञा दी—जाओ चारों दिशाओं में ढूँढो। जहाँ कोई आदमी ऐसा मिले जिसकी पीठ पर प्राकृतिक हल्दी का पाँच अँगुलियों का चिन्ह हो, उसे पकड़ो। विद्या-धर भी रात को अनाचार कर दिन में सूर्य्य को नमस्कार करता हुआ एक पाँव से खड़ा था। राज-पुरुषों ने देख उसे घेर लिया। उसे जब पता लगा कि उसकी करनी प्रकट हो गई तो वह मन्त्र-बल से आकाश में उड़ गया। राजा ने उन आदमियों से जो उसे देखकर आये थे पूछा—

"देखा ?"

"हाँ ! देखा।"

"वह कौन है ?"

"देव ! प्रव्रजित है। वह रात को अनाचार कर दिन में साधु वेश से रहता है।"

राजा को साधुओं पर क्रोध आया—ये दिन में साधु वेश में रहते हैं और रात को अनाचार करते हैं। उसने मिथ्या-संकल्प कर मुनादी करा दी—मेरे राज्य से सभी साधु भाग जायें; अन्यथा जो कोई दिखाई देगा, उसे ही राज-दण्ड भोगना होगा। तीन सौ योजन के काशी-राष्ट्र में से भाग कर सभी साधु दूसरी दूसरी राजधानियों में चले गये। सारे काशी-राष्ट्र में आदमियों को उप-देश दे सकने वाला एक भी श्रमण-ब्राह्मण नहीं रहा। उपदेश न मिलने से आदमी कठोर स्वभाव के हो गये। दान-शील से विमुख होने के कारण मरने पर अधिकतर नरक में पैदा हुए। स्वर्ग में पैदा होने वाले ही नहीं रहे।

शक्र ने जब नये देवता नहीं देखे तो ध्यान लगाकर सोचा—क्या कारण है ? उसे पता लगा कि विद्याधर के कारण वाराणसी-राज ने क्रुद्ध हो, मिथ्या-संकल्प कर प्रव्रजितों को देश से निकाल दिया है। शक्र ने सोचा कि उसे छोड़कर और कोई राजा के मिथ्या-आग्रह को नहीं छुड़ा सकता। उसने निश्चय किया कि वह राजा तथा देशवासियों का उपकार करेगा। तब शक्र तक्रमूलक पर्वत के प्रत्येक-बुद्धों के पास गया और बोला—भन्ते ! मुझे एक वृद्ध प्रत्येक-बुद्ध दें। मैं काशी-राज को प्रसन्न करूँगा।

उसे संघ-स्थविर ही मिले।

उनका पात्र चीवर ले, उन्हें आगे-आगे कर, स्वयं पीछे हो, सिर पर हाथ जोड़ प्रत्येक-बुद्ध को नमस्कार करते हुये शक्र सुन्दर तरुण के रूप में सारे नगर के ऊपर तीन बार घूम, राज-द्वार पर पहुँच, आकाश में ठहरा। राजा को सूचना मिली—देव ! एक सुन्दर तरुण एक श्रमण को लाकर राज-द्वार पर आकाश में खड़ा है।

राजा ने आसन से उठ, खिड़की में खड़े हो, 'तरुण ! तू स्वयं सुन्दर है, इस कुरूप श्रमण का पात्र चीवर लिये प्रणाम करता हुआ क्या खड़ा है ?' पूछते हुए पहली गाथा कही :—

दुब्बण्णरूपं तुवमरियवण्णं
पुरक्खत्वा पञ्जलिको नमस्ससि,
सेय्योनु तेसो उदवा सरिक्खो
नामं परस्सत्तनो चापि ब्रूहि ॥

[हे सुन्दर रूप ! तू इस कुरूप को आगे कर हाथ जोड़ नमस्कार करता है। यह तुझसे श्रेष्ठ है अथवा समान ? इसका तथा अपना नाम कह।]

शक्र बोला—महाराज, श्रमण आदरास्पद होते हैं इसलिए मैं इनका नाम नहीं कह सकता। अपना नाम बताता हूँ। उसने दूसरी गाथा कही :—

न नामगोत्तं गण्हन्ति राज
सम्मग्गतानुज्जुगता न देवा,
अहं च ते नामधेय्यं वदामि
सक्कोहमस्मि तिदसानमिन्दो ॥

[राजन्, देवता अरहत्व-प्राप्त तथा निर्वाण-प्राप्त जनों का नाम या गोत्र मुँह से ही नहीं लेते हैं। हाँ मैं अपना नाम तुझे बताता हूँ। मैं (त्रयस्-) त्रिंश देवों का इन्द्र शक्र हूँ।]

यह सुन राजा ने तीसरी गाथा द्वारा भिक्षुओं को नमस्कार करने का फल पूछा :—

यो दिस्वा भिक्खुं चरणूपपन्नं
पुरक्खत्वा पञ्जलिको नमस्सति,
पुच्छामि तं देवराजेतमत्थं
इतो चुतो किं लभते सुखं सो ॥

[हे देवराज ! मैं तुझसे यह जानना चाहता हूँ कि जो सदाचारी भिक्षु को आगे कर, हाथ जोड़ नमस्कार करता है, उसे यहाँ से मरने पर क्या सुख मिलता है ?]

शक्र ने चौथी गाथा कही :—

यो दिस्वा भिक्खुं चरणूपपन्नं
पुरक्खत्वां पञ्जलिको नमस्सति
दिट्ठेवधम्मे लभते पसंसं
सग्गं च सो याति सरीरभेदा ॥

[जो सदाचारी भिक्षु को देख, आगे कर, हाथ जोड़ प्रणाम करता है उसकी इस जन्म में प्रशंसा होती है, तथा मरने पर स्वर्ग-लाभ ।]

राजा ने शक्र की बात सुन अपना मिथ्यामत छोड़ प्रसन्न-चित्त हो, पाँचवीं गाथा कही :—

लक्खी वत मे उदपादि अज्ज
यं वासवं भूतपतद्दसाम,
भिक्खुञ्च दिस्वान तवञ्च सक्क
काहामि पुञ्ञानि अनप्पकानि ॥

[आज भूतपति इन्द्र का दर्शन होने से मुझे प्रज्ञा प्राप्त हुई । हे शक्र आज मैं तुम्हारे भिक्षु को देखकर बहुत पुण्य करूँगा ।]

यह सुन शक्र ने पण्डित की प्रशंसा करते हुए छठी गाथा कही :—

अद्धा हवे सेवितब्बा सपञ्ञा
बहुस्सुता ये बहुठानचिन्तिनो,
भिक्खुञ्च दिस्वान ममञ्च राज
करोहि पुञ्ञानि अनप्पकानि ॥

[निश्चय से जो बहुश्रुत हैं, जो बहुत बातों का विचार कर सकते हैं, तथा जो प्रज्ञावान हैं उनकी सेवा करनी चाहिए । राजन् ! मुझे तथा भिक्षु को देखकर बहुत पुण्य करो ।]

यह सुन राजा ने अन्तिम गाथा कही :—

अक्कोधनो निच्चपसन्नचित्तो
सब्बातिथीयाचयोगो भवित्वा,
निहच्चमानं अभिवादयिस्सं
सुत्वान देविन्द सुभासितानि ॥

[हे देवेन्द्र, तुम्हारे सुभाषित सुनकर मैं अक्रोधी, नित्य-प्रसन्नचित्त तथा सब अतिथियों के प्रति यथायोग्य करनेवाला हो अपने मान का मर्दन कर अभिवादन करूँगा ।]

ऐसा कह प्रासाद से उतर प्रत्येक-बुद्ध को नमस्कार कर एक ओर बैठा । प्रत्येक-बुद्ध ने आकाश में पालथी मार राजा को उपदेश दिया—महाराज, विद्याधर श्रमण नहीं हैं । अब से तू यह जान कर कि लोक धार्मिक

श्रमण-ब्राह्मणों से खाली नहीं है दान दे, शील रख तथा उपोसथ कर्म कर। शक्र ने भी शक्र के प्रताप से आकाश में खड़े हो नगरवासियों को उपदेश दिया कि अप्रमादी रहो और मुनादी करा दी कि भागे हुए श्रमण-ब्राह्मण लौट आएँ। वे दोनों भी अपनी-अपनी जगह गये। राजा ने उपदेशानुसार चल पुण्य किये।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। उस समय के प्रत्येक-बुद्ध परिनिर्वृत हो गये। राजा आनन्द था। शक्र तो मैं ही था।

३९२. भिसपुप्फ जातक

"यमेतं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसने जेतवन से निकल कोशल राष्ट्र में एक आरण्य के आश्रय विहार करते समय एक दिन पद्म-सरोवर में उतर फूले-कंवल देख जिधर वायु जा रही थी, उधर खड़े हो सुगन्धि ली। उस वन-खण्ड में रहने वाले देवता ने उसे धमकाया—मित्र! तू गन्ध-चोर है। यह तेरी चोरी का एक अङ्ग है। वह उससे धमकाया जाकर जेतवन लौट आया और शास्ता को प्रणाम करके बैठा। शास्ता ने पूछा—भिक्षु! कहां रहा? "अमुक वन-खण्ड में, और वहाँ देवता ने मुझे इस प्रकार धमकाया।" "भिक्षु! फूल सूंघने पर देवता ने केवल तुझे ही नहीं धमकाया है, पुराने पण्डितों को भी धमकाया है" कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक निगम में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में शिल्प सीख, और आगे चलकर ऋषियों के ढंग की प्रव्रज्या ले, एक पद्म-सरोवर के पास रहने लगे। एक दिन तालाब में उतर खिले फूल को खड़े सूंघते थे। एक देव-कन्या ने वृक्ष-स्कन्ध के विवर में खड़े हो धमकाते हुए पहली गाथा कही—

यमेतं वारिजं पुप्फं अदिन्नं उपसिङ्घसि,
एकङ्गमेतं थेय्यानं गन्धथेनोसि मारिस ॥

[यह जो तू बिना दिये हुए कंवल-फूल को सूङ्घता है, यह भी चोरी का एक प्रकार है। मित्र ! तू गन्ध-चोर है।]

तब बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

न हरामि न भञ्जामि आरा सिङ्घामि वारिजं,
अथ केन नु वण्णेन गन्धथेनोति वुच्चति ॥

[न ले जाता हूँ, न तोड़ता हूँ, केवल दूर से सूङ्घता हूँ। मैं किस प्रकार गन्धचोर कहला सकता हूं ?]

उसी समय एक आदमी उस तालाब में भिसें उखाड़ रहा था और कंवल तोड़ रहा था। बोधिसत्व ने उसे देख 'दूर खड़े होकर सूँघने वाले को चोर कहती है, इस आदमी को क्यों कुछ नहीं कहती' कह उसके साथ बात चीत करते हुए तीसरी गाथा कही—

यो यं भिसानि खणति पुण्डरीकानि भञ्जति,
एवं आकिण्णकम्मन्तो कस्मा एसो न वुच्चति ॥

[जो यह भिस उखाड़ता है और कमलों को तोड़ता है, वह ऐसा दारुण-कर्म करता है। उसे कुछ क्यों नहीं कहती ?]

उसे कुछ न कहने का कारण बताते हुये देव-कन्या ने चौथी तथा पाँचवीं गाथा कही—

आकिण्णलुद्दो पुरिसो धातिचेळं'व मक्खितो,
तस्मिं मे वचनं नत्थि तञ्च अरहामि वत्तवे ॥

अनङ्गणस्स पोसस्स निच्चं सुचिगवेसिनो,
वालग्गमत्तं पापस्स अब्भामत्तं व खायति ॥

[जो लोभ में डूबा हुआ आदमी है, जो दाई के वस्त्र की तरह मैला है, उसे कुछ कहने के लिये मेरे पास वचन नहीं हैं। लेकिन श्रमण को कहना उचित समझती हूँ। जो निर्दोष पुरुष है, जो नित्य पवित्रता के लिये प्रयत्न-शील है, उसका बाल की नोक के समान पाप भी महा-मेघ के समान प्रतीत होता है।]

उस देव-कन्या द्वारा संविग्न-हृदय बोधिसत्व ने छटी गाथा कही—

अद्धा मं यक्ख जानासि अथो मं अनुकम्पसि,
पुनपि यक्ख वज्जासि यदा पस्ससि एदिसं ॥

[हे देवते ! तू मुझे जानती है। इसलिये मुझ पर अनुकम्पा करती है। यदि फिर भी इस प्रकार का कोई दोष देखे, तो सावधान करना।]

तब देव-कन्या ने सातवी गाथा कही—

नेव तं उपजीवाम नपिते भतकम्हसे,
त्वमेव भिक्खु जानेय्य येन गच्छेय्य सुग्गतिं ॥

[न हम तुझ पर निर्भर करते हैं, न तेरी मजदूरी करते हैं। हे भिक्षु ! तू ही जान कि किस सुकर्म से सुगति की प्राप्ति होती है।]

इस प्रकार वह उसे उपदेश दे अपने विमान में चली गई। बोधिसत्व भी ध्यान-प्राप्त कर ब्रह्म-लोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के प्रकाशन के अन्त में वह भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय देव-कन्या उत्पल-वर्णा थी। तपस्वी तो मैं ही था।

३६३. विघास जातक

"सुसुखं वत जीवन्ति......" यह शास्ता ने पूर्वाराम में विहार करते समय क्रीड़ा-शील भिक्षुओं के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

महामौद्गल्यायन स्थविर ने जब प्रासाद को कँपाकर उनके मन में संवेग उत्पन्न कर दिया तो धर्म-सभा में बैठे भिक्षु उनके दोष कहने लगे। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पहले भी यह क्रीड़ा-शील ही थे' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व शक्र हुये। एक काशी-गाँव में सात भाई काम-भोगों को दोष-पूर्ण समझ, निकल, ऋषियों की प्रव्रज्या के ढंग पर प्रव्रजित हुए। वे मेध्यारण्य में रहते समय योगाभ्यास में न लग, शरीर को ही दृढ़ बनाने में लगे रहकर नाना प्रकार की क्रीड़ायें करते रहते थे। शक्र देवराज ने सोचा, इनके मन में संवेग पैदा करूँगा। वह तोते का रूप बना उनके निवास-स्थान पर आया और एक वृक्ष पर बैठ उनके मन में संवेग पैदा करते हुये पहली गाथा कही—

> सुसुखं वत जीवन्ति ये जना विघासादिनो,
> दिट्ठे व धम्मे पासंसा सम्पराये च सुग्गति ॥

[जो खाये हुये अवशिष्ठ भोजन को खाते हैं, वे सुख से जीते हैं। इसी जन्म में उनकी प्रशंसा होती है और परलोक में सुगति मिलती है।]

उनमें से एक ने उसकी बात सुन शेष सब जनों को सम्बोधित कर दूसरी गाथा कही :—

> **सुकस्स भासमानस्स न निसामेथ पण्डिता,**
> **इदं सुणाथ सोदरिया अम्हे वायं पसंसति ॥**

[पण्डितो ! क्या तोते का कहना नहीं सुनते हो? भाइयो ! इसे सुनो, यह हमारी ही प्रशंसा करता है।]

उसका विरोध करते हुये शक्र ने तीसरी गाथा कही :—

नाहं तुम्हे पसंसामि कुणपादा सुणाथ मे,
उच्छिट्ठभोजिनो तुम्हे न तुम्हे विघासादिनो ॥

हे मुर्दार खाने वालो ! मैं तुम्हारी प्रशंसा नहीं करता हूँ। तुम जूठन खाने वाले हो, बचा हुआ खाने वाले नहीं।]

उसकी बात सुन उन सब ने चौथी गाथा कही :—

सत्तवस्सा पब्बजिता मेज्झारञ्ञे सिखण्डिनो,
विघासेनेव यापेन्ता मयं चे भोतो गारय्हा,
कोनु भोतो पसंसिया ॥

[सात वर्ष से हम शिखा-धारी साधु हो मेध्यारण्य में रहते हैं, और बचा हुआ ही खाकर जीते हैं। यदि आप हमारी निन्दा करते हैं तो आप के प्रशंसित कौन हैं ?]

उन्हें लज्जित करते हुये बोधिसत्व ने पाँचवीं गाथा कही :—

तुम्हे सीहानं व्यग्घानं वाळानञ्चावसिट्ठकं,
उच्छिट्ठेनेव यापेन्ता मञ्ञिव्हा विघासादिनो ॥

[तुम सिंह, व्याघ्र तथा अन्य जंगली पशुओं का उच्छिष्ट खाकर जीते हो और अपने को अवशिष्ट खाने वाले मानते हो !]

यह सुन तपस्वियों ने पूछा—यदि हम विघासादी नहीं हैं, तो विघासादी कौन होते हैं ?

उसने उन्हें यह समझाते हुये छठी गाथा कही:—

ये ब्राह्मणस्स समणस्स अञ्ञस्स च वणिब्बिनो,
दत्वाव सेसं भुञ्जन्ति ते जना विघासादिनो ॥

[जो ब्राह्मण, श्रमण अथवा अन्य किसी याचक को देकर ही खाते हैं, वे जन विघासादी कहलाते हैं।]

इस प्रकार उन्हें लज्जित कर बोधिसत्व अपने स्थान पर चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया। उस समय वह सात भाई ये क्रीड़ा-शील भिक्षु थे। शक्र तो मैं ही था।

३६४. वट्टक जातक

"पणीतं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक लोभी भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसे शास्ता ने पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच लोभी है ? 'भन्ते ! हाँ' कहने पर 'भिक्षु ! केवल अभी नहीं, पहले भी तू लोभी ही रहा है। लोभ के कारण ही वाराणसी में हाथी, बैल, घोड़ा, तथा मनुष्य के मुर्दार से अतृप्त रह 'इससे बढ़ कर मिलेगा' सोच जंगल में प्रविष्ट हुआ था।" यह कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व बटेर की योनि में पैदा हुए। वह आरण्य में रूखे तिनके तथा दाने खाकर रहता था। उस समय वाराणसी में रहने वाला एक लोभी कौवा हाथी आदि के मुर्दार से अतृप्त रह 'इससे बढ़कर मिलेगा' सोच जंगल में गया। वहाँ उसने फल मूल खाते हुए बोधिसत्व को देख सोचा—यह बटेर बड़ा मोटा है। मालूम होता है मधुर-चोगा चुगता है। इसका खाना पूछकर, वही खाकर मैं भी मोटा होऊँगा। वह बोधिसत्व से ऊपर की शाखा पर जा बैठा और बोला—भो बटेर ! आप कौन सा बढ़िया भोजन करते हैं जिससे खूब मोटाये हैं ? बोधिसत्व ने उसके पूछने पर उसके साथ बातचीत करते हुये यह गाथा कही—

पणीतं भुञ्ज से भत्तं सप्पितेलञ्च मातुल,
अथ केन नु वण्णेन किसो त्वमसि वायस ॥

[हे मातुल ! तू मक्खन-तेल के साथ बढ़िया भोजन करता है। हे कौवे ! तू किस कारण से दुर्बला है ?].

उसकी बात सुन कौवे ने तीन गाथायें कहीं—

अमित्तमज्झे वसतो तेसु आमिसमेसतो,
निच्चं उब्बिग्गहदयस्स कुतो काकस्स दळ्हियं ।।
निच्चं उब्बेधिनो काका धङ्का पापेन कम्मुना,
लद्धो पिण्डो न पीणेति किसो तेनस्मि वट्टक ।।
लूखानि तिणबीजानि अप्पस्नेहानि भुञ्जसि,
अथ केननु वण्णेन थूलो त्वमसि वट्टक ।।

[शत्रुओं के बीच में रहने वाले, उनका भोजन चुराचुरा कर खाने वाले, नित्य ही उद्विग्न-हृदय मुझ कौवे में (शरीर की) दृढ़ता कहाँ से आ सकती है ? हे बटेर ! पाप-कर्म के कारण कौवे नित्य उद्विग्न रहते हैं। इसी लिये उन्हें जो भोजन मिलता है वह उनके शरीर को नहीं लगता। बटेर ! इसी लिये मैं दुर्बल हूं। हे बटेर ! तू तो घास-तिनके खाता है, जिनमें कुछ स्निग्धता नहीं रहती। हे बटेर ? तू किस कारण से मोटा है ?]

यह सुन बटेर ने अपने मोटे होने का कारण कहते हुये ये तीन गाथायें कही—

अप्पिच्छा अप्पचिन्ताय अविदूरगमनेन च,
लद्धालद्धेन यापेन्तो थूलो तेनस्मि वायस ।।
अप्पिच्छस्स ही पोसस्स अप्पचिन्ति सुखस्सच,
सुसंगहितपमाणस्स वुत्ती सुसमुदानिय ।।

[हे कौवे ! मैं अल्पेच्छा, अल्प चिन्ता, अधिक दूर न जाना पड़ने तथा जो भी मिल जाये उसी से गुजारा कर लेने के कारण मोटा हूँ ।। जो अल्पेच्छुक है, जिसे अल्प-चिन्ता रूपी सुख प्राप्त है, तथा जिसे अपने भोजन की मात्रा का ठीक ज्ञान है, उस आदमी की जीवन-चर्य्या सुख पूर्वक चल सकती है ।।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में लोभी भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय कौवा लोभी भिक्षु था। बटेर तो मैं ही था।

३६५. काक जातक

"चिरस्सं वत पस्साम..." यह भी शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय लोभी भिक्षु के ही बारे में कही। (वर्तमान) कथा उक्त कथा की तरह से है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कबूतर होकर बाराणसी-सेठ की रसोई में छीके पर रहते थे। कौवा भी उसके साथ दोस्ती करके वहीं रहता था...सब विस्तार से कहनी चाहिये। रसोइये ने कौवे के पङ्ख नोच, उसकी पीठ को माख, एक कौड़ी में छेद कर उसकी माला बनाई और कौवे के गले में पहना उसे छीके में डाल दिया। बोधिसत्व ने जंगल से आ, उसे देख मजाक करते हुए पहली गाथा कही —

चिरस्सं वत पस्साम सहायं मणिधारिनं,
सुकताय मस्सु कुत्तिया सोभते वत मे सखा ॥

[अपने मणि धारण किये हुये मित्र को बड़ी देर के बाद देखते हैं। अच्छी बनी हुई मानुषी डाढ़ी के साथ मेरा सखा सुशोभित होता है।]

यह सुन कौवे ने दूसरी गाथा कही :—

परूळ्हकच्छनखलोमो अहं कम्मेसु व्यावटो,
चिरस्सं नहापितं लद्धा लोमन्तं अपहारयिं ॥

[काम में व्यावृत होने के कारण मेरे शरीर के बाल, नख तथा केश बढ़ गये थे। देर में नाई मिला। आज उससे हजामत बनूवाई।]

तब बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही—

यन्नु लोमं अहारेसि दुल्लभं लद्धकप्पकं,
अथ किञ्चरहि ते सम्म कण्ठे किणकिणायति ॥

[बड़ी मुश्किल से मिले नाई को पाकर तूने हजामत तो बनवाई है, लेकिन मित्र ! तेरे गले में यह क्या घण्टी सी बजती है ?]

तब कौवे ने दो गाथायें कहीं :—

मनुस्स सुखुमालानं मणि कण्ठेसु लम्बति,
तेसाहमनुसिक्खामि मा त्वं मञ्जी दवा कतं ॥
सचेपिमं पिहयसि मस्सु कुत्तिं सुकारितं,
कारयिस्सामि ते सम्म मणिञ्चापि ददामिते ॥

[सुकुमार मनुष्यों के कण्ठ में मणि लटकती है, उनकी मैंने नकल की है। यह मत मान कि मैंने अभिमान से पहनी है ॥ यदि तू मेरी, जिसके चेहरे पर अच्छी तरह से बनाई गई दाढ़ी है, ईर्ष्या करता है, तो हे मित्र ! मैं तुझे दाढ़ी करवा दूँगा और मणि दे दूँगा ॥]

यह सुन बोधिसत्व ने छठी गाथा कही—

त्वञ्ञेव मणिना छन्नो सुकताय च मस्सुया,
आमन्त खो तं गच्छामि पियम्मे तवदस्सनं ॥

[हे मित्र ! तू ही मणि के योग्य है और इस अच्छी प्रकार बनाई गई दाढ़ी के। मैं तुझे कह कर जाता हूँ। मुझे तो तेरा अदर्शन प्रिय है ॥]

यह कह उड़कर अन्यत्र चला गया। कौवा वहीं मर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में लोभी भिक्षु अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय कौवा लोभी भिक्षु था। कबूतर तो मैं ही था।

सातवाँ परिच्छेद

१. कुक्कु वर्ग

३९६. कुक्कु जातक

"दियड्ढकुक्कु..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय राजा को उपदेश देने के बारे में कही। (वर्तमान) कथा तेसकुण-जातक[1] में आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके अर्थधर्मानुशासक अमात्य थे। राजा अनुचित-मार्ग में लग अधर्म से राज्य करने लगा। जन-पद को कष्ट देकर केवल धन ही इकट्ठा करता था। बोधिसत्व राजा को उपदेश देने के लिये कोई न कोई उपमा खोज रहे थे। उद्यान में राजा का निवास-स्थान अधूरा बना था, छत पूरी नहीं हुई थी, शहतीरों पर कड़ियाँ रखी थीं। राजा खेलने के लिये उद्यान में गया, तो वहाँ घूमते हुए उसने उस घर में प्रवेश किया। फिर शहतीरों के घेरे को देखकर इस डर से कि कहीं वह उस पर न गिर पड़े बाहर निकल आया। बाहर खड़े हो कर देखते हुए उसने यह सोचकर कि शहतीर और कड़ियाँ किसके सहारे खड़ी हैं, बोधिसत्व से पूछने के लिये पहली गाथा कही—

> दियड्ढकुक्कु उदयेन कण्णिका
> विदत्थियो अट्ठ परिक्खिपन्ति नं,
> ससिंसपा सारमया अफेग्गुका
> कुहिं ठिता उपरितो न धंसति ॥

---

[1] तेसकुण जातक (५२१)

[डेढ़ रतन ऊँची शहतीर हैं, और आठ बालिश्त का घेरा है। ये सारवान्, मजबूत सिरीस लकड़ी की बनी हैं। ये कहाँ स्थित हैं जो ऊपर नहीं गिरती है ?]

तब बोधिसत्व ने यह सोच कि अब मुझे राजा को उपदेश देने का अवसर मिला है, ये गाथायें कहीं—

यं तिंसति सारमया अनुज्जुका
परिकिरिय गोपाणसियो समट्ठिता,
ता सङ्गहीता बलसा च पीळिता
समट्ठिता उपरितो न धंसति ॥
एवं मित्ते हि दळहेहि पण्डितो
अभेज्जरूपेहि सुचीहि मन्तिहि,
सुसङ्गहीतो सिरिया न धंसति
गोपाणसी भारवहाव कण्णिका ॥

[जो तीस, मजबूत, टेढ़ी कड़ियाँ घेर कर खड़ी हैं, वे अच्छी प्रकार इकट्ठी होने से तथा बल-युक्त होने से खड़ी हैं, तथा ऊपर नहीं गिरतीं ॥ इसी प्रकार राजा यदि वह ऐसे मन्त्रियों से युक्त हो, जो उसके दृढ़ मित्र हों, जो अभेद्य हों, तथा जो शुचि-परायण हों तो वह राज्य-श्री से रहित नहीं होता जैसे छज्जे का शिखर जो घुड़-मुँहे पर टिका है ॥]

राजा ने बोधिसत्व के कहते कहते ही अपने कर्म का विचार कर सोचा—शहतीर के न रहने पर कड़ियां नहीं ठहरती हैं और कड़ियों से न मिला रहने पर शहतीर नहीं ठहरता। शहतीर के टूटने पर कड़ियां टूटकर गिर पड़ती हैं। इसी प्रकार जो अधार्मिक राजा अपने मित्र-अमात्य, सेना तथा ब्राह्मण-गृहपतियों का ख्याल नहीं करता, वह उनके पृथक हो जाने के कारण उनकी अवहेलना होने से ऐश्वर्य्य से पतित हो जाता है। राजा को धार्मिक होना चाहिये।

उस समय राजा को भेंट देने के लिये जंबीर-नीबू लाये। राजा ने बोधिसत्व से कहा—मित्र ! यह नीबू खा। बोधिसत्व ने लेकर कहा—महाराज ! जो खाना नहीं जानते वे इसे कड़ुवा कर देते हैं खट्टा, लेकिन जानकार पण्डित कड़वाहट निकाल, बिना खटाई निकाले, बिना नीबू का रस

बिगाड़े खाते हैं। इस प्रकार राजा को धन-संग्रह का उपाय बताते हुए ये दो गाथायें कहीं:—

खरत्तचं मेल्लं यथापि सत्थवा
अनामसन्तोपि करोति तित्तकं,
समाहरं सादुकरोति पत्थिवा
असादुकयिरा तनुवट्टमुद्धरं ॥
एवम्पि गामनिगमेसु पण्डितो
असाहसं राज धनानि संहरं,
धम्मावती पटिपज्जमानो
सफाति कयिरा अविहेठयं परं ॥

[जैसे शस्त्र हाथ में लिये आदमी कठोर छिलके वाले नीबू को बिना छीले ही कड़ुआ कर देता है, और हे राजन् ! बाहर के छिलके को उतार कर स्वादु तथा थोड़ा उतार कर अस्वादु कर देता है; उसी प्रकार राजन् ! पण्डित-पुरुष ग्राम निगमों में बिना जबरदस्ती किये, धन संग्रह करता हुआ, धर्मानुसार चलता हुआ, बिना दूसरों को कष्ट दिये वृद्धि करता है।]

राजा ने बोधिसत्व से बातचीत करते हुए पुष्करिणी तट पर पहुँच बाल-सूर्य के समान पानी से अलिप्त खिला हुआ कमल देखा। वह बोला— मित्र यह फूल जल में पैदा हुआ है तो भी जल से, अलिप्त है। बोधिसत्व ने 'महाराज ! राजा को भी ऐसा ही होना चाहिये' उपदेश देते हुए यह दो गाथायें कहीं:—

ओदातमूलं सुचिवारिसम्भवं
जातं यथा पोक्खरिणीसु अम्बुजं,
पदुमं यथा अग्गिनिकासिफालिमं
नकद्दमो नरजो न वारिलिम्पति ॥
एवम्पि वोहारसुचिं असाहसं
विसुद्धकम्मन्तमपेत पारकं,
नलिम्पति कम्मकिलेस तादिसो
जातं यथा पोक्खरणीसु अम्बुजं ॥

[जैसे श्वेत मूल वाले, पवित्र जलोत्पन्न, पुष्करिणियों में पैदा हुआ तथा सूर्य किरण से पुष्पित कमल न कीचड़ से लिप्त होता है, न धूलि से न पानी से; उसी प्रकार जो जबरदस्ती नहीं करता, जिसका व्यवहार पवित्र है, जो विशुद्ध कर्मा है तथा जो निष्पाप है वह कर्म-मैल से लिप्त नहीं होता।]

राजा बोधिसत्व का उपदेश सुन, तबसे धर्मानुसार राज्य कर, दानादि पुण्य कर्म करके स्वर्गगामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

३९७. मनोज जातक

"यथा चापो निन्नमति..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय विपक्षी भिक्षु के बारे में कही। (वर्तमान) कथा महिलामुख जातक[1] में विस्तार से आ ही गई है। उस समय शास्ता ने 'भिक्षुओ' न केवल अभी किन्तु पहले भी यह विपक्षी रहा है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही:—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व सिंह की योनि में पैदा हुए। सिंहनी के साथ रहते हुए उससे दो बच्चे हुए—पुत्र और पुत्री। पुत्र का नाम मनोज रक्खा गया। उसने भी बड़े होकर एक सिंह बच्ची रक्खी। इस प्रकार वे पाँच जने हो गये। मनोज जंगली भैंसे आदि को मार मांस लाता और माता पिता, बहन तथा भार्या को पोसता। एक दिन वह शिकार खेलने गया तो भागने में असमर्थ गिरी

---

[1] महिली मुख जातक (२६)

नाम के एक श्रृगाल को छाती के बल लेटा देखा। उसने पूछा—"सौम्य ! क्या है ?'

'स्वामी ! सेवा में रहना चाहता हूँ।'

उसने 'अच्छा' कहा और अपने साथ गुफा में ले आया।

बोधिसत्व ने उसे देखा तो मना किया—तात मनोज श्रृगाल दुश्शील होते हैं, पापी होते हैं, अनुचित कर्म में लगा देते हैं। इसे अपने पास मत रख। किन्तु वह मना न कर सका।

एक दिन श्रृगाल ने अश्वमांस खाने की इच्छा से मनोज से कहा—"स्वामी ! घोड़े का मांस छोड़ कोई ऐसा मांस नहीं जो हमने न खाया हो। घोड़े को पकड़ें।"

"घोड़े कहां होते हैं ?"

"वाराणसी में नदी के किनारे।"

उसने उसकी बात सुन घोड़ों के नदी पर नहाने के समय वहां पहुँच एक घोड़े को पकड़ा और पीठ पर चढ़ा जल्दी से अपने गुहा-द्वार पर आ पहुँचा। उसके पिता ने घोड़े का मांस खा चुकने पर कहा—तात ! घोड़े राजा का भोग होते हैं। राजा अनेक माया वाले होते हैं। वे कुशल धनु-र्धारियों द्वारा विंधवा देते हैं। घोड़े का मांस खाने वाले सिंह दीर्घायु नहीं होते। अब से अश्व को मत पकड़ना।

सिंह ने पिता का कहना न माना और घोड़े पकड़े ही। राजा ने जब सुना कि सिंह घोड़े ले जाता है तो उसने नगर के भीतर अश्व पुष्क-रिणी बनवाई। वहाँ से भी आकर ले जाता। राजा ने घुड़साल बनवाई और उसके अन्दर ही घोड़ों को घास पानी दिलाने लगा। सिंह प्राकार के ऊपर से जाकर घुड़साल में से भी ले ही जाता। राजा ने एक अचूक निशाना लगाने वाले धनुर्धारी को बुला कर पूछा—तात् ! सिंह को तीर से बींध सकेगा।

वह बोला 'सकता हूँ' और सिंह के आने के रास्ते में, प्राकार के पास मचान बनाकर उस पर रहा। सिंह आया और श्रृगाल को बाहर श्मशान में छोड़, घोड़े को उठा लाने के लिये नगर में कूदा। धनुर्धारी ने आने के समय सिंह का वेग बहुत होने के कारण उसे न बींध, घोड़े को उठा कर लेजाने के समय भार से शिथिल-वेग सिंह को तेज तीर से पिछले हिस्से में बींधा।

तीर अगले हिस्से से आर पार हो आकाश में जा उड़ा। शेर चिल्लाया। मैं मारा गया। धनुर्धारी ने उसे बींध बिजली की तरह धनुष की डोरी की आवाज की। शृगाल ने सिंह तथा डोरी की आवाज सुनी तो समझ गया कि उसका मित्र बींध कर मार डाला गया है। उसने सोचा—जो मरगया उससे दोस्ती क्या? अब मैं अपने निवास-स्थान को जाता हूँ। तब उसने अपने से ही बात करते हुए दो गाथायें कहीं:—

यथाचापो निन्नमति जियाचापि विकूजति,
हञ्जते नून मनोजो मिगराजा सखा मम॥
हन्ददानि वनं तारणं पक्कमामि यथासुखं,
नेतादिसा सखा होन्ति लब्भा मे जीवतो सखा॥

[जैसे धनुष झुकता है और जैसे उसकी डोरी की आवाज आती है उससे यह निश्चित है कि मेरा सखा मृगराज मनोज मारा जारहा है। अब मेरे लिये बन में ही त्राण है। मैं सुख पूर्वक जाता हूँ। ऐसे (मरे हुए प्राणी) सखा नहीं होते। जीते रहते (और) सखा प्राप्य हैं।]

सिंह भी बहुत तेज़ दौड़कर गुफा के द्वार पर पहुँचा और वहाँ घोड़े को गिरा स्वयं ही गिर कर मर गया। तब उसके संबंधियों ने बाहर निकल कर देखा कि वह खून में सना है, घाव से खून बह रहा है और कुसंगति के कारण मर गया है। यह देख उसके पिता, माता, बहन तथा भार्य्या ने क्रमशः चार गाथायें कहीं:—

न पापजनसंसेवी अच्चन्तं सुखमेधति,
मनोजं पस्स सेमानं गिरियस्सानुसासनी॥

[दुर्जन की संगति करने वाले को चिरकाल तक सुख नहीं मिलता। (तीर खाकर) पड़े हुए मनोज की ओर देखो—यह गिरिय की अनुशासना है।]

न पाप सम्पवङ्केन माता पुत्तेन नन्दति,
मनोजं पस्स सेमानं अच्छन्नं सम्हि लोहिते॥

[कुसंगति करने वाले पुत्र से माता को आनन्द नहीं होता। स्वयं रक्त बहते हुये, (तीर खाकर) लेटे हुये मनोज को देखो।]

एवमापज्जती पोसो पापियो च निगच्छति,
यो वे हितानं वचनं न करोति अत्थदस्सिनं॥

[इस प्रकार मनुष्य दुरवस्था को प्राप्त होता है और दुःख भोगता है जो अपने हितैषी बुद्धिमानों का कहना नहीं करता ।]

एवञ्च सो होति ततोव पापियो
यो उत्तमो अधम जनूपसेवी,
पसुत्तमं अधमजनूपसेवितं
मिगाधिपं सरवर वेगनीधुतं

[जो उत्तम पुरुष अधमजन की संगति करता है उसकी अवस्था उससे भी बुरी होती है। श्रेष्ठ मृगेन्द्र की अवस्था देखो जो अधमजन की कुसङ्गति के कारण शर से मारा गया ।]

अन्तिम सम्बुद्ध गाथा—

निहीयति पुरिसो निहीन सेवी
न च हायेथ कदाचि तुल्य सेवी,
सेट्ठमुपनमं उदेति खिप्पं
तस्मा अत्तनो उत्तरिं भजेथ ॥

[नीच की संगति करने वाले पुरुष का ह्रास होता है। (अपने)समान की संगति करने वाले का कभी ह्रास नहीं होता। श्रेष्ठ की संगति करने वाले की शीघ्र उन्नति होती है। इसलिये अपने से श्रेष्ठ की ही संगति करनी चाहिये ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में विपक्षी स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय शृगाल देवदत्त था। मनोज्ञ विपक्षी की संगति करने वाला। बहन उत्पल-वर्णा। भार्या क्षेमा भिक्षुणी। माता राहुल-माता। पिता तो मैं ही था।

३९८. सुतनु जातक

"राजा ते भत्त..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय माता का पोषण करने वाले भिक्षु के बारे में कही। (वर्तमान) कथा साम जातक[1] में आयगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक दरिद्र कुल में उत्पन्न हुये। नाम रखा गया सुतनु। वह बड़े होने पर मजदूरी कर माता पिता को पालता था। पिता के मरने पर माता का पोषण करने लगा।

उस समय वाराणसी राजा शिकार का बड़ा प्रेमी था। एक दिन वह बहुत से लोगों के साथ योजन-दो योजन के जंगल में गया और घोषणा की कि जिसके पास से मृग भाग जायगा वह उसी मृग (के मूल्य) को हारेगा।

अमात्यों ने राजा के लिये (मृगों के) निश्चित रास्ते पर एक कोठा बनवा दिया। मृगों के निवास-स्थानों को घेरकर हल्ला मचाने वाले लोगों के कारण उठकर भागने वाले मृगों में से एक बारासिंगा वहां पहुँचा जहाँ राजा खड़ा था। राजा ने उसे बींधने के लिये तीर छोड़ा। मृग माया जानता था। जब उसने देखा कि उसके अत्यन्त कोमल पार्श्व की ओर तीर चला आ रहा है तो वह पलट कर तीर से बिंधे की तरह होकर गिर पड़ा। राजा ने समझा, मैंने मृग मार लिया और पकड़ने के लिये दौड़ा। मृग उठकर हवा की तेजी से भाग गया। अमात्य आदि राजा पर हँसने लगे।

उसने मृग का पीछा किया। जब वह थक गया तो तलवार से उसके दो टुकड़े कर एक डण्डे पर टाँग बैहँगी उठाते हुए की तरह लाया। आते हुए थोड़ा विश्राम लेने के लिये सड़क के किनारे स्थित एक वट के वृक्ष के नीचे पहुँचा और लेट कर सो गया। उस वट वृक्ष पर रहने वाले

---

[1] साम जातक (५४०)

मखादेव यक्ष को कुबेर से यह अधिकार मिला था कि वहाँ जो आयें वह उन्हें खा सकता है। जिस समय राजा उठकर जाने लगा उसने उसे हाथ से पकड़ लिया—ठहर ! तू मेरा भोजन है।

"तू कौन है ?"

"मैं यहाँ रहने वाला यक्ष हूँ। जो इस स्थान पर आते हैं, उन्हें खाने का मुझे अधिकार है।"

राजा ने होश संभाले रख पूछा—क्या आज ही खायेगा, अथवा प्रतिदिन खाना चाहेगा।

"मिलें तो रोज खाऊँगा।"

"आज इस मृग को खाकर मुझे छोड़। मैं कल से तेरे लिये एक भात की थाली के साथ एक आदमी भेजूँगा।"

"तो भूल मत करना। जिस दिन नहीं भेजेगा, उस दिन तुझे ही खाऊँगा।"

"मैं वाराणसी का राजा हूँ। मेरे पास सब कुछ है।"

यक्ष ने प्रतिज्ञा करा उसे छोड़ दिया।

उसने नगर में प्रवेश कर अपने निजी मंत्री से सारा हाल कह कर पूछा—क्या करना चाहिये ? मंत्री बोला—देव ! क्या दिनों की मर्य्यादा बांधी है ?

"नहीं बांधी।"

"यदि ऐसा किया तो अनुचित किया। तब भी चिन्ता न करें। कारागार में बहुत मनुष्य हैं।"

"तो तू ही यह काम कर मुझे जीवनदान दे।"

अमात्य ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। वह प्रतिदिन कारागार से एक आदमी को निकाल भोजन की थाली के साथ बिना उसे कुछ जताये यक्ष के पास भेज देता। यक्ष भोजन कर आदमी को खा जाता। आगे चलकर कारागारों में कोई आदमी न रहा। राजा को जब कोई भोजन ले जाने वाला न मिला तो वह मृत्यु-भय से कांपने लगा। अमात्य ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—देव ! जीने की तृष्णा से धन की तृष्णा अधिक बलवान होती है। हाथी के कंधे पर हज़ार की थैली रखवा मुनादी

करायें—कौन है जो यह धन लेकर यक्ष के पास भोजन ले जायगा? उसने वैसी घोषणा कराई। बोधिसत्व ने सोचा मैं मजदूरी कर मासा, आधा-मासा कमा कठिनाई से माता का पोषण करता हूँ। यह धन ले माता को दे यक्ष के पास जाऊँगा। यदि यक्ष का दमन कर सकूंगा तो अच्छा, यदि नहीं कर सकूंगा तो भी मेरी माता सुख से जीवन बितायेगी।

उसने यह बात मां से कही तो उसने दो बार मना किया—तात्! मुझे धन नहीं चाहिये। तीसरी बार उसने माता से बिना पूछे ही कहा—आर्यों! हजार लाओ। मैं भोजन ले जाऊँगा। उसने हजार ले, जा माता को दिये और प्रणाम करते हुए कहा—मां! चिन्ता न कर। मैं यक्ष का दमन कर जनता को सुखी बना आज ही तुझ रोती हुई को हँसाता हुआ लौटूँगा। वह राज-पुरुषों के साथ राजा के पास जा खड़ा हुआ।

राजा ने पूछा—"तात! भात ले जायगा?"

"देव हाँ"

"तुझे क्या चाहिये?"

"देव! आपकी सोने की खड़ाऊँ।

"किसलिये?"

"देव! वह यक्ष वृक्ष के नीचे भूमि पर खड़े हुओं को खा सकता है, मैं उसके पास भूमि पर खड़ा न रह खड़ाऊँ पर खड़ा होऊँगा।"

"और क्या चाहिये?"

"देव! आपकी छाता।"

"यह किसलिये?"

"देव! यक्ष अपने वृक्ष की छाया में खड़े होने वालों को ही खा सकता है, मैं उसके वृक्ष की छाया के नीचे खड़ा न रह छत्र की छाया के नीचे खड़ा होऊँगा।"

"और क्या चाहिये?"

"देव! आपकी तलवार।"

"इसका क्या काम?"

"देव! शस्त्रधारियों से अमनुष्य भी डरते हैं।"

"और क्या चाहिये?"

"देव ! सोने की थाली में रक्खा हुआ आपका खाना।"

"तात् ! किसलिये।"

"देव ! मेरे जैसे पण्डित आदमी के लिए यह योग्य नहीं कि वह मिट्टी के बर्तन में रूखा सूखा भोजन ले जाये।"

राजा ने स्वीकार कर सब सामान दिलवा अपने नौकरों को उसकी सेवा में नियुक्त किया। बोधिसत्व ने राजा को प्रणाम किया—'महाराज ! डरें मत। आज मैं यक्ष का दमन कर आपका मंगल कर लौटूंगा। वह सामान लिवा वहाँ पहुँचा। उसने मनुष्यों को वृक्ष से दूर खड़ा किया और स्वयं स्वर्ण-पादुका पर चढ़, तलवार बांध, श्वेत छत्र धारण कर, सोने की थाली में भोजन ले यक्ष के पास पहुँचा।

यक्ष प्रतीक्षा कर रहा था। उसे देख यक्ष ने सोचा—यह आदमी दूसरे दिन आने वालों की तरह नहीं आता है। क्या कारण है ? बोधिसत्व ने भी वृक्ष के पास पहुँच वृक्ष की छाया के किनारे खड़े हो तलवार की नोक से भोजन की थाली को छाया के अन्दर कर पहली गाथा कही—:

राजा ते भत्तं पाहेसि सुचिमंसूपसेचनं,
मखा देवमिमं अधिवत्थे एहि निक्खम्म भुञ्जस्सू॥

[हे मखा देव ! (वृक्ष) पर रहने वाले (यक्ष) ! राजा ने तेरे लिये पवित्र मांस-युक्त भोजन भेजा है। आ बाहर निकल कर खा।]

यक्ष ने यह सुना तो उसे छाया के भीतर बुलाकर खाने की नियत से ठगने के लिये दूसरी गाथा कही—

एहि माणव ओरेन भिक्खमादाय सूपितं,
त्वञ्च माणव भिक्खा च उभो भक्खा भविस्सथ॥

[हे माणवक ! सूप सहित भिक्षा लेकर इधर आ। हे माणवक ! तू और भोजन दोनों मेरे भोजन बनेंगे।]

तब बोधिसत्व ने दो गाथायें कहीं—

अप्पकेन तुवं यक्ख थुल्लमत्थं जहिस्ससि,
भिक्खं ते नाहरिस्सन्ति जना मरणसञ्ञिनो॥
लद्धायं यक्ख तव निच्चभिक्खं
सुचिं पणीतं रससा उपेतं,

भिक्खं च ते आहरियो नरो इध,
सुदुल्लभो होहिति खादिते मयि ॥

[हे यक्ष तू अल्प लाभ के लिये महान् लाभ को छोड़ दे रहा है। (यदि तू मुझे खा जायगा) तो आगे से मृत्यु से भयभीत (लोग) तेरे लिये भोजन नहीं लायेंगे। हे यक्ष ! तुझे यह पवित्र, बढ़िया, सरस भोजन नित्य प्राप्य है। लेकिन मेरे खा लेने पर इस भोजन को यहाँ लाने वाला आदमी दुर्लभ हो जायगा ॥]

यक्ष ने 'माणवक ठीक कहता है' सोच दो गाथायें कहीं:—

समेस सुतनो अत्थो यथा भाससि माणव,
मया त्वं समनुञ्ञातो सोत्थिं पस्ससि मातरं ॥
खग्गं छत्तञ्च पातिञ्च गच्छेवादाय माणव,
सोत्थिं पस्सतु ते माता त्वञ्च पस्साहि मातरं ॥

[हे माणव ! जैसे तू कहता है, यह मेरे ही हित में है। मैं तुझे जाने देता हूँ। तू सकुशल लौट माता को देखेगा। हे माणव ! तू तलवार, छतरी तथा थाली लेकर जा। तू अपनी माता को सकुशल देखे और तेरी माता तुझे सकुशल देखे।]

यक्ष की बात सुन यह सोच कि मेरा काम पूरा हो गया, मैंने यक्ष का दमन कर लिया, मुझे बहुत धन प्राप्त हुआ तथा राजा का कहना हो गया। बोधिसत्व ने प्रसन्न-चित्त हो यक्ष की बात का समर्थन करते हुये अंतिम गाथा कही:—

एवं यक्ख सुखी होहि सह सब्बेहि ञातिहि,
धनञ्च मे अधिगतं रञ्ञो च वचनं कतं ॥

[हे यक्ष ! अपने सभी सम्बन्धियों सहित तू सुखी हो। मुझे धन मिला है, और राजा का कहना हो गया है।]

इतना कह चुकने पर यक्ष को सम्बोधित कर फिर कहा—मित्र ! तू ने पहले अकुशल कर्म किये। उसी के परिणाम स्वरूप तू कठोर, परुष, दूसरों का रक्त-माँस खाने वाला यक्ष हो पैदा हुआ। अब से प्राणातिपात आदि मत कर। इस प्रकार सदाचार का सुपरिणाम तथा दुश्शीलता का दुष्परिणाम कह यक्ष को पञ्चशील में प्रतिष्ठित किया। उसने यक्ष को 'जंगल में रहने से

तुझे क्या लाभ । आ तुझे नगरद्वार पर बिठा श्रेष्ठ-भोजन का लाभी बनाऊँ' कहा और उसे साथ ले, निकल, खड्ग आदि यक्ष से ही उठवाकर वाराणसी पहुँचा । राजा को सूचना दी गई—सुतनु माणव यक्ष को लिये आता है । अमात्यों सहित राजा ने बोधिसत्व का स्वागत किया । यक्ष को नगर-द्वार पर बिठाया और उसे श्रेष्ठ-भोजन मिलने की व्यवस्था की । फिर नगर में प्रविष्ट हो, मुनादी करा, नगर वासियों को एकत्र किया और बोधिसत्व के गुणों की प्रशंसा कर उसे सेनापति बना दिया । उसने स्वयं बोधिसत्व के उपदेशानुसार चल, दानादि पुण्य कर्म कर स्वर्ग-लाभ किया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों के अन्त में माता का पोषण करने वाला भिक्षु स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ । उस समय यक्ष अङ्गुलि-माल था । राजा आनन्द । माणव तो मैं ही था ।

३९९. गिज्झ जातक

"ते कथन्नु करिस्सन्ति..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक माता का पोषण करने वाले भिक्षु के बारे में कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गीध की योनि में पैदा हुये । बड़े होने पर वह बूढ़े, अन्धे माता-पिता को गृद्ध (-गुफा) में रख गोमांस आदि लाकर पोसने लगा । उस समय वाराणसी की श्मशान भूमि में एक निषाद ने लगभग सभी जगह गीधों को फँसाने के लिए जाल फैलाया । एक दिन बोधिसत्व गोमांस खोजते-खोजते श्मशान में दाखिल हुआ । वहां जाल में पैर फँस गये । उसे अपनी चिन्ता न थी । किन्तु बूढ़े माता-पिता की याद कर और यह सोच कि मेरे माता-पिता कैसे जियेंगे,

उन्हें मेरे जाल में फँसने तक का ज्ञान न होगा, वे निराश्रय हो पर्वत-गुफा में ही सूखकर मर जायँगे उसने रोते हुये पहली गाथा कही :—

ते कथन्नु करिस्सन्ति वुद्धा गिरिदरिसया,
अहं बद्धोस्मि पासेन नीलियस्स वसङ्गतो ॥

[पहाड़ की दरार में रहने वाले वृद्ध क्या करेंगे ? मैं बन्धन में बँध-कर नीलिय नामक चिड़ीमार के वशीभूत हो गया ।]

तब चिड़ीमार पुत्र ने गृद्धराज का विलाप सुन दूसरी गाथा कही —

किं गिज्झ परिदेवसि कानुतेपरिदेवना,
न मे सुतो वा दिट्ठो वा भासन्तो मानुसिं दिजो ॥

[हे गीध किसके लिये विलाप करता है और क्या विलाप करता है ? मैंने (इससे पूर्व) मानुषी बोली बोलने वाला पक्षी न सुना, और न देखा ।]

गीध बोला—

भरासि माता पितरो वुद्धे गिरिदरिसये,
ते कथन्नु करिस्सन्ति अहं वसङ्गतो तव ॥

[मैं पर्वत की दरार में रहने वाले माता-पिता का पोषण करता रहा। अब जब मैं तेरे वशीभूत हो गया हूँ तो वे क्या करेंगे ?]

चिड़ीमार बोला—

यन्नु गिज्झो योजनसतं कुणपानि अपेक्खति,
कस्मा जालञ्च पासञ्च आसज्जापि न बुज्झति ॥

[जो गीध सौ योजन ऊपर से मुर्दार को देख लेता है वह पास के ही जाल और बन्धन को क्यों नहीं देख सकता?]

गीध बोलाः—

यदा पराभवो होति पोसो जीवितसङ्खये,
अथ जालञ्च पासञ्च आसज्जापि न बुज्झति ॥

[जब मनुष्य का जीवन क्षीण होता है तो वह पास होने पर भी जाल और बन्धन को नहीं देखता ।]

चिड़ीमार बोलाः—

भरस्सु माता पितरो वुद्धे गिरिदरीसये,
मया त्वं समनुञ्ञातो सोत्थिं पस्साहि ञातके ॥

[पर्वत की दरार में रहने वाले अपने वृद्ध मातापिता का पालन-पोषण कर। मैंने तुझे मुक्त किया। सकुशल अपने संबंधियों को देख।]

गीध बोलाः—

एवं लुद्दक नन्दस्सू सह सब्बेहि ञातिभि,
भरिस्सं मातापितरो वुद्धे गिरिदरीसये ॥

[इसी प्रकार हे चिड़ीमार ! तूभी सब रिश्तेदारों के साथ आनन्दकर। मैं पर्वत की दरार में रहने वाले बूढ़े माता पिता का पालन करूँगा।]

बोधिसत्व मरण-दुःख से मुक्त हो, शिकारी के सुखी रहने की कामना कर, अन्तिम गाथा कह, मुँह भर मांस लेकर गये और माता पिता को दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्यों के अन्त में माता का पोषण करनेवाला भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय चिड़ीमार पुत्र छन्न था। मातापिता महाराज-कुल थे। गीध-राज तो मैं ही था।

४००. दब्भ पुप्फ जातक

"अनुतीरचारि भद्दन्ते..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उपनन्द शाक्य पुत्र के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह बुद्धशासन में प्रव्रजित हो अल्पेच्छता आदि गुणों को छोड़ अत्यधिक तृष्णा वाला हुआ। वर्षा वास करने के समय दो तीन विहारों में वर्षा वास करना स्वीकार कर एक में छाता या जूता रख देता, एक में हाथ की लाठी या पानी का तूबा और एक में स्वयं रहता। एक बार उसने वर्षाऋतु में एकजनपदीय विहार में वर्षा-वास करना स्वीकार कर 'भिक्षुओं को अल्पेच्छु

होना चाहिये' कह आकाश में चन्द्रमा को प्रकट करते हुये की तरह भिक्षुओं को परिभोग-वस्तुओं में सन्तोषी रहने की प्रेरणा करने वाली आर्य वंश प्रतिपदा कही। उसे सुन भिक्षुओं ने सुन्दर पात्र-चीवर छोड़, मिट्टी के पात्र तथा फटे पुराने चीथड़ों के चीवर ले लिये। उसने सुन्दर पात्र-चीवरों को अपने निवास स्थान में रक्खा। वर्षा-वास समाप्त होने पर गाड़ी भर जेतवन ले चला। रास्ते में एक आरण्य विहार था। पांव में लता लिपटे हुए उसके पीछे से गुजरते समय उसने सोचा, निश्चय से यहां कुछ मिलेगा और विहार में प्रवेश किया। उस विहार में दो बूढ़े भिक्षु वर्षा वास करते थे। उन्हें दो स्थूल वस्त्र और एक बारीक कम्बल मिला। न बाँट सकने के कारण उसे देख वे प्रसन्न हुए कि स्थविर हमें बाँट कर देगा। बोले—भन्ते! हम वर्षा वास में मिले इस वस्त्र को बाँट नहीं सकते हैं। इसके कारण हमारा विवाद होता है। इसे हमें बाँट कर दें। उसने बांटना स्वीकार कर दो स्थूल वस्त्र दोनों को दे दिये और यह कह कि कम्बल तो विनयधरों को मिलना चाहिये कम्बल ले चल दिया। उन स्थविरों का कम्बल से प्रेम था। वे भी उसके साथ जेतवन पहुँचे। और विनयधर भिक्षुओं को वह बात सुना पूछा—भन्ते क्या विनयधर इस प्रकार लूट खा सकते हैं?

भिक्षुओं ने उपनन्द स्थविर द्वारा लाये गये पात्र, चीवर के ढेर को देख कर कहा—आयुष्मान्! तू बहुत पुण्यवान है। तुझे बहुत पात्र चीवर मिले।

"आयुष्मानो! पुण्य कहां—इस उपाय से यह प्राप्त हुए हैं" सारी कथा कह सुनाई। धर्म-सभा में बातचीत चली—आयुष्मान् उपनन्द शाक्य-पुत्र बड़ी तृष्णा वाला है। महालोभी है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

"अमुक बात-चीत" कहने पर 'भिक्षुओ उपनन्द ने दूसरों को आर्य-चर्या का उपदेश दे अनुचित किया। दूसरों को उपदेश देने वाले भिक्षु को चाहिये कि वह पहले जो उचित है उसे करे तब दूसरे को उपदेश दे। इस प्रकार धम्मपद की गाथा से उपदेश देते हुए "भिक्षुओ न केवल अभी उपनन्द महान-लोभी है, यह पहले भी महालोभी रहा है। और न केवल अभी इनकी चीज़ें लूटी है, किन्तु पहले भी लूटी है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व नदी तट पर वृक्ष-देवता हुए। उस समय मायावी नामक भार्या के साथ एक श्रृगाल नदी के किनारे एक जगह रहता था। एक दिन श्रृगाल से कहा— स्वामी ! मुझे दोहद उत्पन्न हुआ है। ताजी रोहित मछली खाना चाहती हूँ। श्रृगाल बोला—व्यग्र न हो तेरे लिये लाऊँगा। पाँव में लता लपेटे वह नदी के साथ साथ घूमता हुआ ठीक किनारे पर पहुँचा। उस समय गम्भीर-चारी तथा अनुतीर-चारी नामक दो ऊदबिलाव किनारे पर खड़े मछलियाँ खोज रहे थे। उनमें से गम्भीरचारी ने एक बड़ी मछली देख जल्दी से पानी में उतर उसे पूँछ से पकड़ा। बलवान मछली उसे खींचती ले गई। उस गम्भीरचारी ऊदबिलाव ने दूसरे को 'यह महा मछली हम दोनों से पार नहीं पा सकेगी, आ मदद कर' बुलाते हुए पहली गाथा कही—

अनुतीरचारि भद्दन्ते सहायमनुधाव मं,
महामे गहितो मच्छो सो मं हरति वेगसा ॥

[हे अनुतीरचारी ! तेरा भला हो। आ मेरी मदद कर। मैंने बड़ी मछली पकड़ी है। वह मुझे जोर से खींच लिये जाती है।]

यह सुन उसने दूसरी गाथा कही—

गम्भीरचारि भद्दन्ते दळ्हं गण्हाहि थामसा,
अहं तं उद्धरिस्सामि सुपण्णोडरगम्मिव ॥

[हे गम्भीरचारी ! तेरा भला हो। उसे दृढ़ता पूर्वक जोर से पकड़। मैं उसे खींच कर निकालूंगा जैसे गरुड़ सांप को।]

दोनों ने इकट्ठे हो रोहित मछली को बाहर निकाल जमीन पर रक्खा। उसे मार कर 'तू बाँट, तू बाँट' कह झगड़ा करने लगे। जब न बाँट सके तो रखकर बैठ गये। उसी समय गीदड़ वहाँ आ पहुँचा।

उसे देख उन दोनों ने उसका स्वागत कर निवेदन किया—मित्र दब्भपुप्फ ! यह मछली हम दोनों ने इकट्ठे होकर पकड़ी है। उसे बांट न सकने के कारण हम दोनों में विवाद छिड़ गया है। हमें ये बराबर बराबर बाँट दे। उन्होंने तीसरी गाथा कही—

विवादो नो समुप्पन्नो दब्भपुप्फ सुणोहिमे,
सम्मेहि मेधगं सम्म विवादो उपसम्मतु ॥

[हे दब्भपुप्फ ! हमारी बात सुन । हममें विवाद छिड़ गया है । मित्र हमारा न्याय कर जिससे विवाद शान्त हो ।]

उनकी बात सुन शृगाल ने अपना बल प्रकट करते हुए कहा:—

धम्मट्ठोहं पुरे आसिं बहु अत्थं मे तीरितं,
समेमि मेधगं सम्मा विवादो उपसम्मतु ॥

[मैं पहले न्यायाधीश था । मैंने बहुत मुकद्दमों का निर्णय किया है । मैं तुम्हारे झगड़े का भली प्रकार निर्णय करता हूं जिससे विवाद शान्त हो ।]

और बाँटते हुए यह गाथा कही :—

अनुतीरचारि नङ्गुट्ठं सीसं गम्भीरचारिनो,
अथायं मज्झिमो खण्डो धम्मट्ठस्स भविस्सति ॥

[अनुतीर-चारी के लिये पूंछ, और गम्भी-चारी के लिये सिर और यह जो बीच का हिस्सा है यह न्यायाधीश का होगा ।]

इस प्रकार इस मछली को बाँट 'तुम झगड़ा न कर पूंछ और सिर खाओ' कह बीच का हिस्सा मुँह में ले, उनके देखते देखते ही भाग गया । वे (जुये में) हजार हजार हारे की तरह बुरी शकल बना कर बैठे और छठी गाथा कही:—

चिरम्पि भक्खो अभविस्स सचे न विवदेमसे,
असीसिकं अनङ्गुट्ठं सिगालो हरति रोहितं

[यदि झगड़ा न करते तो चिर काल तक भोजन हो सकता था । बिना सिर और पूंछ की रोहित मछली को गीदड़ लिये जा रहा है ।]

शृगाल भी आज भार्या को रोहित मछली खिलाऊँगा सोच प्रसन्नता पूर्वक उसके पास गया । उसने आते देख स्वागत किया—

यथापि राजा नन्देय्य रज्जं लद्धान खत्तियो,
एवाहमज्ज नन्दामि दिस्वा पुण्णमुखं पतिं ॥

[जिस प्रकार क्षत्रिय राजा राज्य प्राप्त कर प्रसन्न होता है उसी प्रकार मैं भी आज पति को भरेमुँह आते देख प्रसन्न हूँ ।]

और वह प्राप्ति का उपाय पूछती हुई बोली—

अन्तु थलजो सन्तो उदके मच्छं परामसि,
पुट्ठो मे सम्म अक्खाहि कथं अधिगतं तया ॥

[सौम्य ! मुझे पता दो कि स्थलचारी होकर पानी में मछली को कैसे पकड़ा ? इस मछली की प्राप्ति कैसे हुई ?]

शृगाल ने उसकी प्राप्ति का उपाय बताते हुए यह गाथा कही :—

विवादेन किसा होन्ति विवादेन धनक्खया,
जिना उद्दा विवादेन भुञ्ज मायावी रोहितं ।

[विवाद से दुर्बल होते हैं । विवाद से धन-क्षय होता है । विवाद से ही ऊद-बिलाव मछली से वंचित हुए । हे मायावी ! रोहित मछली खा ।]

यह अभिसम्बुद्ध गाथा है—

एवमेवं मनुस्सेसु विवादो यत्थ जायति,
धम्मट्ठं पटिधावन्ति सो हि नेसं विनायको ।
धनापि तत्थ जीयन्ति राजकोसोपवड्ढति ॥

[इसी प्रकार मनुष्यों में जहाँ विवाद पैदा होता है, वे न्यायाधीश के पास दौड़ते हैं । वह उनका न्याय करता है । उनके धन की हानि होती है और राजकोष बढ़ता है ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । उस समय शृगाल उपनन्द था । ऊदबिलाऊ दो बूढ़े । उस बात को प्रत्यक्ष देखने वाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था ।

———